दो शब्द

पुराणों का मुख्य उद्देश्य धर्म-कथाओं और धर्म इतिहास का वर्णन करना माना गया है, पर बहुसंख्यक पुराणों मे इनके अतिरिक्त विभिन्न कलाओं और विद्याओं का विवेचन भी बड़े विस्तारपूर्वक किया गया है। नारद पुराण, गरुड पुराण, अग्नि पुराण, विष्णु धर्मोत्तर पुराण आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। नारद पुराण मे वेद के छः अंगों—शिक्षा, कला, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द शास्त्र का जैसा विस्तृत और विशद वर्णन किया गया है उसे देखकर आश्चर्य होता है। गरुड पुराण मे रोग और औषधियों का जितना वर्णन मिलता है, उसे एक छोटा-मोटा पृथक आयुर्वेद ग्रंथ ही कहा जा सकता है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण मे राज-धर्म और राज्य सञ्चालन सम्बन्धी सैकड़ों पृष्ठव्यापी एक पूरा शास्त्र ही मौजूद है।

'मत्स्यपुराण' के इस दूसरे खण्ड मे भी 'राज धर्म' 'राजनीति गृह निर्माण विद्या' और 'मूर्तिकला' का पर्याप्त विस्तार के साथ वर्णन पाया जाता है। इसमे न केवल राजा के कर्तव्य और प्रजापालन का उपदेश दिया गया है, वरन् राजधानी का नगर किस प्रकार बसाया जाय, किलाबन्दी किस प्रकार की जाय, अपनी रक्षा और शत्रुओं का सामना करने के लिये उसमे कैसे अस्त्र-शस्त्रो, युद्ध-सामिग्री और हर तरह की घायलों की चिकित्सार्थ जड़ी-बूटियों तथा औषधियों का संग्रह किया जाय इसका वर्णन दस-बीस अध्यायों मे विस्तार के साथ किया गया है।

प्रसाद, भवन, गृह आदि के निर्माण मे भी इस देश के प्राचीन 'वास्तु-विद्या' (इंजीनियरिङ्ग) का ज्ञान भली प्रकार प्रदर्शित किया गया है। मकानों मे द्वार किस तरफ कैसे बनाये जायें और खम्भों के निर्माण मे किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है? इसमे चौकोर से लेकर बत्तीस पहलों तक के तरह-तरह के खम्भों का जो वर्णन मिलता है उससे उस जमाने के लोगों की कलाप्रियता का परिचय मिलता है।

देवताओं की मूर्ति निर्माण मे तो काफी जानकारी का होना अनिवार्य ही है । प्रत्येक देवता की मूर्ति मे क्या विशेष लक्षण रखे जायें जिससे उसे ठीक-ठीक पहिचाना जाय और उसके समस्त साम्प्रदायिक चिन्ह उसमे स्पष्ट दिखाई पड सके ? उदाहरण के लिये विष्णु-भगवान् की मूर्ति-निर्माण मे वर्णन किये कुछ लक्षण यहाँ दिये जाते हैं—

"शख, चक्र, पद्म और गदा धारण करने वाला—परम प्रशान्त उनका मस्तक छत्र के आकार से सयुत होता है । शख के समान ग्रीवा, शुभ नेत्र, ऊँची नाक, सीप के से कान, परम प्रशान्त उरु वाला उनका रूप होता है । उनकी मूर्ति कहीं आठ भुजाओं और कही चार भुजाओं से युक्त होती है । यदि आठ भुजा बनाई जायें तो खड्ग, गदा, शर, दिव्य पद्म ये सब आयुध विष्णु जी के दक्षिण भाग मे होने चाहिए और धनुष, खेटक, शख, चक्र य चार वाम भाग मे रहने चाहिये । चार भुजा वाले स्वरूप मे गदा और पद्म दक्षिण भाग मे और शख तथा चक्र वाम भाग मे रखे जायें । उनके नीचे की ओर पैरो क मध्य भाग मे पृथ्वी की कल्पना करनी चाहिये । दक्षिण भाग मे प्रणति करते हुये गरुण और वाम भाग मे हाथो मे पद्म धारण किये लक्ष्मी देवी को विराजमान करना चाहिये । विभूति की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को गरुण की स्थापना भगवान क सम्मुख भाग मे करनी चाहिये । दोनो पार्श्वों मे पद्म से सयुत श्री तथा पुष्टि की स्थापना करे । विद्याधरो के ऊपर तोरण बनावे और उसे दुन्दुभिनाद करते हुये गन्धर्व, ललाये, सिह और व्याघ्र आदि से सजावे ।"

इसी प्रकार प्रत्येक देवता के विशेष चिन्हो को मूर्तियो मे दर्शाने का पूरा विवरण दिया गया है । अन्त मे सब मूर्तियो के अग अनुपात के अनुसार कितने बडे और छोटे होने चाहिये इसको भी स्पष्ट कर दिया गया है । एक जगह कहा गया है कि "मूर्ति की कटि अठारह अगुल की होनी चाहिये । स्त्री-मूर्ति की कटि बाईस अगुल की रखी जाती है और दोनो स्तन बारह-बारह अगुल के होते हैं । नाभि के मध्य का परीणाह

बयालीस अंगुल का अभीष्ट होना है। पुरुषों में यह विस्तार पचपन अंगुल होना है। दोनों कन्धे छ-छः अंगुल के बताये गये हैं। ग्रीवा आठ अंगुल और दोनों भुजाओं का आयाम बयालीस अंगुल का होना है।" इसी प्रकार शरीर के प्रत्येक अंग की—हथेलियों और पाँवों अंगुलियों तक की नाप ठीक-ठीक बतलाई गई है, जिससे मूर्ति सब प्रकार से सुन्दर दिखलाई दे और उसमें कहीं बेडौलपन प्रकट हो।

और भी कई अन्य महत्त्वपूर्ण विषय इस खण्ड में मिलते हैं। भृगु, अंगिरस, अत्रि कुशिक, कश्यप, वसिष्ठ आदि सभी प्रमुख ऋषियों के नाम, गोत्र, वंश, प्रवर स्पष्ट रूप में दिये गये हैं। ये ही ऋषि भारतीय संस्कृति के आदि जनक माने जाते हैं और अधिकांश पौराणिक उपाख्यान इन्हीं वंशों से किसी न किसी रूप में सम्बन्धित हैं। नरसिंह और वाराह अवतारों के चरित्र के विषय में भी मत्स्य पुराण का वर्णन कुछ विशेषता लिये हुए है। देवासुर संग्राम में दोनों पक्षों के सेनानायकों तथा वीरों का परिचय और उनका संग्राम कवि कल्पना का अच्छा परिचय देने वाला है। सावित्री-सत्यवान की कथा इस पुराण में भी छः-सात अध्यायों में दी गई है और उसकी वर्णन शैली प्रभावशाली है। मंगल-अमंगल सूचक शकुनों, तरह-तरह के स्वप्नों और अंगों के फड़कने का जो फलादेश दिया गया है वह अधिकांश पाठकों को मनोरंजक जान पड़ेगा।

अठारहों पुराणों के स्तर पर विचार करते हुये 'मत्स्य पुराण' को महत्त्वपूर्ण ही माना जायगा। यह न बहुत अधिक बड़ा है और न बहुत छोटा और पुराण के पाँचों अंगों के साथ इसमें पर्याप्त जीवनोपयोगी और समाज की दृष्टि से प्रगतिशील विचारों और कलाओं का परिचय दिया गया है। यद्यपि हम एक हजार पृष्ठ में सब बातों को पूरे विस्तार के साथ नहीं दे सकते तब भी इस संशोधित संस्करण में पाठकों को सभी आवश्यकीय बातों का ज्ञान हो सकेगा और वे स्वयं इसके महत्त्व को अनुभव कर सकेंगे।

—सम्पादक

विषय-सूची

(द्वितीय खण्ड)

मत्स्य पुराण

[द्वितीय खण्ड]



६१—नरसिंह माहात्म्य वर्णन

इदानी श्रोतुमिच्छामो हिरण्यकशिपोर्वधम् ।
नरसिंहस्य माहात्म्य तथा पापविनाशनम् ॥१
पुरा कृतयुगे विप्रा हिरण्यकशिपुः प्रभुः ।
दैत्यानामादिपुरुषश्चकार स महत्तपः ॥२
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
जलवासी समभवत् स्नानमौनधृतव्रतः ॥३
ततः शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चैव हि ।
ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च ॥४
ततः स्वयम्भूर्भगवान् स्वयमागम्य तत्र ह ।
विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ॥५
आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भिर्दैवतैस्तथा ।
रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसपन्नगैः ॥६
दिग्भिश्चैव विदिग्भिश्च नदीभिः सागरैस्तथा ।
नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः ॥७

ऋषिगण ने कहा—हे मुनिवर! इस समय में हम लोग हिरण्यकशिपु के वध के विषय में श्रवण करने की इच्छा रखते हैं तथा भगवान्

नरसिंह प्रभु के माहात्म्य को भी सुनना चाहते हैं जो सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाला है ॥ १ ॥ महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—हे विप्र-वृन्द ! पहिले कृत युग में हिरण्य कशिपु प्रभु दैत्यों का आदि पुरुष था और उसने दश सौ दश हजार वर्ष तक महान् घोर तपश्चर्या की थी। वह स्नान—मौन और व्रत को धारण करने वाला होकर जल में ही निवास करने वाला हो गया था ॥ २, ३ ॥ इसके अनन्तर उस हिरण्य कशिपु दैत्यराज के उस महान् उग्र तप से और नियमों के परिपालन से—शम—दम और ब्रह्मचर्य के द्वारा ब्रह्माजी उस पर बहुत प्रसन्न हो गये थे। जब वे अत्यधिक प्रसन्न हो गये तो स्वयम्भू भगवान् स्वयं ही वहाँ पर उसके तप के स्थल पर आ गये थे। हंसयुक्त सूर्य के समान वर्ण वाले भास्वान् विमान के द्वारा ब्रह्माजी ने वहाँ पर पदार्पण किया था। उस समय में उनके साथ आदित्य—वसुगण—साध्य—मरुद्गण—दैवत- रुद्र— विश्व सहायक—यक्ष—राक्षस —पन्नग—दिशाऐं –विदिशाऐं –नदियाँ —सागर नक्षत्र–मुहूर्त्त–खेचर और महान् ग्रह सब थे ॥ ४ । ५ । ६ । ७ ॥

देवैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा ।
राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिर्गन्धर्वाप्सरसाङ्गणैः ॥८
चराचरगुरुः श्रीमान् वृतः सर्वैर्दिवौकसैः ।
ब्रह्मा ब्रह्मविदा श्रेष्ठो दैत्य वचनमब्रवीत् ॥९
प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसाऽनेनसुव्रत ! ।
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥१०
न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ।
न मानुषाः पिशाचा वा हन्युर्मान्देवसत्तम ! ॥११
ऋषयो वा न मां शापं शपेयुः प्रपितामह ।
यदि मे भगवान् प्रीतो वर एष वृतोमया ॥१२
न चास्त्रेण न शस्त्रेण गिरिणा पादपेन च ।
न शुष्केण न चार्द्रेण न दिवा न निशाऽथवा ॥१३

भवेयमहमेवार्क सोमोवायुहुंताशन ।
सलिलञ्चान्तरिक्षञ्च नक्षत्राणि दिशो दश ॥१४
अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणा वासवोयमः ।
धनदश्च धनाध्यक्षो यक्ष. किंपुरुषाधिप ॥१५

ब्रह्माजी जब वहाँ आये थे तो वे देवगण—ब्रह्मर्षि—सिद्ध और सप्तर्षियो के साथ मे थे । बडे २ राजर्षि-पुण्यवान्-गन्धव-अप्सराओ के समुदाय तथा समस्त दिवोकसो के साथ मे वे चरो और अचरो के गुरु-ब्रह्मवेत्ताओ मे परम श्रेष्ठ श्रीमान् ब्रह्माजी परिवृत थे। वहाँ पहुँच कर जगद्गुरु ब्रह्माजी ने उस दैत्यराज से यह वचन कहा था ॥ ८ । ९ ॥ हे सुव्रत ! तुम मेरे परम भक्त हो । मैं इस समय मे आपके इस अत्यन्त उग्र तप स परम प्रसन्न हो गया हूँ । आपका कल्याण हो, अब जो भी कोई वरदान मुझसे चाहते हो माँग लो और जो भी आपको परम अभीष्ट कामना हो उस प्राप्त करलो ॥ १० ॥ यह ब्रह्माजी का वचन सुनकर हिरण्य कशिपु ने कहा—हे देव सत्तम ! मैं यही चाहता हू कि देव-असुर-गन्धर्व-यक्ष-उरग-राक्षस-पिशाच और मानुष कोई भी मेरा हनन न करें ॥ ११ ॥ हे प्रपितामह ! ये ऋषिगण भी अपने शापो के द्वारा मुझे अभिशप्त न करने पावे । यदि भगवान् आप मुझ पर पूर्णतया प्रसन्न हो गये हैं तो मैं आपसे यही वरदान प्राप्त करना चाहता हूँ ॥१२॥ हे भगवन् ! मेरी मृत्यु का साधन कोई भी अस्त्र-शस्त्र--गिरि--पादप आदि न होवे अर्थात् इनमे किसी के भी द्वारा मैं न मारा जा सकूँ । मैं किसी भी शुष्क स्थल मे अर्थात् भूमि पर और आर्द्र भाग मे अर्थात् जल मे न मरूँ । मुझे दिन म तथा रात्रि म किसी भी समय म मृत्यु न आवे अर्थात् मुझे दिन और रात मे कोई भी न मार सके ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैं ही सूर्य हो जाऊँ तथा सोम—वायु और हुताशन मैं ही बन जाऊँ अर्थात् इन सबकी शक्ति मेरे अन्दर ही हो जावे । मैं ही सलिल—अन्तरिक्ष-नक्षत्र-दशो दिशाएँ हो जाऊँ अर्थात् इन सबकी शक्ति मे ही

अन्दर उपस्थित हो जावे। हिरण्यकशिपु ने कहा कि मैं ही क्रोध-काम-वरुण-इन्द्र-यम-धनद-धन का स्वामी किम्पुरुषों का अधिप यक्ष होजाऊँ अर्थात् इन सबकी क्षमता मेरे ही अन्दर हो जानी चाहिए और मेरे सामने ये सब शक्तिहीन हो जावें ॥१४॥१५॥

एते दिव्या वरास्तात ! मया दत्तास्तवाद्भुताः ।
सर्वान् कामान् सदा वत्स ! प्राप्स्यसे त्व न संशयः॥१६
एवमुक्त्वा स भगवान् जगामाकाश एव हि ।
वराज ब्रह्मसदन ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥१७
ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा ऋषिभिः सह ।
वरप्रदान श्रुत्वैव पितामहमुपस्थिता. ॥१८
वरप्रदानाद्भगवन् ! वधिष्यति स नोऽसुरः ।
तत्प्रसीदाशु भगवन् ! वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ॥१९
भगवन् ! सर्वभूतानामादिकर्त्ता स्वय प्रभु ।
स्रष्टा त्व हव्यकव्यानामव्यक्तप्रकृतिर्बुध. ॥२०
सर्वलोकहितवाक्य श्रुत्वा देव प्रजापतिः ।
आश्वासयामास सुरान् सुशीतैर्वचनाम्बुभि॰ ॥२१

ब्रह्माजी ने कहा—हे तात ! ये सब दिव्य वरदान हैं और बहुत ही अद्भुत हैं किन्तु मैंने तुमको ये सभी वरदान दे दिये हैं। हे वत्स ! तुम अपने सम्पूर्ण कामो को सदा प्राप्त कर लोगे—इसमे लेश मात्र भी सशय नहीं है ॥ १६ ॥ इस प्रकार से उन भगवान् ब्रह्माजी ने कहा था और फिर आकाश के मार्ग से ही वापिस चले गये थे। ब्रह्माजी उस समय में ब्रह्मर्षि गणो से सेवित ब्रह्माजी का घर वैराज को चले गये थे ॥ १७ ॥ इसके पश्चात् देव-नाग-गन्धर्व आदि सब ऋषिगण के साथ इन वरो के प्रदान को सुनकर ही ब्रह्माजी पितामह के समीप मे उपस्थित हुए थे ॥ १८ ॥ देवगण ने कहा—हे भगवन् ! आपके इस प्रकार के वरदानो के दे देने मे तो यह हमारा सबका वध कर डालेगा।

हे भगवन्! इसलिये आप प्रसन्न होइये और शीघ्र ही इसका कोई वध होने का उपाय भी सोचिए ॥ १९ ॥ हे भगवन्! आप तो समस्त भूतों के आदि कर्ता हैं और स्वयं प्रभु हैं। आप हव्यकव्यों के सृजन करने वाले हैं। अव्यक्त प्रकृति और परम बुध हैं। इस समस्त लोकों के हित करने वाले वाक्य को सुनकर प्रजापति देव ने सब सुरों को सुनीत वचन रूपी सुन्दर जलों के द्वारा समाश्वासन दिया था ॥२०॥२१॥

अवश्य त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् ।
तपसोऽन्तेऽस्य भगवान् वधं विष्णुः करिष्यति ॥२२
तच्छ्रुत्वा विबुधा वाक्यं सर्वे पङ्कजजन्मनः ।
स्वानि स्थानानि दिव्यानि विप्रा जग्मुर्मुदान्विताः ॥२३
लब्धमात्रे वरे चाथ सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पितः ॥२४
आश्रमेषुमहाभागान् स मुनीन्संशितव्रतान् ।
सत्यधर्मपरान् दान्तान् धर्षयामासदानवः ॥२५
देवांस्त्रिभुवनस्थांश्च पराजित्य महासुरः ।
त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति दानवः ॥२६
यदा वरमदोत्सिक्तश्चोदितः कालधर्मतः ।
यज्ञियानकरोद्दैत्यानयज्ञियाश्च देवताः ॥२७
तदादित्याश्च साध्याश्च विश्वे च वसवस्तथा ।
सेन्द्रा देवगणायक्षाः सिद्धद्विजमहर्षयः ॥२८
शरणं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम् ।
देवदेवं यज्ञमयं वासुदेवं सनातनम् ॥२९

हे देवगणो! उस असुर ने तपस्या की है अतएव उसका फल तो उसे अवश्य ही प्राप्त करना ही था। इस तप के फल के अन्त हो जाने पर इसका वध भगवान् विष्णु ही करेंगे ॥२२॥ हे विप्रो! उस समय में

सब देवो ने पङ्कज से जन्म ग्रहण करने वाले पितामह के इस वाक्य को श्रवण कर प्रसन्नता से युक्त होकर अपने २ दिव्य स्थानों को वे सब चले गये थे ॥ २३ ॥ ऐसे वरदानों को प्राप्त होने के साथ ही वह दैत्यराज सम्पूर्ण प्रजाओं को बाधा में पहुँचाने लगा था। वह दैत्यराज हिरण्य कशिपु वरदान प्राप्त करने से अत्यन्त हर्षित हो गया था अर्थात् उसे बड़ा घमण्ड हो गया था ॥ २३ ॥ २४ ॥ वह दानव जो अपने २ आश्रमों में रहने वाले महाभाग मुनिगण थे और जो शासित व्रतों वाले—सत्यधर्म में परायण एवं परम दमनशील सत्पुरुष थे उन सबको धर्षित करने लगा था ॥ २५ ॥ त्रिभुवनों में स्थित देवों को उस महासुर ने पराजित करके पूर्ण त्रैलोक्य को अपने वश में ले लिया था और वह दानव स्वयं स्वर्ग में निवास किया करता था। जिस समय में वह वरदान के मद से अत्यन्त ही उन्मित्त हो गया था तब वह काल के धर्म से प्रेरित हो गया और दैत्यों को यज्ञिय बना दिया था और अयज्ञियों को देवता कर दिया था ॥ २६ २७ ॥ उस समय में आदित्य—साध्य—विश्वेदेवा—वसुगण—इन्द्र के सहित देवगण—यक्ष—सिद्ध—द्विज और महर्षि-वृन्द सबके सब महान् बल सम्पन्न भगवान् विष्णु की शरणागति में पहुँचे थे जो प्रभु देवों के भी देव—यज्ञमय सनातन वासुदेव थे और आप ही हमारे शरण अर्थात् रक्षक हैं—यह प्रार्थना करने लगे थे ॥ २८, २९ ॥

नारायण ! महाभाग ! देवास्त्वां शरणगताः ।
त्रायस्व जहि दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु प्रभो ! ।।३०
त्वं हि नः परमो धाता त्वं हि नः परमो गुरुः ।
त्वं हि नः परमोदेवो ब्रह्मादीनां सुरोत्तम ।।३१
भयन्त्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम् ।
तथैव त्रिदिवं देवाः प्रतिपद्यत मा चिरम् ।।३२

एषोऽहं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम् ।
अवध्यममरेन्द्राणां दानवेन्द्रं निहन्म्यहम् ॥३३
एवमुक्त्वा तु भगवान् विसृज्यत्रिदशेश्वरान् ।
वधं सङ्कल्पयामास हिरण्यकशिपो प्रभुः ॥३४
सहायश्च महाबाहुरोङ्कारं गृह्य सत्वरम् ।
अथोङ्कारसहायस्तु भगवान् विष्णुरव्ययः ॥३५

देवगण ने भगवान् विष्णु से कहा - हे नारायण ! आप तो महान् भाग वाले हैं । हम समस्त देवगण आपकी शरणागति में उपस्थित हो गये हैं । हे प्रभो ! आप हमारी रक्षा करो और इस दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु का वध करो ॥३०॥ हे सुरोत्तम ! हम सबके आप ही परम धाता हैं और आप ही हमारे परम गुरु हैं—आप ही हमारे सर्वोपरि विराजमान देव हैं और ब्रह्मा आदि सब में आप सर्वश्रेष्ठ देव हैं ॥३१॥ भगवान् विष्णु ने कहा—हे अमर गणो ! भय का पूर्ण रूप से त्याग करदो—मैं आपको अभय का दान करता हूं । हे देवताओ ! पूर्व का ही भाँति आप सब लोग अपने त्रिदिव को पुनः बहुत ही शीघ्र प्राप्त कर लोगे ॥३२॥ यह मैं ही वरदान प्राप्त करने से प्रसन्न घमण्ड से भरा हुआ जो यह दैत्यराज है उसको गणों के सहित मार दूंगा जो कि यह दानवेन्द्र अन्य सब अमरेन्द्रों के द्वारा अवध्य है ॥३३॥ इस प्रकार से कहकर भगवान् ने उन सब त्रिदशेश्वरों को विसर्जित कर दिया था और फिर प्रभु ने उस दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु के वध के करने के लिये मन में सङ्कल्प किया था ॥३४॥ सहायता करने वाले महाबाहु प्रभु ने बहुत ही शीघ्र ओङ्कार का ग्रहण किया था । इसके अनन्तर अव्यय भगवान् विष्णु ओङ्कार की सहायता वाले हो गये थे ॥३५॥

हिरण्यकशिपुस्थानं जगाम हरिरीश्वरः ।
तेजसा भास्कराकारः शशी कान्त्येवचापरः ॥३६
नरस्य कृत्वार्द्धतनुं सिंहस्यार्द्धतनुं तथा ।

नारसिंहेन वपुषा पाणि सस्पृश्य पाणिना ॥३७
ततोऽपश्यत विस्तीर्णा दिव्या रम्या मनोरमाम् ।
सर्वकामयुता शुभ्रा हिरण्यकशिपो सभाम् ॥३८
विस्तीर्णा योजनशत शतमध्यर्द्धमायताम् ।
वैहायसीङ्कामगमा पञ्चयोजनविस्तृताम् ॥३९
जराशोकक्लमापेता निष्प्रकम्पा शिवा सुखाम् ।
वेश्महर्म्यवती रम्या ज्वलन्तीमिव तेजसा ॥४०
अन्त पलिलसयुक्ता विहिता विश्वकर्म्मणा ।
दिव्यरत्नमयैर्वृक्षै. फलपुष्पप्रदैर्युताम् ॥४१
नीलपीतसितश्यामैः कृष्णैर्लोहितकैरपि ।
अवतानैस्तथा गुल्मैर्मञ्जरीशतधारिभि. ॥४२

ईश्वर हरि भगवान् हिरण्य कशिपु के स्थान को गये थे। उस समय मे वह तेज से भास्कर के आकार के तुल्य और कान्ति से एक दूसरे चन्द्रमा के समान थे। नर का आधा शरीर बना कर तथा आधा शरीर सिंह का धारण करके नरसिंह वपु से युक्त होकर, पाणि के द्वारा पाणि का स्पर्श करते हुए हरि हिरण्य कशिपु की सभा मे पहुँचे थे। वहा पहुँच कर उन्होने अत्यन्त विस्तीर्ण–दिव्य–रम्य–मनोरम–समस्त कामो से समन्वित और शुभ्र दैत्यराज हिरण्य कशिपु की सभा का अवलोकन किया था ॥३६, ३७, ३८॥ वह सभा सौ योजन विस्तार वाली शत मध्यर्द्ध आयत–वैहायसी–काम पूर्वक गमन करने वाली तथा पाँच योजन विस्तृत थी ॥३९॥ हिरण्यकशिपु की सभा जरा, शोक और क्लम से अपेत अर्थात् रहित थी तथा निष्प्रकम्प–शिव–सुखप्रद–वेश्म और हर्म्यों से सयुत रम्य एव तेज मे जाज्वल्यमान जैसी थी ॥ ४० ॥ इस सभा के मध्य में सलिल रहता था और इसकी रचना विश्वकर्मा के द्वारा की गयी थी। वह सभा परम दिव्य फल-पुष्प प्रदान करने वाले रत्नो से परिपूर्ण वृक्षों से समन्वित थी। नील–पीत–सित–श्याम–कृष्ण

लोहित अवतानों से युक्त तथा मन्जरी शतधारी गुल्मों से संयुत वह सभा थी जिसकी अवर्णनीय शोभा हो रही थी ॥४१, ४२॥

सिताभ्रघनसङ्काशा प्लवन्तीव व्यदृश्यत ।
रश्मिवती भास्वरा च दिव्यगन्धमनोरमा ॥४३
सुसुखा न च दुःखा सा न शीता न च घर्मदा ।
न क्षुत्पिपासे ग्लानिं वा प्राप्यता प्राप्नुवन्ति ते ॥४४
नानारूपैरुपकृता विचित्रै रति भास्वरैः ।
स्तम्भैर्न विधृता सा वै शाश्वती चाक्षया सदा ॥४५
सर्वे च कामाः प्रचुरा ये दिव्या ये च मानुषाः ।
रसयुक्तं प्रभूतञ्च भक्ष्याभोज्यमनन्तकम् ॥४६
पुण्यगन्धस्रजश्चात्र नित्यपुष्पफलद्रुमाः ।
उष्णे शीतानि तोयानि शीतेचोष्णानिसंतिच ॥४७
पुष्पिताग्रा महाशाखाः प्रवालाङ्कुरधारिणः ।
लतावितानसञ्छन्ना नद्यासु च सरःसु च ॥४८
वृक्षान् बहुविधास्तत्र मृगेन्द्रो ददृशे प्रभु ।
गन्धवन्ति च पुष्पाणि रसवन्ति फलानिच ॥४९

सित मेघाभ्र के सदृश वह सभा प्लवन करती हुई जैसी दिखलाई दिया करती थी। रश्मियों से युक्त—परम भास्कर और दिव्यगन्ध से समन्वित एवं मनोहर थी ॥४३॥ सुन्दर सुखों से परिपूर्ण-दुःखों से रहित-न अधिक शीत युक्त और न घर्म को प्रदान करने वाली थी। वहाँ पर जो भी पहुँच जाया करते थे वे फिर भूख-प्यास और ग्लानि को प्राप्त नहीं हुआ करते थे। नाना प्रकार के रूपों वाले—विचित्र और भास्कर स्तम्भों से उपहृत वह सभा थी। वह विधृता नहीं थी प्रत्युत शाश्वती तथा सदा अक्षय थी। उस सभा में सभी कामनाएँ चाहे वे दिव्य हों या मानुषी हों प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहा करती थी। रस से युक्त—अनन्त से पूर्ण प्रभूत भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थ उसमें रहा करते थे ॥४४, ४५॥

॥४६॥ इस दैत्यराज की महासभा में पुण्य गन्ध वाले सराज भी और वहाँ के वृक्ष बारहों महीने नित्य ही पुष्प और फलों के प्रदान करने वाले थे। वहाँ पर उष्ण काल में शीतल और शीत काल में उष्ण जल रहा करते थे ॥४७॥ नदियों में और सरोवरों में ऐसे वृक्ष थे जिनके अग्रसर पुष्पित थे—जिनकी महान् शाखाएं थी और जो प्रवालांकुरों के धारण करने वाले थे तथा लताओं के वितानों से सञ्छन्न थे ॥४८॥ मृगेन्द्र प्रभु ने वहाँ पर इस प्रकार के बहुत सी तरह के वृक्षों को देखा था जिनमें गन्ध से युक्त पुष्प थे और रस से समन्वित फल थे ॥४९॥

तस्यां सभायां दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुस्तदा ।
स्त्रीसहस्रैः परिवृतो विचित्राभरणाम्बरः ॥५०
अनर्घ्यमणिवज्रार्चिःशिखाज्वलितकुण्डलः ।
आसीनश्चासने चित्रे दश नल्वप्रमाणतः ॥५१
दिवाकरनिभे दिव्ये दिव्यास्तरणसंस्तृते ।
दिव्यगन्धवहस्तत्र मारुतः सुसुखो ववौ ॥५२
हिरण्यकशिपुर्दैत्य आस्ते ज्वलितकुण्डलः ।
उपचेरुर्महादैत्यं हिरण्यकशिपुं तदा ॥५३
दिव्यतानेन गीतानि जगुर्गन्धर्वसत्तमाः ।
विश्वाची सहजन्या च प्रम्लोचेत्यभिविश्रुता ॥५४
दिव्याथ सौरभेयी च समीची पुञ्जिकस्थली ।
मिश्रकेशी च रम्भा च चित्रलेखा शुचिस्मिता ॥५५
चारुकेशी घृताची च मेनका चोर्वशी तथा ।
एताः सहस्रशश्चान्या नृत्यगीतविशारदाः ॥५६

उस समय में उस सभा में वह दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु समवस्थित था जो स्त्री समुदायों की सहस्र संख्या से परिवृत था तथा विचित्र आभरण और वस्त्रों से समलङ्कृत था ॥५०॥ बहुमूल्य मणि और वज्रों की रश्मियों की शिखाओं से ज्वलित कुण्डलों वाला था। दश नल्व प्रमाण से युक्त

विचित्र सिंहासन पर वह दैत्य राज समवस्थित था। वह सिंहासन सूर्य के समान परम दिव्य एवं दिव्य अस्तरण से संस्तृत था। वहां पर दिव्य गन्ध के वहन करने वाला सुन्दर सुख का देने वाला वायु वहन कर रहा था ॥५१, ५२॥ (वहां पर जाज्वल्यमान कुण्डलों वाला हिरण्य कशिपु दैत्यराज स्थित था। उस समय में हिरण्य कशिपु दैत्यराज की परिचर्या बहुत सी अप्सराऐं कर रहीं थीं ॥५३॥ श्रेष्ठ गन्धर्वगण दिव्यतान के द्वारा गीतों का गान कर रहे थे। विश्वाची—सहजन्या—अभिविश्रुत-प्रम्लोचा—दिव्या—सौरमेयी—रमीच—पुञ्जिक स्थली—मिश्र केशी—रम्भा—शुचिस्मित वाली चित्र लेखा—चारु केशी-घृताची-मेनका और उर्वशी ये और सहस्रों अन्य अप्सराऐं जो नृत्य तथा गीतों के गायन करने में परम विशारद उस दैत्य राज की परिचर्या कर रहीं थीं ॥ ५४ ॥)
॥ ५५, ५६ ॥

उपतिष्ठन्त राजान हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ।
तत्रासीनं महाबाहुं हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ॥५७
उपासन्त दितेः पुत्राः सर्वे लब्धवरास्तथा ।
तमप्रतिमकर्माणं शतशोऽथ सहस्रशः ॥५८
बलिर्विरोचनस्तत्र नरकः पृथिवीसुत ।
प्रह्लादो विप्रचित्तिश्च गविष्ठश्च महासुरः ॥ ५६
सुरहन्ता दुःखहन्ता सुनामा सुमतिर्वरः ।
घटोदरो महापार्श्वः क्रथनः कठिनस्तथा ॥६०
विश्वरूपः सुरूपश्च स्वबलश्च महाबलः ।
दशग्रीवश्च वालीच मेघवासा महासुरः ॥ ६१
घटास्यो कम्पनश्चैव प्रजनश्चेन्द्रतापनः ।
दैत्यदानवसंघास्ते सर्वे ज्वलितकुण्डलाः ॥६२
स्रग्विणो वाग्मिनः सर्वे सदैव चरितव्रताः ।
सर्वे लब्धवराः शूराः सर्वे विगतमृत्यवः ॥६३

वहाँ पर उस महती राज सभा मे समवस्थित महान् बाहुओ वाले महाराज हिरण्य कशियु प्रभु की सेवा मे सब उपस्थित होकर सेवाए कर रहे थे ।।५७।। दिति के सभी पुत्र जिन्होने बरदान प्राप्त कर लिये थे वे सब सैंकडो और सहस्रो की सख्या मे अप्रतिम कर्म्म वाले उस दैत्यराज की उपासना कर रहे थे। उन दैत्यो मे बलि-विराचन-नरक-पृथिवी सुत प्रह्लाद-विप्रचित्ति-श्रदासुर गविष्ठ-सुरहन्ता दु ख हृरल-सुनामा—सुमति वर—घटोदर-महापार्श्व—क्रथन—कठिन—विश्वरूप—सुरूप—सबल—महाबक—हयग्रीव-बाली-महासुर मेघ वासा—घरास्य-घम्पन-प्रजन-इन्द्र तापन आदि थे। इन सब दैत्य दानवो के सघ मे जो सभी जाज्वल्यमान कुण्डलो वाले थे ।।५७, ५८ ५६, ६०, ६१, ६२।। सभी लोग स्रग्वी अर्थात् मालाधारी-वाग्मी और सदैव चरित व्रत वाले थे। इन सभी ने वरदान प्राप्त कर लिये थे—सब शूर वीर और मृत्यु के भय से रहित थे। ६२।।

एते चान्ये च बदवो हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ।
उपासन्ति महात्मान सर्वे दिव्यपरिच्छदा ।।६४
विम नैर्विविधाकारैर्भ्राजमानैरिवाग्निभि ।
महेन्द्रवपुष सर्वे विचित्राङ्गदबाहव ।।६५
भूषिताङ्गा दिते पुत्रास्तमुपासन्त सवश ।
तस्या सभायान्दिव्य यामसुग पर्वतोपमा ।।६६
हिरण्यवपुष सर्वे दिवाकरसमप्रभा ।
न श्रुतन्न दृष्ट हि हिरण्यकशिपोर्यथा ।।६७
ऐश्वर्य दैत्यसिहस्य यथा तस्य महात्मन ।
कनकरजतचित्रवेदिकाया परिहृतरत्नविचित्रवीथिकायाम् ।
स ददर्श मृगाधिप सभाया सुरचितरत्नगवाक्षशोभितायाम् । ६८
कनकविमलहारविभूषिताङ्ग दितितनय स मृगाधिपोददर्श ।
दिवसकरमहाप्रभालम तन्दितिजसहस्रशत निषेव्यमाणम् ।।६६

ये तथा अन्य बहुत–से दिव्य परिच्छदों वाले सब असुरगण महान् आत्मा वाले उस प्रभु हिरण्य कशिपु की उपासना कर रहे थे ।।६४।। विविध भाँति के आकार प्रकार वाले अग्नि के सदृश भ्राजमान विमानों के द्वारा अद्भुत अङ्गदों से समलङ्कृत बाहुओं वाले और महेन्द्र के तुल्य वपु को धारण करने वाले-भूषित अङ्गों से युक्त सब दिति के पुत्र सभी ओर से उस दैत्यराज की समुपासना कर रहे थे । उस महान् राजसभा में जो कि अत्यन्त दिव्य थी सभी असुरगण पर्वत के समान विशाल थे । ।।६५, ६६।। सभी लोग हिरण्य वपु वाले वहाँ पर थे जिनकी दिवाकर के तुल्य प्रभा थी दैत्यों में सिंह के समान उस महान् आत्मा वाले हिरण्य कशिपु का जैसा ऐश्वर्य था वैसा न तो कभी किसी का देखा गया था और न कहीं पर सुना ही गया था । जिस सभा में स्थित होकर वह मृगाधिप नरसिंह देव रहे थे वह भली भाँति निर्मित गवाक्षों से सुशोभित थी और परिहृत किये हुए रत्नों से विचित्र वीथिका वाली थी तथा सुवर्ण एवं चाँदी की निर्मित अद्भुत वेदिका से समन्वित थी ।। उन मृगाधिप नरसिंह प्रभु ने सुवर्ण के विमल हारों से विभूषित अङ्गों वाले तथा सूर्य के तुल्य महती प्रभा से युक्त और सैकड़ों एवं सहस्रों दैत्यों के द्वारा सेवित उस दिति के पुत्र हिरण्य कशिपु को देखा था ।। ६७ ।। ६८ ।। ६९ ।।

६२—नरसिंह हिरण्यकशिपु युद्ध वर्णन

ततो दृष्ट्वा महात्मानं कालचक्रमिवागतम् ।
नरसिंहवपुच्छन्नं भस्मच्छन्नमिवानलम् ।।१
हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादो नाम वीर्यवान् ।
दिव्येन चक्षुषा सिंहमपश्यद्दूरमागतम् ।।२

त दृष्ट्वा रुक्मशैलाभतपूर्वान्तितुमाश्रितम् ।
विस्मिता दानवा सर्वे हिरण्यकशिपुश्च स ॥३
महाबाहो ! महाराज ! दैत्यानामादिसम्भव ।
न श्रुत न च नोदृष्ट नारसिंहमिद वपु ॥४
महाबाहो ! महाराज ! दैत्यानामादिसम्भव ।
दैत्या तकरण घोर सशतीव मना मम ॥५
अस्य देवा शरीरस्था सागरा सरितश्चया ।
हिमवान्पारियात्रश्चयेचान्येकुलपवता ।६
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रैरादित्यैवसुभि सह ।
धनदो वरुणश्चैव यम शक्र शचीपति ॥७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—जिस समय मे नरसिंह भगवान् उस सभा मे पहुँचे थे तो उस समय मे हिरण्य कशिपु क पुत्र वीयवान् प्रह्लाद ने महान् आत्मा वाले नरसिंह क शरीर मे छिपे हुए साक्ष त् आये हुए काल चक्र क समान तथा भस्म मे छ न अग्नि के समा उनको आरम्भ मे देखा था ॥१ २॥ वहा पर स्थित सब दानवा ने और उस हिरण्य कशिपु ने भी पूव शरीर मे समाश्रित सुवण के पवत की आभा वाले उन नरसिंह प्रभु को देखकर सभी को उस समय मे बहुत विस्मय हो गया था ॥३॥ उसी समय मे प्रह्लाद न कहा था—हे महान् बाहुओ वाले ! हे महाराज ! हे दैत्या के आदि ज मधारी ! मैंने तो अब तक ऐसा नारसिंह वपु न कभी देखा है और न कही पर सुना ही है। यह अव्यक्त प्रभव (ज म) वाला—*परम दिव्य क्या रूप सामने मे आ गया है ? मेरे मन मे तो ऐसा हा सशय हो रहा है कि यह कोई घार स्वरूप वाला दैत्यो के अत कर दन वाला ही यहा आकर समुपास्थत हुआ है* ॥४ ५॥ इनक इस विशाल शरीर म समस्त देवगण स्थित हैं—सत्र सागर—समस्त नदियाँ—हिमवान्—पारियात्र और अ य सब कुल पवत भी इनके शरीर म विद्यमान हैं। समस्त नक्षत्रा क साथ तथा वसु गण और आदित्या क

सहित चन्द्रमा भी इसमें वर्त्तमान हैं। धनद (कुवेर)–वरुण–यम और शची का पति इन्द्र देव भी इनके इस नारसिंह शरीर में विद्यमान दिखलाई दे रहे हैं ॥६, ७॥

मरुतो देवगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः।
नागा यक्षाः पिशाचाश्च राक्षसा भीमविक्रमाः ॥८
ब्रह्मा देवः पशुपतिर्ललाटस्था भ्रमन्ति वै।
स्थावराणि च सर्वाणि जङ्गमानितथैवच ॥६
भवाश्च सहितोऽस्माभिः सर्वेर्देवगणैर्वृ तः।
विमानशतसङ्कीर्णा तथैव भवतः सभा ॥१०
सर्वं त्रिभुवनं राजन् ! लोकधर्माश्च शाश्वताः।
दृश्यन्ते नारसिंहेऽस्मिंस्तथेदमखिलं जगत् ॥११
प्रजापतिश्चात्र मनुर्महात्मा ग्रहाश्च योगाश्च महीरुहाश्च।
उत्पातकालश्च धृतिर्मतिश्च रतिश्च सत्यञ्च तपो दमश्च ॥१२
सनत्कुमारश्च महानुभावो विश्वे च देवा ऋषयश्च सर्वे।
क्रोधश्च कामश्च तथव हर्षो धर्मश्च मोह पितरश्च सर्वे ॥१३
प्रह्लादस्य वच. श्रुत्वा हिरण्यकशिपु. प्रभुः।
उवाच दानवान् सर्वान् गणाश्च स गणाधिपः ॥१४
मृगेन्द्रो गृह्यतामेष अपूर्वं सत्वमास्थित.।
यदि वा संशयः कश्चिद्वध्यतां वनगोचरः ॥१५

मरुद्गण–देव–गन्धर्व–तप के ही धनो वाले सब ऋषि वृन्द–नाग–यक्ष–पिशाच–भीम विक्रम वाले राक्षस–ब्रह्मा–देव पशुपति ये सब इनके ललाट प्रदेश में स्थित हुए भ्रमण कर रहे हैं। सम्पूर्ण स्थावर तथा सभी जङ्गम जीव इनके शरीर में दिखलाई दे रहे हैं ॥८, ६॥ सब देवों से परिवृत हम सबके सहित आप भी इनके शरीर में स्थित देखे जा रहे हैं। सैकड़ों विमानों से सङ्कीर्ण यह आपकी महती राज सभा तथा हे राजन् यह सम्पूर्ण त्रिभुवन और समस्त शाश्वत लोक धर्म इस नारसिंह

शरीर मे दिखाई दे रहे हैं । उसी भाँति यह सम्पूर्ण जगत्–महात्मा प्रजापति मनु—सब ग्रह—योग—महीध्र इसमे दृष्टिगत हो रहे हैं ॥१०॥ ॥११, १२॥ इनके अतिरिक्त उत्पात का काल—धृति—मति—रति—सत्य–तप–दम इसमे विद्यमान हैं । महानुभाव सनत्कुमार—विश्वेदेवा—सब ऋषिगण—क्रोध—काम—हर्ष–धर्म—मोह–सब पितृगण इनके इस महान् विशाल एव परम दिव्य शरीर मे प्रत्यक्ष रूप से दिखाई दे रहे है। ॥१३॥ इस प्रकार के कहे हुए वचन का श्रवण कर वह गणो का अधिप प्रभु हिरण्य कशिपु समस्त दानवो और गणो से यह बोला था—देखो, आप सब मिलकर इस अत्यन्त अद्भुत अपूर्व सत्त्व के रूप मे सस्थित नरसिंह को पकड लो और यदि कुछ भी सशय हो तो इन वन मे भ्रमण करने वाले को मार डालो ॥१४, १५॥

ते दानवगणा सर्वे मृगेन्द्रं भीमविक्रमम् ।
परिक्षिपन्तो मुदितास्त्रासयामासुरोजसा ॥१६
सिंहनाद विमुच्याथ नरसिंहो महाबल ।
बभञ्ज ता सभा सर्वा व्यादितास्य इवान्तक. ॥१७
सभायाभज्यमानायाहिरण्यकशिपु स्वयम् ।
चिक्षेपास्त्राणिसिंहस्यरोषाद्व्याकुललोचनः ॥१८
सर्वास्त्राणामथ ज्येष्ठ दण्डमस्त्र सुदारुणम् ।
कालचक्र तथा घोर विष्णुचक्र तथा परम् ॥१९
पैतामह तथात्युग्र त्रैलोक्यदहन महत् ।
विचित्रामशनीञ्चैव शुष्कार्द्र चाशनिद्वयम् ॥२०
रौद्र तथोग्रं शूलञ्च कङ्काल मुसल तथा ।
मोहन शोषण चैव सन्तापनविलापनम् ॥२१

हिरण्य कशिपु के इस आदेश को प्राप्त करके वे समस्त दानवगण उस भीम विक्रम वाले मृगेन्द्र पर परिक्षेप करते हुए बहुत ही प्रसन्न हो रहे थे और वे सब अपने ओज के बल से उन नरसिंह प्रभु को त्रास देन

लगे थे ॥१६॥ उस समय मे महान् बलशाली नर्सिह प्रभु ने एक सिंह-नाद करके उस सम्पूर्ण हिरण्य कशिपु की सभा का फैलाये हुए मुँह वाले अन्तक काल के समान भङ्ग कर दिया था ॥१७॥ जिस समय मे वह पूरी सभा भज्यमान हो गई थी तब हिरण्य कशिपु ने स्वय ही रोप से व्याकुल नेत्रो वाला होकर उन नर्सिह भगवान् के शरीर पर अपने ही अस्त्रो का प्रयोग आरम्भ कर दिया था। समस्त अस्त्रो मे सबसे बडा—महान् दारुण दण्ड अस्त्र—घोर काल चक्र—परमोत्तम विष्णुचक्र तथा अत्यन्त ही उग्र पितामह का अस्त्र जो इस महान् त्रैलोक्य के दाह कर देने वाला था इन सब अस्त्रो से हिरण्य कशिपु ने नार्सिह वपु पर प्रहार किये थे। विचित्र अशनी तथा शुष्क और आर्द्र दोनो प्रकार के अशनि—रौद्र तथा उग्रशूल—कङ्काल—मुसल—मोहन—शोषण—सन्तापन—विलापन नाम वाले अस्त्रो से दैत्यराज ने नर्सिह प्रभु के शरीर पर डर-डर कर प्रहार पर प्रहार किये थे ॥१८, १६, २०, २१॥

वायव्य मथन चैव कापालमथ कैङ्करम् ।
तथाप्रतिहता शक्ति क्रौञ्चमस्त्र तथैव च ॥२२
अस्त्र ब्रह्मशिरश्चैव सोमास्त्र शिशिर तथा ।
कम्पन शतनञ्चैव त्वाष्ट्रञ्चैव सुभैरवम् ॥२३
कालमुद्गरमक्षोभ्य तपनञ्च महाबलम् ।
सवर्तन मादनञ्च तथा मायाधर परम् ॥२४
गान्धर्वमस्त्र दयितमसिरत्न च नन्दकम् ।
प्रस्वापन प्रमथन वारुण चास्त्रमुत्तमम् ॥
अस्त्र पाशुपतञ्चैव यस्याप्रतिहता गति ॥२५
अस्त्र हयशिरश्चैव ब्राह्ममस्त्र तथैव च ।
नारायणास्त्रमन्द्रञ्च सार्पमस्त्र तथाद्भुतम् ॥२६
पैशाचमस्त्रमजित शोषद शामन तथा ।
महाबल भावन च प्रस्थापनविकम्पन ॥२७

एतान्यस्त्राणि दिव्याणि हिरण्यकशिपुस्तदा ।
असृजन्नरसिंहस्य दीप्तस्याग्नेरिवाहुतिम् ॥ ८

वायव्य, मथन, कापाल, कैङ्कर, अप्रतिहता शक्ति, क्रौञ्च अस्त्र, ब्रह्म शिरास्त्र, सोमास्त्र, शिशिर, कम्पन, शतन, त्वाष्ट्र सुभैरव, कालमुद्गर, अक्षोभ्य, महाबल, तपन, सम्वर्त्तन, मादन, परमायाधर, गान्धर्वास्त्र, दयित, असिरत्न, नन्दक, प्रस्वापन, प्रमथन, उत्तम वारुणास्त्र और पशुपत अस्त्र जिसकी गति अप्रतिहत हुआ करती है ॥२२, २३, २४, २५। हयशिर अस्त्र, ब्राह्मास्त्र, नारायणास्त्र, ऐन्द्र, अद्भुत साप अस्त्र, पैशाचास्त्र, अजित, शोषद, शमन, महाबल, भावन, प्रस्थापन, विकम्पन इन सब अस्त्रों को जो महान् दिव्य थे दैत्यराज हिरण्य कशिपु ने भगवान् नरसिंह के शरीर पर छोड दिया था किन्तु वे सब अस्त्र उनके शरीर का स्पर्श करते ही ऐसे नष्ट भ्रष्ट होकर भस्मसात् हो गये थे जिस तरह से प्रदीप्त हुई अग्नि में हवि पडते ही जल कर भस्म हो जाया करती है ॥२६॥ ॥ २७, २८ ॥

अस्त्रै प्रज्वलितै सिंहमावृणोदसुरोत्तमा ।
विवस्वान् घर्म्मसमये हिमवन्तमिवाशुभि ॥२९
स ह्यमर्षानिलोद्धूतो दैत्याना सैन्यसागर ।
क्षणेन प्लावयामास मैनाकमिव सागर ॥३०
प्रासै पाशैश्च खड्गैश्च गदाभिर्मुसलैस्तथा ।
वज्रैरशनिभिश्चैव साग्निभिश्च महाद्रुम ॥३१
मुद्गरैर्भिन्दिपालैश्च शिलोलूखलपर्वतै ।
शतघ्नीभिश्च दीप्ताभिर्दण्डैरपि सुदारुणै ॥३२
ते दानवा पाशगृहीतहस्ता महेन्द्रतुल्याशनिवज्रवेगा ।
समन्ततोऽभ्युद्यतबाहुकाया स्थिता स्त्रिशीर्षा इव नागपाशा ॥३३
सुवर्णमालाकुलभूषिताङ्गा पीतांशुकाभोगविभाविताङ्गा ।
मुक्तावलीदामसनाथकक्षा हंसा इवा भाति विशालपक्षा ॥३४

उन असुरोत्तमों ने घर्म के समय में विवस्वान् अपनी किरणों से हिमवान् की तरह प्रज्वलित अस्त्रों के द्वारा उन नृसिंह प्रभु को आवृत्त कर दिया था ॥ २६ ॥ अमर्ष की अग्नि से उद्भूत दैत्यों के उस सेना-रूपी सागर ने क्षण भर में मैनाक को समुद्र की भाँति सबको प्लावित कर दिया था ।।३०।। असुरों की उस विशाल सेना ने प्राश–पाश–खड्ग–गदा–मूसल–वज्र–अशनि–अग्नि के सहित महान् द्रुम–मुद्गर–भिन्दिपाल, शिला, उलूखल, पर्वत, दीप्त शतघ्नी और सुदारुण दण्ड आदि के द्वारा नृसिंह प्रभु पर प्रहारों की भरमार करदी थी ।।३१, ३२।। पाशों को हाथों में ग्रहण करने वाले, महेन्द्र के समान अशनि वज्र के वेग से युक्त सभी ओर से अभ्युद्यत बाहु और काया वाले वे सब दानव तीन शीर्षों वाले नागपाशों की भाँति स्थित थे ।। ३३ ।। सुवर्ण की मालाओं के समूह से विभूषित अङ्गों वाले तथा पीत वर्ण के वस्त्ररूपी आभोग से विभावित अङ्गों से युक्त और मुक्तावली की माला से समन्वित कक्षों से सयुत विशाल पक्षों वाले हंसों के तुल्य वे दानवगण शोभित हो रहे थे ।। ३४ ।।

तेषां तु वायुप्रतिमौजसां वै केयूरमौलीवलयोत्कटानाम् ।
तान्युत्तमाङ्गान्यभितो विभान्ति प्रभातसूर्यांशुसमप्रभाणि ॥३५
क्षिपद्भिरुग्रज्वलितैर्महाबलैर्महास्त्रपूगैः सुसमावृतो बभौ ।
गिरिर्यथा सन्ततवर्षिभिर्घनैः कृतान्धकारान्तरकन्दरोद्रुमः ॥३६
तैर्हन्यमानोऽपि महास्त्रजालैर्महाबलैर्दैत्यगणैः समेतैः ।
नाकम्पताजौ भगवान् प्रतापस्थितप्रकृत्या हिमवानिवाचलः ।।३७
सन्त्रासितास्तेन नृसिंहरूपिणा दितेः सुताः पावकतुल्यतेजसा ।
भयाद्विचेलुः पवनोद्धुताङ्गा यथोर्मयः सागरवारिसम्भवाः ॥३८

वायु के समान ओज से युक्त, केयूर-मौली और वलय से उत्कट उन दानवों के उत्तम अङ्ग सभी ओर से प्रातःकाल के सूर्य की किरणों के तुल्य प्रभा वाले विभात हो रहे थे ।। ३५ ।। वह नरसिंह प्रभु महान

बलो वाले, उग्र, ज्वलित, दानवो के द्वारा प्रक्षिप्त किये हुए महान् अस्त्रों के समूहो से भली भाँति आवृत होकर कन्दराओ के अन्दर अन्धकार कर देने वाले द्रुमो से और निरन्तर वर्षा करते हुए मेघो से पर्वत की भाँति सुशोभित हो रहे थे ॥ ३६ ॥ महान् बलवान्—सब ओर से एकत्रित हुए उन दैत्य गणो के द्वारा महान् अस्त्रों के जाल से हन्यमान भी वह नृसिह प्रभु उस युद्ध स्थल मे प्रताप से स्थित प्रकृति के द्वारा हिमाचल की भाँति बिल्कुल भी कम्पायमान नही हुए थे ॥ ३७ ॥ उन नृसिह के रूपधारी भगवान् के द्वारा जिनका पावक के समान तेज था वे सब दिति के पुत्र दैत्य सन्त्रासित कर दिये गये थे और वे सब भय से भीत होकर पवन से उद्धूत अङ्गो वाली सागर के जल मे समुत्पन्न उर्मियो की भाँति भय से विचलित हो गये थे अर्थात् भयभीत होकर इधर-उधर भाग गये थे ॥ ३८ ॥

६२–अन्य दानवों के साथ नरसिंह का युद्ध

खरा. खरमुखाश्चैव मकराशीविषाननाः ।
ईहामृगमुखाश्चान्ये वराहमुखसंस्थिता ॥१
बालसूर्यमुखाश्चान्ये धूमकेतुमुखास्तथा ।
अर्द्धचन्द्रार्धवक्त्राश्च अग्निदीप्तमुखास्तथा ॥२
हंसकुक्कुटवक्त्राश्च व्यादितास्या भयावहाः ।
सिंहास्यालेलिहानाश्च काकगृध्रमुखास्तथा ॥३
द्विजिह्वकावक्त्रशीर्षास्तथोल्का मुखसंस्थिता ।
महाग्राहमुखाश्चान्ये दानवा बलदर्पिता ॥४
शैलसंप्रमाणरतस्य शरीरे शरवृष्टिभिः ।
अवध्यस्य मृगेन्द्रस्य न व्यथाञ्चक्रुराहवे ॥५
एवं भूयोऽपरान् घोरानसृजन् दानवेश्वरा ।

मृगेन्द्रस्योपरि क्रुद्धा निश्वसन्त इवोरगाः ॥६
ते दानवशरा घोरा दानवेन्द्रसमीरिताः ।
विलयं जग्मुराकाशे खद्योता इव पर्वते ॥७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—उस महान् भीषण युद्ध में बहुत से दानवों ने नृसिंह भगवान् से युद्ध किया था जिनके नाम ये हैं—खर, खर मुख, मकराशी, विषानन, ईहामृगमुख, वराह मुख, बाल सूर्यमुख, धूमकेतु मुखअर्द्ध चन्द्रार्ध मुख, अग्निदीप्तमुख, हंस कुक्कुट मुख व्यादितास्य, भयावह सिंहास्य लेलिहान, काक गृध्रमुख, द्विजिह्व, द्विवक्त्र, द्विशीर्ष, उल्कामुख, महाग्राह मुख आदि महान् भीषण मुखाकृतियों वाले बल के घमण्ड से परिपूर्ण दानव थे जो शैल के समान सवर्म वाले और वध के अयोग्य भगवान् मृगेन्द्र के शरीर में निरन्तर शरों की वर्षा से भी युद्ध में किञ्चित् मात्र भी व्यथा न कर सके थे ॥ १, २, ३, ४, ५॥ इसी प्रकार से फिर दूसरी बार उन दानवेश्वरों ने अत्यन्त क्रोधित होकर गर्म श्वास छोड़ते हुए फुस्कारें करने वाले सर्पों की भाँति मृगेन्द्र प्रभु के शरीर के ऊपर दूसरे परम घोर अस्त्रों को छोड़ा था ॥ ६ ॥ वे सब दानवेन्द्रों के द्वारा प्रक्षिप्त किये हुए अतीव घोर दानवीय शर पर्वत में खद्योतों की भाँति आकाश में जा र विलय को प्राप्त हो गये थे ॥७॥

ततश्चक्राणि दिव्यानि दैत्या क्रोधसमन्विताः ।
मृगेन्द्रायासृजन्नाशु ज्वलितानिसमन्तत. ॥८
तै'रासीद्गगनं चक्रैः सम्पतद्भिरितस्ततः ।
युगान्ते सम्प्रकाशद्भिश्चन्द्रादित्यग्रहैरिव ॥६
तानि सर्वाणिचक्राणिमृगेन्द्रेणाशमात्मना ।
ग्रस्तान्युदीर्णानि तदापावकार्चि.समानिव ॥१०
तानि चक्राणि वदनं विशमानानि भान्ति वै ।
मेघोदरदरीष्वेव चन्द्रसूर्यग्रहा इव ॥११
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो भूयः प्रासृजदूर्जिताम् ।

शक्तिं प्रज्वलितां घोरां धौतशस्त्रतडित्प्रभाम् ॥१२
तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य मृगेन्द्रः शक्तिमुज्वलाम् ।
हुङ्कारेणैव रौद्रेण बभञ्ज भगवांस्तदा ॥१३
रराज भग्नासाशक्तिर्मृगेणमहीतले ।
स विस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोल्केवदिवश्च्युता ॥१४

इसके उपरान्त उन दैत्यों ने महान् क्रोध से समन्वित होकर चारों ओर से प्रज्वलित होने वाले दिव्य चक्रों को नरसिंह प्रभु के शरीर पर बड़ी ही शीघ्रता से छोड़ दिये थे ॥ ८ ॥ इधर-उधर गिरने वाले उन चक्रों से युग के अन्त में भली भाँति प्रकाश करने वाले चन्द्र-सूर्य्य ग्रहों की भाँति उस समय में आकाश था ॥९॥ अशमात्मा उन मृगेन्द्र(नरसिंह) के द्वारा वे समस्त चक्र उस समय में अग्नि की अर्चियों के तुल्य ग्रस्त और उदीर्ण होते थे ॥१०॥ वे सब चक्र जो दानवों के द्वारा नरसिंह प्रभु पर छोड़े गये थे उन्हीं के मुख में प्रवेश प्राप्त करते हुए मेघोदर दरीओं में चन्द्र-सूर्य्य ग्रहों के समान शोभा दे रहे थे ॥ ११ ॥ हिरण्य कशिपु दैत्यराज ने पुनः अत्यन्त प्रज्वलित—परम घोर—धौत शस्त्र विद्युत की प्रभा से समन्वित अतीव अजित शक्ति का प्रहार नरसिंह भगवान् पर किया था ॥ १२ ॥ उस समय में अत्यन्त समुज्वल अपने ऊपर आयतन करती हुई शक्ति को देखकर नृसिंह भगवान् ने महान् रौद्र हुङ्कार की ध्वनि से ही उसका भञ्जन कर दिया था ॥ १३ ॥ महीतल में मृगेन्द्र भगवान् के द्वारा भग्न की हुई वह शक्ति विस्फुलिङ्गों से युक्त और प्रज्वलित दिवलोक से च्युत महोल्का के समान शोभित हो रही थी ॥ १४ ॥

नाराचपङ्क्तिः सिंहस्य प्राप्ता रेजे विदूरतः ।
नीलोत्पलपलाशाना मालेवोज्ज्वलदर्शना ॥१५
स गर्जित्वा यथान्याय विक्रम्य च यथासुखम् ।
तत्सैन्यमुत्सारितवान् तृणाग्राणीव मारुतः ॥१६

ततोऽश्मवर्षं दैत्येन्द्रा व्यसृजन्त नभोगताः ।
नगमात्रैः शिलाखण्डैर्गिरिशृङ्गैर्महाप्रभैः ॥१७
तदश्मवर्षं सिंहस्य महन्मूर्द्धं निपातितम् ।
दिशादश विकीर्णा वै खद्योतप्रकरा इव ॥१८
तदाश्मौघैर्दैत्यगणा पुनः सिंहमरिन्दमम् ।
छादयांचक्रिरे मेघा धाराभिरिव पर्वतम् ॥१९
न च तं चालयामासुर्दैत्यौघादेवसत्तमम् ।
भीमवेगोऽचलश्रेष्ठ समुद्र इव मन्दरम् ॥२०
ततोऽश्मवर्षेविहिते जलवर्षमनन्तरम् ।
धाराभिरक्षमात्राभिः प्रादुरासीत् समन्ततः ॥२१

नृसिंह भगवान् के शरीर पर प्राप्त हुई नाराचों की ंक्ति से ही नीलोत्पल के पलाशों की उज्वल दर्शन वाली माला के समान दीप्तिमान हो रही थी ॥ १५ ॥ नृसिंह महाप्रभु ने न्यायानुसार गर्जना करके और सुखपूर्वक बल-विक्रम दिखाकर उस दानवेन्द्र को सेना को तिनकों के अग्रभागों को वायु की तरह अपसारित कर दिया था ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त दैत्येन्द्रों ने आकाश में स्थित होते हुए नग मात्र शिला खण्डों के द्वारा, महती प्रभा से युक्त गिरि के शृङ्गों के द्वारा पाषाणों की वर्षा का विसर्जन कर रहे थे। वह पत्थरों की महान् वर्षा नरसिंह प्रभु के मस्तक पर डाली गयी थी और वह दशों दिशाओं में खद्योतों के प्रकरों की भाँति विकीर्ण हो गयी थी ॥ १७, १८ ॥ अरियों के दमन करने वाले नृसिंह प्रभु को फिर उन दैत्यों के गणों ने पाषाणों की वृष्टि में डाले हुए पत्थरों के द्वारा मेघ जैसे अपनी वर्षाई हुई जल की धाराओं से पर्वत को ढाँक दिया करते हैं वैसे ही छाया में कर दिया था ॥ १९ ॥ उन दैत्यों के विशाल समुदायों ने देवों में परम श्रेष्ठ नृसिंह महा प्रभु को जिस प्रकार से भीम वेग वाला सागर अचलों में श्रेष्ठ मन्दराचल को चलायमान कर दिया करता है उसी तरह से चलायमान कर दिया था ॥ २० ॥

इसके उपरान्त उस पाषाणो की की गई वर्षा के अनन्तर जल की वृष्टि से अकस्मात् धाराओं के द्वारा चारों ओर से प्रादुर्भूत हो गये थे ॥ २१ ॥

नभसः प्रच्युताधारास्तिग्मवेगाः समन्ततः ।
आवृत्य सर्वतो व्योमदिशश्चोपदिशस्तथा ॥२२
धारा दिवि च सर्वत्र वसुधायाञ्च सर्वशः ।
न स्पृशन्ति च ता देवं निपतन्त्योऽनिशं भुवि ॥२३
बाह्यतो ववृषुर्वर्ष नोपरिष्टाच्च ववृषुः ।
मृगेन्द्रप्रतिरूपस्य स्थितस्य युधि मायया ॥२४
हतेऽश्मवर्षे तुमुले जलवर्षे च शोषिते ।
सोऽसृजद्दानवो मायामग्निवायुसमीरिताम् ॥२५
महेन्द्रस्तोयदैः सार्द्धं सहस्राक्षो महाद्युतिः ।
महता तोयवर्षेण शमयामास पावकम् ॥२६
तस्यां प्रतिहतायां तु मायायां युधि दानवः ।
असृजत् घोरसंकाशं तमस्तीव्रं समन्ततः ॥२७
तमसा संवृते लोके दैत्येष्वात्तायुधेषु च ।
स्वतेजसा परिवृतो दिवाकर इवाबभौ ॥२८

आकाश से अत्यन्त तीव्र वेग वाली गिरी हुई धाराऐं चारों ओर से आवृत करके सभी व्योम दिशाओं और उप दिशाओं को घेर करके हो रही थीं तथा दिवलोक में और सर्वत्र पृथ्वी में निरन्तर गिरती हुई वे धाराऐं इस भूमण्डल में उन नृसिंहदेव का फिर स्पर्श नहीं कर रही थीं ॥ २२, २३ ॥ वे धाराऐं बाहिर से बरस रही थीं किन्तु उनके ऊपर से नहीं बरस रही थी उस युद्ध स्थल में एक मृगेन्द्र के प्रतिरूप धारण करने वाले प्रभु की माया से उस तुमुल पाषाणों की वर्षा के हत होने पर तथा जल की वर्षा के एकदम शोषित कर डालने पर फिर उस दानव ने अग्नि और वायु से समीरित माया का सृजन किया था ॥ २४, २५ ॥

उस समय में महान् द्युति वाले सहस्राक्ष महेन्द्रदेव ने जलदों के द्वारा महान् जल की वृष्टि से उस मायाकृत अग्नि का शमन कर दिया था। जब वह माया भी प्रतिहत करदी गई तो उसके पीछे युद्ध में उस महादानव ने चारों ओर में महान् घोर तम का बड़ी ही तीव्रता के साथ विशेष रूप से सृजन किया था ॥ २६, २७ ॥ सम्पूर्ण लोक तम से जब परिवृत हो गया था तो उस समय में आयुधों के धारण करने वाले उन दैत्यों के विशाल समुदाय में वह महाप्रभु नृसिंहदेव अपने ही तेज से परिवृत्त होकर दिवाकर के समान शोभा सम्पन्न होगये थे ॥२८॥

त्रिशाखां भ्रुकुटीञ्चास्य ददृशुर्दानवा रणे।
ललाटस्थां त्रिशूलाङ्कां गङ्गां त्रिपथगामिव ॥२६
ततः सर्वासु मायासु हतासु दितिनन्दनाः।
हिरण्यकशिपुं दैत्यं विवर्णाः शरणं ययुः ॥३०
ततः प्रज्वलितः क्रोधात् प्रदहन्निव तेजसा।
तस्मिन् क्रुद्धे तु दैत्येन्द्रे तमोभूतमभूज्जगत् ॥३१
आवहः प्रवहश्चैव विवहोऽथ ह्युदावहः।
परावहः संवहश्च महाबलपराक्रमाः ॥३२
तथा परिवहः श्रीमानुत्पातभयशंसनाः।
इत्येव क्षुभिताः सप्त मरुतो गगनेचराः ॥३३
ये ग्रहाः सर्वलोकस्य क्षये प्रादुर्भवन्ति वै।
ते सर्वे गगने दृष्टा व्यचरन्त यथासुखम् ॥३४
अन्यङ्गते चाप्यचरन्मार्गं निशि निशाचरः।
सग्रहः सहनक्षत्रै राकापतिररिन्दम ॥३५

रणस्थल में स्थित दानवों ने फिर इन नृसिंह प्रभु की तीन शाखाओं वाली भृकुटी का त्रिशूल से अङ्कित ललाट प्रदेश में स्थित त्रिपथगामिनी गङ्गा की भाँति दर्शन किया था। इसके अनन्तर जब सभी की गयी मायाएं हृत हो गयी थीं तो वे सब दिति के पुत्र महादैत्य गण विवर्ण

नद्यश्च प्रतिकूलानि वहन्ति कलुषोदकाः ।
न प्रकाशन्ति च दिशो रक्तरेणुसमाकुलाः ॥४८
वानस्पत्यो न पूज्यन्ते पूजनार्हा कथञ्चन ।
वायुवेगेन हन्यन्ते भज्यन्ते प्रणमन्ति च ॥४९

ज्योतिष के अनुसार युगान्तकारी महान् भीषण ग्रहों की स्थिति जो उस समय हुई थी—यह जतला कर उसका प्रतिफल बतलाते हुए कहते हैं कि समस्त देवो का भी जो देव है वह भी इस भीषण ग्रहों की स्थिति के कारण रक्त की वर्षा कर रहा था और गगन से महान् घोर ध्वनि करने वाली विद्युत् के स्वरूप मे स्थित उल्काओ का पतन हो रहा था ।।४३।। अकाल मे ही सब वृक्ष पुष्प और फल देने वाले हो गये थे जो कि महान् उत्पात के सूचक थे । सम्पूर्ण लताऐं भी फलो से युक्त हो गई थी जो दैत्यो के विनाश को स्पष्ट तथा बतला रही थी ।।४४।। फलो मे से फल और पुष्पो के द्वारा पुष्पो की उत्पत्ति होने लग गयी थी । ये सब उन्मीलित और निमीलित हुआ करते थे तथा कभी २ हंसते थे और किसी समय मे रुदन करने वालेथे। ये सब महा विनाश की सूचना करने वाले हो गये थे ।।४५।। समस्त देवो की प्रतिमाऐं जो अति गम्भीर थी—घूमित बना रही थी और प्रज्वलित हो जाया करती थी । ये सभी महान् भय के समागम को प्रकट कर रही थी और महान् असगुन को ज्ञात कराती थी। ग्राम्य पशुगण और पक्षिवृन्द आरण्यक (जगली) पशु-पक्षियो के साथ ससृष्ट होने लगे थे । वहा पर अत्यन्त भैरव उपस्थित महान् युद्ध करने लगे थे । कलुषित जलो से युक्त होकर सभी नदियां प्रतिकूल रूप से बहने लगी थी । सभी दिशाऐं लाल वर्ण की रेणुओ से समाकुल होकर प्रकाश नहीं करने वाली हो गई थी । पूजन करने के योग्य वनस्पतियाँ किसी भी समय मे पूजित नही हो रही थी और वायु के वेग से वे सब हन्यमान—भञ्जन शील और नीचे की ओर झुकी हुई हो गई थी ।। ४६ ।। ।।४७, ४८, ४९।।

यदा च सर्वभूतानां छाया न परिवर्तते ।
अपह्णगते सूर्ये लोकानां युगसक्षये ॥५०
तदा हिरण्यकशिपोर्दैत्यस्योपरि वेश्मनः ।
भाण्डागारे युधागारे निविष्टमभवन्मधु ॥५१
असुराणां विनाशायसुराणांविजयाय च ।
दृश्यन्ते विविधोत्पाता घोराघोरनिदर्शना ॥५२
एते चान्ये च बहवो घोरोत्पाताः समुत्थिताः ।
दैत्येन्द्रस्य विनाशायदृश्यन्ते कालनिर्मिताः ॥५३
मेदिन्या कम्पमानाया दैत्येन्द्रेण महात्मना ।
महीधरा नागगणा निपेतुरमितौजस ॥५४
विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैर्विमुञ्चान्तो हुताशनम् ।
चतुःशीर्षाः पञ्चशीर्षाः सप्तशीर्षाश्चपन्नगाः ॥५५
वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ ।
एलामुख, कालिकश्च महापद्मश्च वीर्यवान् ॥५६
सहस्रशीर्षा नागावैं हेमतालध्वजः प्रभुः ।
शेषोऽनन्तोमहाभागो दुष्प्रकम्प्य.प्रकाम्पत. । ५७
दीप्तान्यन्तर्जलस्थानि पृथिवीधरणानि च ।
तदा क्रुद्धेन महता कम्पितानि समन्ततः ॥५८

जिस समय में समस्त प्राणियों की छाया परिवर्तित नहीं होती है और लोकों के युग सक्षय में सूर्य भगवान् अपराह्न गत हो जाया करते हैं ॥५०॥ उस समय में दैत्यराज हिरण्य कशिपु के निवास-गृह के ऊपर भाण्डागार और आयुधागारमें मधु निविष्ट हो गया था ॥५१॥ घोर निदर्शन वाले विविध भाँति के स्वरूप वाले महान् उत्पात इन असुरों के विनाश के लिए तथा देवगणों की विजय प्राप्त होने के लिये दिखलाई दे रहे थे ॥५२॥ अन्य भी और जो बहुत से अत्यन्त घोर उत्पात उठ खड़े हुए थे वे सब काल बली के द्वारा विनिर्मित उस दैत्येन्द्र के सर्व तो भाव

से विनाश के लिये ही दिखलाई दे रहे थे ।।५३।। उस महान् आत्मा वाले दैत्येन्द्र के द्वारा कम्पायमान इस मेदिनी मे अमित ओज से सम्पन्न महीधर और नागगण गिर गये थे ।।५४।। चार शीर्ष वाले–पाँच फण्यों से युक्त और सात मस्तकों वाले पन्नग (सर्प) विष की ज्वालाओं से समाकुल मुखों से हुताशन का विमुञ्चन कर रहे थे। प्रमुख पन्नगों मे *वासुकि–तक्षक–कर्कोटक–धनञ्जय–एलामुख–कालिक* और महान् वीर्यशाली महापद्म एव सहस्र शीर्षों वाला—नग—हेमताल ध्वज—प्रभु शेष और महाभाग अनन्त—दुष्प्रकम्प्य—प्रकम्पित—जल के अन्दर स्थित रहने वाले दीप्त और पृथिवी धारण थे। उस समय मे य सब चारों ओर मे महान् क्रुद्ध उसके द्वारा कम्पित हो गये थे ।। ५५ ।। ५६ ।। ५७ ।। ५८ ।।

नागास्तेजोधराश्चापि पातालतलचारिण' ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्तदा सस्पृष्टवान्महीम् ।।५६
सन्दष्टोष्टपुटः क्रोधाद्वाराह इव पूवजः ।
नदी भागीरथी चैव सरयूः कौशिकी तथा ।।६०
यमुना त्वथ कावेरी कृष्णवेणी च निम्नगा ।
सुवेणा च महाभागा नदी गोदावरीतथा ।।६१
चर्मण्वती च सिन्धुश्च तथा नदनदीपतिः ।
कमलप्रभवश्चैव शोणोमणिनिभोदकः ।।६२
नर्मदा शुभतोया च तथा वेत्रवती नदी ।
गोमती गोकुलाकीर्णा तथा पूर्वसरस्वती ।।६३
मही कालमही चैव तमसा पुष्पवाहिनी ।
जम्बूद्वीप रत्नवट सवरत्नोपशोभितम् ।।६४

तेज के धारण करने वाले और पाताल तल मे सचरण करने वाले नाग भी कम्पायमान हो गये थे। उस समय मे दैत्यराज हिरण्य कशिपु ने इस मही को सस्पर्श किया था और यह क्रोध से अपने होंठो को

काटता हुआ पूर्वज वाराह की भाँति हो गया था। समस्त नद और नदियां भी प्रकम्पित हो गये थे जिनके प्रमुख नाम ये हैं–भागीरथी नदी–सरयू–कशिकी—यमुना—कावेरी—कृष्ण वेणी निम्नगा—सुवेणा—महाभागा गो दावरी नदी—चर्मण्वती—सिन्धुनद—नद नदीपति—कमल प्रभव और मणि के सदृश स्वच्छ जल वाला शोणनद–शुभ तोया नर्मदा–वेत्रवती नदी–गोमती—गोकुलाकीर्णा तथा पूर्व सरस्वती–मही–कालमही—तमसा और पुष्प वाहिनी ये सभी नद और नदियां प्रकम्पित हो गये थे। जम्बू द्वीप और सब प्रकार के रत्नों से उपशोभित रत्नव भी कम्पायमान थे। ॥५६, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४.।

सुवर्णप्रकटञ्चैव सुवर्णाकरमण्डितम् ।
महानदञ्च लौहित्य शैलकाननशोभितम् ॥६५
पत्तनं कोशकरण ऋषिवीरजनाकरम् ।
मागधाश्च महाग्रामा मुण्डाः शुङ्गास्तथैव च ॥६६
सुह्मा मल्ला विदेहाश्च मालवा. काशिकोसलाः ।
भवन वैनतेयस्य दैत्येन्द्रणाभिकम्पितम् ॥६७
कैलासशिखराकार यत् कृत विश्वकर्मणा ।
रक्ततोयो महाभीमो लौहित्यो नाम सागरः ॥६८
उदयश्च महाशैल उच्छ्रित शतयोजनम् ।
सुवर्णवेदिक. श्रीमान् मेघडवितनिषेवित ॥
भ्राजमानोऽर्कसदृशैर्जातरूपमयैर्द्रुमैः ।
शालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितै. ॥६९

सुवर्ण के आकरों (खानों) से मण्डित सुवर्ण प्रकट तथा शैल और काननों से शोभा मयुत लौहित्य महान्–ऋषि और वीरजनों की खान कोश करण पत्तन–मागध–महाग्राम–मुड तथा शुङ्ग–सुह्म–मल्ल–विदेह–मालव–काशी—कोसल और वैनतेय का भवन ये सब देश और स्थल उस दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु के द्वारा अभिकम्पित होगये थे ॥६५, ६६, ६७।, यह भवन

कैलास पर्वत की शिखर के समान आकार वाला था और विश्वकर्मा के द्वारा इसकी रचना की गयी थी। महान् भीम स्वरूप वाला जिसका जलरक्त वर्ण का था ऐसा लौहित्य नाम वाला सागर—उदय महाशैल जिसकी सौ योजन ऊँचाई थी—मेघों की पंक्तियों से निषेवित सुवर्ण वेदिक जो पुष्पित कर्णिकार, शाल, ताल, तमाल, सूर्य के सदृश जात रूपमय द्रुमों से भ्राजमान था ॥६८, ६९॥

अयोमुखश्च विख्यात सर्वतो धातुमण्डितः ।
तमालवनगन्धश्च पर्वतो मलय शुभ ॥७०
सुराष्ट्राश्च सबाल्हीका शूराभीरास्थैवच ॥७१
भोजा पाण्ड्याश्च वङ्गाश्च कलिङ्गास्ताम्रलिप्तका ॥७२
तथैवोड्राश्च पौण्ड्राश्च वामचूडा सकेरलाः ।
क्षोभितास्तेन दैत्येन सदेवाश्चाप्सरोगणा ॥७३
अगस्त्यभवनञ्चैव यदगम्यङ्कृत पुरा
सिद्धचारणसङ्घैश्च विप्रकीर्णं मनोहरम् ॥७४
विभिन्ननानाविहग सुपुष्पितमहाद्रुमम् ।
जातरूपमयं शृङ्गं गगन विलिखन्निव ॥७५
चन्द्रसूर्यांशुसङ्काशे सागराम्बुसमावृते ।
विद्युत्वान् सर्व श्रीमानायन शतयोजनम् ॥७६
विद्युता यत्र सङ्घाता निपात्यन्ते नगोत्तमे ।
ऋषभ पर्वतश्चैव श्रीमान् वृषभसंज्ञित ॥७७

अयोमुख परम विख्यात था जो सभी ओर से धातुओं से मण्डित था तथा तमाल के वनों की गन्ध से युक्त मलय पर्वत परम शुभ था। सुराष्ट्र—वाह्लीक—शूर—आभीर—भोज—पाण्डय—वङ्ग—कलिङ्ग—ताम्रलिप्त—उड्र—पौण्ड्र—वाम चूड—करल इन सब देशों को उस दैत्य ने क्षोभ युक्त बना दिया था और देवों के सहित अप्सराओं के समुदायों को भी क्षुब्ध कर दिया था ॥७०, ७१, ७२, ७३॥ अगस्त्य भवन

जो कि पहिले अगम्य कर दिया था वह सिद्ध-चारणों के समूहों से विप्रकीर्ण और अत्यन्त मनोहर था ॥७४॥ उसमें विचित्र भाँति के अनेक विहग रहते थे तथा सुन्दर पुष्पों से युक्त महान् वृक्ष लगे हुए थे। उसके सुवर्णमय शिखर इतने ऊँचे थे मानो वे गगन को लिखित बना रहे हैं। ॥७५॥ वह सागर के जलों से समावृत चन्द्र सूर्य की किरणों के सदृश विद्युत वाला शोभा से सुसम्पन्न सौ योजन पर्यन्त आयति वाला था। जिस नगोत्तम पर विद्युतों के संघातों का निपातन किया जाता था ऋषभ और श्री सम्पन्न वृषभ संज्ञा वाला पर्वत था ॥७६, ७७॥

कुञ्जरः पर्वत. श्रीमानगस्त्यस्य गृह शुभम्।
विशालाक्षश्च दुर्धर्षः सर्पाणामालय पुरी ॥७८
तथा भोगवतीचापि दैत्येन्द्रेणाभिकम्पिताः।
महामेनो गिरिश्चैव पारियात्रश्च पर्वतः ॥७९
चक्रवाश्च गिरिश्रेष्ठो वाराहश्चैव पवत.।
प्राग्ज्योतिषपुरञ्चमापि जातरूपमय शुभम् ॥८०
यस्मिन्वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानव ।
विशालाक्षश्च दुर्धर्षो मेघगम्भीरनिस्वनः ॥८१
षष्टिस्तत्र सहस्राणि पर्वताना द्विजोत्तमाः।
तरुणादित्यसङ्काशो मेरुस्तत्र महागिरिः ॥८२
यक्षराक्षसगन्धर्वैर्नित्यं सेवितकन्दरः।
हेमगर्भो महाशैलस्तथा हेममखोगिरि. ॥८३
कैलासश्चैव शैलेन्द्रो दानवेन्द्रेण कम्पिताः।
हेमपुष्पसक्षेत्रं तेन वखानसं सरः ॥८४

श्री से सम्पन्न कुञ्जर पर्वत अगस्त्य का परम शुभ गृह था भोगवती भी उस दैत्येन्द्र के द्वारा अभिकम्पित हो रही थी। महासेन पर्वत—पारियात्र गिरि—चक्रवान् श्रेष्ठ गिरि—वाराह पर्वत—प्राग्ज्योतिषपुर जो परम शुभ और जातरूप मय था। जिसमें दुष्ट आत्मा वाला नरक नाम-

धारी दानव निवास किया करता था वह मेघ के समान गम्भीर ध्वनि वाला दुर्धर्ष विशालाक्ष था ।।७८, ७९, ८०, ८१।। हे द्विजोत्तमो ! वहां पर साठ हजार पर्वत थे और वहां तरुण आदित्य के सदृश महान् गिरि मेरु था ।।८२।। यक्ष-गन्धर्व—राक्षसों के द्वारा नित्य ही जिसकी कन्दराओं का सेवन किया जाता था वह महान् शैल हेम गर्भ था तथा हेम सखा गिरि था ।।८३।। ये समस्त महा शैल और शैलों का प्रमुख स्वामी कैलास को भी उस दानवेन्द्र ने कम्पित कर दिया था । उसने हेम पुष्प रस क्षेत्र वैखानस सरोवर को भी प्रकम्पित कर दिया था ।।८४।।

कम्पितं मानसञ्चैव हंसकारण्डवाकुलम् ।
त्रिशृङ्गपर्वतञ्चैव कुमारी च सरिद्वरा ।।८५
तुषारचयसञ्छन्नो मन्दरश्चापि पर्वतः ।
उशीरबिन्दुश्च गिरिश्चन्द्रप्रस्थस्तथाद्रिराट् ।।८६
प्रजापतिगिरिश्चैव तथा पुष्करपर्वतः ।
देवाभ्रपर्वतश्चैव यथावै रेणुकोगिरिः ।।८७
क्रौञ्चः सप्तर्षिशैलश्च धूम्रवर्णश्च पर्वतः ।
एते चान्ये च गिरयो देशा जनपदास्तथा ।।८८
नद्यः ससागराः सर्वाः सोऽकम्पयत दानवः ।
कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्रवांश्चैव कम्पितः ।।८९
खेचराश्चैव सतीपुत्राः पातालतलवासिनः ।
गणस्तथा परोरौद्रो मेघनामांकुशायुधः ।।९०
ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च सर्व एवाभिकम्पिताः ।
गदी शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्तदा ।।९१

हंसों और कारण्डवों से समाकुल मानस सरोवर का भी कम्पायमान कर डाला था । त्रिशृङ्ग पर्वत, सरिताओं में परम श्रेष्ठ, तुषार के समुदाय से सञ्छन्न कुमारी नदी, मन्दर पर्वत, उशीर बिन्दु गिरि, अद्रियों का राजा चन्द्रप्रस्थ, प्रजापति गिरि, पुष्कर पर्वत, देवाभ्र पर्वत

रेणुक गिरि, क्रौन्च, सप्तर्षि, शैल, धूम्रवर्ण पर्वत, तथा अन्य गिरिगण, देश तथा जनपद, सागरों के सहित समस्त नदियों आदि को उस महा दानव ने कम्पित कर दिया था। मही का पुत्र कपिल और व्याघ्रवान् पर्वत को भी *कम्पायमान बना दिया था* ॥८५, ८६, ८७, ८८, ८९॥ खेचर, सतीपुत्र, पाताल तल के निवासिगण, पर रौद्र, मेघ नाम वाला अङ्कुशायुध, ऊर्ध्वग और भीम वेग ये सभी अभिकम्पित हो गये थे। उस समय में हिरण्य कशिपु गदा के धारण करने वाला, शूलधारी और महान् कराल हो गया था ॥९०, ९१॥

जीमूतघनसङ्काशो जीमूतघननिस्वनः ।
जीमूतघननिर्घोषो जीमूत इव वेगवान् ॥९२
देवारिर्दितिजो वीरो नृसिंहं समुपाद्रवत् ।
समुत्पत्य ततस्तीक्ष्णैर्मृगेन्द्रेण महानखैः ॥९३
तदोङ्कारसहायेन विदार्य निहतोयुधि ।
मही च कालश्च वशी नभश्च ग्रहाश्च सूर्यश्च दिशश्च सर्वाः ।
नद्यश्च शैलाश्च महार्णवाश्च गताः प्रसाददितिपुत्रनाशात् ॥९४
तत प्रमुदिता देवा ऋषयश्च तपोधना ।
तुष्टुवुर्नामभिर्दिव्यैरादिदेव सनातनम् ॥९५
यत्त्वया विहित देव ! नारसिंहमिद वपु ।
एतदेवार्चयिष्यन्ति परावरविदोजना ॥९६
भवान् ब्रह्मा च रुद्रश्च महेन्द्रो देवसत्तमः ! ।
भवान् कर्ता विकर्ता च लोकाना प्रभवाप्यय ॥९७
पराञ्च सिद्धाञ्च परञ्च देव परञ्च मन्त्र परम हविश्च ।
परञ्च धर्मं परमञ्च विश्व त्वामाहुरग्र्य पुरुष पुराणम् ॥९८

उस हिरण्य कशिपु का स्वरूप उस काल में जीमूत कृष्णमेघ के समान था और मेघ के ही तुल्य घोर ध्वनि वाला वह था। उसकी घोर

गर्जना भी मेघ के ही तुल्य थी तथा जीमूत के समान ही वेग से युक्त था ॥ ६२ ॥ इस प्रकार के स्वरूप वाला वह दिति का पुत्र और देवों का शत्रु था उस वीर ने नृसिंह महाप्रभु पर आक्रमण किया था। इसके अनन्तर उसी समय मे ओङ्कार की सहायता वाले मृगेन्द्र ने उछाल मारकर अपने परम तीक्ष्ण विशाल नखो से उस दानवेन्द्र हिरण्य कशिपु को पकड़ कर विदीर्ण कर दिया था और नृसिंह प्रभु के द्वारा वह युद्ध मे निहत हो गया था। दिति पुत्र के विनाश हो जाने से यह मही—काल—शशीनभ—सूय—सम्पूर्ण ग्रह—समस्त दिशाऐं—नदियाँ—शैल और महासागर सब परम प्रसन्नता को प्राप्त हो गये थे ॥ ६३ । ६४ ॥ इसके पश्चात सब देव वृन्द—ऋषिवर्ग और तापस गण परम प्रमुदित हो गये थे और फिर उन्होने दिव्य नामो के द्वारा उन सनातन आदि देव का स्तवन किया था ॥ ६५ ॥ उन्होने कहा—हे देव ! आपने जो यह नारसिंह वपु धारण किया है आपके इसी स्वरूप का परावर वेत्ता जन अर्चन किया करेंगे ॥ ६६ ॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे भगवन् ! आप ही ब्रह्मा—रुद्र—महेन्द्र और परम श्रेष्ठ देव हैं। आप ही इन लोकों के कर्त्ता—विकर्त्ता—प्रभव और *अव्यय हैं ॥ ६७ ॥ आपको ही परम सिद्ध—परात्पर देव—परम मन्त्र—परम* हवि—परम धर्म—परम विश्व और सबसे आदि मे होने वाले पुरातन पुरुष कहते हैं ॥६७, ६८॥

पर शरीर परमञ्च ब्रह्म परञ्च योग परमाञ्च वाणीम् ।
पर रहस्य परमाङ्गतिञ्च त्वामाहुरग्र्य पुरुष पुराणम् ॥६६
एव परस्यापि पर पद यत् पर परस्यापि परञ्च देवम् ।
पर परस्यापि परञ्च भूतन्त्वामाहुरग्र्य पुराणम् ॥१००
पर परस्यापि पर निधान पर परस्यापि पर पवित्रम् ।
पर परस्यापि पर न्च दान्त त्वामाहुरग्र्य पुरुष पुराणम् ॥१०१
एवमुक्त्वा तु भगवान् सर्वलोकपितामह ।
स्तुत्वा नारायण देव ब्रह्मलोक गत प्रभु ॥१०२

तप्तो नदत्सु तूर्येषु नृत्यन्तीष्वमरःसु च ।
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जगाम हरिरीश्वरः ॥१०३
नारसिंहं वपुर्देव. स्थापयित्वा सुदीप्तिमत् ।
पौराणं रूपमास्थाय प्रययौ गरुडध्वजः ॥१०४
अष्टचक्रेण यानेन भूतयुक्तेन भास्वता ।
अव्यक्तप्रकृतिर्देवः स्वस्थानं गतवान् प्रभुः ॥१०५

हे भगवन् ! आपको ही परम शरीर—परम ब्रह्म—परमयो ग—परम वाणी—परम रहस्य तथा परम गति एवं आद्य पुराण पुरुष कहा करते हैं। इस प्रकार से जो परकामी परम पद है और परकामी परम देव है तथा परकामी परमभूत है उस आद्य पुरुष एवं परम पुराण आपको ही कहते हैं॥ ९९। १००॥ इसी भाँति परकामी परम निधान—परकामी परम पवित्र तथा परसेवी परम दान्त आद्य पुराण पुरुष आपको ही कहते हैं॥ १०१॥ इस रीति से समस्त लोकों के पितामह भगवान् ने नारायण देव का स्तवन करके प्रार्थना की और फिर वे प्रभु अपने ब्रह्मलोक को वापिस चले गये थे॥ १०२॥ इसके अनन्तर तूर्यों के घोष होने पर और अप्सराओं के नृत्य होने पर ईश्वर श्री हरि क्षीरसागर के उत्तर कूल पर गमन कर गये थे॥ १०३॥ देवेश्वर ने सुदीप्ति से युक्त नारसिंह वपु की स्थापना कराकर फिर गरुडध्वज प्रभु पौराण स्वरूप में समास्थित होकर प्रयाग कर गये थे। भूतयुक्त-भास्वान् आठ चक्रों वाले यान के द्वारा अव्यक्त प्रकृति देव प्रभु अपने स्थान को चले गये थे॥ १०४॥ १०५॥

६४—मनुमत्स्य संवाद वर्णन

पद्मरूपमभूदेतत् कथ हेममय जगत् ॥१
कथञ्च वैष्णवी सृष्टि पद्ममध्येऽभवत्पुरा ॥२
श्रुत्वा च नरसिह माहात्म्य रविनन्दन ।
विस्मयोत्फुल्लनयन: पुन प्रप्रच्छकेशवम् ॥३
कथ पाद्मे महाकल्पे तव पद्ममय जगत् ।
जलार्णवगतस्येह नाभौ जात जनार्दन ! ॥४
प्रभावात् पद्मनाभस्य स्वपत: सागराम्भसि ।
पुष्करे च कथ भूता देवा सर्षिगणा पुरा ॥५
एतमाख्याहि निखिल योग योगविदाम्पते ! ।
शृण्वतस्तस्य मे कीर्ति नंतृप्तिरुपजायते ॥६
यिपता चैव कालेन शेते व पुरुषोत्तम ।
कियन्त वा स्वपिति च कोऽस्य कालस्य सम्भव ॥७

ऋषिगण ने कहा—हमारी यह प्रार्थना है कि सृष्टि रचना को कुछ और अधिक विस्तार के साथ आप वर्णन कीजिए ॥ १, २ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् किस प्रकार से हेममय पद्म के स्वरूप वाला हो गया था और पहिले उस पद्म के मध्य मे यह वैष्णवी सृष्टि किस प्रकार से हुई थी ॥ ३ ॥ महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—रविनन्दन ने प्रभु नारसिंह के माहात्म्य का श्रवण करके विस्मय से उत्फुल्ल नेत्रो वाला होकर पुन. उसने केशव प्रभु से पूछा था ॥ ४ ॥ मनु ने कहा—हे जनार्दन ! पाद्म महा कल्प में जिस समय में आप जलार्णव मे लीन होकर स्थित थे तब यह पद्ममय जगत् आपकी नाभि से किस प्रकार उत्पन्न हुआ था ? सागर के जल मे शयन करने वाले पद्मनाभ के प्रभाव से उस पुष्कर में पहिले देव-ऋषिगण और समस्त भूत किस रीति से समुत्पन्न हुए थे ॥ ५ ॥ हे योग के वेत्ताओ के स्वामिन् ! इस सम्पूर्ण योग का वर्णन

कृपा करके कीजिए ! उसकी कीर्ति का श्रवण करने वाले मेरे हृदय की तृप्ति नहीं हो रही है । पुरुषोत्तम प्रभु कितने लम्बे समय से वहाँ पर शयन किया करते हैं और किस काल पर्यन्त शयन करते रहते हैं । इस काल की उत्पत्ति क्या है ? ॥६, ७॥

कियतावाथ कालेन ह्यु त्तिष्ठति महायशा ।
कथञ्चोत्थाय भगवान् सृजते निखिलजगत् ॥८
के प्रजापतयस्तावदासन् पूर्वं महामुने ! ।
कथं निर्मितवाश्चैव चित्र लोकं सनातनम् ॥९
प्रथमेकार्णवे शून्ये नष्टस्थावरजङ्गमे ।
दग्धदेवासुरनरे प्रनष्टोरगराक्षसे ॥१०
नष्टानिलानले लोके नष्टाकाशमहीतले ।
केवल गह्वरीभूते महाभूतविपर्यये ॥११
विभुर्महाभूतपतिर्महातेजा महाकृतिः ।
आस्ते सुरवरश्रेष्ठो विधिमास्थाय योगवित् ॥१२
श्रृणुया परया भक्त्या ब्रह्मन्नेतदशेषत ।
वक्तुमर्हसि धर्मिष्ठ ! यशो नारायणात्मकम् ॥१३

यह महान् यशस्वी प्रभु कितने काल मे वहाँ पर उत्थित हुआ करते हैं और किस प्रकार से उठकर इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन भगवान् किया करते हैं ? हे महामुने ! पहिले कौन प्रजापति थे और इस अत्यन्त विचित्र जगत् तथा सनातन लोक का किस प्रकार से निर्माण किया था ? ॥ ८, ९ ॥ प्रथम इस एक मात्र आर्णव में जब कि सभी स्थावर और जङ्गम नष्ट होकर यह एकदम शून्य था और सब देव—असुर एव नर दग्ध हो गये थे तथा उरग और राक्षस भी सब नष्ट हो गये थे । अनिल और अनल भी विनष्ट हो गये थे । लोक मे आकाश एव महीतल का नाम निशान भी नहीं था । महाभूतों के विपर्यय हो जाने पर यह केवल एक गह्वर के तुल्य ही था । उस समय मे महान् आकृति वाले—महान्

तेजस्वी—सुरवरों मे परम श्रेष्ठ—महाभूतो के स्वामी—योगवेत्ता विभु विधि मे समास्थित होकर थे ।। १०, ११, १२ ।। हे ब्रह्मन् ! मैं परम भक्तिपूर्वक पूर्णरूप से इस सबको श्रवण करना चाहता हूँ । हे धर्मिष्ठ ! आप इस नारायण के ही स्वरूप वाले परम यश का वर्णन करने के योग्य होते हैं ।। १३ ।।

श्रद्धया चोपविष्टाना भगवान् ! वक्तुमर्हसि ।
नारायणस्य यशसः श्रवणे या तव स्पृहा ।।१४
तद्वश्यान्वयभूतस्य न्याय्य रविकुलर्षभ ! ।
शृणुष्वादिपुराणेषु वेदेभ्यश्च यथाश्रुतम् ।।१५
ब्राह्मणानाञ्च वदता श्रुत्वा वै सुमहात्मनाम् ।
यथा च तपसा दृष्ट्वा बृहस्पतिसमद्युतिः ।।१६
पराशरसुत. श्रीमान् गुरुर्द्वैपायनोऽब्रवीत् ।
तत्तेऽह कथयिष्यामि यथाशक्ति यथाश्रुति ।।१७
यद्विज्ञातु मया शक्यमृषिमालेण सत्तमाः ! ।
कः समुत्सहते ज्ञातु पर नारायणात्मकम् ।।१८
विश्वायनश्च यद्ब्रह्मा न वेदयति तत्त्वत. ।
तत्कर्म्म विश्ववेदाना तद्रहस्य महर्षिणाम् ।।१९
तमीज्य सर्वयज्ञाना तत्तत्त्व सर्वदर्शिनाम् ।
तदध्यात्मविदा चिन्त्यनरकन विकर्मिणाम् ।।२०
अधिदैवञ्च यद्दैवमधियज्ञ सुसंज्ञितम् ।
तद्भूतधिभूतञ्च तत्पर परमर्षिणाम् ।।२१

हम सब श्रद्धा से आप श्रवण करने के लिए यह समुपस्थित हैं आप अब कहने की कृपा कीजिए क्योंकि इसके वर्णन करने की पूर्ण क्षमता रखते हैं। मत्स्य भगवान् ने कहा—जो यह आपकी स्पृहा भगवान् नारायण के यश को श्रवण करने की समुत्पन्न हुई है वह हे रविकुलर्षभ! इसी यश में होने वाले अन्वय मे उत्पन्न आपकी बहुत उचित ही है।

वेदों से तथा आदि पुराणों में जिस प्रकार से सुना गया है उसका अब श्रवण करो ॥ १४, १५ ॥ सुन्दर और महान् आत्मा वाले बोलते हुए ब्रह्मनों का कथन सुनकर और बृहस्पति के समान द्युति वाले, पाराशर के पुत्र धीमान् गुरु द्वैपायन ने जिस प्रकार से तपश्चर्या के द्वारा देखकर बोला था उसी को मैं अपनी शक्ति और श्रवण के अनुसार आपको सब कहूँगा ॥ १६, १७ ॥ हे श्रेष्ठतमो! यद्यपि मात्र मेरे द्वारा जो भी जाना जा सकता है उस परम नारायण के स्वरूप को अन्य कौन जानने का उत्साह कर सकता है ॥ १८॥ विश्व जिसको अपन बनाता है वह ब्रह्माजी तात्त्विक रूप से जिसको नहीं जानते हैं। विश्व वेदो का यह कर्म्म महर्षियों के लिये भी एक रहस्य है। सब यज्ञों के यजन करने के योग्य वह सर्व दर्शियों का तत्त्व है। वह अध्यात्म के वेत्ताओं के चिन्तन के योग्य विषय है और विकर्मियो का नरक नहीं है। वह अधिदैव और अधियज्ञ सज्ञा से युक्त एवं वह भूत अधिभूत है तथा परमर्षियो का वह परम है ॥ १९, २०, २१ ॥

स यज्ञो वेदनिर्दिष्टस्तत्तपः कवयो विदु. ।
यः कर्त्ता कारको बुद्धिर्मनः क्षेत्रज्ञ एव च ॥२२
प्रणव. पुरुषः शास्ता एकश्चेति विभा यते ।
प्राणः पञ्चविधश्चैव ध्रुव अक्षर एव च ॥२३
कालः शाकश्च यन्ता चहुष्टास्वाध्यायएव च ।
उच्यते विविधैर्देवः स एवाय न तत्परम् ॥२४
स एव भगवान् सर्वं करोति विकरोति च ।
सोऽस्मान् कारयते सर्वान् सोऽत्येति व्याकुलीकृतान्॥२५
यतामहे तमेवाद्यन्तमेवेच्छाम निर्वृता. ।
यो वक्ता यच्च वक्तव्य यच्चाहन्तद्ब्रवीमि वः ॥२६
श्रूयते यच्च वै श्राव्य यच्चान्यत् परिजल्प्यते ।
या.कथाश्चैव वर्तन्ते श्रुतयो वाथ तत्पराः ॥२७

विश्वं विश्वपतिर्यश्च स तु नारायण. स्मृतः ।
यत् सत्यं यदमृतमक्षर पर यत् यद्भूत परममिद च यद्भविष्यत् ।
यत् किञ्चि रमचर यदस्ति चान्यत्
तत् सर्व पुरुषवर प्रभुः पुराणः ॥ २८

वह वेदो के द्वारा निर्दिष्ट यज्ञ है और कविगण उसको तप कहते हैं। जो कर्त्ता—कारक—बुद्धि—मन—क्षेत्रज्ञ—प्रणव—पुरुष—शास्त्र और एक ही विभावित होता है। पाँच प्रकार का प्राण—ध्रुव और अक्षर है। काल—शाक—यन्ता—द्रष्टा और स्वाध्याय है। विविध देवो के द्वारा वह देव कहा जाता है और यह वह ही है उससे पर कोई नहीं है। वह ही भगवान् सब कुछ किया करते हैं और बिगाडते हैं। वह इन सबको कराता है और व्याकुलीकृतो का अतिगमन करता है॥ २२, २३, २४, २५॥ उसी आदि मे होने वाले के लिये हम यत्न किया करते हैं और निर्वृत (प्रसन्न) होकर उसी को हम सब चाहते हैं। जो वक्ता है और जो वक्तव्य है तथा जो मैं हूँ उसको ही मै आपको बतलाता हूं। जो श्राव्य सुना जाता है और जो अन्य परिजल्पित किया जाता है। जो कथाऐ वर्त्तमान हैं। जो श्रुतियाँ हैं वे तत्पर ही हैं। यह विश्व और विश्व का स्वामी है वह ही नारायण कहा गया है। जो सत्य है-अक्षर और पर है। जो परम भूत है और भविष्यत् है—जो चर—अचर तथा जो अन्य है वह सभी पुरुषों मे श्रेष्ठ पुराण प्रभु है॥२६॥२७॥२८॥

६५—विष्णु प्रादुर्भाव वर्णन

विष्णुत्व शृणु विष्णोश्च हरित्वञ्च कृते युगे ।
वैकुण्ठत्वञ्च देवेषु कृष्णत्व मानुषेषु च ॥१
ईश्वरस्य हितस्यैषा कर्म्मगागहनागति. ।

संप्रत्यतीतान् भव्यांश्चश्रृणुराजन् ! यथातथम् ॥२
अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो यएषभगवान् प्रभुः ।
नारायणोह्यनन्तात्मा प्रभवोऽव्ययएवच ॥३
एष नारायणो भूत्वा हरिरासीत् सनातनः ।
ब्रह्मावायुश्चसोमश्च धर्म्म.शक्रोबृहस्पतिः ॥४
अदितेरपि पुत्रत्वं समेत्य रविनन्दन ! ।
एष विष्णुरितिख्यात इन्द्रस्याजो विभुः ॥५
प्रसादजं ह्यस्य विभोरदित्याः पुत्रकारणम् ।
बधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवरक्षसाम् ॥६
प्रधानात्मा पुरा ह्येष ब्रह्माणमसृजत् प्रभुः ।
सोऽसृजन् पूर्वपुरुषः पुराकल्पेप्रजापतीन् ॥७

श्रीमत्स्य भगवान् ने कहा—अब तुम विष्णु के विष्णुत्व का श्रवण करो और कृत युग मे हरित्व का—देवों में वैकुण्ठत्व का और मनुष्यों में कृष्णत्व के स्वरूप का भी श्रवण कर लो। हितकारी ईश्वर की यह कर्म्मों की एक अतीव गहन गतियाँ हैं। हे राजन् ! अब इस समय मे जो व्यतीत हो गये हैं उनको तथा आगे जो होने वाले हैं उनको ठीक ठीक रीति से श्रवण कर लो ॥ १ ॥ २ ॥ यह जो अव्यक्त भगवान् प्रभु हैं वह व्यक्त लिङ्गों (चिह्नों) में स्थित होते हैं वही अनन्त आत्मा वाले सबका प्रभव (उत्पत्ति) और अविनाशी साक्षात् नारायण ही हैं ॥ ३ ॥ यह पहिले नारायण होकर सनातन श्रीहरि हुए थे। हे रवि के नन्दन ! फिर इसने ही ब्रह्मा—वायु—सोम—धर्म्म—इन्द्र—बृहस्पति तथा अदिति के पुत्रत्व को प्राप्त किया था और यह ही फिर इन्द्र का छोटा पीछे उत्पन्न होने वाला भाई विभु विष्णु इस नाम से विख्यात हुए हैं ॥ ४, ५ ॥ देवगण इस विभु के पुत्र होने का कारण उनकी प्रसन्नता होने वाला समझते थे जो कि सुरो के शत्रु दैत्य—दानव और राक्षसों के वध करने के लिये ही था।

पहिले प्रसन्न आत्मा इस प्रभु ने ब्रह्मा का सृजन किया था। फिर उस पूर्व पुरुष ने पहिले कल्प मे प्रजापतियो का सृजन किया था ॥६।७॥

असृजन्मानवास्तत्र ब्रह्मवंशाननुत्तमान् ।
तेभ्योऽभवन्महात्मभ्यो बहुधाब्रह्म शाश्वतम् ॥८
एतदाश्चर्यभूतस्य विष्णोः कर्मानुकीर्तनम् ।
कीर्तनीयस्य लोकेपु कीर्त्यमान निबोध मे ॥६
वृत्ते वृत्रवधे तत्र वर्त्तमाने कृते युगे ।
आसीत्त्रैलोक्यविख्यात. सग्रामस्तारकामयः ॥१०
यत्र ते दानवा घोराः सर्वे सग्रामदुर्जयाः ।
घ्नन्तिदेवगणान् सर्वान् सयक्षोरगराक्षसान् ॥११
ते वध्यमाना विमुखाः क्षीणप्रहरणा रणे ।
त्रातार मनसा जग्मुर्देव नारायण प्रभु ॥१२
एतस्मिन्नन्तरे मेघा निर्वाणाङ्गारवर्चसः ।
सार्कचन्द्रग्रहगणच्छादयन्तो नभस्तलम् ॥१३
वेणुविद्युद्गणोपेता घोरनिह्लादकारिणः ।
अन्योन्यवेगाभिहता. प्रववु सप्त मारुता. ॥१४

वहाँ पर अच्युतम ब्रह्मा के वंश वाले मानवों का उनने सृजन किया था फिर उन सब महान् आत्माओं वालों से यह शाश्वत ब्रह्म ही बहुत से स्वरूपों में समुत्पन्न हुआ था। यह ही आश्चर्य स्वरूप वाले भगवान् विष्णु के कर्मों का अनुकीर्तन है। लोकों में कीर्तन करने के योग्य के उस कीर्त्यमान कर्म को अब मुझसे तुम भलीभाँति समझ लो। ॥८।९॥ वर्त्तमान इस युग में वृत्रासुर के वध उपस्थित होने पर वहीं पर त्रिभुवन में विख्यात तारकामय संग्राम हुआ था। जिस युद्ध में संग्राम में दुर्जय समस्त घोर दानव गण यक्ष-उरग और राक्षसों के सहित सब देवों का हनन किया करते थे ॥१०।११॥ उस रण में वध किये

जाते हुए क्षीण आयुधो वाले विमुख होकर सबके सब मन से शरण करने वाले प्रभु देव नारायण की शरण मे गये थे ॥१२॥ इसी बीच मे निर्वाण अङ्गार वचस वाले मेघ, सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहो से युक्त नभस्तल का आच्छादन करते हुए छा गये थे। ये मेघ वेगु विद्युदगण से युक्त थे तथा घोर गर्जन करने वाले थे। परस्पर मे वेग से अभिहत सातों मरुत वहन करने लगे थे ॥१३।१४॥

दीप्ततोयाशनिर्नैवज्रवेगानलानिलै ।
रवै सुघोरैरुत्पातैर्दह्यमानमिवाम्बरम् ॥१५
तत उल्कासहस्राणि निपेतु खगतान्यपि ।
दिव्यानि च विमानानि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च ।१६
चतुर्युगान्ते पर्याये लोकाना यद्भय भवेत् ।
अरूपवन्ति रूपाणि तस्मिन्नुत्पातलक्षणे ॥१७
जातञ्च निष्प्रभ सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
तिमिरौघपरिक्षिप्ता न रेजुश्च दिशोदश ॥१८
विवेश रूपिणी काली कालमेघावगुण्ठिता ।
द्यौनमात्यभिभूतार्का घोरेण तमसा वृता ॥१६
तान घनौघान् सतिमिरान् दोर्भ्यामाक्षिप्य स प्रभु ।
वपु स्वन्दर्शयामास दिव्य कृष्णवपुर्हरि ।२०
बलाहकाञ्जनमिम बलाहकतनूरुहम् ।
तेजसा वपुषा चैव कृष्ण कृष्णमिवाचलम् ॥२१

उस समय मे यह सम्पूर्ण आकाश दीप्त तोय और अशनि (वज्र) से संयुत घनो के द्वारा—वज्र वेग अनल और अनिलो के द्वारा-सुघोर ध्वनि और उत्पातो से दह्यमान की तरह हो रहा था ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् आकाश मे स्थित भी सहस्रो उल्काऐ गिर गयी थी तथा दिव्य विमान उडते थे और नीचे की ओर गिरते थे ।१६। चतुर्युगो के अन्त मे लोको के पर्याय मे जो भय होता है उस उत्पात के लक्षण मे सभी रूप

बिना रूप वाले हो जाते हैं ॥ १७ ॥ लोकों में सभी कुछ प्रभा से हीन हो जाता है और कुछ भी नहीं जाना या समझा जाया करता है। अन्धकार के अत्यन्त घोर एवं गहन समुदाय से परिक्षिप्त हुई दशों दिशाऐं प्रकाशित नहीं होती थीं। उस समय में काल मेघ में अवगुण्ठित होकर रूपधारिणी काली का प्रवेश हो जाता था। अत्यन्त घोर तम से समावृत दिवलोक तथा अन्तरिक्ष जिसमें सूर्य्य एकदम अभिभूत होजाता है बिल्कुल भी दिखलाई नहीं दिया करता है ॥ १८, १६ ॥ तिमिर से परिपूर्ण घन धनों के समूहों को वह प्रभु अपने हाथों से आक्षिप्त करके कृष्ण वपुधारी श्री हरि अपने दिव्य शरीर को दिखाया करते थे ॥ २० ॥ बलाहक के सदृश काले बलाहक के समान रोमों से युक्त-वपु और तेज से एक कृष्ण अचल की भाँति कृष्ण स्वरूप को प्रकट किया था ॥ २१ ॥

दीप्तापीताम्बरधरं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।
धूमान्धकारवपुषं युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ॥२२
चतुर्द्विगुणपीनांसङ्किरीटच्छन्नमूर्द्धजम् ।
बभौ चामीकरप्रख्यैरायुधैरुपशोभितम् ॥२३
चन्द्रार्ककिरणोद्योतं गिरिकूटमिवोच्छ्रितम् ।
नन्दकानन्दितकरं शराशीविषधारिणम् ॥२४
शक्तिचित्रफलोदग्रशङ्खचक्रगदाधरम् ।
विष्णुशैलं क्षमामूलं श्रीवृक्षं शार्ङ्गधन्विनम् ॥२५
त्रिदशोदारफलदं स्वर्गस्त्रीचारुपल्लवम् ।
सर्वलोकमनःकान्तं सर्वसत्वमनोहरम् ॥२६
नानाविमानविटपं तोयदाम्बुमधुस्रवम् ।
विद्याहङ्कारसाराढ्यं महाभूतप्ररोहणम् ॥२७
विशेषपत्रैर्निचितं ग्रहनक्षत्रपुष्पितम् ।
दैत्यलोकमहास्कन्धं मर्त्यलोके प्रकाशितम् ॥२८

वह दीप्तियुक्त पीत अम्बर को धारण करने वाला—तथा तपे हुए सुवर्ण के भूषणों से संयुत—धूम सहित अन्धकार के शरीर वाला प्रशान्त करने वाली अग्नि के तुल्य समुपस्थित हुआ था ॥ २२ ॥ चौगुने और दुगुने पीन अंस से समयुक्त—किरीट से समाच्छन्न केशों वाला वह दिव्य वपु चामीर श्रेष्ठ आयुधों से उपशोभित होकर प्रकट हो रहा था ॥ २३ ॥ चन्द्र और सूर्य्य की किरणों के उद्योत वाला अत्यन्त ऊँचे गिरि के शिखर के सदृश था। नन्दक से आनन्दित करने वाला—शर तथा आशीविष के धारण करने वाला—क्षमा का मूल—विष्णु शैल—श्री वृक्ष और शार्ङ्ग धनुष के धारण करने वाला वह दिव्य स्वरूप था ॥ २४, २५ ॥ उसी दिव्य स्वरूप का वर्णन किया जा रहा है—वह देवों का उदार फल देने वाला—स्वर्गीय स्त्रियों का चारु पल्लव-सब लोगों के मन को रमणीय-सब जीवों में अत्यन्त मनोहर-नाना विमानों के विटपों वाला—मेघों के जलरूप मधु का श्रवण करने वाला—विद्या के अहङ्कार-सार का आद्य-महान् भूतों का प्ररोहण करने वाला—विशेष पत्रों से निचित—ग्रह और नक्षत्र रूपी पुष्पों से संयुत और वह दिव्य रूप दैत्यों के लोक का महान् स्कन्ध था जो कि इस मर्त्य लोक में प्रकाशित हुआ था ॥ २६। २७। २८ ॥

सागराकारनिर्ह्राद रसातलमहाश्रयम् ।
मृगेन्द्रपाशैर्विततं पद्‌जन्तुनिषेवितम् ॥२६
शीलार्थचारुगन्धाढ्य सर्वलोकमहाद्रुमम् ।
अव्यक्तानन्तसलिल व्यक्ताहङ्कारफेनिलम् ॥३०
महाभूततरङ्गौघ ग्रहनक्षत्रबुद्‌बुदम् ।
विमानगम्तव्याप्त तोयदाडम्बराकुलम् ॥३१
जन्तुमत्स्यजनाकीर्ण शैलशङ्खकुलयुतम् ।
त्रैगुण्यविषयावर्त सर्वलोकतिमिङ्गिलम् ॥३२
वीरवृक्षलतागुल्म भुजगोत्कृष्टशैवलम् ।

द्वादशार्कमहाद्वीप रुद्रैकादशपत्तनम् ॥३३
वस्वष्टपर्वतोपेत त्रैलोक्याम्भोमहोदधिम् ।
सन्ध्यासङ्खयोर्मिसलिल सुपर्णानिलसेवितम् । ३४
दैत्यरक्षोगणग्राह यक्षोरगभषाकुलम् ।
पितामहमहावीर्य्य सर्वस्त्रीरत्नशोभितम् ॥३५

पुनरपि उसी परम दिव्य स्वरूप को वर्णित किया जा रहा है कि सागर के आकार के तुल्य निर्ह्राद था और रसातल के महान् आश्रय वाला था। मृगेन्द्र के पार्श्वों से वितत–पक्षिगण एवं जन्तुओं से निषेवित–शीलार्थ और सुन्दर गन्ध से आढ्य–सब लोकों का महान् द्रुम–अव्यक्त एवं अनन्त सलिल वाला—व्यक्त अहङ्कार से फेनयुक्त–महान् भूतों की तरङ्गों के ओघ वाला—ग्रह तथा नक्षत्रों के बुलबुलों से समन्वित—विमान गरुत व्याप्त और तोयदों के आडम्बर से समाकुल था ॥ २६, ३० ६१ ॥ वह रूप जन्तुओं वाला—जनों से समाकीर्ण—शैल शखों के कुलों से सयुत–त्रैगुण्य के विषयों का आवर्त–समस्त लाकों का तिमिङ्गिल—वीर रूपी वृक्ष लता और गुल्मों वाला–भुजङ्गों क उत्कृष्ट शैवाल वाला–द्वादश सूर्यों के महाद्वीपों वाला—एकादश रुद्रों के पत्तनों से युक्त—आठ वसुरूपी पर्वतों से युक्त–त्रैलोक्य रूपी महा सागरों वाला–सन्ध्या सख्या की ऊर्मियों का सलिल—सुपर्ण की वायु से सेवित—दैत्य और रक्षोगण रूपी ग्राहों वाला–यक्ष और उरग रूपी भृषों से समाकुल—पितामह के समान महान् वीर्य वाला और सब स्त्रियों के स्वरूप वाले रत्नों से सुशोभित था ॥३२–३५॥

श्रीर्कीर्तिकान्तितिलक्ष्मीभिर्नदीभिरुपशोभितम् ।
कालयोगिमहापर्वप्रलयोत्पत्तिवेगिनम् ॥३६
तन्तु योगमहापार नारायणमपार्णयम् ।
देवाधिदेव वरद भक्ताना भक्तिवत्सलम् ॥३७

अनुग्रहकर देव प्रशान्तिकरण शुभम् ।
हर्यश्वरथसयुक्ते सुपर्णध्वजभेविते ॥३८
ग्रहचन्द्राकरचिते मन्दराक्षवरावृते ।
अनन्तरश्मिभियुक्ते विस्तीर्णे मेरुगह्वरे ।३६
तारकाचित्रकुसुमे ग्रहनक्षत्रबन्धुरे ।
भयेष्वभयद व्याम्नि देवा दैत्यपराजिता. ॥४०
ददृशुस्तेस्थित देव दिव्ये लोकमये रथे।
ते कृताञ्जलयः सर्व देवा शक्रपुरोगमा ॥४१
जयशब्द पुरस्कृत्य शरण्य शरणङ्गता ।
स तेषा ताङ्गिर श्रुत्वा विष्णुर्दैवतदैवतम् । ४२

उसी दिव्य स्वरुप का वर्णन करते हुए बतलाते हैं कि वह दिव्यरूप श्रीकान्ति और लक्ष्मी से तथा नदियो स उपशोभित था—कालयोगी और महापर्व एव प्रलयत था उत्पत्ति के वेग वाला था। तन्तुयोग का महापार—नारायण रूपी महार्णव स युक्त–देवो का भी अग्निदेव—वर देने वाला जा अपन भक्तो को प्रदान करत थे—भक्तो पर प्यार करने वाला वह स्वरूप था ।। ३६, ३७ ।। वह अनुग्रह करन वाला–देव-प्रशान्ति करन वाल–शुभ था । हर्यश्व रथ से समन्वित–ध्वज से सविल-ग्रह चन्द्र और सूर्य स विरचित—मन्दराक्ष वर स आवृत—अनन्त रश्मियों से युक्त—विस्तीर्ण मेरु गह्वर से युक्त–तार रूप विचित्र कुसुमो से परिपूर्ण-ग्रह और नक्षत्रा स बन्धुर सुडौल)—भय क अवसरो पर अभय देने व ले उस स्वरूप को व्याम मे दैत्या से पराजित देवा न देखा था । उन दवा न परम दिव्य लोकमय रथ म स्थित देव का दर्शन प्राप्त किया था । उस समय म इन्द्र का अपना अग्रणी बना करक उन समस्त देवों ने अपनी अञ्जलियो का बद्ध कर लिया था । जयकार क शब्द को पहिले समुच्चरित करक शरण्य प्रभु को वे सब शरणागति मे प्राप्त हागय थ । उन दवो क भा दवश्वर विष्णु भगवान् न दवगण

को शरणागति में प्राप्त होने के लिए वर्णित वाणी का श्रवण किया था ॥ ३८-४२ ॥

मनश्चक्रे विनाशाय दानवानां महामृधे ।
आकाशे तु स्थितो विष्णुरुत्तमं वपुरास्थितः ॥४३
उवाच देवता सर्वाः सप्रतिज्ञमिदं वचः ।
शान्ति व्रजत भद्रं वो मा भैष्ट मरुतां गणाः ॥४४
जिता मे दानवाः सर्वे त्रैलोक्यं परिगृह्यताम् ।
ते तस्य सत्यसन्धस्य विष्णोर्वाक्येन तोषिताः ॥४५
देवाः प्रीतिं समाजग्मुः प्राश्यामृतमनुत्तमम् ।
ततस्तमः संहृतं तद्विनेशुश्च बलाहकाः ॥४६
प्रववुश्च शिवा वाताः प्रशान्ताश्च दिशो दश ।
शुद्धप्रभाणि ज्योतींषि सोमं चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥४७
न विग्रहं ग्रहाश्चक्रुः प्रशान्ताश्चापि सिन्धवः ।
विरजस्का भवन्मार्गा नाकवर्गादयस्त्रयः ॥४८
याथार्थमूहुः सरितो नापि चक्षुभिरेऽर्णवाः ।
आसञ्छुभानीन्द्रियाणि नराणामन्तरात्मसु ॥४९
महर्षयो वीतशोका वेदानुच्चैरधीयत ।
यज्ञेषु च हविः पाकं शिवमाप च पावकः ॥५०
प्रवृत्तधर्माः संवृत्ता लोका मुदितमानसाः ।
विष्णोर्दत्तप्रतिज्ञस्य श्रुत्वारिनिधनं गिरम् ॥५१

देवों की परित्राण के लिये कहा हुई वाणी को सुनते ही विष्णुदेव ने उस महान् युद्ध में दानवों के विनाश करने के लिए मन में स्थिरता करली थी। उस समय में भगवान् विष्णु उत्तम वपु में समास्थित होकर आकाश में ही स्थित थे। उन्होंने समस्त देवों से प्रतिज्ञा के सहित यह वचन कहा था कि अब आप सब लोग शान्ति धारण करें अर्थात् एकदम प्रशान्त हो जावें। हे मरुतों के गणो! अब आप डरो मत—आपका

कल्याण होगा। मैंने सभी दानवों को जीत ही लिया है—ऐसा समझ लो और अब इस त्रैलोक्य को जो तुमसे उन्होंने छीनकर अपना अधिकार कर लिया है पुन. वापिस ग्रहण करलो। इस प्रकार के वचन जब उन समस्त देवगण ने सत्य प्रतिज्ञा वाले विष्णु भगवान के सुने थे तो उनके वाक्य से सबको बहुत ही अधिक सन्तोष हो गया था ॥ ४३, ४४, ४५॥ उस समय में उस अच्युतम अमृत का प्राशन करके देवगण परम प्रीति को प्राप्त हो गये थे। इसके बाद वह सम्पूर्ण अन्धकार नष्ट हो गया था और सभी वलाहक विनाश को प्राप्त हो गये थे। सर्वत्र परम मङ्गलकारी वायु वहन करने लगी थी और दशों दिशाऐं एक दम प्रशान्त हो गयी थीं शुद्ध प्रभा वाली ज्योतियां अर्थात् नक्षत्रादि साम की प्रदक्षिणाऐं करने लगीं थीं ॥४६।४७॥ उस समय में ग्रह गण परस्पर में कोई भी विग्रह नहीं करते थे और सभी सिन्धु परम प्रशान्त हो गये थे। स्वर्ग वर्गादि तीनों ही रज से रहित मार्गों वाले हो गय थे। सम्पूर्ण सरिताऐं ठीक मार्ग से यथार्थ रूप में वहन कर रही थीं और आर्णवों में भी किसी भी प्रकार का क्षोभ नहीं हो रहा था। सभी मनुष्यों की अन्तरात्माओं में परम शान्ति थी और इन्द्रियां परम शुभ वृत्ति वाली होगई थी ॥४८, ४६॥ सब महर्षिगण शोक से रहित होकर वेदों का उच्च स्वर से अध्ययन कर रहे थे। यज्ञों में जो भी हवि प्रक्षिप्त किया जाता था पावक उसका अति शिव पाक करने लगा था ॥ ५०॥ सभी लोक परम प्रमुदित मनों वाले होकर अपने २ धर्मों में प्रवृत्त हो गये थे जिस समय में सत्य प्रतिज्ञा वाले भगवान् विष्णु की समस्त शत्रुओं के विनाश कर देने की वाणी का सबने श्रवण कर लिया था सभी को परमानन्द प्राप्त हो गया था ॥५१॥

६६—दैत्य सैन्य विस्तार वर्णन

ततो भय विष्णुवच. श्रुत्वा दैत्याश्च दानवा. ।
उद्योगविपुल चक्रु युद्धाय विजयाय च ॥१
मयस्तु काञ्चनमय त्रिनल्वायतमक्षयम् ।
चतुश्चक्र सुविपुल सुकल्पितमहायुगम् ॥२
किङ्किणीजालनिर्घोष द्वीपिचमपरिष्कृतम् ।
रुचिर रत्नजालैश्च हेमजालैश्च शाभितम् ॥३
ईहामृगगणाकीर्ण पक्षिपङ्क्तिविराजितम् ।
दिव्यास्त्रतूणीरधर पयोधरविनादितम् ॥४
स्वक्ष रथवरोदार सूपस्थ गगनोपमम् ।
गदापरिघसपूर्ण मूर्तिमन्तमिवार्णवम् ॥५
हेमकेयूरवलय स्वर्णमण्डलकूवरम् ।
सपताकध्वजोपेत सादित्यमिव मन्दरम् ॥६
गजेन्द्राभोगवपुष क्वचित् केसरिवचसम् ।
युक्त मृक्षसहस्रेण समृद्धाम्बुदनादितम् ॥७
दीप्तमाकाशग दिव्य रथ पररथारुजम् ।
अध्यतिष्ठद्रणाकाङ्क्षी मेरु दीप्तमिवांशुमान् ॥८

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—इसके अनन्तर उस भय से पूर्ण भगवान् विष्णु के वचन का श्रवण करके दैत्यो और दानवो ने विजय की प्राप्ति करने के लिए विपुल उद्योग वाला युद्ध किया था ॥ १ ॥ विभिन्न दानवो के द्वारा किये जाने वाले युद्ध का वर्णन किया जाता है—मय दानव ने जिस रथ मे विराजमान होकर समर किया था वह काञ्चनमय था—त्रिनल्व आयत और अक्षय था । उस रथ मे चार चक्र थे—अतीव विपुल था और सुन्दर कल्पना किया हुआ महायुग वाला था ॥ २ ॥ मय का रथ किङ्किणी जालो के निर्घोष से युक्त—द्वीपियो के चर्म से परिष्कृत—

रत्नों के जालों से अत्यन्त मनोरम—उस रचित जालों से शोभित—ईहा मृग गणों से समाकीर्ण—पक्षियों की पंक्ति से शोभा सम्पन्न—दिव्य अस्त्र और तूणीर को धरने वाला तथा पयोधरों के समान ध्वनि से पूर्ण था ॥ ३, ४ ॥ सुन्दर अक्षों वाला श्रेष्ठ रथों में भी अतीव उदार—सुपस्थ—गगन के सदृश—गदा और परिघ से परिपूर्ण मूर्तिमान एक अर्णव के ही समान वह यम का रथ था ॥ ५ ॥ वह हेम के केयूर और वलय से युक्त—स्वर्ण मण्डल कूबर वाला—पताकाओं के सहित ध्वजा वाला और आदित्य से मन्दराचल के समान दिखलाई देता था ॥ ६ ॥ गजेन्द्र के आभोग वपु वाला—किसी स्थल पर बेगरों के वर्तमान से युक्त—सहस्रों ऋक्षों से युक्त—समृद्ध अम्बुद के समान गजन वाला—दीप्त—आकाश में गमन करने वाला—पर रथारुज वह अतीव दिव्य रथ था। जिस तरह से अंशुमान् दीप्त मेरु पर अधिरोहण किया करता है कि ठीक उसी भाँति वह रण की आकांक्षा रखने वाला मय दानव उस प्रमन पूर्वोक्त प्रकार के रथ पर अधिष्ठित हुआ था ॥ ७, ८ ॥

तारमुत्क्रोशविस्तारं हेममयं रथम् ।
शैलाकारमसम्बाधं नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ ६
कार्ष्णायसमयं दिव्यं लोहेषाबद्धकूबरम् ।
तिमिरोद्गारिकिरणं गर्जन्तमिव तोयदम् ॥ १०
लोहजालेन महता सगवाक्षेण दंशितम् ।
आयसैः परिघैः पूर्णं क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः ॥ ११
प्रासैः पाशैश्च विततैरसंयुक्तैश्च कण्टकैः ।
शोभितं त्रासयानैश्च तोमरैश्च परश्वधैः ॥ १२
उद्यन्तं द्विषतां हेतोर्द्वितीयमिव मन्दरम् ।
युक्तं खरसहस्रेण सोऽध्यारोहद्रथोत्तमम् ॥ १३
विरोचनस्तु संक्रुद्धो गदापाणिरवस्थितः ।
प्रमुखे तस्य सैन्यस्य दीप्तशृङ्ग इवाचलः ॥ १४

तार का रथ उत्क्रोश के विस्तार वाला था और वह सम्पूर्ण रथ हैम से परिपूर्ण था। वह रथ शैल के समान प्राकार वाला—बाधाओं से रहित—नील अञ्जन के निचय की उपमा वाला—काले लोह से पूर्ण—दिव्य–लोहेषा से बद्ध कूबर वाला– तिमिर के उद्गरण करने वाली किरणों से संयुत—गर्जना करने वाले तोयद के सदृश—गवाक्ष से युक्त महान् हेम जाल से दर्शित – आयस परिघों से तथा क्षेपणीय और मुद्गरों से पूर्ण—प्रासों, पाशों और वितत नर संयुक्त कण्ठकों से शोभित—त्रास यानों, तोमरों और परश्वधों से शोभा सम्पन्न – द्विष पुरुषों के कारण ही उदीयमान दूसरे मन्दर के ही समान वह रथ था। सहस्र खरों से संयुत वह उत्तम रथ था जिस पर उस दानव ने अध्यारोहण किया था ॥ ६। १०। ११। १२। १३॥ विरोचन तो भली भाँति क्रुद्ध होता हुआ अपने हाथ में गदा उठाकर उसकी सेना के सामने दीप्तग्रहों वाले अचल के समान अवस्थित होगया था ॥१४॥

युक्त रथसहस्रेण हयग्रीवस्तु दानवः।
स्यन्दनं वाहयामास सपत्नानीकमर्दनः ॥१५
व्यायतं निष्कुसाहस्रं धनुर्विस्फारयन्महत्।
वाराहः प्रमुखे तस्थौ सप्ररोह इवाचलः ॥१६
खरस्तु विक्षरन्दर्पान्नेत्राभ्यां रोषजं जलम्।
स्फुरद्दन्तोष्ठनयनः संग्रामं सोऽभ्यकाङ्क्षत ॥१७
त्वष्टा त्वष्टगजं घोरं यानमास्थाय दानवः।
व्यूहितुं दानवव्यूहं परिचक्राम वीर्यवान् ॥१८
विप्रचित्तिसुतः श्वेतः श्वेतकुण्डलभूषणः।
श्वेतः श्वेतप्रतीकाशो युद्धायाभिमुखे स्थितः ॥१९
अरिष्टो बलिपुत्रश्च वरिष्टाद्रिशिलायुधः।
युद्धायाभिमुखस्तस्थौ धराधरविकम्पनः ॥२०
किशोरस्त्वभिमर्षात् किशोर इति चोदितः।

सबला दानवाश्चैव सन्नह्यन्ते यथाक्रमम् ॥२।

शत्रुओं की सेना का मर्दन करने वाला हयग्रीव नाम वाले दानव ने एक सहस्र रथों से युक्त अपने स्यन्दन (रथ) को वाहित किया था ॥ १५ ॥ एक सहस्र किष्कुओं से समन्वित—व्यायत महान् धनुष को विस्फारित करता हुआ वाराह समुख मे प्ररोह से मयुत एक अवल की भाँति समवस्थित हो गया था ॥ १६ ॥ खर नामधारी दानव घमण्ड से अपने नेत्रों के द्वारा रोष से समुत्पन्न जल को विक्षरित कर रहा था और वह भी जिसके दाँत-ओष्ठ और नेत्र फड़क रहे थे संग्राम करने की आकांक्षा कर रहा था ॥१७॥ त्वष्टा नाम वाला दानव आठ हाथियों वाले परम घोर यान मे समास्थित होकर वीर्य वाला वह दानवों के व्यूह को भली भाँति व्यूहित करने के लिये चारों ओर घूम रहा था ॥ १८ ॥ श्वेत वर्ण के कुण्डलों से विभूषित विप्रचित्त वपु वाला श्वेत प्रतीकाश श्वेत युद्ध करने के लिए अभिमुख मे समवस्थित हो गया था ॥ १९ ॥ बडे बडे पर्वतों को भी कम्पित कर देने वाला—वरिष्ठ पर्वत की शिलाओं के आयुधों से समन्वित होकर अरिष्ट और बलि का पुत्र संग्राम करने के लिए सामने स्थित हो गया था ॥ २० ॥ शुभ सद्रूप से किशोर और किशोर इसी नाम से प्रेरित होने वाला था। इस प्रकार से अपने अपने बलों के सहित दानव गण यथा क्रम युद्ध के लिये सन्नद्ध हो रहे थे ॥ २१ ॥

अभवद्दैत्यसैन्यस्य मध्ये रविरिवोदित ।
लम्बस्तु नवमेघाभ प्रलम्बावरभूषण ॥२२
दैत्यव्यूहगतो भाति सनीहार इवांशुमान् ।
स्वर्भानुरास्ययोधी तु दशनौष्ठेक्षणायुध ॥२३
हसंस्तिष्ठति दैत्यानां प्रमुखे स महाग्रह ।
अन्ये हयगतास्तत्र गजस्कन्धगता पर ॥२४
सिंहव्याघ्रगताश्चान्ये वराहर्क्षेषु चापरे ।

केचित् खरोष्ट्रयातार केचिच्छ्वापदवाहनाः ॥२५
पत्तिनस्त्वपरे दैत्या भीषणा विकृताननाः ।
एकपादाद्ध पादाश्च ननृतुयद्धकाङक्षिण ॥२६
आस्फोटयन्तो बहवः क्ष्वेडन्तश्च तथापरे ।
हृष्टशार्दूलनिर्घोषा नेदुर्दानवपुङ्गवाः ॥२७
ते गदापरिघैरुग्रैः शिलामुसलपाणय ।
बाहुभि. परिघाकारैस्तजयन्तिस्म देवताः ॥२८

दैत्यो की सेना के मध्य मे प्रलम्ब अम्बर और भूषणो से सयुत–नूतन मेघ की आभा के तुल्य आभा वाला लम्ब नाम वाला दैत्य सूर्य के समान उदित हो गया था ॥ २२ ॥ दैत्यो के व्यूह मे प्राप्त होने वाला–आस्यायोधी–दंत, ग्राष्ठ, नेत्र और आयुधो वाला स्वर्भानुनी हार से युक्त अशुमान् के समान शोभित हो रहा था। २३ ॥ वह महान् ग्रह दैत्यो के समप्त मे हँसता हुआ स्थित था। वहाँ पर अन्य हयो पर स्थित थे और दूसरे गजो के स्कन्धो पर समवस्थित थे ॥ २४ ॥ कुछ सिंहो तथा व्याघ्रो पर सवार थे और दूसरे वराह एव ऋक्षो पर अधिरूढ थे। कुछ लोग खरो तथा उष्ट्रो के द्वारा गमन करने वाले और कुछ श्वापदो के वाहनो वाले थे ॥ २५ ॥ (अन्य सेनापति दैत्य परम भीषण और विकृत मुखो वाले थे। कुछ एक पैर वाले और कोई आधे पैरो वाले थे जो युद्ध करने की इच्छा से युक्त होकर नृत्य कर रहे थे ॥ २६ ॥) बहुत से आस्फोटन कर रहे थे–दूसरे क्ष्वेडन करने वाले थे। प्रसन्न शार्दूल के समान गर्जन की ध्वनि करने वाले दानव श्रेष्ठ निर्घोष कर रहे थे ॥ २७ ॥ वे सब शिलाएँ और मूसल हाथो मे लिये हुए अत्यन्त उग्र गदा और परिघो के द्वारा तथा परिघा के आकार वाले बाहुओ के द्वारा देवगणों की तर्जनाऐं (फटकारे दे रहे थे ॥ २८ ॥

पाशै. प्रासैश्च परिघैस्तोमराङ्कुशपट्टिशैः ।
चिक्रीडुस्ते शतघ्नीभि शतधारैश्च मुद्गरैः ॥२९

गण्डशैलैश्च शैलैश्च परिघैश्चोत्तमायसैः ।
शक्रैश्च दैत्यप्रवराश्चक्रुरानन्दितं बलम् ॥३०
एतद्दानवसैन्यं तत्सर्वं युद्धमदोत्कटम् ।
देवानभिमुखे तस्थौ मेघानीकमिवोद्धतम् ॥३१
तदद्भुतं दैत्यसहस्रगाढं वाय्वग्निशैलाम्बुदतोयकल्पम् ।
बलं रणौघाभ्युदयेऽभ्युदीर्णं युयुत्सयोन्मत्तमिवावभासे ॥३२

वे दानव गणों पाशों—प्रासों—परिघों—तोमर—अंकुश और पट्टिशों—शतघ्नी-शतधार और मुद्गरो से क्रीडा कर रहे थे ॥ २६ ॥ वे दैत्यों मे प्रवर गण्डशैलों—शैलो—उत्तम आयस वाले परिघों और चक्रों के द्वारा अपने बल को आनन्द मे युक्त बना रहे थे ॥ ३० ॥ युद्ध करने के मद से अत्यन्त उत्कट यह सम्पूर्ण दानवों की सेना उद्धत मेघो की अनीक के समान देवों के अभिमुख मे स्थित थी ॥ ३१ ॥ वह अति अद्भुत—सहस्रों दैत्यों से अत्यन्त गहन—वायु अग्नि, शैल और अम्बुद तोय के तुल्य दानवो का बल (सेना) रणो के समूह के अभ्युदय में अभ्युदीर्ण युद्ध करने की इच्छा से उन्मत्त के समान अवभासित हो रहा था ॥ ३२ ॥

६७—सुरसैन्य विस्तार वर्णन

श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तरो रविनन्दन ! ।
सुराणामपि सैन्यस्य विस्तरं वैष्णव श्रृणु ॥१
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौच महाबलौ ।
सबलाः सानुगाश्चैव सन्नह्यन्त यथाक्रमम् ॥२
पुरहूतस्तु पुरतो लोकपालाः सहस्रदृक् ।
ग्रामणीः सर्वदेवानामारुरोहसुरद्विपम् ॥३

मध्ये चास्य रथः सर्वपक्षिप्रवरंरहः ।
सुचारुचक्रचरणो हेमवज्रपरिष्कृतः ॥४
देवगन्धर्वयक्षौघैरनुयातः सहस्रशः ।
दीप्तिमद्भिः सदस्यैश्च ब्रह्मर्षिभिरभिष्टुतः ॥५
वज्रविस्फूर्जितोद्भूतैर्विद्युदिन्द्रायुधान्वितैः ।
युक्तो बलाहकगणैः पर्वतैरिव कामगैः ॥६
यमारूढः स भगवान् पर्येति सकलं जगत् ।
हविर्धानेषु गायन्ति विप्रा मखमुखे स्थिताः ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे रविनन्दन ! तुमने दैत्यों की सेना के विस्तार का वर्णन श्रवण गत कर लिया है। अब सुरगणों की सेना का भी वैष्णव विस्तार श्रवण करलो। द्वादश आदित्य—आठ वसुगण—एकादश रुद्र—महान् बल सम्पन्न अश्विनीकुमार ये सब बलों और अनुगामियों के सहित क्रम के अनुसार ही सन्नद्ध हो गये थे ॥ १ । २ ॥ समक्ष में सहस्र नेत्रों वाले इन्द्रदेव—समस्त लोकपाल—सब देवों की ग्रामणी सुरों के शत्रु पर समारोहण करने वाले हो गये थे ॥ ३ ॥ मध्य में समस्त पक्षियों में श्रेष्ठ (गरुड़) के वेग वाले इनका सुचारु (सुन्दर) चक्र चरणों वाला हेम और वज्र से परिष्कृत रथ था ॥ ४ ॥ उस रथ के पीछे सहस्रों देव—गन्धर्व—और यक्षों के समुदाय अनुगमन करने वाले थे तथा वे दीप्तिमान् सदस्यों के द्वारा और ब्रह्मर्षियों के द्वारा अभिष्टुत हो रहे थे ॥ ५ ॥ वज्र के तुल्य विस्फूर्जित एवं उद्भूत—विद्युत् और इन्द्रायुधों से समुदित स्वेच्छया गमन करने वाले पर्वतों के समान बलाहकों के गणों से युक्त थे ॥ ६ ॥ जिस रथ पर वह भगवान् समारूढ थे वह रथ समस्त जगत् में परिगमन करता था और यज्ञशालाओं में समवस्थित विप्रगण हविर्धानों में गायन किया करते थे ॥ ७ ॥

स्वर्गे शक्रानुयातेषु देवतूर्यनिनादिषु ।
पुन्दर्यः परिनृत्यन्ति शतशोऽप्सरसां गणे ॥८

केतुना नागराजेन राजमानो यथा रविः ।
युक्तो हयसहस्रेण तमो मारुतरंहसा ॥६
सस्यन्दनवरोभाति गुप्तोमातलिना तदा ।
कृत्स्नः परिवृतो मेरुर्भास्करस्येव तेजसा ॥१०
यमस्तु दण्डमुद्यम्य कालयुक्तश्च मुद्गरम् ।
तस्थौ सुरगणानीके दैत्यान्नादेन भीषयन् ॥११
चतुर्भिः सागरैर्युक्तो लेलिहानैश्च पन्नगैः ।
शङ्खमुक्ताङ्गदधरो विभ्रत्तोयमयं वपुः ॥१२
कालपाशान् समाविध्यन् हयैः शशिकरोपमैः ।
वाय्वीरितैर्जलाकारैः कुर्वन् लीलाः सहस्रशः ॥१३
पाण्डुरोद्धूतवसनः प्रचलन् रुचिराङ्गदः ।
मणिश्यामोत्तमवपुर्हारभारार्पितोवरः ॥१४
वरुणः पाशधृङमध्ये देवानीकस्य तस्थिवान् ।
युद्धवेलामभिलपन् भिन्नवेल इवार्णवः ॥१५

स्वर्ग मे देव तूर्यों को निनादित करने वालों का इन्द्र के पीछे अनुगमन होने पर अप्सराओं के आँगन में सैकड़ो सुन्दरियाँ नृत्य कर रही थीं ॥ ८ ॥ नागराज केतु से युक्त वह रथ सूर्य के समान राजमान हो रहा था तथा मारुत के तुल्य वेग से संयुत एक सहस्र अश्वों से सम्पन्न माना गया है ॥ ६ ॥ उस समय मे मातलि के द्वारा परम सुरक्षित वह श्रेष्ठतम स्यन्दन (रथ) पूर्णतया चारों ओर से परिवृत होकर भगवान् भास्कर के तेज से मेरु के समान शोभित हो रहा था ॥ १० ॥ काल से युक्त यमराज दण्ड और मुद्गर को उठाकर घोर गर्जन के द्वारा दैत्यों को भय उत्पन्न करते हुए सुरगणों की सेना में संस्थित थे ॥ १० । ११॥ देवगणों की सेना के मध्य में युद्ध के समय की अभिलाषा करते हुए वेला के भेदन करने वाले अर्णव के सदृश पाश को धारण करने वाले स्थित हो रहे थे जो चारों सागरों तथा जीभ निकाल कर

सर्पो से युक्त थे और तोयमय वपु को धारण करने वाले शंख-युक्ताङ्गद को धारण कर रहे थे। वायु से प्रेरित-जल के आकार वाले—चन्द्र की किरणों के द्वारा कालपाशों को समाविद्ध करने वाले थे और सहस्रों प्रकार की लीलाएं कर रहे थे। पाण्डुर वर्ण के वस्त्र को उद्धूत करते हुए तथा हिलने वाले रुचिर अङ्गदो के धारी—मणि के सदृश श्याम एवं उत्तम वपु वाले और हृदिमार से अर्पित वरदान से युक्त वरुण देव थे ॥ १२-१५ ॥

यक्षराक्षससैन्येन गुह्यकानां गणैरपि ।
युक्तश्च शङ्खपद्माभ्यां निधीनामधिप प्रभु ॥१६
राजराजेश्वर. श्रीमान् गदापाणिरदृश्यत ।
विमानयोधी धनदो विमाने पुष्पके स्थित. ॥१७
स राजराज शुशुभे युद्धार्थी नरवाहनः ।
उक्षाणमास्थित. सख्ये साक्षादिव शिव. स्वयम् ॥१८
पूर्वपक्ष. सहस्राक्षः पितृराजस्तु दक्षिणः ।
वरुण. पश्चिम पक्षमुत्तर नरवाहनः ॥१९
चतुर्षु युक्तास्चत्वारो लोकपाला महाबला ।
स्वासु दिक्षुस्वरक्षन्त तस्य देवबलस्य ते ॥२०

यक्षो और राक्षसो की सेना और गुह्यको के गणो से समन्वित तथा शंख-पद्मो को धारण करने वाले निधियो के स्वामी प्रभु-गदा हाथ मे ग्रहण किये हुए-विमानो के द्वारा युद्ध करने वाले राजराजेश्वर श्रीमान् धन अर्थात् कुबेर पुष्पक विमान मे स्थित दिखलाई दे रहे थे ॥१६,१७॥ युद्ध करने की इच्छा रखने वाले राजाओ के भी राजा नरवाहन वृषभ पर समास्थित युद्ध मे साक्षात् स्वयं शिव के ही समान शोभित हो रहे थे ॥ १८ ॥ पूर्व दिशा मे पक्ष वाले सहस्राक्ष इन्द्र देव थे। दक्षिण दिशा मे पितृराज थे—पश्चिम मे वरुण देव और उत्तर पक्ष मे नर वाहन थे। इस तरह मे चारो पक्षो मे चार महान् बल विक्रम शाली लोकपाल थे

और वे अपनी-अपनी दिशाओं में उन देवों की सेना की रक्षा कर रहे थे ॥(६।२०)॥

सूर्य सप्ताश्वयुक्तेन रथेनामितगामिना ।
श्रिया जाज्वल्यमानेन दीप्यमानैश्च रश्मिभि. ॥२१
उदयास्तगचक्रेण मेरुपवनगामिना ।
त्रिदिवद्वारचक्रेण तपता लोकमव्ययम् ।२२
सहस्ररश्मियुक्तेन भ्राजमानेन तेजसा ।
चचार मध्ये लोकाना द्वादशात्मा दिनेश्वर ॥२३
सोम श्वेतहये भाति स्यन्दने शीतरश्मिवान् ।
हिमवत्तोयपूर्णाभिर्भाभिराह्लादयञ्जगत् ॥२४
तमृक्षपूगानुगत शिशिराशु द्विजेश्वरम् ।
शशच्छायाङ्कितततनु नशस्य तमस क्षयम् ॥२५
ज्योतिषामीश्वर व्योम्नि रसाना रसद प्रभुम् ।
ओषधीना सहस्राणानिधानममृतस्य च ॥२६
जगत प्रथम भाग सौम्य सत्यमय रथम् ।
ददृशुर्दानवा सोम हिमप्रहरण स्थितम् ॥२७
य प्राण सर्वभूताना पञ्चधा भिद्यते नृषु ।
सप्तधातुगतो लोका स्त्रीन्दधार चचार च ॥२८

अमितगामी—श्री से तथा दीप्यमान रश्मियों से जाज्वल्यमान रथ के द्वारा द्वादश स्वरूप वाले दिनेश्वर लोकों के मध्य में सचरण कर रहे थे। वह सूर्यदेव का रथ उदय और अस्त में गमन करने वाला—मेरु पर्वत पर जाने वाला—त्रिदिव द्वार के चक्र से समायुक्त—अव्यय लोक को ताप देने वाला—सहस्र रश्मियों से युक्त और भ्राजमान तेज से सम्पन्न था ॥ २१, २२, २३ ॥ शीत रश्मियों वाले सोमदेव हिम में समन्वित जल से परिपूर्ण दीप्तियों से सम्पूर्ण जगत् को समाह्लादित करते हुए श्वेत अश्वों वाले रथ में शोभा पा रहे थे ॥ २४ ॥ उन सब दानवों

ने हिम के अस्त्र वाले वहाँ पर स्थित सोमदेव को देखा था जो नक्षत्रों के समुदाय से अनुगत—शिशिर किरणों वाला— द्विजेश्वर—शश की छाया से चिह्नित शरीर के धारण करने वाला—रात्रि के तम का क्षय करने वाला–समस्त ज्योतियों के व्योम में स्वामी–रसों में रस का प्रदान करने वाले–प्रभु–सहस्रों औषधियों के तथा अमृत के निधान थे ।। २५, २६, २७ ।। जो समस्त भूतों का प्राण है और नरों में पाँच प्रकार का होकर स्थित रहा करता है तथा सातों धातुओं में जल होकर तीनों लोकों का धारण किया करता है और सञ्चरण करने वाला भी था ।। २८ ।।

यमाहुरग्निकर्त्तारं सर्वप्रभवमीश्वरम् ।
सप्तस्वरगतोयश्च निरङ्गीभिरुदीयते ।।२६
यं वदन्त्युत्तमं भूतं यं वदन्त्यशरीरिणम् ।
यमाहुराकाशगमं शीघ्रगंशब्दयोगिनम् ।।३०
स वायुः सर्वभूतायुरुद्भूतः स्वेन तेजसा ।
ववौप्रव्यथयन् दैत्यान् प्रतिलोमस्ततोयदः ।।३१
मरुतो दिव्यगन्धर्वविद्याधरगणैः सह ।
चिक्रीडुरसिभिः शुभ्रैर्निर्मुक्तैर्विपन्नगः ।।३२
सृजन्तः सर्पपतयस्ते व्रमोयमयं विषम् ।
शरभूता दिवीन्द्राणाञ्चेरुर्व्यात्ताननाः दिवि ।।३३
पर्वतैश्च शिलाःश्रृङ्गैः शतशश्चैव पादपैः ।
उपतस्थुः सुरगणाः प्रहर्तुं दानवे बले ।।३४
यः सदेवाहृषीकेशः पद्मनाभस्त्रिविक्रमः ।
युगान्ते कृष्णवर्णाभो विश्वस्यजगतः प्रभुः ।। ५

जिसको अग्नि की रचना करने वाला—सबका प्रभव उत्पत्ति—ईश्वर—कहा गया है और जो सात स्वरों में रहने वाला निरयङ्गियों के द्वारा उदीरित किया जाता है । जिसको सबसे उत्तम भूत कहते हैं और

जिसको बिना शरीर वाला कहते हैं तथा जिसको आकाश में गमन करने वाला–शीघ्रगामी और शब्दयोनी कहा गया है ॥ २६, ३० ॥ वह वायु अपने तेज से सम्पूर्ण भूतों का आयु उद्भूत हुआ है वह तोय देने वाला प्रतिलोम में दैत्यों को प्रकृष्ट रूप से व्यथित करता हुआ बहन करने लगा था। दिव्य गन्धर्वों के और विद्याधर गणों के साथ मस्त शुभ्र नियुक्त पन्नगों के तुल्य असियों (खड्गों) स क्रीडा करने वाला था। ॥ ३१, ३२ ॥ सर्पों के स्वामी गण तीव्र तापपूर्ण विष का सृजन करते हुई दिवीन्द्रों के शरभूत बनकर दिवलोक में मुख फैलाये हुए सचरण कर रहे थे ॥ ३३ ॥ सुरगण पर्वतो शिला के शिखरों और सैंकड़ों पादपों के द्वारा दानवों की सेना में प्रहार करने के लिये उपस्थित हो गये थे ॥ ३४ ॥ जो वह देव हृषीकेश थे वह पद्मनाभ–त्रिविक्रम–इस विश्व और और जगत् के प्रभु युग के अन्त में कृष्ण वर्ण की आभा वाले थे ॥ ३५ ॥

सर्वयोनिः स मधुहा हव्यभुक् क्रतुसंस्थित ।
भूम्यपाव्योमभूतात्मा श्याम· शान्तिकरोऽरिहा ॥३६
अरिघ्नममरादीनाञ्चक गृह्य गदाधरः ।
अर्क नगादिवोद्यन्तमुद्यम्योत्तमतेजसा ॥३७
सव्येनालम्व्य महती सर्वासुरविनाशिनीम् ।
करेण कालीं वपुषा शत्रुकालप्रदां गदाम् ॥३८
अन्यैर्भुजैः प्रदीप्ताभर्भुजगारिध्वजः प्रभु ।
दधारायुधजातानि शार्ङ्गादीनि महाबलः ॥३६
सकश्यपस्यात्मभुवद्विज भुजगभोजनम् ।
पवनाधिकसम्पान गगनक्षोभण खगम् ॥४०
भुजगेन्द्रेण वदन निविष्टेन विराजतम् ।
अमृतारम्भ निर्मुक्त मन्दराद्रिमिवोच्छ्रितम् ॥४१
देवासुरविमर्देषु बहुशोदृष्टविक्रमम् ।

महेन्द्रणामृतस्यार्थे वज्रेण कृतलक्षणम् ।।४२

वह मधुदैत्य का हनन करने वाले—सबकी योनि तथा उत्पत्ति का स्थान–हव्य को खाने वाला—ऋतुओं में संस्थित–भूमि, जल और व्योम भूत स्वरूप–श्याम और अरियों का हनन करने वाला शान्तिकर था ।। ३६ ।। उन गदाधर प्रभु ने देवगणों के अरियों के मारने वाला चक्र ग्रहण किया था । वह चक्र अपने उत्तम तेज से मग से उदीयमान सूर्य्य के सदृश प्रतीत हो रहा था ।।३७।। सव्य कर से समस्त असुरों के विनाश करने वाली महती और वपु से शत्रुओं के काल को प्रदान करने वाली गदा को प्रभु ने ग्रहण किया था ।।३८। भुजगों के अरि (गरुड) की ध्वजा वाले महान् बलवान् प्रभु ने अपनी अन्य भुजाओं के द्वारा जो कि प्रदीप्त आभा वाली थीं आङ्ख आदि आयुधों को धारण किया था । ।।३९।। वह प्रभु कश्यप महर्षि के पुत्र - भजगों का भोजन करने वाला पक्षी - पवन से भी अधिक वेग से युक्त - गगन को क्षुब्ध करने वाला–खग–मुखमे निविष्ट भुजगेन्द्र के द्वारा विराजमान–अमृत के आरम्भ से निर्मुक्त अत्यन्त उच्च मन्दरणों के समान स्थित थे । वह गरुड देवों के और असुरों के विमर्दन करने वाले युद्धों मे बहुत ही अधिक विक्रम से युक्त अमृत के लिये वज्र के द्वारा महेन्द्र से कृत लक्षण वाले थे ।।४०।। ।।४१।४२।।

शिखिन वलिनञ्चैव तप्तकुण्डलभूषणम् ।
विचित्रपत्रवसनन्धातुमन्तमिवाचलम् ।।४३
स्फीतक्रोडावलम्बेन शीतांशुसमतेजसा ।
भोगिभोगावसिक्तेन मणिरत्नेन भास्वता ।।४४
पक्षाभ्याञ्चरुपत्राभ्यामावृत्यदिविलीलया ।
युगान्तेसेन्द्रचापाभ्यान्तोयदाभ्यामिवाम्बरम् ।।४५
नीललोहितपीताभिः पताकाभिरलङ्कृतम् ।
केतुवेषप्रतिच्छन्न महाकायनिकेतनम् ।।४६

अरुणावरजं श्रीमानारुह्य समरे विभुः ।
सुवर्णस्वर्णवपुषा सुपर्णं खेचरोत्तमम् ।।४७
तमन्वयुर्देवगणा मुनयश्च समाहिताः ।
गीर्भिः परममन्त्राभिस्तुष्टुवुश्च जनार्दनम् ।।४८
तद्वैश्रवणसंश्लिष्टं वैवस्वतपुरःसरम् ।
द्विजराजपतिक्षिप्तं देवराजविराजितम् ।।४९
चन्द्रप्रभाभिर्विपुलं युद्धाय समवर्तत ।
स्वस्त्यस्तु देवेभ्य इति बृहस्पतिरभाषत ।।
स्वस्त्यस्तु दानवानीके उशना वाक्यमाददे ।।५०।।

वह गरुड पक्षिराज—शिखी—बली—तप्त कुण्डल भूषण वाला—विचित्र पत्रों के वस्त्रों में युक्त धातुमान् एक अचल के तुल्य स्थित था ।। ४३ ।। वह गरुड स्फीत (लम्बे चौड़े) क्रोड में अवलम्ब वाले—शीतांशु (चन्द्रमा) के समान तेजयुक्त—मोतियों के भोग से अवलिप्त भास्वान् मणि रत्न से शोभित था । वह अपने सुन्दर पत्रों वाले पक्षों से युगान्त में इन्द्र के चापों से युक्त तोयदों से अम्बर की भाँति दिवलोक में लीला से आवरण करके स्थित था । वह गरुड देव नील—लोहित और पीत वर्ण वाली पताकाओं से समलंकृत—केतु के वेष में प्रतिच्छन्न—महान् काया के निकेतन वाले अरुणदेव के छोटे भाई थे । उन गरुड पर जो सुन्दर वर्ण वाले सुवर्ण के वपु से सुपर्ण और खेचरों में सर्वोत्तम थे श्रीमान् प्रभु ने समर के अवसर पर समारोहण किया था ।। ४४, ४५, ४६, ४७ ।। उन प्रभु के पीछे गमन करने वाले देवगण और परम समाहित मुनिगण थे । जिन्होंने परम श्रेष्ठ मन्त्रों से समन्वित वाणियों के द्वारा भगवान् जनार्दन प्रभु का संस्तवन किया था ।। ४८ ।। उन प्रभु के साथ में वैश्रवण कुबेर थे और वैवस्वत (यमराज) उनके आगे थे । वे द्विजराजों के पति से क्षिप्त और देवराज से शोभित थे इस प्रकार चन्द्र की प्रभाओं से परम विपुल वह प्रभु युद्ध करने के लिये प्रस्तुत हुए थे

उस अवसर पर सुरों के गुरु बृहस्पति ने देवों का मङ्गल हो—ऐसा आशीर्वादात्मक वचन कहा था। उधर उशना असुरों के गुरु ने दानवों की सेना मे स्वस्ति हो—यह वाक्य कहा था।

६८—देवासुर संग्राम वर्णन (१)

ताभ्या बलाभ्या सजज्ञे तुमुलोविग्रहस्तदा।
सुराणामसुराणाञ्च परस्परजयैषिणाम् ॥१
दानवा दैवतैः सार्द्धं नानाप्रहरणोद्यता।
समीयुर्युध्यमाना वै पर्वता इव पर्वतैः ॥२
तत् सुरासुरसयुक्त युद्धमत्यद्भुत बभौ।
धर्माधर्मसमायुक्त दर्पेण विनयेन च ॥३
ततोरथैर्विप्रयुक्तैर्वारणैश्च प्रचोदितैः।
उत्पतद्भिश्च गगनमसिहस्तैः समन्ततः ॥४
क्षिप्यमाणैश्च मुसलैः सम्पतद्भिश्च सायकैः।
चापैर्विस्फार्यमाणैश्च पात्यमानैश्च मुद्गरैः ॥५
तद्युद्धमभवद्घोर देवदानवसङ्कुलम्।
जगतस्त्रासजनं युगसवर्तकोपमम् ॥६
हस्तमुक्तैश्च परिघैर्विप्रयुक्तैश्च पर्वतैः।
दानवाः समरेजघ्नुर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—उस समय में उन दोनों सेनाओं से एक महान् तुमुल युद्ध उत्पन्न हो गया था। यह युद्ध परस्पर में जय की अभिलाषायें रखने वाले सुर और असुर इन दोनों का ही हुआ था ॥१॥ अनेक प्रकार के अस्त्रायुधों से उद्यत होने वाले दानव देवगणों के साथ पर्वतों की ही भाँति युद्ध करते हुए गगन में समुपस्थित हो गये थे ॥२॥

वह सुरो और असुरो का सयुक्त युद्ध अत्यन्त ही अद्भुत शोभा दे रहा था क्योंकि वह विनय और दर्प से, धर्म तथा अधर्म से समायुक्त था। देवो मे विनय और धर्म था तो असुरो म घमण्ड और अधर्म था ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर विशेष रूप से प्रयुक्त और प्रकृष्ट रूप स प्रेरित यजो के द्वारा खड्ग हाथो मे ग्रहण करने वाले चारो ओर से गगन में उत्पतन कर रहे थे। प्रक्षिप्त किये हुए मुसल—सम्पतन वाले सायक—विस्फार्यमाण चाप और पात्यमान मुद्गरो क द्वारा वह देवों और दानवो का सकुल महान् घोर युद्ध हुआ था और यह युद्ध सब जगत् को त्रास देने वाला था तथा युग के सम्वर्त्तक के ही तुल्य था ॥ ४, ५, ६ ॥ हाथो से छोडे हुए परिघो क द्वारा तथा विशेष रूप से प्रयाग मे लाये हुए पर्वतों के द्वारा दानव गण देवो का जिनमे महेन्द्र प्रमुख अग्रणी था हनन करने लगे थे ॥ ७ ॥

ते वध्यमाना वलिभिर्दानवैर्जयकाशिभिः।
विषण्णवदना देवा जग्मुरार्तिं परामृधे ॥८
तेऽस्त्रशूलप्रमथिता परिघैर्भिन्नमस्तकाः।
भिन्नोरस्का दितिसतैर्वमूरक्त व्रणैर्बहु ॥६
वेष्टिता. शरजालैश्च निर्यत्नाश्चासुर. [illegible] ।
प्रविष्टा दानवी मायाम्र [illegible] ॥१०
अस्त गतमिवाभाति निष्प्राण[illegible] ।
वल सुराणामसुरैर्निष्प्रयत्नातुर [illegible] ॥११
दैत्यचापच्युतान् घोरान्छित्वा [illegible] ।
शक्रो दैत्यवल घोर विवेश [illegible] ॥१२
स दैत्यप्रमुखान् हत्वा [illegible] ।
तामसेनास्त्रमाविन [illegible] ॥१३
तेऽन्योन्य [illegible] ।
घोरेण [illegible] ॥

उस महान् युद्ध में जय काशी बलशाली दानवो के द्वारा वध किये जाने वाले वे देवगण विषाद युक्त मुखो वाले होकर महान् पीडा को प्राप्त हुए थे ॥ ८ ॥ वे सब देवता लोग त्रिशूलो से प्रमथित—परिघो के द्वारा भिन्न मस्तकों वाले और दिति के पुत्रों के द्वारा भिन्न उरस्थल वाले शरीरो में होने वाले व्रणो से बहुत रक्त का वमन करने लगे थे ॥ ९ ॥ शरो के जालों से उनको एकदम वेष्टित करके असुरो ने यत्नों से रहित कर दिया था। देवगण दानवों की माया मे प्रविष्ट होकर कुछ भी विशेष चेष्टा करने मे समर्थ नही रहे थे ॥ १० ॥ असुरों के द्वारा सुरगणो के बल को प्रयत्न से रहित आयुधो वाला बना दिया था और वह प्राणो से रहित के समान आकृति वाला अर्थात् मुर्दे की भाँति अस्त को प्राप्त हुआ सा ही प्रतीत हो रहा था ॥ ११ ॥ दैत्यो के चापो से छूटे हुए उन परम घोर शरो को बज्र के द्वारा छेदन करके बहुत अधिक नेत्रो वाले इन्द्र ने उस अत्यन्त घोर दैत्यो की सेना मे प्रवेश किया था ॥ १२ ॥ उस महेन्द्र ने प्रमुख दैत्यो का हनन करके फिर उस महान् दानवो के बल को तामस अस्त्रो के जाल से उसे एकदम तमोभूत अर्थात् अन्धकार मय कर दिया था ॥ १३ ॥ इन्द्र के तेज के प्रभाव से उस परम घोर तप से आविष्ट होकर वे दैत्यगण परस्पर मे दैत्यो को और देवो के वाहनों को भी नही जान पा रहे थे ॥ १४ ॥

मायापाशविमुक्तास्तु यत्नवन्तः सुरोत्तमाः ।
वपूंषि दैत्यसिंहानान्तमोभूतान्यपातयन् ॥१५
अपध्वस्ता विसंज्ञाश्च तमसा नीलवर्चसा ।
पेतुस्ते दानवगणाश्छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥१६
तद्घनाभूतदैत्येन्द्रमन्धकार इवार्णवे ।
दानवेन्द्रबलमत्यन्तमामूर्तमिवाभवत् ॥१७
तदासृजन्महामाया मयस्तां तामसीन्दहन् ।
युगान्तोद्योतजननीं सृष्टामौर्वेण वह्निना ॥१८

सा ददाह ततः सर्वान् मायामयविकल्पिता ।
दैत्याश्चादित्यवपुषः सद्य उत्तस्थुराहवे ॥१६
मायामौर्वीं समासाद्य दह्यमाना दिवौकसः ।
भेजिरे चेन्द्रविषयं शीतांशुं सलिलप्रदम् ॥२०
ते दह्यमाना ह्यौर्वेण वह्निना नष्टचेतसः ।
शशंसुर्वज्रिणं देवाः सन्तप्ताः शरणैषिणः ॥२१

माया के पाशों से विमुक्त हुए यत्नों वाले सुरोत्तम तमोभूत दैत्यों के सिंहों के समान शरीरों को भूमि पर मार कर गिराने लगे थे ॥ १५ ॥ नील वर्चस तम से एकदम अपध्वस्त और संज्ञा (चेतना एवं होश) से रहित वे दानव गण पक्षों के छेदन हो जाने वाले पर्वतों के ही समान भूमि पर पतित हो रहे थे ॥ १६ ॥ अर्जव में अन्धकार के समान उस घनीभूत दैत्येन्द्र और देवों के द्वारा कदन किये गये दानव तमोभूत की ही तरह हो गया था ॥ १७ ॥ उस समय में मय दानव ने देवों के द्वारा की हुई उस तामसी माया को दग्ध करते हुए एवं अपनी महामाया का सृजन किया था जो और्व वह्नि के द्वारा सृजि हुई थी और युगान्त में उद्योत (प्रकाश) की जननी थी ॥ १८ ॥ मय दानव के द्वारा विरचित उस माया ने सबका दहन कर दिया था और फिर तुरन्त ही दैत्यगण देवों के वपु वाले होकर उस रण स्थल में समुत्थित हो गये थे। और्वी माया को प्राप्त करके दग्ध होते हुए देवगण इन्द्र का विषय सलिल का प्रदान करने वाले शीतांशु का सेवन करने लगे थे। और्व वह्नि से दह्यमान होकर वे देवगण एकदम नष्ट चेष्टाओं वाले हो गये थे। और फिर वे सतप्त हुए देवता लोग शरण की इच्छा वाले होते हुए इन्द्र से कहने लगे थे ॥१६, २०, २१॥

सन्तप्ते मायया सैन्ये हन्यमाने च दानवैः ।
चोदितो देवराजेन वरुणो वाक्यमब्रवीत् ॥२२
और्वो महर्षिजः शक्र ! तपस्तेपे सुदारुणम् ॥

और्वं स पूर्वतेजस्वी सदृशो ब्रह्मणो गुणैः ॥२३
स तपन्तमिवादित्य तपसा जद्वदव्ययम् ।
उपतस्थुर्मुनिगणा दिव्या देवर्षिभिः सह ॥२४
हिरण्यकशिपुञ्चैव दानवो दानवेश्वरः ।
ऋषिं विज्ञापयामासु पुरा परमतेजसम् ॥२५
ऊचुर्ब्रह्मर्षयस्त तु वचनं धर्मसहितम् ।
ऋषिवंशेषु भगवंश्छिन्नमूलमिदं पदम् ॥२६
एकस्त्वमनपत्यश्च गोत्रायान्यो न वर्तते ।
कौमारं व्रतमास्थाय क्लेशमेवानुवर्त्तसे ॥२७
बहूनि विप्र ! गोत्राणि मुनीनां भावितात्मनाम् ।
एकदेहानि तिष्ठन्ति विविक्तानि विना प्रजा. ॥२८

मय दानव की रचित माया से सेना के सन्तप्त हो जाने पर तथा दानवों के द्वारा हनन किये जाने पर देवराज के द्वारा प्रेरित किये हुए वरुण देव ने यह वचन कहा था—हे इन्द्र ! ब्रह्मर्षि से जन्म लेने वाले और्व ने अतीव दारुण तपश्चर्या की थी। वह और्व पूर्व का ही तेजस्वी था तथा गुणों के द्वारा ब्रह्मा के सदृश था ॥ २२। २३॥ तप के द्वारा इस अव्यय जगत् को आदित्य के समान तपाते हुए उसका देवर्षियों के सहित दिव्य मुनिगणों ने सस्तवन किया था। दानवेश्वर दानव ने हिरण्यकशिपु को पहिले परम तेजस्वी ऋषि को विज्ञापित किया था। ॥ २४। २५॥ ब्रह्मर्षियों ने उससे परम धर्म से सहित वचन कहा था—हे भगवन् ! ऋषियों के वंशों में यह छिन्न मूल वाला ही है। आप एक ही सन्तान से रहित हैं और गोत्र के लिये अन्य कोई भी नहीं। आप इस कौमार व्रत में समास्थित होकर केवल क्लेश का ही अनुवर्त्तन कर रहे हैं। हे विप्र ! भावित आत्मा वाले मुनियों के बहुत-से गोत्र ऐसे हैं जो प्रजाओं के बिना एक ही देह वाले विविक्त स्थित रहा करते हैं ॥ २६, २७, २८ ॥

एवमुच्छिन्नमूलैश्च पुत्रैर्नो नास्ति कारणम् ।
भवांस्तु तपसा श्रेष्ठो प्रजापतिसमद्युतिः ॥२९
तत्र वर्तस्व वंशाय वर्द्धयात्मानमात्मना ।
त्वया धर्मोऽर्जितस्तेन द्वितीयां कुरु वै तनुम् ॥३०
स एवमुक्तो मुनिभिर्मर्मविमर्मनु ताडितः ।
जगर्हे तानृषिगणान् वचनं चेदमब्रवीत् ॥३१
यथार्थं विहितो धर्मो मुनीनां शाश्वतस्तु सः ।
आर्द्रं वै मेवतःकर्म वन्यमूलफलाशिनः ॥३२
ब्रह्मयोनौ प्रसूतस्य ब्राह्मणस्यात्मदर्शिनः ।
ब्रह्मचर्यं सुचरितं ब्रह्माणमपि चालयेत् ॥३३
जनानां वृत्तमन्तिस्रो यद् गृहाश्रमवासिनाम् ।
अस्माकन्तु वरं वृत्तिवनाश्रमनिवासिनाम् ॥३४

इस प्रकार से उच्छिन्न मूलों वाले पुत्रों से हमारा कोई कारण नहीं है और आप तो तपस्या में परम श्रेष्ठ एवं प्रजापति के समान द्युति वाले हैं। अब उसमें अपने वंश के लिये ही यत्न करें और आत्मा के द्वारा आत्मा की वृद्धि करें। आपने धर्म का तो पर्याप्त अर्जन कर ही लिया है। अब दूसरा शरीर भी बनाइये ॥२९। ३०॥ मुनिगणों के द्वारा जब इस प्रकार से उन मुनि से कहा गया था तो वह और मर्म स्थल में ताड़ित किया गया था। उसने उन ऋषिगणों की गर्हा की थी और फिर उनसे यह वचन बोला था। जिस प्रकार से मेरे द्वारा यह धर्म विहित किया गया है वह मुनियों का परम शाश्वत धर्म है। वन में समुत्पन्न मूल और फलों का अशन करने वाले तथा आर्द्र कर्म को छेदन करने वाले—ब्रह्म योनि में समुत्पन्न—आत्मदर्शी ब्राह्मण का भली भाँति चरित ब्रह्मचर्य का बड़ा महान् माहात्म्य है यह तो ब्रह्मा को भी चल देने वाला होता है। जो गृहाश्रम के निवासी जन हैं उनकी

वृत्तियाँ होती हैं। हम जो वनाश्रम निवासी हैं उनकी यही वृत्ति परम श्रेष्ठ है ॥ २९–३४ ॥

अब्भक्षा वायुभक्षाश्च दन्तोलूखलिनस्तथा।
अश्मकुट्टा दश तथा पञ्चातपसहाश्च ये ॥३५
एते तपसि तिष्ठन्ति व्रतैरपि सुदुष्करै.।
ब्रह्मचर्यं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्ति पराङ्गतिम् ॥३६
ब्रह्मचर्याद् ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते।
एवमाहुः परे लोके ब्रह्मचर्यविदोजनाः ॥३७
ब्रह्मचर्ये स्थितं धैर्यं ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः।
ये स्थिता ब्रह्मचर्येषु ब्राह्मणा दिवि संस्थिता ॥३८
नास्ति योग विना सिद्धिर्न वा सिद्धिं विना यश.।
नास्ति लोके यशो मूल ब्रह्मचर्यात् परन्तपः ॥३९
यो निगृह्येन्द्रियग्रामं भूतग्रामं च पञ्चकम्।
ब्रह्मचर्यं समाधत्ते किमतः परमं तप. ॥ ४०
अयोगे केशधरणमसङ्कल्पव्रतक्रिया।
अब्रह्मचर्ये चर्या च त्रयं स्याद् दम्भसंज्ञकम् ॥४१
क्व दारा क्वच संयोग. क्वच भावविपर्ययः।
नन्विय ब्रह्मणा सृष्टा मनसा मानसी प्रजा ॥४२

जल के भक्षण करने वाले – वायु के भक्षण करने वाले तथा दन्तोलूखली—दश अश्म कुट्ट और जो पाँच आतपों के सहन करने वाले हैं। ये तप में आस्थित रहा करते हैं और जो परम दुष्कर व्रतों के द्वारा ब्रह्मचर्य का पूर्ण परिपालन करके परागति की प्रार्थना किया करते हैं। ॥३५॥३६॥ परलोक में भी ब्रह्मचर्य के महान् महत्व के ज्ञाता लोग इसी प्रकार से कहा करते हैं कि ब्रह्मचर्य से ही ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व स्थित रहा करता है। ३७। इस ब्रह्मचर्य्य में ही धैर्य की स्थिति रहा करती है और इस ब्रह्मचर्य्य में ही तप स्थित रहता है। जो ब्राह्मण अपने पूर्ण

ब्रह्मचर्य्य व्रत में टिके हुये हैं वे दिवलोक में सम्स्थिति रक्खा करते हैं। ॥३८॥ योग के बिना कोई भी सिद्धि नहीं हुआ करती है और जब कोई सिद्धि नहीं होती है यश भी लोक में नहीं हुआ करता है तथा लोक में यश का मूल नहीं है और ब्रह्मचर्य्य से अधिक कोई भी तप नहीं होता है ॥३६॥ जो कोई भी पुरुष अपनी इन्द्रियों के समूह को पाँचो भूत-ग्रामों को निग्रहीत करके ब्रह्मचर्य्य व्रत का पूर्ण पालन किया करता है फिर इससे अधिक अन्य क्या तप हो सकता है। यही सबसे परम श्रेष्ठ तप होता है।।४०॥ अयोग में वेदों का धारण करना—बिना ही किसी सङ्कला के व्रतों की क्रिया का सम्पादन करना और अब्रह्मचर्य में अपनी चर्या रखना ये तीनों कर्म्म दम्भ की संज्ञा वाले ही कहे गये हैं॥ ४१ ॥ कहीं तो दारा का संयोग हुआ था और कहीं भावों का विपर्यय ही हुआ था अर्थात् दारा—संयोग और भावों की विपरीतता ये तीनों ही बातों का बिल्कुल अभाव था तो भी ब्रह्मा के द्वारा मन से ही यह मानसी प्रजा का सृजन किया गया था ॥४२॥

यद्यस्ति तपसो वीर्यं युष्माकं विदितात्मनाम् ।
सृजध्व म नमान् पुत्रान् प्रजापत्येन कर्मणा ॥४३
मनसा निर्मिता योनिराधातव्या तपस्विभिः ।
न दारयोगो बीजं वा व्रतमुक्तं तपस्विनाम् ॥४४
यदिदं लुप्तधर्मार्थं युष्माभिरिह निर्भयैः ।
व्याहृतं सद्भिरत्यर्थमसद्भिरिव मे मतम् ॥४५
वपुर्दीप्तान्तरात्मानमेतत् कृत्वा मनोमयम् ।
दारयोगं विना स्रक्ष्ये पुत्रमात्मतनूरुहम् ॥४६
एवमात्मानमात्मा मे द्वितीयं जनयिष्यति ।
वन्येनानेन विधिना दिधिक्षन्तमिव प्रजाः ॥४७
और्वस्तु तपसाविष्टोनिवेश्योरुं हुताशने ।
ममन्थैकेन दर्भेण सुतस्य प्रभवारणिम् ॥४८
तस्योरुं सहसा भित्वा ज्वालामाली ह्यनि.

जगतो दहनाकाङ्क्षी पुत्रोऽग्निं समपद्यत ॥ ४६

यदि आत्मा क ज्ञान को जानने वाले आप लोगों मे कुछ भी तप का वीर्य विद्यमान है तो आप प्रजा पत्य कर्म के द्वारा मा-स पुत्रों का सृजन करिए ॥ ४३ ॥ मन के द्वारा ही निर्मित की हुई योनि ही तपस्वियों को आधान करनी चाहिए। दारा क साथ योग करना तथा बीज का प्रयोग करना तपस्वीयों का व्रत नहीं बनाया गया है ॥ ४४ ॥ यहा पर आप लोगों ने जो भी निर्भय होकर इस लुप्त धर्म और अर्थ से युक्त वचन वो कह डाला है। यद्यपि आप लोक सत्पुरुष है जिन्होने इसको यहा पर प्रति पादन किया है तोभी वह मुझको असत्पुरुष के कथन के समान ही प्रतीत होता है मैं इस दीप्त अन्तरात्मा वाले वपु को मनोमय करके दारा के योग के बिना भी आत्म तनुरुह पुत्र का सृजन करूँगा। इसी प्रकार से यह मेरी आत्मा द्वितीय आत्मा को जन्म ग्रहण करायेगी और इसी वन्य विधि के द्वारा प्रजा की भाँति ही जलाने वाली ही जायगी। उस और्व ने तप से समाविष्ट होकर अपने ऊरुओ हुताशनो निवेशित कर लिया था और एक क्षण मे मुनकी दर्भारणि का मथन किया था ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ उस के ऊरु का सहसा भेदन करके बिना ही ईंधन वाला ज्वालामाली और इस जगत् को दग्ध कर देने की आकाङ्क्षा वाला अग्नि पुत्र समु-हुआ था ॥ ४६ ॥

ऊर्वस्योरुं विनिर्भिद्यऔर्वो नामान्तकोऽनलः ।
दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीञ्जज्ञेपरमकोपनः ॥५०
उत्पन्नमात्रश्चोवाच पितरं श्लक्ष्णया गिरा ।
क्षुधा मे बाधते तात ! जगद्भक्ष्ये त्यजस्वमाम् ॥५१
त्रिदिवाराहिभिर्ज्वालैर्जृम्भमाणो दिशोदश ।
निर्दयन् सर्वभूतानिववृधे सोऽन्तकोऽनलः ५२
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा मुनिमूर्वं सभाजयन् ।
उवाच वार्यतां पुत्रो जगतश्च दयाकुरु ॥५३

अस्यापत्यस्य ते विप्र! करिष्ये स्थानमुत्तमम् ।
तथ्यमेनद्वच पुत्र! शृणु त्ववदताम्वर ॥५४
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मेऽद्य भगवाञ्छिशो ।
मतिमेता ददातीह परमानुग्रहायवै ॥५५
प्रभातकाले सम्प्राप्ते काङ्क्षितव्ये समागमे ।
भगवन्! तर्पित पुत्र कंहव्यैं. प्राप्स्यते सुखम् ॥ ५६
कुत्र चास्य निवास स्याद्भोजन वा किमात्मकम् ।
विधास्यतीह भगवान् वीर्यतुल्यं महौजस: ॥ ५७

उस ऊर्व की ऊरु का विनिर्भेदन करके और्वा नाम वाला अनल अन्त कर देने वाला परम कोप से समन्वित तीनों लोकों को दग्ध सा करता हुआ समुत्पन्न हुआ था। उत्पन्न होने के ही साथ उसने परम विनम्र वाणी से अपने पिता से प्रार्थना की थी कि हे तात! मुझे यह क्षुधा अत्यन्त अधिकता के साथ सता रही है। मैं इस जगत् का भक्षण करूँगा आप मुझे अपनी क्षुधा के निवारण करने के लिए मुझे छुट्टी दे दीजिए ।।५०,५१।। त्रिदिव में समारोहण करने वाली उग्र लाओं न दशों दिशाओं मे जृम्भमाण होता हुआ समस्त भूतों को दया से रहित होकर दलित करता हुआ गया था। इसी बीच में वह अन्तक अनल वृद्धि को प्राप्त हो ब्रह्मा ने ऊर्व मुनि का समाजन करते हुए उससे कहा था कि हे पुत्र! इसका वारण करो तथा इस जगत् पर दया करो ।५२, ५३।। हे विप्र! मैं आपकी इस सन्तति का समुचित स्थान स्थिर कर दूँगा। हे पुत्र! बोलने वालो मे परम श्रेष्ठ आप मेरे अतीव तथ्य वचन का श्रवण करो ।।५४।। ऊर्व ने कहा—मैं परम धन्य और अतीव अनुगृहीत हूँ कि आज भगवान् शासन इस समय मे इस शिशु को ऐसी वृद्धि मुझपर परम अनुग्रह करने के लिए प्रदान की है। प्रभात काल के सम्प्राप्त होने पर आपका समागम आकाङ्क्षणीय है। हे भगवन्! यह बतलाइये कि किन हव्यों से तर्पित हुआ मेरा पुत्र सुख प्राप्त करेगा? इसका निवास स्थल कहाँ पर होगा और इसके

का स्वरूप होगा ? भगवान् आप इस महान् ओज वान व वीर्य के तुल्य ही इन बातो की व्यवस्था कर दे ॥ ५४–५७ ॥

वडवामुखेऽस्य वसति समुद्र व भविष्यति ।
मम योनिजलविप्र! तस्य पीतवत सुखम् ॥ ५८
यत्राहमास नियत पिवन् वारिमय हवि ।
तद्धविस्तव पुत्रस्य विसृजाम्यलयञ्च तत् ॥५६
ततो युगा ते भूतनामेष चाहञ्च पुत्रक ! ।
सहितौ विचरिष्यावो निष्पुत्राणामृणापह ॥६०
एषोऽग्निरन्तकाल तु सलिलाशी मया कृत ।
दहन सवभूताना सदेवासुररक्षसाम् ॥ ६१
एवमस्त्विति सोऽग्नि सवृतज्वालमण्डल ।
प्रविवेशाणवमुख प्रक्षिप्य पितरिप्रभाम् ।६२
प्रतियातस्ततो ब्रह्मा ये च सर्वे महर्षय ।
ऊवस्याग्ने प्रभा ज्ञात्वा स्वा स्वाङ्गतिमुपाश्रिता ॥६३

श्री ब्रह्माजी ने कहा—समुद्र मे वडवा के मुख मे इसका निवास स्थल होगा । हे विप्र ! मेरी उत्पत्ति की योनि जल पीने वाले इसको सुखकर होगा और जहाँ पर हूँ वही पर नियत रूप से वारिमय हवि का पान करेगा तथा वह हवि आपके पुत्र के निमित्त मैं लय कान पय त विसर्जित कर देता हू ॥ ५८ । ५६ ॥ इसके पश्चात हे पुत्र ! भूतो के युग के अन्त मे यह आपका पुत्र और मैं दोनो एक साथ मे मिलकर निष्पुत्रो के ऋण का अपहरण करने वाले विचरण करेगे । इस अग्नि को अन्तकाल मे मैंने सलिल का अशन करने वाला कर दिया है जो समस्त भूतो का तथा देव-असुर और राक्षसो का दमन करने वाला होगा । ऐसा ही होवे—यह कहकर वह अग्नि सवृत ज्वालाओ के मण्डल वाला अपने पिता ऊर्व मे प्रभा को प्रक्षिप्त करके अर्णव के मुख मे प्रवेश कर गया था । इसके अनन्तर ब्रह्माजी तथा सब महर्षिगण प्रति-

पान कर गये थे। उर्व की अग्नि की प्रभा को जानकर सब अपनी गति का उपाश्रय कर गये थे ॥६०–६३॥

हिरण्यकशिपुर्दृष्ट्वा तदा तन्महदद्भुतम् ।
ऊर्ध्वः प्रणतसर्वाङ्गो वाक्यमेतदुवाच ह ॥६४
भगवन्नद्भुतमिदं संवृत्तं लोकसाक्षिकम् ।
तपसा ते मुनिश्रेष्ठ ! परितुष्टः पितामहः ॥६५
अहन्तु तव पुत्रस्य तव चैव महाव्रत ! ।
भृत्य इत्यवगन्तव्यः साध्यो यदिह कर्मणा ॥६६
तन्मां पश्य समापन्नं तवैवाराधने रतम् ।
यदि सीदे मुनिश्रेष्ठ ! तवैव स्यात् पराजयः ॥७०
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्यतेऽह गुरुः स्थितः ।
नास्तिमे तपसानेन भयमद्येऽनुव्रत ! ॥७१
तामेव मायां गृह्णाष्व मम पुत्रेण निर्मिताम् ।
निरिन्धनामग्निमयीन्दुष्प्रधर्षां पावकैरपि ॥७२
एषा ते स्वस्य वंशस्य वशगारिविनिग्रहे ।
संरक्षत्यात्मपक्षञ्च विपक्षञ्च प्रधर्षति ॥७०

इसी समय में उस महान् अद्भुत को हिरण्यकशिपु देखकर उच्च भाव से सब अङ्गों को प्रणत करने वाला होकर यह वाक्य बोला था ॥ ६४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह लोक का साक्षिक अद्भुत हो गया है। हे भगवन् ! आपकी तपश्चर्या से पितामह भी परितुष्ट हो गये हैं ॥६५॥ हे महाव्रत ! मैं तो आपके पुत्र का और आपका भृत्य ही हूँ—ऐसा ही अवगमन कर लीजिए जो कि यहाँ पर कर्म के द्वारा साधना के योग्य है। इसलिये उस मुझको आपके ही समाराधन में सम्पन्न हो देखिये। हे मुनि श्रेष्ठ ! यदि मैं आपका अनुगामी सेवक होकर भी दुःखित रहता हूँ तो यह आपका ही पराजय होगा। उर्व ने कहा—मैं परम धन्य हूँ और परम अनुगृहीत हूँ कि जिस तुमका मैं गुरु समवस्थित हो गया हूँ।

हे सुव्रत ! आज यहाँ पर मेरे इस तप से कोई भी भय नहीं है । मेरे पुत्र के द्वारा निर्मित उसी माया को ग्रहण करो जो बिना ईंधन वाली पावकों द्वारा भी दुर्धर्ष और अग्निमयी है । यह मेरे अपने वंश में वश में गमन करने वाले अरियों से विशेष निग्रह में अपने पक्ष की रक्षा करेगी और विपक्ष को प्रधर्षित करेगी ॥ ६६–७० ॥

एवमस्त्विति तां गृह्य प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् ।
जगाम त्रिदिवं हृष्टः कृतार्थो दानवेश्वरः ।७१
एषा दुर्विषहा माया देवैरपि दुरासदा ।
और्वेण निर्मिता पूर्वं पावकेनौर्वसूनुना ॥७२
तस्मिंस्तु व्युत्थिते दैत्ये निर्वीर्येषा न संशयः ।
शापो ह्यस्याः पुरा दत्तः सृष्टा येनैव तेजसा ॥७३
यद्येषा प्रतिहन्तव्या कर्त्तव्यो भगवान् सुखी ।
दीयतां मे सखा शक्र ! तोययोनिर्निशाकरः ॥ ७४
तेनाहं सह सङ्गम्य यादोभिश्च समावृतः ।
मायामेतां हनिष्यामि त्वत्प्रसादान्न संशयः ॥ ७५

ऐसा ही होगा–ऐसा कहकर उसको ग्रहण किया था और फिर उस श्रेष्ठ मुनि को प्रणाम करके दानवेश्वर प्रसन्न एवं कृतार्थ होकर त्रिदिव को चला गया था ॥७१॥ यह माया दुर्विषह है और देवगणों के द्वारा भी दुरासद है । इसको ऊर्व के पुत्र पावक और्व के द्वारा पूर्व में निर्माण किया गया था ॥७२॥ उस दैत्य के व्युत्थित होने पर यह निर्वीर्य हो जाया करती है इस में कुछ भी संशय नहीं है । जिस जिस तेज के द्वारा इस का सृजन किया गया था उसी के द्वारा पहिले इस को शाप भी दिया गया है । यदि यह माया प्रतिहनन के योग्य करनी है तो भगवान् को सुख से सम्पन्न एवम् प्रसन्न करना चाहिए । हे इन्द्रदेव ! अतएव तोय की योनि निशाकर मेरा सखा दो ॥७३॥७४॥ उसके साथ मैं संगत होकर और

तथा देवगणो की विजय प्राप्त करने के लिये ही होगा ॥१॥२॥ हे सोम ! आप मत्त हैं और मुकाबले के प्रतिवीर्य—विक्रम वाले हैं तथा आप समस्त ज्योतियो के ईश्वरो के भी ईश्वर हैं। रसों के वेत्ता लोग सब लोको मे आप से परिपूर्ण रस को भली भाति कहा करते एवं जानते हैं ॥३॥ मण्डल मे सागर की ही भौति आपकी क्षीणता तथा वृद्धि स्पष्ट हैं और जगत् मे अहोरात्र के काल को योजित करते हुए आप परिवर्तित हुआ करते हैं। आपका यह शश के सदृश जो अङ्क में चिन्ह है यह लोकों की इच्छा से ही परिपूर्ण है और इस को नक्षत्रो की योनि वाले जो देवगण भी हैं वे भी हे सोम ! नही जानते है ॥४ ॥५॥ आप आदित्य के पथ से भी ऊपर सब ज्योतियो के उर्ध्वभाग मे समवस्थित हैं। आप सहसा इस तम को प्रोत्साहित करके सम्पूर्ण जगत् को अपने सुन्दर प्रकाश से भासित कर दिया करते हैं ॥६॥ आप अधिकृत कालयोग के स्वरूप वाले—यज्ञ के अभीष्ट और अविनाशी हैं। आप ओषधियो के स्वामी—सद क्रियाओ की योनि—अब्ज योनि और शीतल दीप्ति से समन्वित है ॥७॥

शीतांशुरमृताधारश्चपलः श्वेतवाहन ।
त्वं कान्ति कान्तिवपुषात्व सोम.सोमपायिनाम् ॥८
सौम्यस्त्व सर्वभूताना तिमिरघ्नस्त्वमृक्षराट् ।
तद्गच्छ त्व महासेन ! वरुणेन वरूथिना ॥
शमयस्वासुरी माया यया दह्याम सयुगे ॥६
यन्मा वदसि युद्धार्थे देवराज ! वरप्रद ! ।
एव वर्षामि शिशिरन्दैत्यमायापकर्षणम् ॥१०
एतान् मच्छीतनिदग्धान् पश्य स्वहिमवेष्टितान् ।
विमायान् विमदाश्चैव दैत्यसिंहान्महाहवे ॥११
तेषा हिमकरोत्सृष्टा सपाशा हिमवृष्टयः ।
वेष्टयन्तिस्म तान् घोरान्दैत्यान्मेघगणाइव ॥१२

तौ पाशशीतांशुधरौ वरुणेन्द्र महाव्रतौ ।
अघ्नतुर्हिमपातैश्च पाशपातैश्च दानवान् ॥१३
द्वावम्बुनाथौ समरे तौ पाशहिमयोधिनौ ।
मृधे चेरतुरम्मोभिः क्षुब्धाविव महार्णवौ ॥१४

हे सोम ! आप शीतल किरणों वाले—अमृत के आधार—चपल श्वेत वाहन हैं। आप इस अपने कान्तिपूर्ण शरीर के द्वारा स्वयं ही कान्ति हैं और सोम के पान करने वालो के लिए साक्षात् सोम स्वरूप वाले हैं। आप समस्त भूतों के लिये परम सौम्य हैं तथा सब ऋक्षों के राजा और तिमिर के नाश करने वाले हैं। इसीलिये हे महासेन ! वरुणी वरुण के साथ सहायता करने के लिए आप शीघ्र ही चले जाइए तथा जिससे हम सब युद्ध में दग्ध हुए जा रहे हैं उस इस आसुरी माया का शमन कीजिए ॥ ८ ॥ ९ ॥ इन्द्रदेव के इस प्रकार से प्रार्थना करने पर सोम ने कहा—हे देवराज ! हे वर प्रदान करने वाले देव ! जो आप युद्ध करने के लिये मुझे कह रहे हैं। मैं अभी दैत्यों की माया के अपकर्षण करने वाले शिशिर की वर्षा करता हूँ। आप इन सबको मेरे हिम में सवेष्टित और मेरे शीत से निर्दग्ध देखिये। इस महायुद्ध में इन सब दैत्य सिंहों को मद और माया से रहित हुए ही आप देखेंगे ॥१०॥११॥ उनको हिमकिरणों से समुत्सृष्ट पाशों के सहित हिम की वृष्टियों में घोर दैत्यों को मेघ गणों की ही भाँति वेष्टित कर दिया था ॥ १२ ॥ महान् बलवान् पाश और शीतल किरणों को धारण करने वाले वरुण और चन्द्र दोनों ने उन दानवों का हिम के पातों तथा पाशों के पातों से हनन कर दिया था ॥१३॥ वे दोनों अम्बु के स्वामी—पाश और हिम से युद्ध करने वाले उस महान् घोर रण में जलों से क्षुब्ध दो महार्णवों की भाँति ही विचरण कर रहे थे ॥१४॥

ताभ्यामाप्लावितं सैन्यं तद्दानवमदृश्यत ।
जगत् संवर्तकाम्भोदैः प्रविष्टैरिव संवृतम् ॥१५

तावुद्यताम्बुनाथौ तु शशाङ्कवरुणावुभौ ।
शमयामासतुर्मायां देवौ दैत्येन्द्रनिर्मिताम् ॥१६
शीतांशुजालनिर्दग्धाः पाशैश्च स्पन्दिता रणे ।
न शेकुश्चलितुं दैत्या विशिरस्काइवाद्रयः ॥१७
शीतांशुनिहतास्ते तु दैत्यास्तोयहिमार्दिताः ।
हिमाप्लावितसर्वाङ्गा निरूष्माण इवाग्नयः ॥१८
तेषान्तु दिवि दैत्यानां विपरीतप्रभाणि वै ।
विमानानि विचित्राणि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च ॥१६
तान् पाशहस्तग्रथितांश्छादितांश्शीतरश्मिभि ।
मयोददर्शमायावी दानवान्दिविदानव. ।।२०

उन दोनो से आप्लावित दानवो की सेना उस समय मे दिखलाई नहीं दे रही थी और यह सम्पूर्ण जगत् प्रविष्ट हुए सम्वर्त्तक अम्भोदो के द्वारा सवत की तरह ही हो गया था ॥ १५ ॥ उन समुद्यत हुए शशांक और वरुण दोनो अम्बुनाथो ने देवों ने दैत्यों के द्वारा निर्माण की हुई उस माया का एकदम शमन कर दिया था । शीतांशुओं के जाल से निर्दग्ध हुए तथा पाशों से रणस्थल में स्पन्दित हुए सब दैत्यगण बिना शिर वाले पर्वतों के समान ही चलने मे असमर्थ हो गये थे ॥१६, १७॥ शीत किरणो से निहत हुए तथा जल और हिम से अर्दित तथा हिम से प्लावित समस्त अङ्गों वाले सब दैत्यगण बिना ऊष्मा (ताप) वाली अग्नियों के ही तुल्य हो गये थे ।।१८।। दिवलोक मे उन दैत्यो के विपरीत प्रभा वाले विचित्र विमान ऊपर उड़ते थे और नीचे भूमि पर गिर जाया करते थे । उस समय मे दिवलोक मे मायावी दानव मय ने उन सब दानवों को पाश हस्त ग्रथित और शीत रश्मियो से समाच्छादित देखा था ।।१६, २०।।

स शिलाजालवितता खड्गचर्माट्टहासिनीम् ।
पादपोत्कटकूटाग्रा कन्दराकीर्णकाननाम् ।।२१

सिंहव्याघ्रगणाकीर्णा नदद्भिर्गजयूथपैः ।
ईहामृगगणाकीर्णा पवनाघूर्णितद्रुमाम् ॥२२
निर्मिता स्वेन यत्नेन कूजिता दिवि कामगाम् ।
प्रथितां पार्वतीं मायाममृतमसमन्ततः ॥ २३
सासिशब्दैः शिलावर्षैः सम्पतद्भिश्च पादपैः ।
जघान देवसङ्घांश्च दानवांश्चाप्यजीवयत् ॥२४
नैशाकरी वारुणी च मायेऽन्तर्दधतुस्तत ।
असिभिश्चायसगणैः किरन् देवगणान् रणे ।२५
साश्मयन्त्रायुधघना द्रुमपर्वतसङ्कटा ।
अभवत् घोरमन्त्रार्या पृथिवी पर्वता व । २
अश्मना प्रहृताः केचित् शिलाभिः शकलीकृता. ।
नानिरुद्धो द्रुमगणैर्देवोऽदृश्यत कश्चन ।२७
तदपध्वस्तधनुषं भग्नप्रहरणाविलम् ।
निष्प्रयत्नं सुरनाक वर्जयित्वा गदाधरम् । २८

उस समय में उस मय दानव ने शिला के जालों से विनत—खड्ग चर्मो के अट्टहास वाली—पादपों के उत्कट कूटों के अग्र भाग वाली—कन्दराओं से समाकीर्ण, काननों से युक्त—सिंह एवं व्याघ्रों के गणों से सङ्कुल—चिंघाड़ते हुए गजों के यूथों से समन्वित—ईहामृग गणों से आकीर्ण—पवन से आघूर्णित द्रुमों वाली—दिवलोक में स्वेच्छया गमन करने वाली—कूजित और अपने ही यत्न से निर्माण की हुई परम प्रथित पार्वती माया को चारों ओर सृजित कर दिया था। उसने असि के शब्दों से—शिलाओं की वर्षा से—और सम्पात करने वाले पादपों से देवों के सङ्घों का हनन कर दिया था तथा दानवों को जीवित कर दिया था। उस पार्वती माया में नैशाकरी और वारुणी दोनों मायाएं अन्तर्हित हो गई थीं और देवगणों को असि तथा आयास गणों से रण में तितर-बितर कर दिया था ॥ २१, २२, २३, २४, २५ ॥ अश्म यन्त्र और

आयुधों से घन—द्रुम और पर्वतों से संकट वह माया पर्वतों से पृथिवी के समान अति घोर संचरण के योग्य हो गई थी ॥ २६ ॥ कुछ पाषाणों से प्रहृत हुए थे और कुछ शिलाओं से खण्ड २ कर दिये गये थे और द्रुमगणों से अनिरुद्ध कोई भी देवता दिखलाई नहीं दे रहा था। भगवान् गदाधर को वर्जित करके सम्पूर्ण सुरों की सेना अपध्वस्त धनुषों वाली—भग्न प्रहरणों से आविल (मलिन) और प्रयत्न सहित बन गई थी ॥ २७, २८ ॥

स हि युद्धगतः श्रीमानीशानोऽप्यकम्पत ।
सहिष्णुत्वाज्जगत्स्वामी नचुक्रोधगदाधरः ॥२६
कालज्ञः कालमेघाभः समीक्षन् कालमाहवे ।
देवासुरविमर्दन्तु द्रष्टुकामस्तदा हरिः ॥३०
ततो भगवता दृष्टौ रणे पावकमारुतौ ।
चोदितौ विष्णुवाक्येन तौ मायामपकर्षताम् ॥३१
ताभ्यामुद्भ्रान्तवेगाभ्यां प्रवृद्धाभ्यां महाहवे ।
दग्धा सा पार्वती माया भस्मीभूता ननाश ह ॥३२
सोऽनिलोऽनलसंयुक्तः सोऽनलश्चानिलाकुलः ।
दैत्यसेनान्ददहतुर्युगान्तेष्विवमूर्छतौ ॥३३
वायुः प्रधावितस्तत्र पश्चादग्निस्तु मारुतम् ।
चेरतुर्दानवानीके क्रीडन्तावनिलानलौ ॥३४

उस समय में युद्ध में गमन करने वाले श्रीमान् ईशान पाषाणों से कम्पित हो गये थे किन्तु जगत् के स्वामी भगवान् गदाधर ने सहिष्णुता के गुण होने के कारण से क्रोध नहीं किया था। काल के ज्ञाता—कालमेघ के तुल्य आभा वाले हरि ने उस समय में उस युद्ध में काल को देखते हुए वह देवासुर के विमर्द को देखने की कामना वाले हो गये थे। इसके उपरान्त भगवान् ने उस रण में पावक और मारुत को देखा था और वे दोनों विष्णु के वाक्य से प्रेरित होकर उस माया का अपकर्षण

पर एवं वात स्कन्ध से अपविद्ध हो जाने पर पावक के द्वारा किए हुए कर्म्म में मय का वध हो गया था और भगवान् गदाधर का स्तवन किया गया था ॥ ३५, ३६ ॥ जिस समय मे मय दानव का वध हो गया था तो सभी दैत्य निष्प्रयत्न हो गये थे तथा त्रैलोक्य बन्धन से मुक्त हो गया था। सब देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए थे और, सभी ओर "साधु-साधु" अर्थात् अच्छा हुआ की ध्वनियाँ होने लगी थी ॥ ३९ ॥ इन्द्रदेव को जय होने पर और दैत्यों का पराजय हो जाने पर सब दिशाएँ विशुद्ध हो गई थी एवं धर्म्म का विस्तार प्रवृत्त हो गया था ॥ ३८ ॥ चन्द्रदेव अपावृत हो गये थे तथा दिवाकर अपने स्थान पर स्थित हो गये थे एवं चरित्र के बन्धु तीनों लोक अपनी स्वाभाविक अवस्था मे स्थित हो गये थे ॥ ३९ ॥ यजमानो मे और मुनो मे पाप प्रशान्त हो गये थे तथा अभिन्न बन्धन वाला मृत्यु अग्नि मे हूयमान होगया था ॥ ४० ॥ सब देवगण यज्ञों मे शोभा प्राप्त करने लगे तथा स्वर्ग के अर्थ को प्रदर्शन करते थे। सभी लोकपाल अपनी २ दिशाओं मे यानों मे वर्त्तमान हो गये थे ॥ ४१ ॥ उस समय में सिद्धों का तपश्चर्या मे भाव स्थित हो गया था और जो पाप पूर्ण कर्म करने वाले थे उनकी अभाव मे स्थिति थी। देवों का पक्ष परम प्रमुदित हो गया और दैत्यों का पक्ष एकदम विषाद से ग्रस्त था। ४२।

त्रिपादविग्रहे धर्मे अधर्मे पादविग्रहे
अपावृत्त महाद्वारे वर्त्तमाने च सत्पथे ॥४३
लोके प्रवृत्ते धर्मेषु सुधर्मेष्वाश्रमेषु च।
प्रजारक्षणयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु ॥४४
प्रशान्तकल्मषे लोके शान्ते तमसि दानवे।
अग्निमारुतयोस्तत्र वृत्ते सग्रामकर्म्मणि ॥४५
तन्मया विपुला लोकास्ताभ्या तज्जयकृत्क्रिया।
पूर्वदेवभयं श्रुत्वा मारुताग्निकृतमहत् ॥४६

कालनेमीति विख्यातो दानवः प्रत्यदृश्यत ।
भास्कराकारमुकुटः शिञ्जिताभरणाङ्गदः ॥४७
बाहुनिस्तुलयन् व्योम क्षिपन् पद्भ्या महीधरान् ।
ईरयन्मुखनिश्वासैर्वृष्टियुक्तान् बलाहकान् ॥४८

इस समय में तीन पादों वाला धर्म का निग्रह था और अधर्म केवल एक ही पाद से युक्त था । महाद्वार के अपावृत्त होने पर सब लोग सत्पथ में वर्तमान हो गये थे ।।४३।। लोक अपने २ धर्मों और आश्रमों में प्रवृत्त थे तथा सब नृपति गण अपनी प्रजा की रक्षा कार्य में युक्त एवं भ्राजमान होगये थे ।। ४४ ।। सम्पूर्ण लोक प्रशान्त कल्मषों वाले थे एवं दानवीय तम भी एक दम शान्त होगया था । वहाँ पर अग्नि और मारुत का संग्राम जब हुआ था तभी यह सब होगया था बहुत से लोक तन्मय होगये थे और उन दोनों से उनके विजय को करने वाली क्रिया भी हुई थी । मारुत और अग्नि के द्वारा किये हुए महान् पूर्व देवों का भय श्रवण करके परम विख्यात कालनेमि नाम वाला दानव वहाँ पर दिखलाई दिया था जिसका भास्कर के आकार के सदृश मुकुट था और वह शिञ्जित आभरणों एवं अङ्गदों वाला था । वह काल नेमि अपनी बाहुओं से व्योम तोलन करने लगा और पैरों से बड़े २ महीधरों को भी छिद्र करता था । वह वृष्टि से युक्त बलाहकों को मुख के निश्वासों के द्वारा प्रेरित करता था ।।४४–४८।।

तिर्यगायतरक्ताक्ष मन्दरोदग्रवर्चसम् ।
दिधक्षन्तमिवायान्त सर्वान् देवगणान् मृधे ॥४६
तर्जयन्त सुरगणाश्छादयन्त दिशोदश ।
सवर्तकाले तृषितं दृष्ट मृत्युमिवोत्थितम् ॥५०
सुतलेनोन्छ्रयवता विपुलाङ्गुलिपर्वणा ।
लम्बाभरणपूर्णेन किञ्चिच्चलितकर्म्मणा ।।५१
उच्छ्रितेनाग्रहस्तेन दक्षिणेन वपुष्मता ।

दानवान् देवनिहतानुत्तिष्ठध्वमिति ब्रुवन् ॥५२
त कालनेमि समरे द्विषतां कालचेष्टितम् ।
वीक्षन्तेस्म सुराः सर्वे भयवित्रस्तलोचनाः ॥५३
तं वीक्षन्तिस्म भूतानि क्रमन्त कालनेमिनम् ।
त्रिविक्रमाधिकमत नारायणमिवापरम् ॥५४
सोऽत्युच्छ्रयपुरः पादमारुता घूणिताम्बरः ।
प्रक्रामन्नसुरो युद्धे त्रासयामास देवताः ॥५५
समयेनासुरेन्द्रेण परिष्वक्तस्ततो रणे ।
कालनेमिर्बभौ दैत्यः स विष्णुरिव मन्दरः ॥५६
अथ विव्यथिरे देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ।
कालनेमि समायान्त दृष्ट्वा कालमिवापरम् ॥५७

जिस समय मे वह कालनेमि वहाँ रणस्थल मे समागत हुआ था उस समय वह तिर्यक—आयत और रक्त नेत्रों वाला था—उसका स्वरूप मन्दर गिरि के तुल्य उदग्र वर्चस से युक्त था—युद्ध मे सब देवों को सन्त्रस्त करता हुआ समायात हुआ था ।।४८।। समस्त सुरों को डाँटता फटकारता हुआ दशों दिशाओं मे समाच्छादन करता हुआ और सम्वर्त काल मे समुपस्थित समुत्थित मृत्यु की भाँति दिखलाई दिया था । उच्छ्रय से युक्त—सुन्दर तल वाले—विपुल अंगुलियों के पर्वों से पूर्ण—लम्बे आभरणों से संयुत—कुछ चलित कर्मों वाले—उच्छ्रित—वपुष्मान् दाहिने हाथ से देवों के द्वारा मारे हुए दानवों से उठकर खड़े हो जाओ'—ऐसा कह रहा था ।।४९—५२।। उस समर क्षेत्र मे द्वेष करने वाले शत्रुओं का काल चेष्टित कालनेमि को भय से विशेष भीत लोचनों वाले समस्त सुरगण देख रहे थे ।। ५३ ।। चारों ओर क्रमण करते हुए उस कालनेमि को त्रिविक्रम (वामन) से भी अधिक माने हुए दूसरे नारायण के भी समान स्वभूता (प्राणी) देखते थे ।।५४।। अत्यन्त उच्छ्रयपुर वाले—पैरों की मारुत घूणित अम्बर से संपन्न उस असुर ने

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—दानवों की सेनाओं में महासुर कालनेमि विशेष वर्धित हुए महान् तेज वाला तप के अन्त में जलद के तुल्य ही था ॥ १ ॥ त्रैलोक्य के अन्तर्गत उसको देखकर ही दानवेश्वर अत्युत्तम अमृत का पान करके अपरिश्रान्त होते हुए उठकर खड़े होगये थे ॥२॥ तारकामय संग्राम में निरन्तर जित काशी के सब दानव जिनमें मय और तार पुरोगामी थे भय और सन्त्रास को व्यतीत कर देने वाले थे ॥ ३ ॥ मन्त्रों का अभ्यास करने वाले और व्यूह का परिधावन करने वाले उनमें युद्ध की इच्छा रखने वाले दानव युद्ध स्थल में पहुँच कर अधिक शोभा एवं दीप्ति को प्राप्त हुए थे ॥ ४ ॥ जो लोग वहाँ पर मय दानव के परम मुख्य युद्ध पुर सर थे कालनेमि दानव को देखने वाले उनकी अत्यधिक प्रीति हो गयी थी ॥५॥ वे सभी भय का त्याग करके परम हर्षित होते हुए युद्ध करने के लिये वहाँ पर उपस्थित हुए थे। उनमें मय—तार—वराह—वीर्यवान्—हयग्रीव—विप्रचित्तिका पुत्र श्वेत दोनों खर और लम्ब—बलिका पुत्र अरिष्ट और किशोर नामधारी—स्वर्भानु—अमर प्रवर-महासुर वक्त्रयोधी ये सभी अस्त्रों के ज्ञाता तथा सभी तपश्चर्य्या में भी सुस्थित रहने वाले थे ॥६—८॥

दानवा कृतिनो जग्मु कालनेमिं तमुद्धनम् ।
ते गदाभिर्भुशुण्डीभिश्चक्रैरथ परश्वधैः ॥९
कालकल्पश्च मुसलैः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः ।
अश्मभिश्चाद्रिसदृशैर्गण्डशैलैश्च दारुणैः ॥१०
पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च परिघैश्चोत्तमायसैः ।
घातनीभिः सुगुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च ॥११
युगैर्यन्त्रैश्च निर्मुक्तैर्मार्गणैरुग्रताडितैः ।
दोर्भिश्चायतदीप्तैश्च प्रासैः पाशैश्च मूर्च्छनैः ॥१२
भुजङ्गवक्त्रैर्लेलिहानैर्विसर्पद्भिश्च सायकैः ।
वज्रैः प्रहरणीयैश्च दीप्यमानैश्च तोमरैः ॥१३

विकोशैरसिभिस्तीक्ष्णै. शूलैश्च शितनिर्मलैः ।
दैत्याः सदीप्तमनसः प्रगृहीतशरासनाः ॥१४

ये समस्त परम क्रूरी दानव उप अतीव उद्धत कालनेमि के समीप में पहुँचे थे । ये सभी दैत्यगण बहुत से हथियारों से समन्वित थे जिनमें गदा-भुशुण्डी-चक्र-परश्वध-काल कल्प मुसल-क्षेपणीय-मुद्गर-अद्रि सदृश अश्म (पाषाण)-दारुण मण्ड शैल-पट्टिश-भिन्दि पाल—उत्तमायस परिघ-घातिनी और अत्यन्त गुरु । भारी एवं बहुत विशाल) शतघ्नी (तोप)-युग यन्त्र—उग्र ताडित नियुक्त मार्गण (शर)—आयत और दीप्त भुजाएँ—प्रास—मूर्च्छन पाश—भुजङ्गों के तुल्यमुखों वाले लेलिहान (फुत्कारें करने वाले) और विशेष रूप से सर्पण करने वाले सायक-वज्र-प्रहरणीय-दीप्य मान तोमर-विना कोश (म्यान) वाले खड्ग-शीत निर्मल तोमर आदि अनेक आयुध थे । इन सभी प्रकार के अनेक अस्त्र—शस्त्रों स सुसज्जित होकर सभी दानव सदीप्त मन वाले थे और शरासनों को ग्रहण किए हुए वहाँ पर युद्ध स्थल में समुपस्थित होगये थे ॥६-१४॥

तत. पुरस्कृत्य तदा कालनेमि महाहवे ।
सा दानशस्तप्रवरा दैत्याना रराजे चमू: ॥१५
द्यौर्निमीलितसर्वाङ्गा घना नीलाम्बुदागमे ।
देवतानामपि चमूमुंमुदे शक्रपालिता ॥१६
उपेता मितकृष्णाभ्यां ताराभ्या चन्द्रसूर्ययोः ।
वायुवेगवती सौम्या तारागणपताकिनी ॥१७
तोयदाविद्धवसना ग्रहनक्षत्रहासिनी ।
यमेन्द्रवरुणैर्गुप्ता धनदेन च धीमता ॥१८
सम्प्रदीप्ताग्निनयना नारायणपरायणा ।
सा समुद्रौघसदृशी दिव्या देवमहाचमू ॥१९
रराजास्त्रवती भीमा यक्षगन्धर्वशालिनी ।

तयोश्चम्वोस्तदानीन्तु वभूव स समागम ।।२०
द्यावापृथिव्यो सयोगो यथा स्याद्युगपर्यये ।
तद्युद्धमभवद् घोर देवदानवसकुलम् ।।२१

उस समय मे उस महान् रण स्थल मे ये सब कालनेमि को अपना पुरोगामी बनाकर उपस्थित हो गये थे और वह दैत्यो की विशाल सेना परम दीप्त—प्रशस्त एवं अतीत श्रेष्ठ होकर दीप्तिमती हो गई थी। ।।१५।। इसी भाँति महेन्द्र के द्वारा सुरक्षित देवो की भी सेना दिवलोक मे निमीलित समस्त अङ्गो वाली नीलाम्बुदागम मे घनी परम प्रहृष्ट हो रही थी ।।१६।। चन्द्र और सूर्य के श्वेत एव कृष्ण ताराओ से समुपेत वह देवो की सेना थी जो वायु के सदृश वेग से युक्त परम सौम्य और तारागणों की पताकाओ वाली थी ।। १७ ।। तोयदो से आविद्ध वसनों वाली—ग्रहो तथा नक्षत्रो के हास से सयुत थी। वह देवो की विशाल सेना यम—इन्द्र—वरुण और परम धीमान् धनद कुवेर के द्वारा सुरक्षित थी ।। १८।। अत्यन्त सम्प्रदीप्त अग्नि के नयनो वाली—नारायण प्रम मे परायण एव समुद्रो के ओघ के समान वह देवो की अतीव महान् एव विशाल सेना दिव्य हो रही थी ।। १९ ।। यक्षो और गन्धर्वों की शोभा से सुसम्पन्न—भाम स्वरूप वाली तथा नाना भाँति के अस्त्र-शस्त्रो से युक्त होती हुई दीप्तिमती हो गई थी। उसी समय मे उन दोनों दैत्यो तथा देवो की सेनाओ का वहाँ पर समागम होगया था।२०। जिस प्रकार से युग के विपर्यय उपस्थित होने पर द्यावा पृथ्वी का सयोग हो जाया करता है उसी भाँति वह देवो और दानवो का परम सकुल घोर युद्ध हो गया था ।।२१।।

क्षमापराक्रमपर दर्पस्य विनयस्य च ।
निश्चक्रमुबलाभ्यान्तु भीमास्तत्र सुरासुरा ।।२२
पूर्वापराभ्या सरब्धा सागराभ्यामिवाम्बुदा: ।
ताभ्या वलाभ्या सहृष्टाश्चेरुस्ते देवदानवाः ।।२३

वनाभ्या पार्वतीयाभ्या पुष्पिताभ्यायथागजाः ।
समाजघ्नुस्ततोभेरी शङ्खान्दध्मुरनेकशः ॥२४
स शब्दोद्या भुव खञ्च दिशश्च समपूरयत् ।
ज्याघाततलनिर्घोषो धनुषा कूजितानि च ॥२५
दुन्दुभीनाञ्च निनदो दैत्यमन्तर्दधु स्वनम् ।
तेऽन्योन्यमभिसम्पेतु पातयन्त परस्परम् ॥२६
बभञ्जु र्बाहुभिर्बाहून् द्वन्द्वमन्ये युयुत्सव ।
देवास्तु चाशनि घोरपरिघाश्चोत्तमायसान् ॥२७
निस्त्रिशान् ससृजु सख्ये गदागुर्वीश्च दानवा ।
गदानिपातैर्भग्नाङ्गाबाणैश्च शकलीकृता ॥२८

वह युद्ध दर्प तथा विनय का क्षमा एव पराक्रम मे परायण था । वहाँ पर उन दोनो ही सेनाओं से अतीव भीम (भयावह) स्वरूपो वाले सुर और असुर निकल पडे थे अर्थात् युद्ध करने के लिए मैदान मे आ गये थे । पूर्व और अपर सागरो से सरब्ध अम्बुदों के समान उन दोनो ही दलो स बाहिर निकल कर देखे गय वे देव तथा दानव वहाँ रणस्थल मे विचरण कर रहे थे । २२ । २३ ।। पुष्पा मे समन्वित पर्वतीय वनो से जिस तरह गज निकल आया करते है उसी तरह से उन देव-दानवो ने सेनाओ के समुदाय से बाहिर निकल कर अनेक भेरी और शखों की ध्वनि भूमण्डल-दिवलोक और सब दिशाओ मे पूरित हो गयी थी । धनुषा की प्रत्यञ्चाओ के घात से समुत्थित निर्घोष-धनुषो के कूजित दुन्दुभियो की ध्वनि यह सब दैत्य ध्वनि मे अन्तर्हित हो गयी थी । वे परस्पर मे प्रहारो का सम्पातन करते हुए एक दूसरे का नीचे गिराने लगे थे । बाहुओं से बाहुओं का भञ्जन करन लगे थे और दूसरे योधा द्वन्द्वयुद्ध करन की इच्छा वाले भी थ देवगण परम घार अशनि और उत्तम लोह परिघो का प्रयोग उस युद्ध म कर रहे थ । दानव गण युद्ध मे निस्त्रिशो का तथा अत्यन्त भारी एव विशाल गदाओ को शत्रुओ पर छोड

रहे थे। गदाओं के प्रहारों से सैनिक भग्न अङ्गों वाले तथा बाणों के द्वारा खण्ड खण्ड अंगों वाले होगए थे॥ २४—२८॥

परिपेतुभ श केचित् पुन केचित्तु जघ्निरे।
ततो रथं सतुरगैर्विमानैश्चाशुगामिभि ॥२६
समीयुस्तेसुसरब्धा रोषाद यान्यमाहवे।
मवतमाना समरे स-दष्टोष्टपुटानना ॥३०
रथारथर्निरुध्यन्ते पादाताश्च पदातिभि।
तेषा रथाना तुमुल स शब्द शब्दवाहिनाम्॥ १
नभोनभश्चहि यथानभस्यजलदस्वनं।
बभञ्जुस्तु रथान् केचित्केचित् सम्पादितारथै।
सम्बाधमन्ये सम्प्राप्य न शेकुश्चलितु रथान्।
अन्यो यम ये समरे दोर्भ्यामुत्क्षिप्य दशिता। ३३
सह्लादमानाभरणा जघ्नुस्तत्रापि चर्मिण।
अस्त्रैरन्ये विनिर्भिन्ना वेमू रक्त हतायधि॥ ४
क्षरज्जलाना सदृशा जलदाना समागमे।
तरस्त्रशस्त्रग्रथित क्षिप्तात्क्षिप्तगदाविलम्॥३५

परस्पर मे इस तरह से शास्त्रास्त्रो के प्रहारो से कुछ तो नीचे गिर गये थे और कुछ उठकर पुन हनन किया करते थे। इसके उपरान्त रथों तुरङ्गो और शीघ्रगामी विमानो के द्वारा वे समक्ष मे समागत हुए थ॥ २६॥ उस महायुद्ध म वे रोषावेश मे परस्पर मे अत्यन्त सरब्ध हो। र समागत हुए थ। समराङ्गण म वर्त्त मान होकर अपने मुखो के ओष्ठो को क्रोध स काट रह थे॥ ३०॥ रथो पर सवार रथ वालो से और पैदल स नक वीर पदातियों क साथ युद्ध कर रहे थे। शब्दवाही उनक रथो का शब्द अत्य त तुमुल हो रहा था॥ ३१। जिस प्रकार स नभस्य जलदो की ध्वनि होती है वस ही नभ नभ स टकरा रहा था। कुछ लोगो न रथो का भञ्जन किया था और कुछ लोग सम्पादित रथो

के द्वारा सम्बाध कर रहे थे। अन्य लोग ऐसी सम्बाधा प्राप्त करके रथों के आगे चलाने मे भी असमर्थ हो गये थे। दूसरे लोग उस समर मे परस्पर मे हाथो से ऊपर को क्षिप्त करके दर्शित हुए थे ॥३२॥३३॥ वहाँ पर भी चर्म्मधारी गण संह्लादमान आभरण वाले होकर हनन कर रहे थे। अन्य लोग अस्त्रो से निर्भिन्न होकर युद्ध में आहत हुए रक्त का वमन करते थे। जलदों के समागम काल मे क्षरण करते हुए जलो के सदृश हो गये थे। उन सबके द्वारा वहाँ युद्ध शस्त्रो और अस्त्रो से ग्रथित तथा क्षिप्त एव उत्क्षिप्त गदाओ से अवलि था ॥३४॥३५॥

देवदानवसंक्षुब्ध संकुल युद्धमावभौ।
तद्दानवमहामेघं देवायुधविराजितम् ॥३६
अन्योन्यबाणवर्षेण युद्धदुर्दिनमावभौ।
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्ध. कालनेमि: स दानव: ॥३७
व्यवर्धत समुद्रौघै: पूर्यमाण इवाम्बुद:।
तस्य विद्युच्चलापीडै: प्रदीप्ताशनिवर्षिण. ॥३८
गात्रैर्नगगिरिप्रख्या विनिपेतुर्बलाहका:।
क्रोधान्निश्वसतस्तस्य भ्रूभेदस्वेदवर्षिण: ॥३९
साग्निस्फुलिङ्गप्रतता मुखान्निष्पेतुरर्चिष:।
तिर्यगूर्ध्वञ्च गगने ववृधुस्तस्य बाहव: ॥४०
पर्वतादिव निष्क्रान्ता.पञ्चास्या इव पन्नगा:।
सोऽस्त्रजालैर्बहुविधधर्नुभि. परिघैरपि ॥४१
दिव्यमाकाशमावव्रे पर्वतैरुच्छ्रितैरिव।
सोऽनिलोद्धतवसनस्तस्थौ सग्रामलालस: ॥४२

वह देवो और दानवो से परम संक्षोभ वाला एव सकुल युद्ध हुआ था। वहा युद्ध दानव रूपी महान् मेघो वाला और देवों के अनेक आयुधों से शोभित। तथा परस्पर मे एक दूसरे पर बाणों की वर्षा से युद्ध दुर्दिन के समान ही शोभा दे रहा था। इसी बीच में परम क्रुद्ध होकर

कालिनेमि दानव समुद्रो के ओघो से पूर्य्यमाण एक अम्बुद के तुल्य बढ रहा था। विद्युत् के चलायमान आपीडो के द्वारा प्रदीप्त अशनि की वर्षा करने उसके अङ्गो से नागगिरि नाम वाले बलाहक निपातित हु ए थे। मोहो के भेद स समुत्पन्न स्वेद की वर्षा करने वाले—क्रोध से उष्ण और लम्बी श्वास लेने वाले उसके मुख से अग्नि के कणो से प्रतत अर्चियाँ निकलने लग गई थी। गगन मे ऊपर और तिरछी उस की बाहुऐं बढ गई थी जो कि पर्वत से मानो निकले हुए पाँचमुखो वाले पन्नगो के ही समान थीं। वह कालनेमि दानव अनेक प्रकार के अस्त्रो के जालो से—धनषो से और परिघो के भी द्वारा उत्पन्न ऊंचे पर्वतो की भाति दिव्य आकाश स बातें कर रहा था। वह सग्राम करने की लालसा वाला जिसके वस्त्र वायु स उद्धूत हो रहे थे वहाँ रणस्थल मे स्थित हो गया था। ॥ ३६—४२ ॥

सन्ध्यातपग्रस्तशिल साक्षान्मेरु रिवाचल ।
ऊरुवेगप्रमथितं शैलश्रृङ्गाग्रपादपै । ४३
अपातयद् देवगणान् वज्रणेव महागिरीन् ।
बहुभि शस्त्रनिस्त्रिंशै-छिन्नभिन्नशिरोरहा । ४४
न शेकुश्चलितु देवा कालनेमिहता युधि ।
मुष्टिभिर्निहता केचित् केचित्तु विदलीकृता ॥४५

सन्ध्याकालीन आतप से जिसकी शिलाओ को ग्रसित कर लिया है ऐसा साक्षात् मेरु पर्वत के तुल्य वह ऊरुओ के वेग स प्रमथित हुए पर्वत की चोटियो के अग्रभाग मे स्थित पादपो स वज्र के द्वारा महान् पर्वतो के ही तुल्य देवगणो का पालन कर रहा था। वहुत से शस्त्र और निस्त्रिशो से छिन्न-भिन्न शिरोरुहो वाले युद्ध मे कालनेमि के द्वारा निहत हुए देवगण चलने मे भी असमर्थ हो गये थे। कुछ तो मुष्टियो के प्रहारो से निहत किये गये थे और कुछ देवगण विदलो कृत कर दिय गय थे। ॥ ४३, ४४ ४५ ॥ यक्ष और गन्धव यतिगण महोरगा क साथ ही नीच निपातित हो गये थे। उस कालनमि के द्वारा समर भूमि म समस्त देवगण विशेष रूप से त्रासित क र दिय गय थे ।४६॥ वे सब देवता ऐसे विगत चेतना वाले हो गय थे कि वे यत्न क रत हुए भा अर्थात् यत्न करन की पूर्ण चेष्टा करने पर भी कुछ भी यत्न नही कर सक थे। उसन सहस्र नत्रो वाले इन्द्र को भी शरो क बन्धनो स स्पन्दित कर दिया था॥ ४७॥ वह यद्यपि अपन ऐरावत हाथी पर स्थित था तो भी वहाँ म हिल नही सकता था। वह बिना जल वाल अम्भाद (मघ) क सदृश तम निजल अर्णव क तुल्य प्रभा वाला हो गया था॥ ४८॥ युद्ध मे बिना पाश वदले वरुण का उसने बिना व्यापार वाला बना दिया था। काम रूपी उसने परिघो के द्वारा वैश्रवण को भी विरत कर दिया था॥ ४६॥

विक्तदोऽपि कृत मर्त्ये निर्जित कालनामिना।
यम सर्वहरस्तेन मृत्युप्रहरणे रणे ।५०
याम्यामवस्था सन्त्यज्य भीत स्वांन्दिशमाविशत्।
स लोकपालानुन्माय कृत्वा तेषा च कर्म तत्॥५१
दिक्ष् सर्वासु देह स्व चतुर्धा विदधे तदा।
स नक्षत्रपथ हृत्वा दिव्य स्वर्भानुदर्शनम्॥५२
जहार लक्ष्मी सामस्य त नारय विषय महत्।

चालयामास दीप्तांशु स्वर्गद्वाराद् स भास्करम् ॥५३
सायनञ्चास्य विषयं जहार दिनकर्म्म च ।
सोऽग्निं देवमुखं दृष्ट्वा चकारात्ममुखाश्रयम् ॥५४
वायुञ्च तरसा जित्वा चकारात्मवशानुगम् ।
स समुद्रान् समानीय सर्वाश्च सरितो बलात् ॥५५
चकारात्ममुखे वीर्याद्देहभूताश्च सिन्धवः ।
अपः स्ववशगाः कृत्वा दिविजा याश्च भूमिजाः ॥५६

उस महा दानव कालनेमि ने युद्ध मे वित्तद (कुबेर) को भी निर्जित कर दिया था। मृत्यु के प्रहरणों वाले उस रण मे उसने सवदा यम को भी विजित कर दिया था और अपनी याम्य अवस्था का परित्याग करके वह भयभीत होकर अपनी दिशा मे प्रवेश कर गया था। उसने सब लोकपालों को हटाकर और उनका जो कर्म था उसे स्वयं ही करने लगा था। उस समय मे सब दिशाओं मे अपने ही देह को उसने चार रूपों मे बनाकर स्थित कर दिया था। नक्षत्रों के मार्ग मे पहुँच कर वह दिव्य स्वर्भानु का दर्शन करता था ॥ ५० ५१ ५२ ॥ उसने सोम की लक्ष्मी और इसके महान् विषय का हरण कर लिया था। उसने दीप्त अंशु वाले भास्कर को स्वर्ग के द्वार मे चालित कर दिया था। इसके सायन विषय को तथा दिन के कर्म्म को भी समाहृत कर दिया था। उस कालनेमि ने देवमुख अग्नि को देखकर उसे अपने मुख के आश्रय वाला बना लिया था ॥ ५३ ५४ ॥ उसने वायुदेव को भी बड़े वेग से जीतकर अपने वश मे रहने वाला अनुग बना लिया था। उस कालनेमि दानव ने बलपूर्वक समस्त समुद्रों और सरिताओं को भी लाकर अपने ही मुख मे कर लिया था। उसके वीर्य से सब सिन्धु उसके देहभूत बन गये थे। जो भी दिवलोक मे समुत्पन्न थे और जो भूमिज थे। उन सबको अपने ही वश मे रहने वाले कर लिया था ॥ ५५, ५६ ॥

स स्वयम्भुवि वा भाति महाभूतपतिर्यथा ।
सर्वलोकमयो दैत्य. सर्वभूतभयावहः ॥५७
स लोकपालैकवपुश्चन्द्रादित्यग्रहात्मवान् ।
स्थापयामास जगतीं सुगुप्तां धरणीधरैः ॥५८
पावकानिलसम्पातो रराज युधि दानव ।
पारमेष्ठ्ये स्थित. स्थानेलोकाना प्रभवोपमे ॥
त तुष्टुवुर्दैत्यगणा देवा इव पितामहम् ॥५६॥

वह स्वय ही भूमण्डल मे भूतो के पति के समान शोभित हो रहा था । वह दैत्य सब लोको से परिपूर्ण और समस्त प्राणियो को भय देने वाला था । वह लोकपालो के एक ही वपु वाला स्वय था और चन्द्र तथा आदित्य ग्रहो के भी स्वरूप वाला था । उसने धरणी धरो के द्वारा सम्पूर्ण जगती को सुगुप्त करके स्थापित किया था । युद्ध मे वह दानव पावक और अनिल के सम्पात वाला दीप्तिमान् हो रहा था । वह लोकों के प्रभवोपम स्थान पारमेष्ठ्य मे स्वयं ही स्थित हो गया था । पितामह को देवो की भाँति ही सब दैत्यगण उसका सस्तवन किया करते थे ॥ ५७ । ५८ । ५६ ॥

---

७१ --कालनेमि और विष्णु का युद्ध

पञ्च तन्नाम्यवतन्त विपरीतेन कर्म्मणा ।
वेदो धर्म्मः क्षमा सत्य श्रीश्च नारायणाश्रया ॥१
स तेषामनुपस्थानात् सक्रोधो दानवेश्वर. ।
वैष्णवपदमन्विच्छन्ययौ नारायणान्तिकम् ॥२
स ददर्श सुपर्णस्थं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
दानवानां विनाशाय भ्रामयन्त गदा शुभाम् ॥३
सजलाम्भोदसदृशं विद्युत्सदृशवाससम् ।

स्वारूढ स्वर्णपक्षाढ्यं शिखिनं काश्यपं खगम् ॥४
दृष्ट्वा दैत्यविनाशाय रणे स्वस्थमवस्थितम् ।
दानवो विष्णुमक्षोभ्य बभाषे लुब्धमानसः ॥५
अय स रिपुरस्माक पूर्वेषां प्राणनाशनः ।
अर्णवावासिनश्चैव मधोर्वे कैटभस्य च ॥६
अय स विग्रहोऽस्माकमशाम्य किल कथ्यते ।
अनेन सयुगेष्वद्य दानवा बहवो हताः ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—उस समय में विपरीत कर्म्मो के होने के कारण से वेद-धर्म्म-क्षमा-सत्य और नारायण प्रभु के समाश्रय करने वाली श्री—ये पाँच नहीं रहे थे। इन पाँचो के उपस्थित न रहने से वह दानवेश्वर बड़े क्रोध से युक्त हो गया था और फिर भगवान् विष्णु को प्राप्त करने की इच्छा करता नारायण प्रभु के समीप मे प्राप्त हो गया था। उसने वहाँ पर सुपर्ण पर समवस्थित—दानवो के विनाश करने के लिये अपनी परम शुभ गदा को घुमाते हुए शख-चक्र और गदा के धारण करने वाले प्रभु को देखा था ॥१, २, ३॥ वहाँ पर नारायण का स्वरूप जल सहित मेघ के समान था—विद्युत् तुल्य वसन धारण करने वाला उनका रूप था तथा वे कश्यप के पुत्र-स्वर्ण पक्षो से समन्वित शिखी खग पर समारूढ़ थे ॥ ४ ॥ इस तरह के स्वरूप की शोभा से समवस्थित एव परम स्वरूप और रण मे दैत्यो के विनाश करने के लिए उद्यत विष्णु भगवान् को देखकर लुब्ध मन वाला वह दानव क्षोभ न करने के योग्य विष्णु भगवान् से बोला ॥ ५ ॥ यह ही हम लोगो का सच्चा शत्रु है जो हमारे पूर्वजो के प्राणो का नाश करने वाला है तथा अर्णव मे आवास करने वाले मधु तथा कैटभ का प्राण लेने वाला है। यही हमारा वह विग्रह है जो शमन न करने के योग्य कहा जाया करता है। आज इसने ही रणक्षेत्र मे बहुत-से दानवो का हनन किया है। ॥ ६, ७ ॥

अयं स निर्घृणोलोके स्त्रीबालनिरपत्रपः।
येन दानवनारीणा सीमन्तोद्धरण कृतम् ॥८
अयं सविष्णुर्देवानावैकुण्ठश्चदिवौकसाम्।
अनन्तोभोगिनामप्सुस्वपन्नाद्य. स्वयम्भुवः ॥९
अयं स नाथो देवानामस्माकं व्यथितात्मनाम्।
अस्य क्रोधं समासाद्य हिरण्यकशिपुर्हतः ॥१०
अस्य च्छायापाश्रित्य देवा मखमुखे श्रिता.।
आज्यं महर्षिभिर्दत्तमश्नुवन्ति त्रिधा हुतम् ॥११
अयं स निधने हेतु. सर्वेपाममरद्विषाम्।
यस्य चक्रे प्रविष्टानि कुलान्यस्माकमाहवे ॥१२
अयं स किल युद्धेपु सुरार्थे त्यक्तजीवितः।
सवितुस्तेजसा तुल्यं चक्रं क्षिपतिशत्रुपु ॥१३
अयं सकालोदंत्यानाकालभूतं समास्थितः।
अतिक्रान्तस्यकालस्यफलप्राप्स्यति केशवः ॥१४

यह वह है जो अत्यन्त ही निर्घृण और स्त्री तथा बालकों मे भी निर्लज्ज है जिसने दानवो की नारियों का श्रीमन्तों का उद्धरण किया था ॥ ८ ॥ यह ही वह विष्णु है जो दिवलोक मे रहने वाले देवो का वैकुण्ठ है—योगियो का अनन्त और जल मे शयन करने वाला आद्य स्वयम्भुव है। यह ही व्यथित आत्मा वाले हमारे देवो का नाथ है। इसी के क्रोध की प्राप्ति कर हिरण्य कशिपु मारा गया था ॥ ९, १० ॥ इसी की छत्र छाया का उपाश्रय प्राप्त करके देवगण मखो के मुख में श्रित हुआ करते हैं—और तीन प्रकार से हुत महर्षियो के द्वारा समर्पित आज्य का अशन किया करते हैं ॥ ११ ॥ समस्त देवो के दुश्मनों के निधन होने मे यह ही एक हेतु है। जिसके चक्र मे युद्ध क्षेत्र में हमारे कुल सब प्रविष्ट हो गये हैं अर्थात् सुदर्शन चक्र के द्वारा कुलों के कुल मारे गये होकर समूल नष्ट हो गये हैं। यही वह है जो सुरों के लिये

युद्धो मे अपना जीवित भी त्याग देने वाला हो जाया करता है और जो सूर्य के तेज के तुल्य अपने सुदर्शन चक्र को शत्रुओं पर प्रक्षिप्त किया करता है। यह दैत्यों का वह साक्षात् काल है जो कि कालभूत हो र समास्थित रहा करता है। यह केशव अतिशान्त काल का फल प्राप्त करेगा ॥१२-१४॥

दिष्टच्येदानी समक्ष मे विष्णुरेष समागत ।
अद्य मद्बाहुनिष्पिष्टो मामेव प्रणमिष्यति ।।१५
यास्याम्यपचिति दिष्ट्या पूर्वेपामद्य सयुगे ।
इम नारायण हत्वा दानवाना भयावहम् ।।१६
क्षिप्रमेव हनिष्यामि रणेऽमरगणास्तत ।
जात्यन्तरगतो ह्येष बाधते दानवान् मृधे ।।१७
एपोऽनन्त पुरा भूत्वा पद्मनाभ इति श्रुत ।
जघानैकार्णवे घोरे तावुभौ मधुकैटभौ ।।१८
द्विधाभूत वपु कृत्वा सिहस्यार्द्धं नरस्य च ।
पितर म जघानका हिरण्यकशिपु पुरा ॥१९
शुभ गर्भमधत्तैनमदितिर्देवतारणि ।
त्रीन् लोकान्‌ जहारैका क्रममाणस्त्रिभि. क्रमै ।।२०
भूयस्त्विदानी सग्रामे सप्राप्ते तारकामये ।
मया सह समागम्य स देवा विनशिष्यति ।।२१

बड़े ही हर्ष की बात है कि इस समय मे यह विष्णु मेरे समक्ष मे समागत हो गया है। आज यह मेरी बाहुओं से निष्पिष्ट होकर मुझको प्रणाम करेगा। बड़ी ही प्रसन्नता की बात है कि आज युद्ध क्षेत्र में मैं अपने पूर्व पुरुषों की अपचिति का प्राप्त करूँगा अर्थात् उनके साथ किये व्यवहार का बदला ले लूँगा। आज दानवों का भय देने वाले नारायण का मैं हनन करके ही बदला ले लूँगा ।। १५। १६ ।। यह जाति म म तर्गत अर्थात् अ य जाति वाला विष्णु युद्ध मे दानवो को

बाधाऐं दिया करता है। आज मैं बहुत ही शीघ्र रण मे इसके पश्चात् सब देवगणों का भी वध कर डालूँगा। यह पहिले अनन्त होकर पद्मनाभ—इस नाम से सुना गया है। इसने ही परम घोर एकार्णव मे उन दोनो मधु कैटभ का हनन किया था। पहिले इसने दो प्रकार का शरीर धारण किया था जो आधा तो सिंह का था और आधा नर का था। इसी एक ने मेरे पिता हिरण्य कशिपु का हनन किया था॥ १७। १८। १९॥ अदिति ने परम शुभ गर्भ धारण किया था और देवनारशि इसी एक ने तीन पैंडों के क्रम से क्रममाण होते हुए तीनों लोकों का उद्धरण कर डाला था। पुन: इस समय मे इस तारकामय संग्राम के सम्प्राप्त होने पर मेरे साथ समागम करके वह देव विनष्ट हो जायगा॥ २०। २१॥

एवमुक्त्वा बहुविधं क्षिपन्नारायण रणे।
वाग्भिरप्रतिरूपाभिर्युद्धमेवाभ्यरोचयत् ॥२२
क्षिप्यमाणो सुरेन्द्रेण न चुकोप गदाधरः।
क्षमाबलेन महता सस्मित चेदमब्रवीत् ॥२३
अल्प दर्पबल दैत्य ! स्थिरमक्रोधज बलम्।
हतस्त्वं दर्पजैर्दोषैर्हित्वा यद्भाषसे क्षमम् ॥२४
अधीरस्त्वं मम मतो धिगेतत्तव वाग्बलम्।
न यत्र पुरुषाः सन्ति तत्र गर्जन्ति योषितः ॥२५
अहं त्वां दैत्य ! पश्यामि पूर्वेषां मार्गगामिनम्।
प्रजापतिकृत सेतु भित्वा कः स्वस्तिमान् व्रजेत् ॥२६
अद्य त्वानाशयिष्यामिदेवव्यापारघातकम्।
स्वेषुस्वेषुचस्थानेषुस्थापयिष्यामि देवताः ॥२७
एवं ब्रुवति वाक्यं तु मृधे श्रीवत्सधारिणि।
जहासदानव क्रोधाद्हस्ताश्चक्रे सहायुधान् ॥२८

इस प्रकार से अनेक रीतियों से बहुत तथा नारायण पर रण

मे आक्षेपो की बौछार करके अप्रतिरूप वाणियो के द्वारा उसने युद्ध करने को ही पसन्द किया था ॥ २२ ॥ इस तरह उस असुरेन्द्र के द्वारा आक्षिप्त होते हुए भी गदाधारी प्रभु ने कोई क्रोध नहीं किया था और महान् क्षमा के बल का सहारा लेते हुए मुस्करा कर यह वचन कहा था । २३ ॥ दर्प का बल अल्प होता है, हे दैत्य ! जो बिना किसी क्रोध से उत्पन्न होने वाला बल होता है वह स्थिर बल हुआ करता है। तू क्षमा का त्याग करके जो कुछ भी इस समय मे बोल रहा है इन दर्प (घमण्ड) से उत्पन्न हुए दोषो से ही हत हो गया है ॥ २४ ॥ मेरी मति म तो तू बहुत ही अधीर है। तेरे इस वचनो के बल को धिक्कार है जहाँ पर कोई बलशाली पुरुष नहीं रहा करते है वहाँ पर स्त्रियाँ भी इसी प्रकार से गर्जन किया करती हैं ॥ २५ ॥ हे दैत्यराज ! मै तो तुमको अपने पूर्वज पुरुखाओ के ही मार्ग का अनुगमन करने वाला देख रहा हूँ। प्रजापति के द्वारा किये हुए सेतु का भेदन करके कौन पुरुष कल्याण वाला हो सकता है ? अर्थात् वह कभी भी कल्याणकारी हो ही नही सकता है । २६ । मैं आज ही देवो के व्यापारो के घात करने वाले तुझको नष्ट कर डालूँगा और उन देवताओ को उनके अपने अपने स्थानो पर स्थापित कर दूँगा ॥ २७ ॥ उस महान् युद्ध क्षेत्र मे श्रीवत्स के चिह्न को धारण करने वाले प्रभु के द्वारा इस प्रकार से बोलने पर वह दानव कालनमि बहुत हँसा था और उसने बहुत ही क्रोध से अपने हाथो को आयुधो से युक्त कर लिया था ॥२८॥

स बाहुंशतमुद्यम्य सर्वास्त्रग्रहणं रणे ।
क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षो विष्णुवक्षस्यताडयत् ॥२९
दानवाश्चापि समरे मयतारपुरोगमाः ।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा विष्णुमभ्यद्रवन् रणे ॥३०
स ताड्यमानोऽतिबलैर्दैत्यैः सर्वोद्यतायुधैः ।
न चचाल तदा युद्धे कम्पमान इवाचलः ॥३१

संसक्तश्च सुपर्णेन कालनेमी महासुरः ।
सर्वप्राणेन महती गदामुद्यम्य बाहुभिः ॥३२
घोरां ज्वलन्तीं मुमुचे सरब्धो गरुडोपरि ।
कर्म्मणातेनदैत्यस्य विष्णुर्विस्मयमाविशत् ॥३३
यदा तेन सुपर्णस्य पातिता मूर्द्धिन सा गदा ।
सुपर्णं व्यथितं दृष्ट्वा क्रुतञ्च वपुरात्मनः । ३४
क्रोधसरक्तनयनो वैकुण्ठश्चक्रमाददे ।
व्यवर्द्धत स वेगेन सुपर्णेन समं विभुः ॥३५

उस दानव ने उस रण स्थल मे सभी प्रकार के अस्त्रो को ग्रहण करने वाले सैकडो बाहुओ को उठाकर क्रोध से द्विगुणित लाल नेत्रो वाले ने भगवान् विष्णु पर उनके वक्षःस्थल पर प्रताडित किया था।२६। अन्य दानव भी जिनमे मय और तार पुरोगामी थे सबने निस्त्रिंश और अन्य आयुधो को समुद्यत करके भगवान् विष्णु पर रण मे आक्रमण कर दिया था ॥ ३० ॥ सब प्रकार के समुद्यत आयुधो वाले—अत्यन्त बलशाली दैत्यो के द्वारा इस भाँति ताडयमान होते हुए भी भगवान् विष्णु उस युद्ध मे बिना कम्प वाले एक पर्वत की तरह स्थित रहते हुए वहाँ पर बिल्कुल भी चलित नही हुए थे ॥ ३१ ॥ विष्णु प्रभु सुपर्ण पर ही संसक्त थे कि महासुर उस कालनेमि ने अपना पूर्ण जोर लगाकर प्राण-पण से महान् विशाल गदा को बाहुओ से उठाकर जो कि अत्यन्त घोर और जाज्वल्यमान थी बहुत ही सरब्ध होते हुए गरुड के ऊपर उसे छोड दिया था। दैत्य के उस कर्म्म से भगवान् विष्णु को भी बडा विस्मय हो गया था ॥ ३२, ३३ ॥ जिस समय मे उस दानव ने सुपर्ण के मस्तक पर उस महती गदा को पातित किया था सुपर्ण को देखकर उन्होने अपना वपु व्यथित कर दिया था फिर महान् क्रोध मे सरक्त नयनो वाला होकर भगवान् वैकुण्ठनाथ ने अपना चक्र ग्रहण किया था और सुपर्ण के साथ ही वह विभु आगे को बढ गये थे ॥३४, ३५॥

भुजाश्चास्य व्यवर्द्धन्त व्याप्नुवन्तो दिशो दश ।
प्रदिशश्चैव खं गां च पूरयामास केशवः ॥३६
ववृधे च पुनर्लोकान् क्रान्तुकाम इवौजसा ।
तर्जनायासुरेन्द्राणां वर्द्धमानो नभस्तले ॥३७
ऋषयश्चैव गन्धर्वास्तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ।
सर्वान् किरीटेन लिहन् साभ्रमम्बरमम्बरे ॥३८
पद्भ्यामाक्रम्य वसुधां दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिः ।
स सूर्यकरतुल्याभं सहस्रारमरिक्षयम् ॥३९
दीप्ताग्निसदृशं घोरं दर्शनेन सुदर्शनम् ।
सुवर्णरेणुपर्यन्तं वज्रनाभं भयापहम् ॥४०
मेदोऽस्थिमज्जारुधिरैः सिक्तं दानवसम्भवैः ।
अद्वितीयप्रहरणं क्षुरपर्यन्तमण्डलम् ॥४१
स्रग्दाममालाविततं कामगं कामरूपिणम् ।
स्वयंस्वयम्भुवा सृष्टं भयदं सर्वविद्विषाम् ॥४२

इनकी भुजाऐं दशों दिशाओं में व्यापक होती हुईं बढ़ गयी थीं और भगवान् केशव ने उनको सब प्रदिशाओं में—भूमि तथा आकाश में पूरित कर दिया था ॥ ३६ ॥ फिर महान् ओज से समस्त लोकों का क्रमण करने की इच्छा वाले प्रभु और भी वर्धित हो गये थे तथा नभस्तल में भी उन असुरेन्द्रों के तर्जन के लिये वे वर्द्धमान हो गये थे। अम्बरों के द्वारा अभ्र सहित अम्बर की भाँति किरीट के द्वारा सबका स्पर्श करते हुए वे उस समय में हो गये थे तथा वहाँ पर मधुसूदन प्रभु का संस्तवन ऋषिगण और गन्धर्व लोग करने लगे थे ॥ ३७, ३८ ॥ प्रभु ने अपने चरणों से सम्पूर्ण वसुधा को समाक्रान्त करके बाहुओं से सभी दिशाओं को प्रच्छादित कर दिया था तथा उनने फिर सूर्य की किरणों के तुल्य आभा वाले—सहस्र अरों से समन्वित और अरियों के क्षय को करने वाले उस चक्र को प्रयुक्त किया था ॥ ३९ ॥ वह चक्र दीप्त अग्नि के

समान महान् घोर था तथा देखने से वह सुन्दर दर्शन वाला अर्थात् सुदर्शन नामधारी था। सुवर्ण रेणुपर्यन्त—वज्रनाभ—भर्यो का अपहरण करने वाला—दानवो के शरीरो से समुत्पन्न मेदा, अस्थि, मज्जा तथा रुधिर से सिक्त—क्षुर पर्यन्त मण्डल वाला—एक परम अद्वितीय प्रहरण (अस्त्र)—स्रगदाम (मालाऐं) से विनत—स्वेच्छया गमन करने वाला—कामरूपी—समस्त शत्रुओ को भय देने वाला और स्वय ही स्वयम्भू प्रभु के द्वारा वह सृजित किये जाने वाला था ॥४०-४२॥

महर्षिरोषंराविष्ट नित्यमाहवदर्पितम् ।
क्षेपणाद्यस्य मुह्यन्ति लोका. सस्थाणु जङ्गमाः ॥४३
क्रव्यादानि च भूतानि तृप्ति यान्ति महामृधे ।
तदप्रतिमकर्मोग्र समान सूयवर्चसा ॥४४
चक्रमुद्यम्य समरे क्रोधदीप्तो गदाधरः ।
समुष्णन् दानव तेजः समरे स्वेन तेजसा ।।४५
चिच्छेद बाहूचक्रेण श्रीधर. कालनेमिनः ।
तच्च वक्त्रशत घोर साग्निपूर्णाट्टहासि वै ॥४६
तस्य दरथस्य चक्रेण प्रममाथ बलाद्धरिः ।
स च्छिन्नबाहुर्विशिरा न प्राकम्पतदानव. ॥४७
कबन्धोऽवस्थित संख्ये विशाखइव पादप ।
सम्वितत्यमहापक्षौवायो कृत्वासमञ्जवम् ॥४८
उरसा पातयामास गरुड.कालनेमिनम् ।
स तस्य देहो विमुखो विबाहुश्च परिभ्रमन् ॥४९

वह ऊपर मे बतलाये गुणगणो वाला सुदर्शन चक्र महर्षियो के रोषो से समाविष्ट था और नित्य ही युद्ध मे दर्प से समायुक्त रहने वाला था। जिसके क्षेपण करने से सभी स्थावर एव जङ्गम लोक मूच्छित हो जाया करते हैं। महान् युद्ध मे क्रव्याद आदि जो भूत हैं वे उस चक्र के द्वारा प्रवाहित हुए शत्रुओ के रक्त के पान से परम तृप्ति को प्राप्त

हुआ करते हैं ऐसे उस अनुपम कर्म के करने से उग्र और सूर्य के वर्चस के तुल्य उस अपने सुदर्शन चक्र को उठाकर समर में क्रोध से दीप्त गदाधर ने छोडकर अपने तेज क द्वारा युद्धस्थल मे दानवो के तेज का छेदन कर दिया था और श्रीधर प्रभु ने उस अपने चक्र से कालनेमि की बाहुओ को भी काट डाला था। उस दानव के अग्नि से परिपूर्ण अट्टहास वाले सौ परम घोर मुखो का श्री हरि ने उसी चक्र के द्वारा बलपूर्वक प्रमथन कर दिया था। किन्तु वह दानव बाहुओ शिर के कट जाने पर भी वहाँ पर प्रकम्पित नही हुआ था। उसका वह कबन्ध (धड) युद्ध स्थल मे बिना शाखा वाले पादप के समान अवस्थित था। गरुड ने अपने पंखो को फैलाकर तथा वायु के समान वेग को करके अपने उर-स्थल के द्वारा उस कालनेमि के धड को नीचे गिरा दिया था और उसका वह बिना मुख तथा बाहुओ वाला देह इधर-उधर परिभ्रमण कर रहा था।।४३-४९।

निपपात दिवन्त्यक्त्वा क्षोभयन् धरणीतलम् ।
तस्मिन्निपतितेदैत्येदेवाः सर्षिगणास्तदा ।।५०
साधु साध्विति वैकुण्ठ समेताः प्रत्यपूजयन् ।
अपसपन्तु दैत्याश्च युद्धे दृष्टपराक्रमा ।५१
ते सर्व बाहुभिर्व्याप्ता न शेकुश्चलितु रणे ।
कांश्चित् केशेषु जग्राह कांश्चित् कण्ठेष्वपीडयत् ।।५२
पाटय कस्यचिद्वक्त्र मध्येगृह्णादथापरम् ।
ते गदाचक्रनिदग्धा गतसत्वा गतासवः ।।५३
गगनाद्भ्रष्टसर्वाङ्गा निपेतुर्धरणीतले ।
तेषु दैत्येषु सर्वेषु हतेषु पुरुषोत्तमः ।।५४
तस्थौशक्रप्रियं कृत्वा धृतकर्मा गदाधरः ।
तस्मिन् विमर्दे निवृत्ते सग्रामे तारकामय ।।५५
त देशमाजगामाशु ब्रह्मा लोकपितामहः

सर्वैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं गन्धर्वाप्सरसाङ्गणै ॥५६

वह धरणी तल को क्षोभित करता हुआ दिवलोक को त्याग कर के भूमि पर गिर गया था। उस समय मे उस महा दानवेश्वर के निपतित हो जाने पर समस्त देवगण और ऋषि वृन्द "साधु–साधु" अर्थात् बहुत ही अच्छा हुआ यह कहते हुए सब एकत्रित होकर भगवान् वैकुण्ठनाथ की पूजा करने लगे थे। युद्ध में दैत्यगण पराक्रम देख लेने वाले अपमर्पण कर जावे। किन्तु बाहुओ से व्याप्त वे सब रणस्थल में चल नहीं सकते थे। उनमे से कुछ को तो केश पकड कर ग्रहण किया था और कुछ को कण्ठो में ताडित किया था ॥ ५०, ५१, ५२ ॥ किसी के मुख को पकड कर कर्षित किया था और दूसरे को मध्य भाग मे ग्रहण किया था। वे सब गदा और चक्र के प्रहारो से निदग्ध––गत प्राण और हीन तत्त्वो वाले हो गये थे ॥ ५३ ॥ गगन से उद्भ्रष्ट समस्त अङ्गो वाल धरणी तल मे सब निपतित हो गये थे। उन सब दैत्यो के निहत हो जाने पर पुरुषोत्तम प्रभु गदाधारो महेन्द्र का कर्म्म सम्पादन करके तथा इन्द्र का प्रियकर्म करक उस विमर्द तारकामय सग्राम क निर्वृत होने पर वहाँ पर ही समवस्थित हो गये थे। उसी स्थल पर लोको के पिता यह ब्रह्मा जी समस्त ब्रह्मर्षिगण और गन्धर्व एव अप्सरागणो के साथ शीघ्र ही आकर उपस्थित होगये थे ॥५४–५६॥

देवदेवो हरिं देव पूजयन् वाक्यमब्रवीत् ।
कृत देव महत्कर्म सुराणा शल्यमुद्धृतम् ॥ ५७
वधेनानन दैत्याना वय च परितोषिता ।
याऽय त्वया हतो विष्णो। कालनमी महासुर ॥५८
त्वमेकोऽस्य मृधेहन्ता नान्य कश्चन विद्यते ।
एषदेवानुपरिभवन्लोकाश्चससुरासुरान् ॥५९
ऋषीणा कदन कृत्वा मामपि प्रतिगर्जति ।
तदनन तवाग्र्येण परितुष्टोऽस्मि कमणा ॥६०

यदय कान्तकल्पस्तु कालनेमी निपातित ।
तदा गच्छस्व भद्रं ते गच्छाम दिवमुत्तमम् ॥६१
ब्रह्मषयस्त्वा तत्रस्था प्रतीक्षन्ते सदोगता ।
कञ्च ह तव दास्यामि वर वरवताम्वर ॥६
सुरेष्वथ च दैत्येषु वराणा वरदो भवान् ।
निर्यातियतत्त्रैलोक्य स्फीत निहतकण्टकम् ॥६३

देवों के देव न श्री हरिदेव का अभ्यचन करते हुए यह वाक्य कहा था कि हे देव ! आपने बहुत बडा काम सम्पादित किया है और सु गणो के शल्य का आपने उद्धृत कर डाला है। दत्यो के इस बध से आपन हम सबको परितोषित कर दिया है जो कि हे विष्णो ! आपने इस महासुर कालनमि को निहत कर डला है । ५७ ५८॥ इस युद्ध म आप ही एक इसके हनन करन वाले थे अ य कोई भी आपके अति रक्त नहीं है। इससे सब देवा को परिभूत कर दिया है और सुरो एव असुरो के सहित लोको का भी परिभव किया है। यह ऐसा दुष्ट था कि यह ऋषियो का कदन करके मुझको भी अपनी गजना दिखाता था। आपके अ युत्तम इस कम्म से मैं बहुत ही परितुष्ट हुआ हू ॥ ५८ ६०॥ जो यह काल के सदृश कालनमि आपके द्वारा निपतित हुआ है यह बहुत ही अच्छा हो गया। अब आप पधारिये आप का परम मङ्गल होवे—अब हम भी उत्तम दिवलोक को चलते हैं। वहाँ पर सदागत समुपस्थित ब्रह्मर्षि गण आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हे वरदान दन वालो में परमश्रेष्ठ ! मैं आपको कौन-सा वरदान दूंगा। आप सुरो म और दत्यो म वरदानो को प्रदान करन वाल वरद हैं। इस परम विस्तृत त्रैलोक्य को निहत कण्टक वाला निर्यात कर डालिये ॥ ६१ । ६२ । ६३ ॥

अस्मिन्नेव मृधे विष्णो ! शक्राय सुमहात्मने ।
एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिर यय ॥६४

देवाश्छक्रमुखान् सर्वानुवाच शुभया गिरा ।
शृण्वन्तु त्रिदशा सर्वे यावन्तोऽत्र समागता ॥६५
श्रवणावहितैः श्रोत्रै पुरस्कृत्य पुरन्दरम् ।
अस्माभि समरे सर्वे कालनमिमुखा हता ॥६६
दानवा विक्रमापेता शक्रादपि महत्तरा ।
अस्मिन्महति सग्रामे दैतेयौ द्वौ विनि सृतौ ॥६७
विरोचनश्च दैत्येन्द्र स्वर्भानुश्च महाग्रह ।
स्वा दिश भजता शक्रो दिश वरुण एव च ॥६८
याम्यायम पालायतामुराञ्च धनधिप ।
ऋक्षै सह यथायोग गच्छता चैवचन्द्रमा ॥६६
अब्द ऋतुमुखे सूर्यो भजतामयनं सह ।
आज्यभागा प्रवतन्ता सदस्यैरभिपूजिता ॥७०

हे विष्णो ! इसी युद्ध म आपन महान् आत्मा वाले इन्द्र के लिय यह सब कर दिया है । इस प्रकार से भगवान् ब्रह्माजी के द्वारा अविनाशी श्री हरि से कहा गया था। तब श्री हरि न इन्द्र जिनम प्रधान थ उन समस्त देवो से परम शुभ वाणी से कहा था—विष्णु भगवान् ने कहा था —अब सब देवगण श्रवण करलो जितने यहा पर इस समय म समागत हुए हैं ॥ ६४, ६५ ॥ श्रवण म परम समाहित श्रोत्रो से पुरन्दर को आगे को करके हमने समर म कालनमि प्रमुख सब दानव निहत कर दिय थ । य समस्त दानव विक्रम से उपेत थ तथा इन्द्र से भी महत्तर थ । इस महान् सग्राम म दो दैतय विनि सृत हुए थ ॥ ६६, ६७॥ एक तो दैत्येन्द्र विरोचन था दूसरा महान् ग्रह स्वर्भानु था । अब इन्द्र अपनी दिशा का सेवन करे और वरुण अपनी दिशा म चले जावे ॥ ६८। ६६ ॥ याम्य दिशा म यम चले जाव । धनाधिप उत्तर दिशा म पहुच जावे । ऋक्षो के सहित यथा योग चन्द्रमा भी चले जावे । ऋतुमुख म अयनो के सहित

सूर्य्यं अब्द का सेवन करे। सदस्यों के द्वारा अभिमन्त्रित आज्यभाग प्रवृत्त हो जावे ॥ ६६,७० ॥

हूयन्तामग्नयो विप्रैर्वेददृष्टेन कर्मणा।
देवाश्चाप्यग्निहोमेन स्वाध्यायेन महर्षय. ॥७१
श्राद्धेन पितरश्चैव तृप्तिं यान्तु यथासुखम्।
वायुश्चरतु मार्गस्थ स्निग्धा दीप्यतु पावक: ॥७२
त्रीस्तु वर्णाश्च लोकास्त्रींस्तर्पयश्चात्मजैर्गुणै.।
ऋतव: सम्प्रवर्तन्तां दीक्षणीयैर्द्विजातिभि:।
दक्षिणाश्चोपपाद्यन्तां याज्ञिकेभ्य: पृथक् पृथक्।
गान्तु सूर्यो रसान् सोमो वायु प्राणाश्च प्राणिषु ॥७४
तर्पयन्त: प्रवर्तन्तां सर्वएव स्वकर्मभि।
यथावदानुपूर्व्येण महेन्द्रमलयोद्भवा: ॥७५
त्रैलोक्यमातर:सर्वा समुद्रयान्तु सिन्धव:।
दैत्येभ्यस्त्यजयना भीश्च शान्तिव्रजतदेवता ॥७६
स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि ब्रह्मलोकं सनातनम्।
स्वगृहे स्वर्गलोके वा यथामे वा विशेषत: ॥७७

७२—भव माहात्म्य वर्णन

श्रुत पद्मोद्भवस्तात विस्तेण त्वयेरित. ।
समासाद्भवमाहात्म्य भैरवस्य विधीयताम् ॥१
तस्यापि देवदेवस्य शृणु कर्म चोत्तमम् ।
आसीद्दैत्योऽन्धको नाम भिन्नाञ्जनचयोपम ॥२
तपसा महतायुक्तोह्यवध्य स्त्रिदिवौकसाम् ।
स कदाचिन् महादेवपार्वत्या सहितप्रभुम् ॥३
क्रीडमान तदा दृष्ट्वा हर्तुं देवी प्रचक्रमे ।
तस्य युद्ध तदा घोरमभवत् सह शम्भुना । ४
आवन्त्ये विषये घोरे महाकालवन प्रति ।
तस्मिन्युद्धे तदा रुद्रश्चान्धकेनातिपीडितः ॥५
सुपुवे बाणमत्युग्रनाम्ना पाशुपत हि तत् ।
रुद्राबाणविनिर्भेदाद्रुधिरादन्धकस्य तु ॥६
अन्धकाश्च समुत्पन्ना. शतशोऽथ सहस्रश. ।
तेषा विदार्यमाणाना रुधिरादपरे पुन ॥७

ऋषिगण ने कहा—हे भगवन् ! आपके द्वारा वर्णित विस्तार-पूर्वक पद्मोद्भव का श्रवण कर लिया है । अब आप सक्षेप से भैरव का भव माहात्म्य वर्णित कीजिए ॥ १ ॥ महा महर्षि सूतजी ने कहा—देवो के देव उसका भी उत्तम कर्म का आप श्रवण करो । एक अन्धक नाम वाला भिन्नाञ्जन चय वाला दैत्य था ॥ २ ॥ वह दैत्येन्द्र महान् तप से युक्त था और देवो का वध न करने के योग्य था । उसने किसी समय मे पार्वती के सहित प्रभु महादेव को क्रीडा करते हुए देख लिया था और उसी समय मे उस दैत्य ने देवी पार्वती के हरण करने का उपक्रम किया था । उसी समय म उस दैत्य का शम्भु के साथ परम घोर युद्ध हुआ था ॥ ३, ४ ॥ आवन्त्य घोर विषय म महाकाल वन के प्रति

उस समय मे उस महायुद्ध मे अन्धक के द्वारा रुद्रदेव को अत्यन्त उत्पीडित किया था ।५।। पाशुपत नाम वाले अत्यन्त उग्र बाण को प्रसूत किया था । रुद्रदेव के बाण के द्वारा विशेष निर्भेद को प्राप्त होने वाले अन्धक के रुधिर से सैकडो और सहस्रो अन्धक समुत्पन्न हो गये थे। जब उनका विदारण किया गया तो फिर विदीयमाण उनके रुधिर से दूसरे और फिर अन्धक पैदा होगये थे ।। ६, ७ ॥

बभूबुरन्धका घोरा यैर्व्याप्तमखिल जगत् ।
एव मायाविन दृष्ट्वा तञ्च देवस्तदान्धकम् ।।८
पानार्थमन्धकास्त्रस्य सोऽसृजन्मातरस्तदा ।
माहेश्वरी तथाब्राह्मी कौमारी मालिनीतथा ।।९
सौपर्णी ह्यथ वायव्या शाक्री वै नऋती तथा ।
सौरी सौम्या शिवा दूती चामुण्डा चाथ वारुणी ।।१०
वाराहीनारसिंहीच वैष्णवीच चलच्छिखा ।
शतानन्दाभगानन्दा पिच्छिलाभगमालिनी ।।११
बला चातिबला रक्ता सुरभीमुखमण्डिका ।
मातृनन्दा सुनन्दाच विडाली शकुनी तथा ।।१२
रेवतीच महारक्ता तथैव पिलपिच्छिका ।
जयाच विजया चैव जयन्ती चापराजिता ।।१३
काली चैव महाकाली दूती चैव तथैव च ।
सुभगा दुर्भगा चैव कराली नन्दिनी तथा ।।१४

उस समय मे परम घोर अन्धक उत्पन्न हो गये थे जिनसे यह समस्त जगत् एकदम व्याप्त हो गया था । उस समय मे इस प्रकार से मायावी उस अन्धक को देव ने देखकर उस अन्धकास्त्र के पान के लिए उस समय मे उन्होने माताओ का सृजन किया था । अब उन माताओं के नाम बतलाये जाते हैं—माहेश्वरी—ब्राह्मी—कौमारी—मालिनी—सौपर्णि—वायव्या—शाक्री—नैऋती—सौरी—सौम्या—शिवा—दूती—

चामुण्डा—वारुणी ॥ ८ । ६ । १० ॥ वाराही—नारसिंही—वैष्णवी—चलच्छिखा—शतानन्दा—भगानन्दा—पिच्छला—भगमालिनी—बला—अतिबला—रक्ता—सुरभी—मुखमण्डिका—मातृनन्दा—सुनन्दा—बिडाली—शकुनी—रेवती—महारक्ता—पिलपिच्छिका—जया—विजया—जयन्ती—अपराजिता—काली—महाकाली दूती—सुभगा—दुर्भगा—कराली—नन्दिनी ॥११-१४॥

अदितिश्च दितिश्चैव मारीचं मृत्युरेव च ।
कर्णमोटी तथा ग्राम्या उलूकीच घटोदरी ॥१५
कपाली वज्रहस्ता च पिशाची राक्षसी तथा ।
भुशुण्डी शाङ्करी चण्डा लाङ्गली कुटभी तथा ॥१६
खेटा सुलोचना धूम्रा एकवीरा करालिनी ।
विशालदंष्ट्रिणी श्यामा त्रिजटीकुक्कुटीतथा ॥१७
वैनायकी च वैताली उन्मत्तोदुम्बरी तथा ।
सिद्धिश्च लेलिहाना च केकरी गर्दभीतथा ॥१८
भ्रुकुटी बहुपुत्रीच प्रेतयाना विडम्बिनी ।
क्रौञ्चा शैलमुखी चैव विनता सुरमा दनु ॥१६
उषा रम्भा मेनकाच सलिलाचित्ररूपिणा ।
स्वाहास्वधा वषट्कारा धृतिर्ज्येष्ठाकपर्दिनी ॥२०
माया विचित्ररूपा च कामरूपा च सङ्गमा ।
मुखेविला मङ्गला च महानासा महामुखी ॥२१

अदिति—दिति—मारी—मृत्यु—कर्णमोटी—ग्राम्या—उलूकी—घटोदरी—कपाली—वज्रहस्ता—पिशाची—राक्षसी—भुशुण्डी—शाङ्करी—चण्डा—लाङ्गली—कुटभी—खेटा—सुलोचना—धूम्रा—एक वीरा—करालिनी—विशाल दंष्ट्रिणी—श्यामा—त्रिजटी—कुक्कुटी—वैनायकी—वैताली—उन्मत्ता—उदुम्बरी—सिद्धि—ललिहाना—केकरी—गदभी—भृकुटी—बहुपुत्री—प्रेतयाना—विडम्बिना—क्रौञ्चा—शैलमुखी—विनता—सुरमा—दनु—उषा—रम्भा—

मेनका–मलिला–विश्वरूपिणी–स्वाहा–स्वधा–वषट्कारा–धृति–ज्येष्ठा–कर्मदिनी–माया–विचित्र रूपा–कामरूपा–सङ्गना–मुखेविचा–मङ्गला–महानाशा–महामुखी ।।१९–२१।।

कुमारी रोचनाभीमा सदाहा सा मदोद्धता ।
अलम्बाक्षी कालपर्णी कुम्भकर्णीमहासुरी ॥२२
केशिनी शङ्खिनीलम्बा पिङ्गलालोहितामुखी ।
घण्टारवाथदंष्ट्राला रोचना काकजङ्घिका ।।२३
गोकर्णिकाच मुखिकामहाग्रीवा महामुखी ।
उल्कामुखीधूमशिखा कम्पिनी परिकम्पिनी ।।२४
मोहना कम्पनाश्वेला निर्भया बाहुशालिनी ।
सपकर्णी तथैकाक्षी विशोकानन्दिनीतथा ।।२५
ज्योत्स्नामुखीच रभसा निकुम्भा रक्तकम्पना ।
अविकारा महाचित्रा चन्द्रसेना मनोरमा ॥२६
अदर्शना हरत्पापा मातङ्गी लम्बमेखला ।
अबाला वञ्चना काली प्रमादा लाङ्गलावती ।।२७
चिता चित्तजला कोणा शान्तिकाघविनाशिनी ।
लम्बस्तनी लम्बसटा विसटा वासचूर्णिनी ।।२८

कुमारी–रोचना–भीमा–सदाहा–मदोद्धता–अलम्बाक्षी–कालपर्णी–कुम्भकर्णी–महासुरी–केशिना–शंखिनी–लम्बा–पिङ्गला–लोहितामुखी–घण्टारवा–दंष्ट्राला–रोचना–काक जङ्घिका–गोकर्णिका–मुखिका–महाग्रीवा–महामुखी–उल्कामुखी–धूमशिखा–कम्पिनी–परिकम्पिनी–मोहना–कम्पना श्वेला–निर्भया–बाहुशालिनी–सपकर्णी–एकाक्षी–विशोका–ज्योत्स्नामुखी–रभसा–निकुम्भा–रक्त कम्पना–अविकारा–महाचित्रा–चन्द्रसेना–मनोरमा–अदर्शना–हरत्पापा–मातङ्गी–लम्ब मेखला–अबाला–वञ्चना–काली–प्रमोदा–लाङ्गलावती–चिन्ता–

चित्त-जला—कोणा-शान्तिका-अघ विनाशनी—लम्बस्तनी—लम्बसटा-विसटा-वास चूर्णिनी ।।२२-२७।।

स्खलन्ती दीर्घकेशीच सुचिरा सुन्दरी शुभा ।
अयोमुखी कटुमुखी क्रोधनीच तथाशनी ।।२६
कुटुम्बिका मुक्तिका च चन्द्रिका बलमोहिनी ।
सामान्या हासिनी लम्बा कोविदारी समासवी ।।३०
कर्कुकर्णी महानादा महादेवी महोदरी ।
हुङ्कारी रुद्रसुसटा रुद्रेशी भूतडामरी ।।३१
पिण्डजिह्वा चलज्ज्वाला शिवा ज्वालामुखी तथा ।
एताश्चान्याश्च देवेश सोऽसृजन्मातरस्तदा ।।३२
अन्धकाना महाघोराः पपुस्तद्रुधिरं तदा ।
ततोऽन्धकासृज सर्वाः परां तृप्तिमुपागताः ।।३३
तासु तृप्तासु सम्भूता भूय एवान्धकप्रजाः ।
अर्दितस्तैर्महादेव शूलमुद्गरपाणिभिः ।।३४
तत स शङ्करो देवस्त्वन्धकैर्व्याकुलीकृत. ।
जगाम शरण देव वासुदेवमज विभुम् ।।३५

स्खलन्ती, दीर्घकेशी, सुचिरा, सुन्दरी, शुभा, अयोमुखी, कटुमुखी, क्रोधनी, अशनी, कुटुम्बिका, मुक्तिका, चन्द्रिका, बलमोहिनी, सामान्या, हासिनी, लम्बा, कोविदारी, समासवी, कर्कुकर्णी, महानादा, महादेवी, महोदरी, हुङ्कारी, रुद्र सुसटा, रुद्रेशी, भूतडामारी, पिण्डजिह्वा, चलज्ज्वाला, शिवा, ज्वालामुखी, इन इतनी तथा अन्य माताओं का देवेश्वर ने उस समय मे सृजन किया था ।। २६, ३०, ३१, ३२ ।। उस समय मे इन महा घोराओं ने अन्धकों के रुधिर का पान किया था । इसके अनन्तर अन्धकों के रुधिर से सभी माताएँ परम तृप्ति को प्राप्त हुई थीं । उनके तृप्त होने पर भी पुन. अन्धकों की प्रजा उत्पन्न हुई थी । शूल और मुद्गर हाथों में धारण करने वाले उनके द्वारा महादेव बहुत ही अर्दित

हुए थे। इसके उपरान्त वह देव शंकर अन्धकों के द्वारा व्याकुल कर दिये गये थे और फिर वे अज—प्रभु वासुदेव भगवान् की शरणागति में प्राप्त हुए थे ॥३३–३५॥

ततस्तु भगवान् विष्णुः सृष्टवान् शुष्करेवतीम् ।
या पपौ सकलन्तेषामन्धकानामसृक् क्षणात् ॥
यथा यथा च रुधिरं पिबन्त्यन्धकसम्भवम् ॥३६॥
तथा तथाऽधिक देवी सशुष्यति जनाधिप ! ।
पीयमाने तथातेषामन्धकानां तथासृजि ॥
अन्धकास्तु क्षयन्नीताः सर्वे ते त्रिपुरारिणा ॥३७॥
मूलान्धकन्तु विक्रम्य तदा शर्वस्त्रिलोकधृक् ।
चकार वेगाच्छूलाग्रे सचतुष्टावशङ्करम् ॥३८
अन्धकस्तु महावीर्यस्तस्य तुष्टोऽभवद्भवः ।
सामीप्य प्रददौ नित्य गणेशत्व तथैव च ॥३९
ततो मातृगणाः सर्वे शङ्कर वाक्यमब्रुवन् ।
भगवन् ! भक्षयिष्यामः स देवासुरमानुषान् ॥४०
त्वत्प्रसादाज्जगत् सर्वं तदनुज्ञातुमर्हसि ।
भवतीभिः प्रजाः सर्वा रक्षणीया न सशयः ॥४१
तस्माद्घोरानभिप्रायान्मन शीघ्रं निवर्त्यताम् ।
इत्येव शङ्करेणोक्तमनादृत्य वचस्तदा ॥४२

इसके अनन्तर भगवान् विष्णु ने शुष्क रेवती की सृष्टि की थी जिसने क्षण भर में ही उन अन्धकों के रक्त को पी लिया था। हे जनाधिप! जैसे २ वे उस अन्धक के रुधिर का पान करती थी वैसे २ ही देवी अधिक शुष्क हो जाया करती थी। उस प्रकार से अन्धकों के रक्त का पान कर लेने पर वे सब अन्धक त्रिपुरारि के द्वारा क्षय को प्राप्त कर दिये गये थे ॥३६, ३७॥ उस समय में जो मूल अधिक [illegible] त्रिलोकी के धारण करने वाले भगवान् शिव ने विक्रम करके

उसको अपने त्रिशूल के अग्रभाग पर कर दिया था। उस अन्धक ने फिर भगवान् शंकर का स्तवन किया था। वह अन्धक महान् वीर्य वाला था और उससे भगवान् भव परम तुष्ट हो गये थे। फिर तो शंकर ने उसको अपनी समीपता को रहने का पद तथा गणेश व पद का प्रदान किया था ॥ ३८, ३९ ॥ इसके अनन्तर सब मातगणो ने भगवान् शंकर से यह वाक्य कहा था—हे भगवन् ! हम अब सब देव-असुर और मानवो का भक्षण करेगी क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् आपके ही प्रसाद से समुत्पन्न हुआ है और स्थित है सो अब आप हमको आज्ञा प्रदान करने के योग्य होते हैं। भगवान् शङ्कर ने उनसे कहा था। शंकर बोले—आप सबको इन प्रजाओ की रक्षा करनी चाहिए। इसमे कुछ भी संशय नही है। इसलिये इन घोर जो प्रजाओ के भक्षण कर जाने के अभिप्राय हैं उनसे शीघ्र ही अपने मन को हटालो। इस प्रकार से कहे हुए इन भगवान् शंकर के वचनो का उन मातृगणो ने उस समय मे अनादर कर दिया था ॥४०, ४१ ४२॥

भक्षयामसुरस्युग्रास्त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
त्रैलोक्ये भक्ष्यमाणे तु तदा मातृगणेन वै ॥४३
नृसिंहमूर्ति देवेश प्रदध्यौ भगवाञ्छिव ।
अनादिनिधन देव सर्वलोकभवोद्भवम् ॥४४
दैत्येन्द्रवक्षोरुधिरचर्चिताग्रमहानखम् ।
विद्युज्जिह्व महादंष्ट्र स्फुरत्केसरकण्टकम् ॥
कल्पान्तामरुतक्षुब्ध सप्तार्णवसमस्वनम् ॥४५
वज्रतीक्ष्णनख घोरमाकर्ण्यादितानतम् ।
मेरुशैलप्रतीकाशमुदयार्कसमेक्षणम् ।४६
हिमाद्रिशिखराकारं चारुदंष्ट्रोज्ज्वलाननम् ।
नखाग्नि सृतरोषाग्नि ज्वालाकेसरमालिनम् ॥४७
वज्राङ्गद सुमुकुट हारकेयूरभूषणम् ।

श्रोणीसूत्रेण महता काञ्चनेन विराजितम् ॥४८
नीलोत्पलदलश्याम वासोयुगविभूषणम् ।
तेजसाक्रान्तसकलब्रह्माण्डागारसंकुलम् ॥ ४६

अत्युग्र स्वरूप वाली उन माताओं ने इस चराचर सम्पूर्ण जगत् तथा त्रैलोक्य का भ्रमण करना आरम्भ कर दिया था। उस समय मे मातगण के द्वारा इस त्रिलोकी के भक्ष्यमाण होने पर भगवान् शिव ने देवेश श्री नृसिंह मूर्ति का ध्यान किया था जिनका स्वरूप आदि और अन्त मे रहित है और जो इस सम्पूर्ण लोक के उत्पत्ति को करने वाले हैं। दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु के वक्ष स्थल के रुधिर से चर्चित महान् नखों वाले—विद्युत के तुल्य जीभ से युक्त—महान् दाढो वाले—स्फुरित हुए केसरो के कण्टकों से सम्युत-कल्प के अन्त मे क्षाभ से पूर्ण मारुत से समन्वित तथा सपुष्पर्ण वृक्षों के तुल्य ध्वनि वाले थे। वज्र के समान तीक्ष्ण नखो वाले-घोर-कानों तक व्याहित मुख वाले—मेरु पर्वत के सदृश-उदय कालीन सूर्य के समान नेत्रो वाले-हिमालय को शिखर के समान आकार मे सयुत-सुन्दर दाढो समुज्ज्वल मुख वाले-नखो मे निकली हुई रोषाग्नि को ज्वालाओ की माला वाल—वज्र के अङ्गा क धारण कर्त्ता-मुकुट से युक्त—हार और केयूरो के आभरण स भूषित—तेज स समाक्रान्त सम्पूण ब्रह्माण्ड के आगार से सकुल उनका स्वरूप था। ॥ ४३-४६॥

पवन भ्राम्यमाणाना हुतहव्यवहाचिपाम् ।
आवर्तसदृशाकारै. सयुक्त देहलामजै. ॥५०
सर्वपुष्पविचित्राञ्च धारयन्त महास्रजम् ।
स दृष्टमात्रो भगवान् प्रददौतस्य दर्शनम्॥५१
यादृशेनैवरूपेण ध्यात रुद्रेण धीमता ।
तादृशेनैव रूपेण दुर्निरीक्ष्येण दैवतैः ॥५२

प्रणिपत्य तु देवेश तदा तुष्टाव शङ्कर ।
नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ ! नरसिंहवपुर्धर ! ॥५३
दैत्यनाथासृजापूर्ण ! नखशक्तिविराजित ! ।
तत सकलसलग्नहेमपिङ्गलविग्रह ! ॥५४
नतोऽस्मिपद्मनाभ ! त्वासुशक्र ! जगद्गुरो ।
कल्पान्ताम्भोदनिर्घोप ! सूयकोटिसमप्रभ ॥५५
सहस्रयमसक्रोध ! सहस्रेन्द्रपराक्रम ! ।
सहस्रधनदस्फीत ! सहस्रवरुणात्मक ! ॥५६

हुत की हुई हव्य को वहन करने वाले अग्नि की भ्रम्यमाण अर्चियो के पवन, आवर्त के सदृश आकारो वाले देह के लोमजो से सयुक्त, सभी तरह के पुष्पो से अदभुत महामाला को धारण करने वाले श्री नृसिंह का स्वरूप था । जसे ही शिव ने उनका उपर्युक्त स्वरूप से समन्वित वपु का ध्यान किया था वैसे ही तुरन्त उन्होने शिव को अपना दर्शन दिया था । जिस प्रकार द स्वरूप का धीमान् रुद्रदेव क द्वारा ध्यान किया गया था उसी प्रकार के देवो के द्वारा भी दुर्निरीक्षणीय स्वरूप म वह वहाँ उपस्थित हुए थे । भगवान् शकर ने उनको प्रणिपत करके फिर स्तुति की थी । भगवान् शकर ने कहा हे जगत् के स्वामिन् ! आप तो नर और सिंह दोनो क स्वरूप को धारण करने वाले हैं । ऐसे आपको नमस्कार है । हे दैत्यनाथा के रक्त से आपूर्ण हे नखा की शक्ति से विराजमान ! हे सम्पूण सलग्न हेम के सदृश पिङ्गल विग्रह वाल ! हे पद्मनाभ ! मैं आपका प्रणत होता हूँ । हे सुरो के शक्र ! हे जगद् के गुरो ! हे कल्पान्त में अम्भोद के समान निर्घोष वाले ! आप तो करोडो सूर्यों के समान प्रभा वाले हैं । आपका क्रोध सहस्रो यमो के समान है । आप सहस्रों इन्द्रों के समान पराक्रम वाले हैं । आप सहस्रो धनदो के तुल्य स्फीत हैं और आप सहस्रो वरुणो के स्वरूप वाले हैं । ।५३-५६ ।।

सहस्रकालरचित ! सहस्रनियतेन्द्रिय ।
सहस्रभूमिसद्धर्य ! सहस्रानन्त ! मूर्तिमन् ! ।।५७
सहस्रचन्द्रप्रतिम ! सहस्रग्रहविक्रम ! ।
सहस्ररुद्रतेजस्क ! सहस्रब्रह्मसस्तुत ! ।।५८
सहस्रबाहुवर्गोग्र ! सहस्रास्य निरीक्षण ! ।
सहस्रयन्त्रमथन ! सहस्रवधमोचन ! ।।५९
अन्धकस्य विनाशयया.सृष्टा.मातरो मया ।
अनादृत्य तु मद्वाक्यम्भक्षयन्त्यद्भुता प्रजा ।।६०
कृत्वा ताश्च न शक्तोऽह सहर्तमपराजित ।
स्वयङ्कृत्वा कथन्तासाविनाशमभिकारये ।।६१
एवमुक्त: स रुद्रेण नरसिंहवपुर्धर. ।
ससर्ज देवोजिह्वायास्तदावाणीश्वरी हरि. ।।६२
हृदयाच्च तथा माया गुह्याच्च भवमालिनी ।
अस्थिभ्यश्च तथाकाला सृष्टापूर्वं महात्मना ।।६३

हे सहस्र कालो से रचित ! हे सहस्र नियत इन्द्रियो वाले ! हे सहस्र भूमि सद्धर्य ! हे सहस्रानन्त ! हे मूर्तिमन् ! हे सहस्र चन्द्रो की प्रतिमा वाले ! आप तो सहस्रो ग्रहो के विक्रम वाले हैं और सहस्र चन्द्रों के तेज से सयुत हैं। आप सहस्रो ब्रह्माओ के द्वारा संस्तुत हैं। हे सहस्र बाहु वर्गोग्र ! हे सहस्राक्ष के समान नेत्रों वाले ! हे सहस्र यन्त्र मन ! हे सहस्र बध मोचन ! मैंने अन्धक दैत्य के विनाश के लिये जिन मातृगण का सृजन किया था वे ही आज मेरे वचन का अनादर करके उन प्रजाओ का भक्षण कर रहे हैं। हे अपराजित! उस मातृगण को सृजन करके अब उसके संहार करने मे मैं असमर्थ हो रहा हूँ क्योकि स्वय ही मैंने जिसका बनाया था उसका विनाश मैं ही स्वय कैसे करूँ। इस प्रकार से रुद्रदेव के द्वारा उन नरसिंह वपु के धारी प्रभु से जब कहा गया था उन नरदेव ने जिह्वा की वाणीश्वरी को

रचना की थी। हृदय से माया—गुह्य से भवमालिनी और अस्थियों से कोली का पहिले उस महात्मा ने सृजन किया था ॥ ५७-६३ ॥

यया तद्रुधिरम्पीतमन्धकाना महात्मनाम् ।
याचास्मिन्कथिता लोकेनामत शुष्करेवती ॥६४
द्वात्रिंशन्मातर सृष्टा गात्रेभ्यश्चक्रिणा तत ।
तासा नामानि वक्ष्यामि तानि मे गदत शृणु ॥६५
सर्वास्तासु महाभागा घण्टाकर्णी तथैव च ।
त्रैलोक्यमोहिनी पुण्या सवसत्ववशङ्करी ॥६६
तथा च चक्रहृदया पञ्चमी व्योमचारिणी ।
शङ्खिनी लेखिनी चैव कालसङ्कर्षणी तथा ॥६७
इत्येता पृष्ठगाराजन् ! वागीशानुचरा: स्मृता ।
सङ्कर्षणीतथाश्वत्थाबीजभावापराजिता ॥६८
कल्याणी मधुदंष्ट्री च कमलोत्पलहस्तिका ।
इति देव्यष्टक राजन् ! मायानुचरमुच्यते ॥६९

जिसने महात्मा अन्धकों का रुधिर पान किया था और जो नाम से लोक में शुष्क रेवती कही गयी थी। इसके पश्चात् चक्रधारी प्रभु ने अपने ही गात्रों से बत्तीस माताओं का सृजन किया था। उन सबके नामों को बतलाने वाले मुझसे अब तुम सुनलो ॥ ६४, ६५ ॥ उनमें सभी महान् भागों वाली थी। घण्टा कर्णी—त्रैलोक्य मोहिनी—पुण्या सवसत्व शंकरी—चक्र हृदया—पाँचवी व्योमचारिणी—शङ्खिनी—लेखिनी काल सङ्कर्षिणी ये सब, हे राजन् ! उस वागीश के पीछे गमन करने वाली अनुचारिणी थी—ऐसा कहा गया है। संकर्षणी—अश्वत्था—बीजभावा—अपराजिता—कल्याणी—मधुदंष्ट्री और कमला तथा उत्पल हस्तिका हे राजन् ! देवियों का जो अष्टक था वह मायानुचर कहा जाता है। ॥ ६६—६९ ॥

अजिता सूक्ष्महृदया वृद्धा वेशाश्मदंशना ।
नृसिंहभैरवा विल्वा गरुत्महृदया जया ॥७०
भवमालिन्यनुचरा इत्यष्टौ नृपमातरः ।
आकर्णनी सम्भटा च तथैवोत्तरमालिका ॥७१
ज्वालामुखी भीषणिकाकामधेनुश्चवालिका ।
तथापद्मकराराजन् ! रेवत्यनुचरा स्मृता ॥७२
अष्टौ महावलाः सर्वा देवगात्रसमुद्भवाः ।
त्रैलोक्यसृष्टिसंहारसमर्थाः सर्वदेवताः ॥७३
ताः सृष्टमात्रादेवेन क्रुद्धामातृगणस्य तु ।
प्रधाविता महाराज ! क्रोधविस्फारितेक्षणाः ॥७४
अविपह्यतमन्तासा दृष्टितेजः सुदारुणम् ।
तमेव शरण प्राप्ता नृसिंहो वाक्यमब्रवीत् ॥७५
यथा मनुष्याः पशवः पालयन्तिचिरात् सुतान् ।
जयन्ति ते तथैवाशु यथावैदेवताव सुतान् ॥७६
भवन्तु तथालोकान्पालयन्तु मयेरिताः ।
मनुजैश्च तथा देवैर्यजध्व त्रिपुरान्तकम् ॥७७

अजिता, सूक्ष्महृदया, वृद्धा, वेशाश्म दशना, नृसिंह भैरवा, विल्वा गरुत्महृदया, जया और भवमालिनी ये आठ अनुचर नृप माताऐं थीं। आर्कर्णानी, सम्भटा, उत्तर मालिका, ज्वालामुखी, भीषणिका, कामधेनु, वालिका, देणजन् ! पद्मकरा ये रेवती की अनुचारिणी थीं—ऐसा कहा गया है। ये आठ महाबल वाली और सभी देव के गात्रों से समुत्पन्न होने वाली थी। ये सब देवता त्रैलोक्य की सृष्टि एवं संहार करने में समर्थ थी। वे देव के द्वारा सृष्ट मात्र होते ही हे महाराज ! अति क्रुद्ध होकर क्रोध से विस्फारित नेत्रों वाली मातृगण के पीछे प्रधावित हुई थीं। उनकी दृष्टि का तेज अविपह्यतम और परम सुदारुण था। उन सबने उन्हीं की शरणागति प्राप्त की थी तब श्री नृसिंह प्रभु ने यह वाक्य कहा था—जिस

प्रकार से मनुष्य और पशु चिरकाल तक सुतों का पालन किया करते हैं उसी भांति देवगण के समान शीघ्र ही जय को प्राप्त होते हैं। आप लोग मेरे द्वारा प्ररित होकर लोकों का पालन करें तथा मनुष्य और देवगण सब त्रिपुरान्तक का अभ्यर्चन किया करें ॥७०, ७१, ७२, ७३, ७४॥ ॥७५, ७६, ७७॥

नच बाधा प्रकर्तव्या ये भक्तास्त्रिपुरान्तके।
येच मा सस्मरन्तीह तेच रक्ष्या सदानरा ॥७८
बलिकर्म करिष्यंति युष्माक ये सदा नरा।
सवकामप्रदास्तेषा भविष्यध्वं तथच। ७९
उच्छासनादिक ये च कथयंति मयेरितम्।
तेच रक्ष्या सदालोकारक्षित य मदासनम् ॥८०
रौद्री चव परा मूर्ति महादेव प्रदास्यति।
युष्म मुख्या महादव्यस्तद्युक्त परिरक्षय ॥८१
मया मातृगण सृष्टा योऽय विगतसाध्वस।
एप नित्य विशालाक्ष्यो ममव सह रस्यते ॥८२
मया सार्द्ध तथा पूजा नरेभ्यश्चव लप्स्यथ।
पृथक् सुपूजिता लोके सर्वान् कामान् प्रदास्यथ। ८३
शाक्तो सपूजयिष्यंति ये च पुत्रार्थिनो जना।
तेषा पुत्रप्रदा देवी भविष्यंति तनसशय। ८४

भगवान् त्रिपुरान्तक के जो भी भक्तगण हो उनको कोई भी बाधा नहीं करनी चाहिए। जो मनुष्य यहां पर मेरा स्मरण किया करते हैं उनकी भी सदा रक्षा करनी चाहिए। जो नर आपका सवदा बलिकर्म किया करते हैं अर्थात् आपको बलि समर्पित करते हैं उनकी समस्त काम नाओं के प्रदान करने वाले आप लोग उसी भांति बन जाइये। मेरे द्वारा प्रेरित जो उच्छासनादिक का कथन करते हैं उन लोकों की सदा रक्षा करनी चाहिए और मेरे आसन की भी सुरक्षा करने की कृपा करें। महादेव परा

रौद्री मूर्त्ति का प्रदान करेगे। आपमे जो मुख्य महादेवियां हैं वे सब उपर्युक्त सबकी रक्षा करे। मेरे द्वारा इस मातृगण का सृजन किया गया है जो यह इस समय मे विगत भय वाला है यह नित्य ही विशाल नेत्रो वाली मेरे ही साथ रमण मे रमण करेगे। मेरे ही ये नरों से पूजा प्राप्त करेंगी। यदि इन्हे पृथक् भी समर्चन किया जावेगा और लोग ऐसा करेंगे तो ये सभी मनोकामनाओं की प्राप्ति करा देंगी। जो पुत्रो के प्राप्त करने की इच्छा वाले हैं उन जनो की यह देवी पुत्र प्रदा अवश्य ही हो जायेंगी—इसमे तनिक भी सशय का कोई अवसर ही नहीं रहता है ॥ ७८, ७६ ॥ ॥८०, ८१, ८२, ८३, ८४॥

एवमुक्त्वा तु भगवान् सह मातृगणेन तु।
ज्वालामालाकुलवपुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥८५
तत्र तीर्थं समुत्पन्न कृतशौचेति यज्जगुः।
तत्रापि पूर्वजो देवो जगदार्तिहरो हरः ॥८६
रौद्रस्य मातृवर्गस्य दत्वा रुद्रस्तु पार्थिव।
रौद्रा दिव्या तनु तत्रमातृमध्येव्यवस्थित ॥८७
सप्त ता मातरो देव्य. सार्द्धनारीनरः शिव.।
निवेश्य रौद्र तत् स्थान तत्रैवान्तरधीयत ॥८८
स मातृवर्गस्य हरस्य मूर्त्तिर्यदा यदा याति च तत्समीपे।
देवेश्वरस्यापि नृसिंहमूर्त्ते. पूजा विधत्ते त्रिपुरान्धकारि ॥८९

इस प्रकार मे कहकर वह भगवान् मातृगण के साथ ही ज्वालाओं की मालाओं से समाकुल वपु वाले वहा पर अन्तर्हित हो गये थे ॥८५॥ वहां पर एक तीर्थ की उत्पत्ति हो गई थी जिसको कृतशौचा—इस नाम से गान किया जाता था। वहा पर भी पूर्वज देव इस जगत् की आर्ति का (पीडा का) हरण करने वाले हर ही थे ॥८६॥ हे पार्थिव! भगवान् रुद्रदेव रौद्र मातवर्ग को रौद्र तथा दिव्य तनु प्रदान करके वहा पर मातृ मध्य मे व्यवस्थित हो गये थे। वे सात तो माताएँ देवियां हैं और सार्द्ध

नारी नर शिव हैं। उस रौद्र स्थान को निवेशित करके वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे। वह जब जब भी वह मातृ वर्ग की हर की मूर्ति उसके समीप में जाती है तब त्रिपुरान्धकारि शिव देवेश्वर नृसिंह मूर्ति की भी पूजा किया करते हैं ॥८७, ८८, ८९॥

७३—वाराणसी माहात्म्य

श्रुतोऽन्धकवधः सूत! यथावत्त्वदुदीरितः।
वाराणस्यास्तु माहात्म्य श्रोतुमिच्छाम साम्प्रतम् ॥१
भगवान् पिङ्गलः केन गणत्वं समुपागतः।
अन्नदत्वञ्च सम्प्राप्तो वाराणस्यां महाद्युतिः ॥२
क्षेत्रपालः कथ जातः प्रियत्वञ्च कथङ्गतः।
एतदिच्छाम कथितं श्रोतुं ब्रह्मसुत! त्वया ॥३
शृणुध्वं यथा लेभे गणेशत्व स पिङ्गलः।
अन्नदत्वं च लोकानां स्थान वाराणसी त्विह ॥४
पूर्णभद्रसुतः श्रीमानासीद्यक्षः प्रतापवान्।
हरिकेश इतिख्यातो ब्रह्मण्यो धार्मिकश्च ह ॥५
तस्य जन्मप्रभृत्येव शर्वे भक्तिरनुत्तमा।
तदासीत्तन्नमस्कारस्तन्निष्ठस्तत्परायणः ॥६
आसीनश्च शयानश्च गच्छंस्तिष्ठन्ननुव्रजन्।
भुञ्जानोऽथ पिबन्वापि रुद्रमेवान्वचिन्तयत् ॥७

ऋषि वृन्द ने कहा—हे सूतजी! आपके द्वारा वर्णित ठीक २ रीति से हमने अन्धक का वध श्रवण कर लिया अब इस समय में वाराणसी पुरी का माहात्म्य हम श्रवण करने की सब अभिलाषा रखते हैं। ॥१॥ भगवान् पिङ्गल किस के द्वारा अथवा किस कारण से गणत्व को प्राप्त हुए थे? वह महा द्युति से सुसम्पन्न वाराणसी मे अन्न दत्व को

भी सम्प्राप्त हो गये हैं ? ।।२।। यह क्षेत्रपाल कैसे हुए और प्रियत्व की प्राप्ति भी किस तरह से हुई थी ? हे ब्रह्माजी के पुत्र ! यह सब आपके द्वारा वर्णित हम सब श्रवण करना चाहते हैं। महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—उस पिङ्गल ने जिस रीति से गणेशत्व की प्राप्ति की थी उसे आप लोग सुनिये। लोकों को ग्रन्न देने वाले और यहाँ पर यह वाराणसी का स्थान जैसे प्राप्त हुआ वह भी सुनिये ।।३, ४।। पूर्णभद्र का पुत्र प्रताप वाला श्रीमान् यक्ष था। वह हरिकेश—इस नाम से विख्यात था और परम धार्मिक तथा ब्रह्मण्य था ।।५।। उसकी जन्म के आरम्भ से ही नवर भगवान् शिव में अतीव उत्तम भक्ति थी। उस समय में शिव को ही नमस्कार करने वाला—उन्हीं में पूर्ण निष्ठा रखते हुए यह सवदा उन्हीं में परायण रहा करता था ।।६।। यह बैठा हुआ—शयन करता हुआ—गमन करते हुए—स्थित रहते हुए—अनुव्रजन करते हुए—भोजन करने की दशा में तथा पान करते हुए भी रुद्र का ही सदा अनुचिन्तन किया करता था ।।७।।

तमेव युक्तमनसम्पूर्णभद्रः पिताब्रवीत् ।
न त्वा पुत्रमहं मन्येदुर्जातो यस्त्वमन्यथा । ८
न हि यक्ष कुलीनानामेतद्वृत्तं भवत्युत ।
गुह्यका वत यूयं वै स्वभावात् क्रूरचेतसः ।।९
क्रव्यादाश्चैव किं भक्षा हिंसाशीलाश्च पुत्रक ।
मैवं कार्षीनते वृत्तिरेवं दृष्टा महात्मना । १०
स्वयम्भुवा यथादिष्टा त्यक्तव्या यदि नो भवेत् ।
आश्रमान्तरज कर्म न कुर्युर्गृहिणस्तु तत् ।।११
हित्वा मनुष्यभाव च कर्माणि विविधेश्वर ।
यत्त्वमेव विमार्गस्थो मनुष्याज्जात एव च ।।१२
यथावद्विविधन्येषां कर्म तज्जातिमाश्रयम् ।
मयापि विहितं सम्यक् कर्मैतन्नात्र संशयः ।।१३

इस प्रकार से युक्त मन वाले उससे उसके पिता पूर्ण ने कहा था–मैं पुत्र तुझको दुर्जात नहीं मानता हूं जो कि तू अन्यथा रहा करता है। ॥८॥ यक्ष कुलों में समुत्पन्नों का यह चरित नहीं हुआ करता है। खेद है आप लोग गुह्यक हैं स्वभाव से क्रूर चित वाले हुआ करते हैं ॥६॥ हे पुत्रक ! क्रव्याद लोग क्या भक्षण करने वाले हैं और हिंसा करने के स्वभाव वाले होते हैं। ऐसा मत करो। महान् आत्मा वाले के द्वारा तुम्हारी इस प्रकार की वृत्ति नहीं देखी गयी है ॥१०॥ स्वयम्भू ने जो समादिष्ट की है यदि आपमें हो तो उसे त्याग देना चाहिये। जो गृही होते हैं वे दूसरे आश्रम मे उत्पन्न होने वाले कर्म को नहीं किया करते हैं और न उन्हे करना ही चाहिये ॥११॥ मनुष्यो के भाव को छोड कर विविध भाँति के कर्म्मों के द्वारा चरण करो। जो तू इस प्रकार से विमार्ग मे स्थित है तो तू मनुष्य से ही समुत्पन्न हुआ है। यथावत् उनके अनेक कर्म है जो उनकी जाति का सश्रय रखने वाला है। मैंने भी कर्म्म किया है उसे देखो। इससे इसमे कुछ भी सशय नही होगा ॥१२, १३॥

एवमुक्त्वा स तं पुत्रं पूर्णभद्रः प्रतापवान् ।
उवाचनिष्क्रमनुक्षिप्रं गच्छपुत्र ! यथेच्छसि । १४
ततः स निर्गतस्त्यक्त्वा गृहं सम्बन्धिनस्तथा ।
वाराणसी समासाद्यतपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥१५
स्थाणुभूतो ह्यनिमिषः शुष्ककाष्ठोपलोपमः ।
सन्नियम्येन्द्रियग्राममवातिष्टत निश्चलः ॥१६
अथ तस्यैवमनिशन्तत्परस्य तदा शिवः ।
सहस्रमेकं वर्षाणां दिव्यमप्यध्यवतत ॥१७
वल्मीकेन समाक्रान्तो भक्ष्यमाण. पिपीलिकैः ।
वज्रसूचीमुखैस्तीक्ष्णै विध्यमानस्तथैव च ॥१८
निमांसरुधिरत्वक् च कुन्दशङ्खेन्दुसप्रभः ।
अस्थिशेषोऽभवच्छर्वं देवं वै चिन्तयन्नपि ॥१९

एतस्मिन्नन्तरे देवी विज्ञापयत शङ्करम् ।
उद्यान पुनरेवेह द्रष्टुमिच्छामि सर्वदा ॥२०
क्षेत्रस्य देव माहात्म्य श्रोतु कौतूहल हि मे ।
यतश्च प्रियमेतद्दो तथास्य फलमुत्तमम् ॥२१

इति विज्ञापितो देव शर्वाण्या परमेश्वर ।
शव पृष्टायथातथ्यमारयातुमुपचक्रमे ।।२२
निजगाम च ददेश पावत्या सह शङ्कर ।
उद्यान दशयामास देव्या देव पिनाकधृक ।।२३
प्रोत्फुल्लनानाविधगुल्मशोभित लताप्रतानावनत मनोहरम् ।
विरूढपुष्पं परित प्रियगुभि सुपुष्पितं कण्टकितश्च केतकं ।।२४
तमालगुल्मनिचित सुगन्धिभि सकर्णिकारैकुलैश्च सवश ।
अशोकपुन्नागवर सुपुष्पितैर्द्विरेफमालाकुलपुष्पसञ्चय ।।२५
क्वचित्प्रफुल्लाम्बुजरेणुरूषितैर्विहङ्गमैश्चारुकलप्रणादिभि ।
विनादित सारसमण्डनादिभि प्रमत्तदात्यूहरुतैश्च वल्गुभि ।।२६
क्वचिच्च चक्राह्वरवोपनादित क्वचिच्च कादम्बकदम्बकयुतम् ।
क्वचिच्च कारण्डवनादनादित-

क्वचिच्च मत्तालिकुलाकुलीकृतम् ।२७।।
मदाकुलाभिस्त्वमराङ्गनाभि निषेवितञ्चारु सुगन्धिपुष्पम् ।
क्वचित् सुपुष्पै सहकारवृक्षैलतोपगूढैस्तिलकद्रुमैश्च ।२८

शर्वाणी के द्वारा परमेश्वर देव को यह विज्ञापित किया गया था और याथातथ्य का जब शिव प्रभु से पूछा गया तो वह पूछे हुए हाकर इस कहन के लिये उपक्रम करने लगे थे ।।२२।। देवेश्वर भगवान् शङ्कर पार्वती देवी के साथ ही निकलकर चले गये थे । फिर पिनाकधारी देव ने वह उद्यान देवी को दिखलाया था ।।२३।। देवो के देव वाले—यह उद्यान विकसित नाना भाँति के गुल्मा स शोभा वाला था । लताओं के प्रतानो स अवनत एव मनोहर था । दोनों ओर विरूढ पुष्पो वाले प्रियगुओ से—सुन्दर पुष्पों से समा वत कण्टकित केतकी स—सुगन्ध युक्त तमाल के गुल्मा स निर्मित और सब आर कणिकारा के सहित बकुलो से वह समावृत था ।।२४, २५।। द्विरफों (भौरो) की मालाओ स समाकुल पुष्पो के सञ्चय वाले सुपुष्पित अशोक पुन्नाग वरों स सयुत है ।।२५ । इस उद्यान मे कहीं

चरु प्रफुल्ल कमलो के रेणु से रूषित तथा चारु एवं कल (मधुर) प्रणाद करन वाले विहगमो से यह निनादित हो रहा था तथा किसी जगह पर सारस मण्डन आदि से एव परम वल्गु प्रमत्त दात्यूहो क शब्दों से शब्दायमान था ।।२६।। किसी स्थल पर चक्रवाकों की ध्वनियो से निनादित और कही पर कदम्बो के समूहो से यह उद्यान समुन था । किसी स्थान मे कारण्डवो की कल ध्वनियो से निनादित था और कहीं पर प्रमत्त अलियो के कुलो से आकुलीकृत हो रहा था ।। २७ ।। महान् कुलो वाली भ्रमरों की अङ्गनाओ के द्वारा सेवित तथा सुन्दर एव सुगन्धित पुष्पो से परिपूर्ण यह उद्यान था । कही पर सुन्दर पुष्पो वाले सहकार के वृक्षो से तथा लताओ से उपगूढ तिलक के द्रुमो से समन्वित था ।।२८।।

प्रगीतविद्याधरसिद्धचारण प्रवृत्तनृत्याप्सरसाङ्गणाकुलम् ।
प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवित प्रमत्तहारीतकुलोरुनादितम् ।।२६
मृगेन्द्रनादाकुलसत्वमानसैः क्वचित् क्वचिद्द्वन्द्वकदम्बकं मृगैः ।
प्रफुल्लनानाविधचारुपङ्कजै सरस्तटाकैरुपशोभित क्वचित् ।।३०
निविडनिचुलनील नीलकण्ठाभिराम–
मदमुदितविहङ्गव्रातनादाभिरामम् ।
कुसुमिततरुशाखालीनमत्ताद्विरेफ–
नवकिशलयशोभाशोभितप्रान्तशाखम् ।।३१।।

क्वचिन्न दन्तिक्षतचारुवीरुध क्वचिल्लतालिङ्गितचारुवृक्षकम् ।
क्वचिद्विलासालसगामिबर्हिण निषेवित किं पुरुषव्रजै क्वचित् ।।३२
पारावतध्वनिविकूजितचारुशृङ्गै रभ्रङ्कषै. सितमनोहरचारुरूपैः ।
आकीर्णपुष्पनिकुरम्बविमुक्तहासैविभ्राजित–
त्रिदशदेवकुलैरनेकैं ।।३३।।
फुल्लोत्पलागुरुसहस्रवितानयुक्तै ।
स्तोयाशयैस्तमनुशोभितदेवमार्गम् ।।

मार्गान्तरागलितपुष्पविचित्रभक्ति-
सम्बद्धगुल्मविटपविहगैरुपेतम् ॥३४
तुङ्गाग्र नीलपुष्पस्तबकभरनतप्रान्तशाखैरशोकै
मत्तालिव्रातगीतश्रुतिसुखजननैर्भासितान्तमनोज्ञैः ।
रात्रौ चन्द्रस्य भासा कुसुमिततिलकैरेकतां सम्प्रयात
च्छायासुप्तप्रबुद्धस्थितहरिणकुलालुप्तदर्भाङ्कुराग्रम् ॥३५

(वह उद्यान विद्याधर—सिद्ध और चारणों के गीतों से परिवण—नृत्य करने मे प्रवृत्त हुई अप्सराओं के गणों से समाकुल था) परम प्रहर्ष वाले अनेक भाँति के पक्षियों के द्वारा वह उद्यान सेवित था। वह उद्यान प्रमत्त हारीत नाम वाले पक्षियों के समूह से उपनादित था ॥२६॥ किसी स्थल पर मृगेन्द्रों की गर्जनों से सत्वों के मानसों को समाकुलित करने वाला था। कोई भाग इसका मृगों के जोड़ों के समुदायों से युक्त था। कहीं पर खिले हुए अनेक तरह के चारु कमलों से युक्त सरोवर और तड़ागों के द्वारा यह उद्यान शोभा वाला था ॥३०॥ यह उद्यान घने निचुलों से नील वर्ण वाला—नील कण्ठों से अभिराम—मद से परम प्रसन्न पक्षियों के समूह के नाद से परम मनोहर था। पुष्पों वाले वृक्षों की शाखाओं में जिस उद्यान में भौंरे प्रमत्त होते हुए लीन हो रहे थे और नूतन पत्रों की शोभा से शोभित प्रान्त शाखाओं वाला वह उद्यान था। कहीं पर गजों के द्वारा किये गये क्षतों से सुन्दर वीरुधा वाला था और कहीं पर लताओं के द्वारा सुन्दर वृक्षों का आलिङ्गन किया जा रहा था। किसी स्थल पर विलास से अलस गमन करने वाले बर्हि वाला तथा वहाँ विम्पुरुषगण उस उद्यान का सेवन कर रहे थे ॥३१, ३२॥ पारावतों की ध्वनि से विशेष रूप से कूजित सुन्दर शिखरों से जो कि आकाश को छूने वाले बहुत ही ऊँचे थे और श्वेत एवं मनोहर चारु रूप से युक्त थे वह उद्यान विभ्राजित हो रहा था और समाकीर्ण पुष्पों के निकुरम्ब से विमुक्त हास्य वाले भाङ्गुदर्वा व कुञ्जों के द्वारा वह सेवित था ॥३३॥ खिले हुए

बड़े २ सहस्रों उत्पलों के विलासों से युक्त तोयाशयों से शोभा वाले देवमार्ग वाला वह उद्यान बहुत ही सुन्दर हो रहा था। मार्ग के बीच में गलित हुए पुष्पों से विचित्र भक्ति से सम्बद्ध झाड़ियों तथा विटपों से समायुक्त था बहुत ही ऊँचे जिनके अग्रभाग हैं ऐसे नीले पुष्पों के स्तवकों के भार से अवनत शाखाओं वाले अशोक के वृक्षों से समायुक्त था तथा अत्यन्त प्रमत्त भ्रमरों के समुदायों के गुञ्जित गीतों से कानों को सुख समुत्पन्न करने वाले और अन्दर मनोज्ञता को भासित करने वाले तिलकों के कुसुमों के द्वारा तथा रात्रि में चन्द्र की दीप्ति से एकता को प्राप्त हुआ और छाया में प्रसुप्त होकर फिर जगे हुए सस्थित हिरनों के कुलों से आलुप्त दर्भों के अकुरों वाला वह उद्यान था अर्थात् वहाँ पर लेटे हुए हरिणों के समूह से डाभों के अंकुर दबे हुए हो गये थे ॥३४, ३५॥

हंसानां पक्षपातप्रवलितकमलस्वच्छविस्तीर्णतोयम्
तोयानां तीरजातप्रविकचकदलीवाटनृत्यन्मयूरम्।
मायूरं पक्षचन्द्रैः क्वचिदपि पतितं रञ्जितक्ष्माप्रदेशम्
देशे देशे विकीर्णप्रमुदितविलसन्मत्तहारीतवृन्दम् ॥३६
सारङ्गैः क्वचिदपि सेवितप्रदेशं सच्छन्नं कुसुमचयैः क्वचिद्विटैः।
हृष्टाभिः क्वचिदपि किन्नराङ्गनाभिः
क्षीवाभिः समधुरगीतवृक्षखण्डम् ॥३७
संसृष्टं क्वचिदुपलिप्तकीर्णपुष्पैरावासैः परिवृतपादपं मुनीनाम्।
आमूलात् फलनिचितैः क्वचिद्विशालैरत्तुङ्गैः
पनसमहीरहैरुपेतम् ॥३८
फुल्लातिमुक्तकलतागृहसिद्धलील,
सिद्धाङ्गनाकनकनूपुरनादरम्यम्।
रम्यप्रियङ्गु तरुमञ्जरिसक्तभृङ्गं भृङ्गावलीषु॥
स्खलिताम्बुकदम्बपुष्पम् ॥३९॥
पुंस्कोकिलानिनदविघूर्णितपादपाग्रमग्रेऽमरो भुवि निपातितवज्रगुल्मम्।
गुल्मान्तरप्रभृतिनीलमृगालमूहं समुल्लसन्ततनुभूतामरवर्गदातृ ॥४०

चन्द्रांशुजालधवलैस्तिलकैर्मनोज्ञैः
सिन्दूरकुङ्कुमकुसुम्भनिभैरशोकैः ।
चामीकराभनिचयैरथ कर्णिकारैः
फुल्लारविन्दरचितैः सुविशालशाखैः ॥४१
क्वचिद्रजतपर्णाभैः क्वचिद्विद्रुमसन्निभैः ।
क्वचित्काञ्चनसङ्काशैः पुष्पैराचितभूतलम् ॥ ४२

अभी तक निरन्तर उसी उद्यान की शोभा का ही वर्णन किया जा रहा है वह उद्यान हंसों के पखो के प्रपात से विचलित होने वाले कमलों के द्वारा परम स्वच्छ एव विस्तीर्ण जल वाला था। जलाशयों के तट पर समुत्पन्न एव प्रविकस कदलियों के वाट म नृत्य करने वाले मयूरों से युक्त वह उद्यान था। किसी स्थल पर गिरे हुए मयूरों के पक्ष चन्द्रों के द्वारा रञ्जित क्षमा प्रदेश वाला था तथा देश-देश मे विकीर्ण—प्रमुदित—विलसत् मस्त हारीतों स सयुत वृक्षो वाला उद्यान था ॥३६॥ कहीं पर सारङ्गो सेवित प्रदेश वाला और किसी स्थल पर विचित्र कुसुमों से चर्चो से सञ्छन्न किसी स्थान पर परम क्षीव एव प्रहर्षित किन्नरों की अङ्गनाओ क द्वारा सुमधर गीता वाले वृक्षो के खण्डो से समन्वित वह उद्यान था ॥३७॥ कही पर सस्पृष्ट तथा उपलिप्त प्रकीर्ण पुष्पों से युक्त मुनियों के निवास स्थानो से परिवृत पादपो से समन्वित वह उद्यान था। कहीं पर अत्यन्त विशाल एव उत्तुङ्ग और मूल से ही लेकर फलो से निचित पनस वटहट) के वृक्षों से उपेत वह उद्यान था ॥३८॥ विकसित और अतिमुक्त लताओं के गृहो मे सिद्धो की लीला वाला था तथा सिद्धो की अङ्गनाओ के सुवर्ण रचित नूपुरों क नाद स परम सुन्दर वह उद्यान था। परमरम्य प्रियगु के वृक्षो की मञ्जरियों मे ससक्त भ्रमरो से समन्वित तथा भृङ्गों की कतारो म स्खलित होन वाले जल बदम्बा के पुष्पों स सयुत वह उद्यान था ॥३६॥ कुसुमा के उत्करो स मिश्रित वायु से विघूर्णित वृक्षो क अग्रभाग वाला तथा भूमण्डल म निपातित बांसो की

झाडियो से युक्त था। गुल्मों के बीच में लीन होने वाले मृगों से मधुराग वाला—सम्मोह को प्राप्त देहधारियों को अपवर्ग को देने वाला था। चन्द्रमा की किरणों के समान धवल मनःशिलाओं से [illegible], [illegible] और कुसुम्भ के तुल्य अशोकों से—चामीकर (सुवर्ण) के [illegible] कर्णिकारों से और परम विशाल शाखाओं के द्वारा [illegible] रचित वह उद्यान था। कहीं पर तो [illegible] कहीं पर द्रुमों के सदृश—कहीं पर सुवर्ण के [illegible] भूषण वाला वह उद्यान था ॥४१, ४२॥

पुन्नागेषु द्विजगणविरुत रक्ताशोका[illegible] ।
रम्योपान्तं श्रमहरपवनं फुल्लराजीवेषु [illegible] ॥४३॥
सकलभुवनभर्ता लोकनाथस्तदानीं
हिमशिखरिपुत्र्याः सार्द्धं मिष्टैर्गणैः [illegible] ।
विविधतरुविशाल मत्तहृष्टान्यपुष्ट[illegible]

से नमित था जिसके उपान्त परमरम्य थे—शारीरिक श्रम को हरण करने वाला वायु जिसमे वहन कर रहा था तथा विकसित कमलो में जिस उद्यान मे भ्रमरो का विलास हो रहा था ॥४३॥ उस समय म समस्त भुवनो के भरण करने वाले—लोको के नाथ ने अपने इष्ट गणेशो के साथ मे तुहिना शिखर हिमालय अद्रिराज की पुत्री देवी पार्वती को अनेक प्रकार के वृक्षो अत्य त विशाल—मत्त एव हृष्ट अन्यो के द्वारा पुष्प और उपवन के तरुओ स रम्य उस उद्यान को दिखा दिया था ॥४४॥ देवी ने कहा—हे देव ! परा शोभा से युक्त इस उदयान को तो आपने दिखला दिया है। अब समस्त इस क्षेत्र के गुणो को यहाँ पर आप कहने के योग्य है। अविमुक्त इस क्षेत्र के माहात्म्य को श्रवण करके भी मुझे पूर्ण तृप्ति नही हुई है। इसलिए इसे ही आप पुन मुझे श्रवण कराइये ॥४५, ४६॥ देवो क देव ने कहा—यह अत्य त ही गुह्यतम क्षेत्र है जो सदा मेरा वाराणसी है। यह सवदा सभी प्राणियो क मोक्ष का हेतु होता है ॥४७॥ हे देवि ! इस क्षेत्र मे सदा सिद्धगण मेरे ही व्रत म समास्थित रहते हैं। ये लोग विभिन्न प्रकार के चिह्नो क धारण करने वाले और नित्य ही मेरे लोक के प्राप्त करने की अभिकाङ्क्षा वाले थे ॥४८॥ मुक्त आत्मा वाले जितेन्द्रिय लोग अनेक वृन्दो म मनारीण और नाना प्रकार के विघ्नो से पूजित इस स्थल मे पर योग का अभ्यास किया करते हैं ॥४९॥

कमलोत्पलपुष्पाढ्यैः सरोभिः समलङ्कृते ।
अप्सरोगणगन्धर्वैः सदा संसविते शुभे ॥५०
रोचते मे सदा वासायन कार्येण तच्छृणु ।
मन्मना मम भक्तश्च मयि सर्वार्पितक्रियः ॥५१
यथा मोक्षमिहाप्नोति ह्यन्यत्र न तथा क्वचित् ।
एतन्मम पर दिव्य गुह्याद्गुह्यतर महत् ॥५२
ब्रह्मादयस्तु जानन्ति येऽपि सिद्धा मुमुक्षवः ।
अत प्रियतम क्षेत्र तस्मान्चेह रतिर्मम ॥५३

विमुक्तं न मया यस्मान्मोक्ष्यते वा कदाचन।
महत् क्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिदम्मृतम् ॥५४
नैमिषेऽथ कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे।
स्नानात्संसेविताद्वापि न मोक्षः प्राप्यते यतः ॥५५
इह सम्प्राप्यते येन तत एतद्विशिष्यते।
प्रयागे च भवेन्मोक्ष इह वा मत्परिग्रहात् ॥५६

कमल-उत्पल पुष्पों से आढ्य सरोवरों से समलङ्कृत-अप्सराओं के गण और गन्धर्वों के द्वारा सदा से सेवित शुभ स्थल यह है। जिस कार्य्य के कारण मुझे सदा इसका निवास पसन्द है उसे भी सुनलो। मेरे में ही मनको निवेशित करने वाला मुझ में ही सर्वस्व समर्पित कर देने वाला तथा सब किये हुए कर्मों को भी मेरी ही सेवा में अर्पित करने वाला मेरा भक्त जिस प्रकार से यहाँ मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है वैसा अन्य किसी भी स्थान में नहीं कर सकता है। यह ही मेरा परम दिव्य-महत् और गुह्य से गुह्यतम क्षेत्र है ॥५०, ५१, ५२॥ ब्रह्मादिक देवगण और जो भी मुमुक्षु सिद्ध लोग हैं वे इस भली भाँति जानते हैं। इसीलिये मेरा यह सबसे अधिक प्रिय क्षेत्र है और इसी कारण से मेरी यहाँ पर अत्यधिक रति है। इसी से मैंने इसको कभी नहीं छोड़ा है और न भविष्य में भी मेरे द्वारा इसका त्याग किया जायगा इसी से उसका यह महत् क्षेत्र है और यह उसका अविमुक्त कहा गया है ॥५३, ५४॥ नैमिष—कुरुक्षेत्र गङ्गाद्वार और पुष्कर में स्नान करने से तथा सेवित करने से भी मोक्ष प्राप्त नहीं किया जाता है। वहीं परम दुर्लभ मोक्ष यहाँ पर सम्प्राप्त कर लिया जाया करता है इसी से यह सब से विशिष्ट होता है। या तो प्रयाग में इस मोक्ष की प्राप्ति होती है अथवा यहाँ पर मेरे परिग्रह करने से मुक्ति हो जाती है ॥५५, ५६॥

प्रयागादपि तीर्थाग्र्यादिदमेव महत् स्मृतम्।
जैगीषव्यः परां सिद्धिं योगतः स महातपाः ॥५७

देवि ! यहां पर ही मेरी समाराधना करके अत्युत्तम सिद्धि को प्राप्त करेगा ॥ ६३ ॥

पराशरसुतो योगी ऋषिर्व्यासो महातपाः ।
धर्मकर्त्ता भविष्यश्च वेदसंस्थाप्रवर्तकः ॥६४
रंस्यते सोऽपि पद्माक्षि ! क्षेत्रेऽस्मिन् मुनिपुङ्गव. ।
ब्रह्मा देवर्षिभि. सार्द्धं विष्णुर्वायुर्दिवाकर. ॥६५
देवराजस्तथा शक्रो येऽपि चान्ये दिवौकस ।
उपासन्ते महात्मानः सर्वे सामेवसुव्रत ॥६६
अन्येऽपि योगिनः सिद्धाश्छन्नरूपा महाव्रता. ।
अनन्यमनसोभूत्वा मामिहोपासतेसदा ॥६७
अलर्कश्च पुरीमेताम् मत्प्रसादादवाप्स्यति ।
स चैना पूर्ववत्कृत्वा चातुर्वर्ण्याश्रमाकुलाम् । ६८
स्फीता जनसमाकीर्णां भक्त्याच शुचिरनृप. ।
मयि सर्वापितप्राणो मामेव प्रतिपत्स्यते ॥६९
ततः प्रभृति चावङ्गि ! येऽपि क्षेत्रनिवासिनः ।
गृहिणो लिङ्गिनो वापि मद्भक्ता मत्परायणाः ॥७०
मत्प्रसादाद्भजिष्यन्ति मोक्ष परमदुर्लभम् ।
विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः ॥७१
इहक्षत्रेमृत सोऽपिससारन पुनर्विशेत् ।
ये पुनर्निर्ममा धीरा सत्वस्था विजितेन्द्रिया ॥७२

पराशर मुनि का पुत्र—महान् तपस्वी और योगी ऋषि व्यासदेव धर्मों का करने वाला—आगे भविष्य मे होने वाला वेदों की संस्था का प्रवर्तक होगा ॥६४॥ हे पद्माक्षि ! वह मुनियों मे परम श्रेष्ठ भी इसी क्षेत्र में रमण करेगा । ब्रह्मा—देवर्षियों के साथ विष्णु—वायु—दिवाकर—देवों का राजा इन्द्र और अन्य जो देवगण है व सभी महान् आत्माओ

अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद्भक्त्या च मम भावनात्।
जैगीषव्यो महाश्रेष्ठो योगिना स्थानमिप्यते ॥ ५८
ध्यायतस्तत्र मा नित्य योगाग्निर्दीप्यते भृशम् ।
कैवल्य परम याति देवानामपिदुर्लभम् ॥ ५६
अव्यक्तलिङ्गैर्मुनिभि. सर्वसिद्धान्तवेदिभिः ।
इह सप्र.प्यते मोक्षो दुर्लभो देवदानवै ॥६०
तेभ्यश्चाह प्रयच्छामि भोगैश्वर्यमनुत्तमम् ।
आत्मनश्चैव सायुज्यमीप्सित स्थानमेवच ॥६१
कुबेरस्तु महायक्षस्तथा शर्वार्पितक्रियः ।
क्षेत्रसम्वसनादेव गणेशत्वमवाप ह ॥ ६२
सम्वर्तो भविता यश्च सोऽपि भक्त्या ममैव तु ।
इहैवाराध्य मा देवि ! सिद्धि यास्यत्यनुत्तमाम् ॥६३

समस्त तीर्थों मे प्रथम प्रयाग से भी यह ही महान् तीर्थ कहा गया है । वह महान् तपस्वी जैगीषव्य योग से परम सिद्धि को इस क्षेत्र के ही माहात्म्य से — भक्ति से और मेरी भावना से महान् श्रेष्ठ जैगीषव्य योगियो के स्थान को प्राप्त करता है ॥५७, ५८॥ वहा पर नित्य ही मेरा ध्यान करने वाले की योगाग्नि अ यन्त दीप्त हो जाया करती है और फिर वह देवो को भी दुर्लभ परम कैवल्य पद को प्राप्त करता है । अव्यक्त लिङ्गो वाले—सम्पूर्ण सिद्धा तो को जानने वाले मुनियों के द्वारा यहां पर ही मोक्ष की प्राप्ति को जाया करती है जो देवो और दानवो के द्वारा भी अतीव दुर्लभ है ॥५६, ६०॥ उन मेरे परम भक्तो को मैं अत्युत्तम भोग एवं ऐश्वर्य प्रदान किया करता हू । तथा उनको अपना सायुज्य पद एवं अभीप्सित स्थान का प्रदान किया करता हू । महान् यक्ष कुबेर तथा शिव के लिये ही अपनी समस्त क्रियाओ को अर्पित कर देने वाला इसी क्षेत्र में सम्वास करने हो से गणेशत्व के पद को प्राप्त हो गया था ॥ ६१, ६२ ॥ और जो सम्वर्त्त होगा वह भी मेरी ही भक्ति से है

देवि ! यहां पर ही मेरी समाराधना करके अत्युत्तम सिद्धि को प्राप्त करेगा ॥ ६३ ॥

पराशरसुतो योगी ऋषिर्व्यासो महातपः ।
धर्मकर्त्ता भविष्यश्च वेदसंस्थाप्रवर्तकः ॥६४
रस्यते सोऽपि पद्माक्षि ! क्षेत्रेऽस्मिन् मुनिपुङ्गव ।
ब्रह्मा देवर्षिभिः सार्द्धं विष्णुर्वायुर्दिवाकरः ॥६५
देवराजस्तथा शक्रो येऽपि चान्ये दिवौकसः ।
उपासन्ते महात्मानः सर्वे सामेवसुव्रत ॥६६
अन्येऽपि योगिनः सिद्धाश्छन्नरूपा महाव्रताः ।
अनन्यमनसोभूत्वा मामिहोपासतेसदा ॥६७
अलर्कश्च पुरीमेताम् मत्प्रसादादवाप्स्यति ।
स चैनां पूर्ववत्कृत्वा चातुर्वर्ण्याश्रमाकुलाम् ॥६८
स्फाता जनसमाकीर्णां भक्त्याच सुचिरंनृप ।
मयि सर्वापितप्राणा मामेव प्रतिपत्स्यते ॥६९
ततः प्रभृति चार्वङ्गि ! येऽपि क्षत्रनिवासिनः ।
गृहिणा लिङ्गिना वापि मद्भक्ता मत्परायणा ॥७०
मत्प्रसादाद्भजिष्यन्ति मोक्षं परमदुर्लभम् ।
विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः ॥७१
इहक्षत्रमृतः सोऽपिससारन पुर्नविशेत् ।
ये पुनर्निममा धीरा सत्वस्था विजितेन्द्रियाः ॥७२

पराशर मुनि का पुत्र—महान् तपस्वी और योगी ऋषि व्यासदेव धर्मों का करने वाला—आगे भविष्य में होने वाला वेदों की संस्था का प्रवर्त्तक होगा ॥६४॥ हे पद्माक्षि ! वह मुनियों में परम श्रेष्ठ भी इसी क्षेत्र में रमण करेगा । ब्रह्मा—देवर्षियों के साथ विष्णु—वायु—दिवाकर—देवों का राजा इन्द्र और अन्य जो देवगण हैं वे सभी महान् आत्माओं

वाले हे सुव्रते ! मेरी ही उपासना किया करते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी योगीजन—सिद्धगण और छिपे हुए महान व्रतो वाले लोग अनन्य मन वाले होकर यहा पर सर्वदा मेरी ही उपासना किया करते हैं। अलर्क इस पुरी को मेरे ही प्रसाद से प्राप्त करेगा और वह इस पुरी को पूर्व की ही भाँति करके जो चारो वर्णों से समाकुल—स्फीत और अन्नो से समाकीर्ण है। वह नृप बहुत समय पर्यन्त अपनी भक्ति की उत्कट भावना के द्वारा प्राप्त करेगा और फिर सर्वार्पित प्राण वाला होकर अन्त मे मुझ को ही प्राप्त कर लेगा। हे चार्वङ्गि ! तभी से लेकर जो भी इस क्षेत्र के निवास करने वाले गृही एव लिङ्गो के धारण करने वाले—मुझमे ही परायण रहने वाले मेरे भक्त परम दुर्लभ मोक्ष का सेवन करेगे और वह मेरे ही प्रसाद से होगा। विषयों मे समासक्त चित्त वाला भी धर्म में रति के त्याग करने वाला मनुष्य इस परम पुण्य मय क्षेत्र मे मृत्युगत होकर फिर ससार मे प्रवेश प्राप्त नही किया करता है और जो निर्मम एव धीर तथा सत्त्वस्थ इन्द्रियो को नियन्त्रित रखने वाले हैं उनकी तो बात ही क्या है ॥६५॥ ॥६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२॥

यतिनश्च निरारम्भाः सर्वे ते मयि भाविता ।
देहभङ्ग समासाद्य धीमन्त सङ्गवर्जिताः ॥
गता एव पर मोक्ष प्रसादान्मम सुव्रते ।७३
जन्मान्तरसहस्रेषु युञ्जन् योगमवाप्नुयात् ।
तमिहैव पर मोक्ष मरणादधिगच्छति ॥७४
एतत्सङ्क्षेपतो देवि ! क्षेत्रस्यास्य महत्फलम् ।
अविमुक्तस्य कथित मया ते गुह्यमुत्तमम् ।७५
अत परतर नास्ति सिद्धिगुह्य महेश्वरि ! ।
एतद्बुध्यन्ति योगज्ञा ये च योगेश्वरा भुवि ।७६
एतदेव पर स्थानमेतदेव पर शिवम् ।
एतदेव परब्रह्म एतदेव परमपदम् ॥ ७७

व्रतों के धारण करने वाले—आरम्भों से रहित जो जन हैं वे सभी मुझमें भावित होते हैं और सर्व सङ्ग से रहित वे धीमान् देहों के भङ्ग को प्राप्त करके हे सुव्रते ! मेरे ही प्रसाद से परम मोक्ष को प्राप्त हो ही गये हैं ।।७३।। सहस्रों जन्मों में योग का अभ्यास करके जिसकी प्राप्ति की जाती है उसी परम मोक्ष को यहां पर मरण करने से ही मनुष्य प्राप्त कर लेता है ।।७४।। हे देवि ! यह अति संक्षेप से अविमुक्त इस क्षेत्र का महान् फल जो परम उत्तम और अत्यन्त गुह्यतम है मैंने आपको बतला दिया है । हे महेश्वरि ! इससे परतर कुछ भी सिद्धि गुह्य नहीं है । इसको योग के ज्ञाता और भूमण्डल में स्थित योगेश्वर गण ही जो होते हैं वे ही जानते हैं । यह ही सर्वोपरि परम स्थान है—यह ही परम शिव है—यह ही परम ब्रह्म है और यह ही सर्वोत्कृष्ट परम पद है ।। ७५ ।। ।।७६, ७७।।

वाराणसी तु भुवनत्रयसारभूता रम्या-
सदा मम पुरी गिरिराजपुत्रि ! ।
अत्रागता विविधदुष्कृतकारिणोऽपि-
पापक्षयाद्विरजसः प्रतिभान्ति मर्त्याः ।।७८
एतत्स्मृतं प्रियतमं मम देवि !
नित्यं क्षेत्रं विचित्रतरगुल्मलतासु पुष्पम् ।
अस्मिन्मृतास्तनुभृतः पदमाप्नुवन्ति-
मूर्खागमेन रहितापि न संशयोऽत्र ।।७९
एतस्मिन्नन्तरे देवो देवी प्राह गिरीन्द्रजाम् ।
दातुं प्रसादाद्यक्षाय वरं भक्ताय भामिनि ।।८०
भक्तो मम वरारोहे ! तपसा हतकिल्बिषः ।
अहो वरमसौ लब्धमस्मत्तो भुवनेश्वरि ! ।।८१
एवमुक्त्वा ततो देवः सह देव्या जगत्पतिः ।
जगाम यक्षो यत्रास्ते कृशो धमनिसन्ततः ।।। ८२

ततस्त गुह्यक दवी द्वष्टिपातर्निरीक्षती ।
श्वेतवर्णं दिचामाण स्नायुबद्धास्थिपञ्जरम् ॥ ८३
दवी प्राह नदा दव दर्शयन्ती च गुह्यकम् ।
सत्य नाम भवानुग्रो दवग्वतरतु शङ्कर ।॥८४

यह वाराणसी पुरी है गिरिराज पुत्रि ! तीनो भुवनो की सार भूता—सदा अतीव रम्य मेरी पुरी है। यहाँ पर आय हुए अनेक प्रकार के दुष्कृतों को करने वाले भी मनुष्य पापो के क्षय हो जाने से परम शुद्ध होकर दीप्तिमान् हो जाया करते हैं। हे देवि ! यह मेरा प्रियतम क्षत्र है और नित्य है । यहा पर विचित्र तरु और लता तथा गुल्मो में पुष्प हुआ करते हैं। इस मृत्यु का प्राप्त होने वाले देहधारी लाग अत्य त मूख एव आगमों रहित हाते हुए भी परम पद को प्रा त किया करते हैं इसमे किञ्चिमात्र भी सशय नही है।७८ ७६।। महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसी अन्तर मे वह देव गिरिन्द्रजा देवी से भवत यक्ष के लिये एव नता स वरदान प्रदान करने के लिय बोले थे—हे भामिनि ! हे वरारोहे ! यह मरा भक्त है और तपश्चर्या के द्वारा इसने अपने सब पापो को हत कर लिया है। हे भुवनेश्वरि ! इसन हमस वर प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार से कहकर जगत् के पति देव अपनी देवी के साथ वहा पर गये थे जहा पर अत्य त कृश केवल धमनिया ही शेष रहने वाला यक्ष तप में निमग्न था। इसके अनन्तर उस देवी ने अपनी दृष्टि के पातो से उस गुह्यक का निरीक्षण किया था। वह एकदम श्वेत वर्ण वाला—चर्म स रहित और स्नायुओं स बद्ध अस्थियो क पञ्जर वाला था। उस समय मे दवी न उस गुह्यक को दिखलात हुए ही देव स कहा था कि हे शङ्कर ! जैसा कि दवो न कहा था आप सचमुच ही बहुत उग्र रूप एव स्वभाव वाल हैं ।।८० ८१ ८२, ८३ ८४।।

ईदृग चास्य तपसि न प्रयच्छसि यद्वरम् ।
अत्र क्षत्र महादेव ! पुण्यरम्यगुपाश्रित ।।८५

और उसने गणो के सहित वहा पर समुपस्थित वृषध्वज देव को देखा था ॥८७, ८८, ८६, ६०॥

वर ददामि ते पूर्वं त्रैलोक्ये दर्शन तथा ॥६१
सावर्ण्यं च शरीरस्य पश्य मा विगतज्वर ।
तत स लब्ध्वा तु वर शरीरेणाक्षतेन च ॥६२
पादयो प्रणतस्तथोक्त्वा शिरसिसाञ्जलिम् ।
उवाचाथतदातेन वरदोऽस्मीतिचोदित ॥६३
भगवन् ! भक्तिमव्यग्रा त्वय्यनन्या विधतस्व मे ।
अन्नदत्व च ते लोकाना गाणपत्य तथाऽक्षयम् ।६४
अविमुक्त च ते स्थान पश्येय सबदा यथा ।
एतदिच्छामि देवेश त्वत्तो वरमनुत्तमम् ॥६५
जरा मरणस त्यक्त सर्वरोगविवर्जित ।
भविष्यसि गणाध्यक्षो धनद सर्वपूजित ॥६६
अजेयश्चापि सर्वेषा योगैश्वर्यं समाश्रित ।
अन्नदश्चापि लोकेभ्य क्षेत्रपालोभविष्यसि ॥६७
महाबलो महासत्वो ब्रह्मण्यो मम च प्रिय ।
त्र्यक्षश्च दण्डपाणिश्च महायोगी तथैव च ॥६८
उद्भ्रम सम्भ्रमश्चैव गणौतु परिचारकौ ।
तवाज्ञाञ्च करिष्यते लोकस्योद्भ्रमौ ॥६६
एव स भगवास्तत्र यक्ष कृत्वा गणेश्वरम् ।
जगाम वामदवेश सह तनामरेश्वर ॥१००

देवो के भी देव न कहा—मै पहिले तुम्हे वरदान देता हूँ तथा त्रैलोक्य मे दर्शन देता हूँ । फिर विगत ज्वर वाला होकर शरीर की सवर्णता और मुझको देखो ॥६१ । श्री सूतजी ने कहा—इसके उपरान्त उसने वरदान को पाकर अक्षत शरीर से शिव के चरणो मे प्रणत होता हुआ शिर पर दोनो हाथो की अञ्जलि बाँधकर वहाँ पर

स्थित हो गया था फिर उसने उस समय मे कहा था कि हे भगवन् ! मैं वर प्राप्त होने वाला हो गया हूं । अब तो आप अपने मे अव्यग्र और अनन्य भक्ति मेरी कर देवें तथा लोकों को अन्न का देने वाला एव उत्तम गाणपत्य पद प्रदान कीजिए । ९२, ९३, ९४॥ मुझे ऐसा ही वरा दीजिये कि मैं सर्वदा आपके अविमुक्त स्थान का दर्शन करता रहू । हे देवेश्वर ! आप से मैं यही उत्तम वरदान चाहता हू ॥९५॥ देवो के देव ने कहा—जरा (वृद्धता) और मौत इन दोनों से मन्त्वक्त होता हुआ तू एव रोगों से वर्जित रहेगा तथा सबके द्वारा पूजित गणो का अध्यक्ष धनद हो जायगा। योग के ऐश्वर्य का समाश्रय करके सबका तू अजेय होगा और लोकों के लिये अन्न का प्रदान करने वाला क्षेत्रपाल होगा। इसके अतिरिक्त तू महान् बल वाला-महान् सत्व से युक्त-ब्राह्मण्य यक्ष (तीन नेत्रों वाला) दण्डपाणि-महायोगी और मेरा प्रिय हो जायगा ॥९६, ९७, ९८॥ उद्भ्रम और सम्भ्रम ये दो गण तुम्हारे परिचारक होंगे। लोक के उद्भ्रम और सम्भ्रम तेरी आज्ञा को करेंगे सूत जी ने कहा—इस प्रकार यक्षराज के इस यक्ष को गणेश्वर बनाकर अमरेश्वर वामदेव शम्भु के दक्षिण भाग में है। ॥ ९९, १०० ॥

पुरा देवेन यत्प्रोक्तं पुराणं पुण्यमुत्तमम् ।
तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥५
तता देवेनतुष्टेन उमाया प्रियकाम्यया ।
कथितं भुविविख्यातं यत्र नित्यं स्वयंस्थितं ॥६
रुद्रस्यार्धासनगता मेरुशृङ्गे यशस्विनी ।
महादेवं ततो देवी प्रणता परिपृच्छति ॥७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा — सुविशुद्ध — तप के धन वाले सब ऋषिगण आप लोग इस पुण्य से उत्पन्न हुई—पापों के नाश करने वाली अत्यन्त स्निग्ध कथा का श्रवण करिये ॥१॥ भगवान् सनत्कुमार ने गणेश्वरों के स्वामी–दिव्य और रुद्र के तुल्य पराक्रम से सम्पन्न नन्दिकेश्वर से पूछा था ॥२॥ हे भगवन् ! परम गुह्य तत्त्व जहाँ पर भगवान् नित्य ही स्थित रहा करते हैं—समस्त भूतों का माहात्म्य और परमात्मा महेश्वर देव — दानवों के मार्ग अतिदुष्कर और परम घोर रूप से समास्थित होकर स्थाणु भूत महेश्वर सब भूतों का सम्प्लव होता है तब तक रहा करते हैं। ॥३, ४॥ नन्दिकेश्वर ने कहा—पहिले समय में जो परम उत्तम पुराण पुण्य से संयुत देव ने कहा था वही सब मैं अब भगवान् महेश्वर को नमस्कार करके कहूँगा ॥५॥ इसके अनन्तर परम सन्तुष्ट हुए देव ने उमा के प्रिय की कामना से भूमण्डल में विख्यात को कहा था जहाँ कि वह स्वयं संस्थित थे ॥६॥ रुद्र के अर्द्धासन पर स्थित—मेरु शृङ्ग में संस्थित यशस्विनी देवी महादेव के सामने प्रणत हुई पूछती है ॥७॥

भगवन् ! देवदेवेश ! चन्द्रार्द्धकृतशेखर ! ।
धर्मं प्रब्रूहि मर्त्यानां भुवि चैवोर्ध्वरेतसाम् ॥८
जप्तं दत्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतञ्च यत् ।
ध्यानाध्ययनसम्पन्नं यथा भवति चाक्षयम् ॥९
जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम् ।
कथं तत्क्षयमायाति तन्ममाचक्ष्व शङ्कर ! ॥१०

यस्मिन् व्यवस्थितो भक्त्या तुष्यसे परमेश्वर !।
व्रतानि नियमाश्चैवआचारो धर्मएवच ॥११
सर्वसिद्धिकर यत्र ह्यक्षय्यगतिदायकम् ।
वक्तुमर्हसि तत्सर्व परं कौतूहल हि मे ॥१२
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि गुह्याना गह्यमुत्तमम् ।
सर्वक्षेत्रेषु विख्यातमविमुक्त प्रिये मम ॥१३
अष्टषष्टि.पुराप्रोक्तास्थानानास्थानमुत्तमम् ।
यत्रसाक्षात्स्वयरुद्र कृत्तिवासा स्वयस्थित: ॥१४

हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! हे आधे चन्द्र को शिर मे धारण करने वाले ! आप कृपया भूमण्डल मे मनुष्यो का और ऊर्ध्व रेताओ का धर्म्म बतलाओ ॥८॥ जाप-दान-हवन-इष्ट-तप और किया हुआ ध्यान—अध्ययन आदि यह सभी किस प्रकार मे अक्षय होता है जो कभी भी क्षीण ही न होवे ? हे शङ्कर देव ! सहस्रो अन्य जन्मो मे पूर्व से ही सञ्चित किया हुआ जो पाप है वह किस प्रकार से क्षय को प्राप्त हुआ करता है—यह सभी आप मुझको बतलाइये ॥६, १०॥ जिसमे विशेष रूप से अवस्थित होकर भक्ति से आप सन्तुष्ट हुआ करते हैं हे परमेश्वर ! उन व्रतो को—नियमो को—आचार को और धर्म्म को आप बतलाने के योग्य हैं जिसमे अक्षय गति के देने वाला और जो सम्पूर्ण सिद्धियो के करने वाले हो—यह सभी आप मुझे परम अनुग्रह करके बतलाइये। मेरे हृदय मे इसके श्रवण करने का बडा भारी कौतहल हो रहा है ॥११, १२॥ भगवान् महेश्वर ने कहा—हे देवि ! आप सुनिये ! मैं गोपनीय से भी अधिक गोपनीय और उत्तम जो भी है उसे अब तुमको बतला दूगा। हे प्रिये ! समस्त क्षेत्रो मे विख्यात अविमुक्त क्षेत्र मेरा अत्यन्त प्रिय होता है ॥१३॥ पहिले अडसठ स्थानो मे अत्युत्तम स्थान बतलाये हैं जहा पर कृत्तिवसन धारण करने वाले साक्षात् स्वय रुद्र स्थित रहा करते हैं ॥१४॥

यत्र सन्निहितो नित्यमविमुक्ते निरन्तरं ।

तस्मान्न मया मुक्तमविमुक्तं ततः स्मृतम् ॥१५
अविमुक्ते परा सिद्धिरविमुक्ते परा गतिः ।
जप्तं दत्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥१६
ध्यानमध्ययनं दानं सर्वं भवति चाक्षयम् ।
जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम् ॥१७
अविमुक्तं प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम् ।
अविमुक्ताग्निना दग्धमग्नौ तूलमिवाहितम् ॥१८
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसङ्कराः ।
कृमिम्लेच्छाश्च ये चान्ये सङ्कीर्णाः पापयोनयः ॥१९
कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः ।
कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते शृणु प्रिये ! ॥२०
चन्द्रार्द्धमौलिनः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः ।
शिवे मम पुरे देवि ! जायन्ते तत्र मानवाः ॥२१

जिस अविमुक्त में निरन्तर नित्य ही मैं सन्निहित रहा करता हूँ और मेरे द्वारा वह क्षेत्र कभी भी मुक्त नहीं किया जाता है इसीलिये वह अविमुक्त—इस नाम से कहा गया है ॥१५॥ उस अविमुक्त स्थान में सर्वोत्तम परा सिद्धि होती है और उस अविमुक्त में परागति हुआ करती है। जाप—दान—हुत—चेष्टा—तप्त तपस्या और किया हुआ धर्म्म का कार्य—ध्यान—अध्ययन—दानादि यह सभी वहाँ पर अक्षय होता है। सहस्रों पूर्व में हुए जन्मों में जो भी कुछ पाप कर्म्म सञ्चित हो गया है वह भी सब अविमुक्त नामक मेरे परम प्रिय स्थान में प्रवेश करने वाले पुरुष के सभी कुछ तुरन्त ही क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं। वह सब अग्नि में आहित तूल की ही भाँति अविमुक्त स्थल की अग्नि से दग्ध हो जाया करता है ॥१६, १७, १८॥ ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य शूद्र और वर्णसंकर—कृमि—म्लेच्छ और जो अन्य सङ्कीर्ण पाप योनि वाले हैं तथा कीट—पिपीलिका (चींटियाँ) और जो अन्य मृग एवं पक्षिगण हैं हे प्रिये ! वे सब

काल से अविमुक्त क्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त होते हैं उनके विषय में श्रवण करलो। हे देवि! वे सभी चन्द्रार्द्ध मौलि वाले—वृषध्वज और ललाट में नेत्र वाले होकर मेरे शिवपुर में मानव होकर जन्म ग्रहण किया करते हैं ॥१६, २०, २१॥

अकामो वा सकामोवाह्यपितिर्यग्गतोऽपि वा ।
अविमुक्तेत्यजन्प्राणान्ममलोकेमहीयते ॥२२
अविमुक्त यदागच्छेत्क्दाचित्कालपर्ययात् ।
अश्मनाचरणौ वद्ध्वा तत्रैवनिधन व्रजेत् ॥२३
अविमुक्त गतोदेवि ! ननिर्ग-च्छेत्तत. पुन. ।
सोऽपिमत्पदमाप्नोति नात्रकार्यविचारणा ॥२४
वस्त्रप्रद रुद्रकोटि सिद्धेश्वरमहालयम् ।
गोकर्णं रुद्रकर्णञ्च सुवर्णाक्ष तथैव च ॥२५
अमरञ्च महाकाल तथा कायावरोहणम् ।
एतानि हि पवित्राणि सान्निध्यात् सन्ध्ययोर्द्वयोः ॥२६
कालिञ्जरवनञ्चैव शकु कर्णं स्थलेश्वरम् ।
एतानि च पवित्राणि सान्निध्याद्धि ममप्रिये ॥
अविमुक्ते वरारोहे ! त्रिसन्ध्य नात्र सशय. ॥२७॥
हरिश्चन्द्र पर गुह्यं गुह्यमाम्रातकेश्वरम् ।
जल्पेश्वर पर गुह्य गुह्यं श्रीपर्वत तथा ॥२८

बिना कामना वाला हो अथवा सकाम हो अथवा तिर्यग् योनि में रहने वाला हो कोई भी कैसा ही हो अविमुक्त क्षेत्र में प्राणों का त्याग करता हुआ फिर मेरे ही लोक में जाकर प्रतिष्ठित हुआ करता है; किसी भी समय में काल के पर्यय से अब भी उस अविमुक्त में चला जावे तो पाषाण से अपने चरणों को बाँधकर वहीं पर निधन को प्राप्त हो जाना चाहिए अर्थात् वहाँ पहुँच कर फिर उस क्षेत्र को किसी भी तरह से मृत्यु तक नहीं छोड़ना चाहिये ॥२२, २३॥ जो कोई भी किसी भी तरह से

यदि मेरे परम प्रिय अविमुक्त क्षेत्र में एक बार प्राप्त हो जावे तो फिर उसमें कभी भी निकल कर नहीं जाना चाहिये। वह पुरुष भी मेरे पद को प्राप्त हो जाया करता है—इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥२४॥ वस्त्रप्रद—रुद्र कोटि—सिद्धेश्वर महालय—गोकर्ण—रुद्रकर्ण—सुवर्णाक्ष—अमर—महाकाल—कायावरोहण ये स्थल भी दोनों सन्ध्याओं के सान्निध्य होने से परम पवित्र स्थल हैं ॥२५॥ कालिञ्जर वन—शङ्कुकर्ण—स्थलेश्वर ये स्थल भी पवित्र हैं हे प्रिये! मेरे सान्निध्य होने के कारण से ही ये पवित्र होते हैं। हे वरारोहे! अविमुक्त में त्रिसन्ध्य है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२६, २७॥ हरिश्चन्द्र परम गुह्य है और आम्रातकेश्वर भी गोपनीय है। जलेश्वर गुह्य है तथा श्रीपर्वत भी इसी भाँति गुह्य स्थल होता है ॥२८॥

महालयं तथा गुह्यं कृमिचण्डेश्वरं शुभम्।
गुह्य निगुह्य मदार महाभैरवमेव च ॥२९
अष्टावेतानि स्थानानि सान्निध्याद्धि ममप्रिये!।
अविमुक्ते वरारोहे ! त्रिसन्ध्यं नात्र संशय ॥३०
यानि स्थानानि श्रयन्तसिपुरोवेषु सुव्रते!।
अविमुक्तस्य पादेषु नित्यं सन्निहितानि वै ॥३१
अष्टानराषयाद्ध्यामविमुक्तस्य शोभने।
स्कन्दावदर्शमाहात्म्यमुग्रीणामावितात्मनाम् ॥३२

इस सबका विस्तार पूर्वक वर्णन करने की आप कृपा कीजिए ॥३॥ श्री सूतजी ने कहा—यह ही प्रश्न इसी तरह से महात्मा पाण्डव ने महामुनि मार्कण्डेय से पूछा था जिसमें नर्मदा का माहात्म्य भी था। मार्कण्डेय महामुनि परम उग्र तप से युक्त थे उनसे वन में ही निवास करने वाले धीमान् धर्म पुत्र ने पहिली इस महा गाथा को पूछा था ॥४, ५॥ युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजो में परम उत्तम ! आपके ही प्रसाद से मैंने अनेक प्रकार के धर्मों का श्रवण किया था। हे सुव्रत ! अब मैं पुनः उनको ही सुनना चाहता हूँ सो आप मेरे सामने उन्हें कहिए ॥६॥ यह महान् पुण्यों वाली नदी सर्वत्र कैसे प्रसिद्ध हुई है ? तथा इसका नर्मदा—यह नाम भी किस प्रकार से हे महामुने ! विख्यात हुआ है—इसे ही आप सर्व प्रथम मुझे बतलाइये ॥७

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी ।
तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥८
नर्मदायास्तु माहात्म्यं पुराणे यन्मया श्रुतम् ।
तदेतद्धि महाराज ! तत्सर्वं कथयामि ते ॥९
पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती ।
ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ॥१०
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम् ।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम् ॥११
कलिङ्गदेशपश्चार्धे पर्वतेऽमरकण्टके ।
पुण्या च त्रिषु लोकेषु रमणीया मनोरमा ॥१२
सदेवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः ।
तपस्तप्त्वा महाराज ! सिद्धिं च परमां गताः ॥१३
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नियमस्थो जितेन्द्रियः ।
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम् ॥१४

षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।
अप्सरोगणसंकीर्णे सिद्धचारण सेविते ॥२०
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दि यालङ्कार भूषित ।
तत स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विपुले कुले ॥२१

जलेश्वर मे मनुष्य स्नान करके विधि पूर्वक पिण्डदान करके पितृगण भूतो के सम्प्लव पर्यन्त सतृप्त रहा करते हैं ॥१५॥ पर्वत के चारो ओर रुद्र कोटि प्रतिष्ठित है वहाँ पर स्नान करके जो कोई गन्ध माल्यो और अनुलेपनो से अभ्यर्चन किया करता है उससे रुद्र कोटि शर्व परम प्रसन्न होते हैं—इसमे कुछ भी स शय नही है। पर्वत के अ त मे पश्चिम मे स्वय महेश्वर देव समवस्थित रहा करते है ॥१६॥१७॥ वहा पर स्नान करके और परम शुचि होकर ब्रह्मचर्य से रहने वाले जितेन्द्रिय पुरुष को इन्द्रियो को नियत रखते हुए-विधि पूर्वक पितृ कार्य्य करना चाहिए ॥ १८ । वहीं पर तिलोदक के द्वारा पितृ देवताओ का तर्पण करना चाहिये । हे पाण्डव ! उसके सात कुल तक स्वर्ग मे आन द पूर्ण निवास किया करते हैं ॥१९॥ अप्सराओ के गणो से सेवित एव सकीर्ण तथा सिद्धो एव चारणो से निषेवित स्वर्ग लोक म वह साठ हजार वर्ष पर्य्य त प्रतिष्ठित रहा करता है ॥ २० ॥ दिव्य गन्धो से अनुलिप्त एवम् दिव्य आभरणो से विभूषित वह स्वर्गीय सुख भोग करके जब वहां से परिभ्रष्ट होता है तो इस भूमण्ड में किसी बडे श्री सम्पन्न कुल मे जन्म ग्रहण किया करता है ॥२१॥

धनवान् दानशीलश्च धार्मिकश्चैव जायते ।
पुन स्मरति तत्तीर्थं गमन तत्र रोचते ॥२२
पुन।नि तारयेत् सप्त रुद्रलोक स गच्छति ।
योजनाना शत साग्र श्रूयते सरिदुत्तमा ॥२३
विस्तारेण तु राजेन्द्र ! योजनद्वयमायता ।
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोटयस्तथैव च ॥ २४

सर्वे तस्य समन्तात्तु तिष्ठन्त्यमरकण्टके ।
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥२५
सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रत ।
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो परित्यजेत् ॥२६
तस्य पुण्यफल राजन् ! शृणुष्वावहितो मम ।
शतवर्षसहस्राणाम्स्वर्गे मोदेत पाण्डव ! ॥२७
अप्सरोगणसंकीर्णे सिद्धचारणसेविते ।
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यपुष्पोपशोभितः ॥२८
क्रीडते देवलोकस्थो दैवतैः सह मोदते ।
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो राजा भवति वीर्यवान् ॥२९

वह यहाँ पृथ्वी तल में समुत्पन्न होकर बहुत बड़ा धनी—दान करने के स्वभाव वाला और धार्मिक हुआ करता है। वह फिर उसी तीर्थ का स्मरण करता है और वहाँ पर गमन करना उसे अच्छा लगता है। वह अपने सात कुलों को तार दिया करता है और वह रुद्र लोक में चला जाता है। यह उत्तम सरित् बेट सौ योजनों के विस्तार वाली सुनी जाती है ॥२२, २३॥ हे राजेन्द्र ! यह दो योजन विस्तार से आयत है। साठ सहस्र तीर्थ तथा साठ करोड़ तीर्थ इसके चारों ओर अमर कण्टक में स्थित हैं। जो कोई ब्रह्मचर्य पालन करने वाला—परम शुचि—क्रोध को जीतने वाला और इन्द्रियों को वश में रखने वाला होकर सभी प्रकार की हिंसा से निवृत्त—समस्त प्राणियों के हित में रति रखने वाला भगवान् शिव में ही समाचरण करते हुए अपने प्राणों का परित्याग किया करता है हे राजेन्द्र ! उसके होने वाले पुण्यों के फल को तुम परम सावधान होकर श्रवण करो। हे पाण्डव ! वह पुरुष सौ सहस्र वर्ष तक स्वर्ग में आनन्दित जीवन यापन किया करता है ॥२४, २५, २६, २७॥ अप्सराओं के गणों से समाकुल सिद्ध और चारणों के द्वारा सेवित स्वर्ग में दिव्यगन्ध से अनुलिप्त एवं दिव्य पुष्पों से उपशोभित होता हुआ देव लोक में स्थित

होकर देवगणो के साथ क्रीडा और आनन्द किया करता है फिर उस स्वर्ग से जब परिभ्रष्ट होता है तो परम बल--वीर्य वाला राजा होता है। ।।२८, २६।।

गृहन्तु लभते स वै नानारत्नविभूषितम् ।
स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैदूर्यभूषितैः ।।३०
आलेख्यसहितं दिव्यं दासीदाससमन्वितम् ।
मत्तमातङ्गशब्दैश्च हयानां हेषितेन च ।।३१
क्षुभ्यते तस्य तद्द्वारं इन्द्रस्य भवनं यथा ।
राजराजेश्वरः श्रीमान् सर्वस्त्रीजनवल्लभः ।।३२
तस्मिन् गृहे वसित्वा तु क्रीड़ाभोगसमन्विते ।
जीवेद्वर्षशतं साग्रं सर्वरोगविवर्जितः ।।३३
एवं भोगो भवेत्तस्य यो मृतोऽमरकण्टके ।
अग्नौ विषजले वापि तथा चैव ह्यनाशके ।।३४
अनिवर्तिकागतिस्तस्य पवनस्याम्बरे यथा ।
पतनं कुरुते यस्तु अमरेशे नराधिप ! ।।३५

उस को यहां पर गृह भी अनेक रत्नो से समलकृत—हीरा और वैदूर्य मणियो से परिपूर्ण, दिव्य स्तम्भो से समन्वित—आलेख्यो से चित्रित—दास और दासियो से सयुत था। प्रमत्त हाथियो के चिंघाडो से तथा अश्वो की हिनहिनाटो से उसके गृह का द्वार इन्द्र के भवन की भाँति क्षुब्ध रहा करता था। उस घर मे श्री सम्पन्न सब स्त्री जनो का वल्लभ वह राज राजेश्वर निवास किया करता है जो पूर्ण क्रीड़ा और भोगो से युक्त था। वहां पर सभी प्रकार के रोगो से रहित होकर वह डेढ सौ वर्ष तक जीवित रहता है। जो कोई पुरुष उस अमर कण्टक मे मृत्यु को प्राप्त होता है उसे इसी प्रकार के भोगो के उपभोग करने का अवसर प्राप्त होता है। जो अग्नि मे—विषजल मे तथा अनाशक मे हे नराधिप ! अमरेश मे पतन किया करता है उसकी अम्बर मे पवन की भाँति अनिवर्तित गति हुआ करती है ।।३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५।।

कन्याना त्रिसहस्राणि एकैकस्यापि चापरे ।
तिष्ठन्ति भुवने तस्य प्रेषण प्रार्थयन्ति च ॥३६
दिव्यभोगै: सुसम्पन्न: क्रीडते कालमक्षयम् ।
पर्वतस्य समन्तात्तु रुद्रकोटि: प्रतिष्ठिता: ॥३७
स्नान य: कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेपनै: ।
प्रीत:सोऽस्य भवेत् सर्वो रुद्रकोटिर्नसशय. ॥३८
पश्चिमे पर्वतस्यान्ते ह्यय देवो महेश्वर: ।
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा ब्रह्मचारीजितेन्द्रिय. ॥३६
पितृकार्यञ्च कुर्वीत विधिवन्नियतेन्द्रिय: ।
तिलोदकेन विधिवत्तर्पयेत् पितृदेवता: ॥४०
आसप्तम कुलन्तस्य स्वर्गे मोदेत पाण्डव ! ।
षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥४१
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यालङ्कारभूषित: ।
तत. स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विपुले कुले ॥४२

तीन सहस्र कन्याएँ और एक-एक को दूसरे उसके भुवन में स्थित रहती हैं एव प्रेषण की प्रार्थनाऐ किया करती है। इस प्रकार से परम दिव्य भोगो से सुसम्पन्न होकर वह अक्षय काल पर्यन्त क्रीडा करता है। उस पर्वत के चारो ओर रुद्र कोटि प्रतिष्ठित हैं। जो पुरुष वहा पर स्नान किया करता है और दिव्य गन्धो के अनुलेपनो से सयुत होता है उस पर वह सम्पूर्ण रुद्र कोटि परम प्रसन्न होता है—इसमे तनिक भी सशय नही है ॥३६, ३७, ३८॥ इस पर्वत के पश्चिमीय अन्त भाग मे यह महेश्वर देव स्वय विराजमान हैं। वहा पर स्नान करके और शुचि होकर—ब्रह्मचारी एव इन्द्रिय जीत रहकर जो नियत इन्द्रियो वाला अपने पितृगण के अभ्यर्चन—तर्पण आदि का विधि के साथ कार्य किया करता है और तिलो के सहित उदक से विधि पूर्वक पित देवताओ का तर्पण करता है हे पाण्डव ! उसके सात कुलो तक के सब लोग स्वर्ग का आनन्द निवास

प्राप्त करते हैं और साठ हजार वर्ष तक वे नल और स्वयं वह स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित पद पर समारूढ रहता है फिर स्वर्गीय सुखोपभोग की अवधि समाप्त होने पर वहा से परिभ्रष्ट होकर दिव्यगन्ध से समनुलिप्त तथा परम दिव्य आभूषणो से परिष्कृत होकर यहाँ किसी बहुत बड़े कुल में समुत्पन्न हुआ करता है ॥३६, ४०, ४१, ४२॥

धनवान् दानशीलश्च धार्मिकश्चैव जायते ।
पुनः स्मरति तीर्थार्थं गमन तत्र रोचते ॥४३
तारयेत्तु कुलान् सप्त रुद्रलोकं स गच्छति ।
योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा ॥४४
विस्तारेण तु राजेन्द्र ! योजनद्वयमायता ।
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोटय स्तथैव च ॥४५
पर्वतस्य समन्तात्तु तिष्ठत्यमरकण्टके ।
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥४६
सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः ।
एवं सर्वसमाचारो यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ॥४७
तस्य पुण्यफलं राजन् ! शृणुष्वावहितो मम ।
शत वर्षसहस्राणां स्वर्गमोदेतपाण्डव ! ॥४८
पृथि यामासमुद्रायामीदृशो नैव जायते ।
यादृशोऽयं नृपश्रेष्ठ ! पर्वतेऽमरकण्टके ॥४६

वह यहा पर उत्पन्न होकर बहुत बड़ा धनी–दाता धार्मिक होता है और फिर भी वह उसी तीर्थ का स्मरण किया करता है तथा वहाँ पर गमन करने की उसकी रुचि रहती है ! वह अपने सात कुलो को तार दिया करता है और अन्त मे रुद्र लोक को चला जाता है । यह उत्तम सरिता सौ और पचास योजनो के विस्तार वाली सुनी जाती है ॥४३, ४४ ॥ हे राजेन्द्र यह दो योजन के विस्तृत आयत वाली है। अमर कण्टक मे उसके चारो ओर बहुत तीर्थ है जिनकी सख्या साठ हजार तथा साठ करोड

बताई जाती है। वहा पर ब्रह्मचारी—शुचि—जितक्रोध—जितेन्द्रिय—सब प्रकार की हिंसा से निवृत्त—सबभूतो के हित मे रत और शिव मे समाचरण करने वाला जो अपने प्राणो का त्याग करता है हे राजन्! उस का जो परम महान् पुण्य-फल हुआ करता है उसे अवहित होकर सुन लो। हे पाण्डव! वह पुरुष एक सौ सहस्र वर्ष पर्यन्त स्वर्ग मे आनन्द प्राप्त किया करता है समुद्र पर्यन्त पृथ्वी मे इस प्रकार का कोई भी उत्पन्न नही होना है, हे नृप श्रेष्ठ! जैसा यह अमरकण्टक पर्वत मे हुआ करता है ॥४५, ४६, ४७, ४८, ४६॥

तावत्तीर्थं तु विज्ञेय पर्वतस्य तु पश्चिमे।
ह्रदो जलेश्वरो नाम त्रिपु लोकेपु विश्रुत ॥५०
तत्र पिण्डप्रदानेन सन्ध्योपासनकर्मणा।
पितरो दशवर्षाणि तर्पितास्तु भवन्ति वै ॥५१
दक्षिणे नर्मदाकूले कपिलेति महानदी।
सकलार्जुनसञ्छन्ना नातिदूरे व्यवस्थिता ॥५२
सापि पुण्या महाभागा त्रिपु लोकेपु विश्रुता।
तत्र कोटिशत साग्र तीर्थाना तु युधिष्ठिर ॥५३
पुराणेश्रूयतेराजन्! सर्वंकोटिगुण भवेत्।
तस्यास्तीरेतुये वृक्षाः पतिता कालपर्ययात् ॥५४
नर्मदातोयसस्पृष्टास्तेऽपियान्तिपराङ्गतिम्।
द्वितीया तु महाभागाविशल्यकरणीशुभा ॥५५
तत्र तीर्थे नर स्नात्वा विशल्यो भवति क्षणात्।
तत्रदेवगणा सर्वे सकिन्नरमहोरगा ॥५६
यक्षराक्षसगन्धर्वा ऋपयश्च तपोधनाः।
सर्वे समागतास्त पर्वतेऽमरकण्टके ॥५७

उस पर्वत के पश्चिम भाग मे उस तीर्थ को जान लेना चाहिये जिस का जलेश्वर ह्रद है और यह तीनो लोको मे बहुत ही विख्यात है ॥५०॥

वहा पर पिण्डो का प्रदान करने से तथा सन्ध्योपासना के कर्म्म से पितृगण दशवर्षो तक परम तृप्त रहा करते हैं। नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर कपिला नाम वाली एक महानदी है। वह सम्पूर्ण अर्जुन के वृक्षो से सच्छन्न रहने वाली है और वह उससे अधिक दूर मे व्यवस्थित नही है अर्थात् बहुत ही समीप मे ही है ।।५१, ५२।। वह नदी भी अति पुण्यमयी और महाभागा है तथा लोको मे बहुत प्रसिद्ध भी है। हे युधिष्ठिर ! वहा पर डेढ सौ करोड तीर्थ हैं ।।५३।। हे राजन् ! पुराण मे यह श्रवण किया जाता है कि सब कोटि गुण वाला होता है। उस के तट पर जो वृक्ष काल क विपर्यय से पतित हो गये हैं और नर्मदा नदी के जल से जिनका सस्पर्श हो गया है वे जड भी परमोत्तम गति को प्राप्त किया करते हैं। दूसरी एक नदी परम शुभ महाभागा व शल्य करणी है। उस तीर्थ मे मनुष्य स्नान करके क्षणमात्र मे ही विगत शल्य वाला हो जाया करता है। वहा पर उस अमरकण्टक पर्वत मे समस्त देवगण – किन्नर – महोरग – यक्ष – राक्षस – गन्धर्व और तप के ही धन वाले ऋषि वृन्द समागत होते हैं ।।५४, ५५, ५६, ५७।।

तैश्च सर्वं समागम्य मुनिभिश्च तपोधनैः ।
नर्मदामाश्रिता पुण्या विशल्यानाम नामतः ।।५८
उत्पादिता महाभागा सर्वपापप्रणाशिनी ।
तत्र स्नात्वा नरा राजन् ! ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय ।।५९
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम् ।
कपिला च विशल्या च श्रूयते राजसत्तम ! ।।६०
ईश्वरेण पुरा प्रोक्ते लोकानां हितकाम्यया ।
तत्र स्नात्वा नरा राजन्नश्वमेधफलं लभेत् ।।६१
अनाशकं तु यः कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ! ।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति ।। २

नर्मदायाम्तु राजेन्द्र ! पुराणेयन्मया श्रुतम् ।
यत्र तत्र नरः स्नात्वा चाश्वमेधफललभेत् ॥६३

इन सबने जो तपोधन मुनिगण थे वहा पर एकत्रित होकर नर्मदा नदी का समाश्रय प्राप्त किया था तथा विशल्या नाम वाली पुण्यमयी नदी को समुत्पादित किया था। जो महान् मःग वाली और सभी प्रकार के पापो का विनाश करने वाली थी। हे राजन् ! उसमें मनुष्य स्नान करके जितेन्द्रिय तथा ब्रह्मचारी रहकर एक रात्रि मे वहा पर निवास करता है तो वह अपने सौ कुलों का उद्धार कर दिया करता है। हे राजाओं में परम श्रेष्ठ ! कपिला और विशल्या इनके विषय मे सुना जाता है कि प्राचीन काल मे ईश्वर ने लोकों के हित की कामना से ही इनको कहा था। हे राजन् ! वहा पर स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के पुण्य फल को प्राप्त किया करता है ॥५८॥५९॥६०॥६१॥६२॥६३॥

ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रलोके वसन्ति ते ।
सरस्वत्याञ्च गङ्गायां नर्मदायां युधिष्ठिर ! ॥६४
सम स्नानं च दानञ्च यथा मे शङ्करोऽब्रवीत् ।
परित्यजतियः प्राणान् पर्वतेऽमरकण्टके ॥६५
वर्षकोटिशत साग्र रुद्रलोके महीयते ।
नर्मदाया जल पुण्य फेनोर्मिभिरलङ्कृतम् ॥६६
पवित्र शिरसा वन्द्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
नर्मदा पवन पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी ॥६७
अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
एव रम्या च पुण्या नर्मदा पाण्डुनन्दन ! ॥६८
त्रयाणामपि लोकाना पुण्या ह्येषा महानदी ।
वटेश्वरे महापुण्ये गङ्गाद्वारे तपोवन ॥६९
एतेषु सर्वस्थानेषु द्विजाः स्यु सशितव्रता ।
श्रुत दशगुण पुण्य नर्मदोदधिसङ्गमे ॥७०

जो लोग इसके उत्तर दिशा वाले तट पर निवास किया करते हैं वे अन्त मे जाकर रुद्रलोक मे वास पाते है । हे युधिष्ठिर ! सरस्वती मे-गङ्गा मे और नर्मदा मे स्नान और दान सम होता है जैसा कि भगवान् शङ्कर ने मुझे बतलाया था । जो अमरकण्टक पर्वत मे अपने प्राणो का परित्याग किया करता है वह डेढ सौ करोड वर्ष पर्यन्त रुद्रलोक मे प्रतिष्ठित होता है । नर्मदा महानदी का जल परम पुण्यमय है और केनकी उर्मियो से समलङ्कृत है । यह परम पवित्र है तथा शिर से वन्दना करने के योग्य है इसके जल का स्पर्श करके ही मनुष्य सब पापो से छुटकारा पा जाया करता है । नर्मदा पर्वतपुण्या है और ब्रह्महत्या के महा पातक का हरण करने वाली है । एक अहोरात्र वहाँ पर स्थित रहकर उपवास करने से ब्रह्म हत्या से छुटकारा हो जाया करता है । हे पाण्डु नन्दन ! इस प्रकार से यह नर्मदा रम्य और पुण्य शालिनी महानदी है ॥६४।६५।६६।६७।।६८॥ यह तीनों लोको मे परम पुण्य शालिनी महानदी है जो वटेश्वर मे—महापुण्य मय गङ्गा द्वार मे और तपोवन मे इन स्थानों मे द्विजगण संशित व्रतों वाले होत हैं उनके उस पुण्य से दश गुना अधिक पुण्य नर्मदा और उदधि के सङ्गम मे सुना गया है ॥६९, ७०॥

७६—नर्मदा मे सम्बन्धित अन्य तीर्थों का माहात्म्य

ततो गच्छेत् राजेन्द्र ! हास्तुशेखरमुत्तमम् ।
दर्शनात्तस्य देवस्य मुच्यते सर्वपातकैः ॥१
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! नर्मदेश्वरमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! स्वर्गलोके महीयते ॥२
अश्वतीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ।
सुभगो दर्शनीयश्च भोगवान् जायते नरः ॥३

पितामह ततो गच्छेत् ब्रह्मणा निर्मित पुरा ।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या पितृपिण्डन्तु दापयेत् ।।४
तिलदर्भविमिश्रन्तु ह्युदक तत्र दापयेत् ।
तस्य तीर्थप्रभावेण सर्व भवति चाक्षयम् ।।५
सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु स्नान समाचरेत् ।
विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोके महीयते । ६
मनोहर ततो गच्छेत् तीर्थं परमशोभनम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! पितृलोकेमहीयते ।।७

महामुनि मार्कण्डेय जी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर उत्तम अकुरोखर पर जाना चाहिए । वहाँ पर उन देव के दर्शन से ही मनुष्य सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाया करता है ।। १ ।। इसके उपरान्त फिर हे राजेन्द्र ! उत्तम नर्मदेश्वर तीर्थ में गमन करे । हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोक में एक परम प्रतिष्ठित पद पर सम रूढ हुआ करता है ।। २ ।। फिर अश्वतीर्थ को गमन करना चाहिए और वहाँ पर पहुँच कर स्नान करे । इसका ऐसा फल होता है कि वह मनुष्य परम सुभग दर्शनीय और भोगों के करने वाला हुआ करता है । इसके पीछे पितामह नाम वाले तीर्थ पर जावे जिसको पहिले ब्रह्माजी ने निर्मित किया था । वहाँ पर मनुष्य का स्नान करके भक्ति-भाव से पितृगणों का पिण्डदान करना चाहिए ।। ३ । ४ ।। तिलों और डाभों से मिश्रित जल भी तर्पण के लिये पितृगणों को देवे । उस तीर्थ का ऐसा अद्भुत प्रभाव है कि वहाँ पर किया सभी अक्षय हो जाया करता है ।। ५ ।। सावित्री तीर्थ पर पहुँच कर जो भी व्यक्ति उत्तम स्नान किया करता है वह अपने समस्त पापों को विधूनित करके अन्त में ब्रह्म लोक में प्रतिष्ठित होता है । फिर मनोहर नामक तीर्थ पर गमन करे जो कि एक परम शोभन तीर्थ है । हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करने वाला मानव रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है ।।६ । ७ ।।

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! मानसं तीर्थमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरा राजन् ! रुद्रलोके महीयते ॥
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! कुब्जतीर्थमनुत्तमम् ।
विख्यातं त्रिषु लोकेषु सर्वपापप्रणाशनम् ॥६
यान्यान्कामयते कामान् पशुपुत्रधनानि च ।
प्राप्नुयात्तानि सर्वाणि तत्र स्नात्वा नराधिप ॥१०
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! त्रिदशज्योतिविश्रुतम् ।
यत्र ता ऋषिकन्यास्तु तपोऽतप्यन्त सुव्रता ॥११
भर्ता भवतु सर्वासामीश्वरः प्रभुरव्ययः ।
प्रीतस्तासां महादेवो दण्डरूपधरो हरः ॥१२
विकृताननोऽभत्सुव्रती तीर्थमुपागतः ।
तत्र कन्या महाराज ! वरयन् परमेश्वरः ॥१३
कन्या ऋषेर्वरयतः कन्यादानं प्रदीयताम् ।
तीर्थं तत्र महाराज ! ऋषिकन्येति विश्रुतम् ॥१४

इसके अनन्तर हे राजेन्द्र ! उत्तम मानस तीर्थ पर गमन करना चाहिए। हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य रुद्रलोक में प्रतिष्ठित हो जाता है। फिर हे राजेन्द्र ! सर्वोत्तम कुब्जतीर्थ में गमन करे जो सभी लोकों में अत्यधिक विख्यात है और सब प्रकार के पापों के विनाश करने वाला है। उस तीर्थ पर जो—जो भी कामनाओं के प्राप्त करने की इच्छा करता है जैसे पुत्र—पशु और धन आदि उन सभी की प्राप्ति हे नराधिप वहाँ पर स्नान करके प्राप्त कर लेता है। इसके पश्चात् हे राजेन्द्र ! त्रिदश ज्योति विश्रुत नाम वाले तीर्थ पर जाना चाहिये जहाँ पर वे ऋषि कन्यायें सुन्दर व्रतों वाली होकर तपश्चर्या करती थीं ॥८। ६। १०। ११ ॥ उन कन्याओं का यही मनोरथ था कि हम सबका भर्ता अविनाशी प्रभु ईश्वर होवे। उनकी तपस्या से दण्डरूप को धारण करने वाले हर महादेव परम प्रसन्न हो गये थे। वह ईश्वर विकृत मुख वाले

वीभन्मु व्रती उम तीर्थ पर समागत हुए थे। वहाँ पर हे महाराज! परमेश्वर ने उन कन्याओं का वरण किया था। कन्या का वरण करने को ऋषियों ने कन्यादान दी। हे महाराज! ऋषि कन्या इस नाम वाला एक प्रसिद्ध तीर्थ था ॥१०-१४॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्! सर्वपापैः प्रमुच्यते।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र! स्वर्णबिन्दुरिति स्मृतम् ॥१५
तत्र स्नातः नरो राजन्! दुर्गतिं न च पश्यति।
अप्सरेशं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ॥१६
क्रीडते नागलोकस्थो ह्यप्सरै सह मोदते।
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! नरकं तीर्थमुत्तमम् ॥१७
तत्र स्नात्वार्चयेद्देवं नरकं च न पश्यति।
भारभूतिं ततः गच्छेदुपवासपरो जनः ॥१८
एतत्तीर्थं समासाद्य चावतारं तु शाम्भवम्।
अर्चयित्वा विरूपाक्षं रुद्रलोके महीयते ॥१६
अस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वाभारभूतौ महात्मनः।
यत्र तत्र मृतस्यापि ध्रुवगाणेश्वरीगतिः ॥२०
कार्तिकस्य तु मासस्य ह्यर्चयित्वा महेश्वरम्।
अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥२१

हे राजन्! उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके सभी पापों से प्रमुक्त हो जाता है। हे राजेन्द्र! इसके पश्चात् स्वर्ण बिन्दु इस नाम से विश्रुत तीर्थ में जाना चाहिये ॥१५॥ हे राजन्! उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य दुर्गति को कभी भी नहीं देखता है। इसके अनन्तर अप्सरेश नामक तीर्थ पर गमन करे और वहाँ पर स्नान कर समाचरण करना चाहिए ॥१६॥ इस तीर्थ के स्नान का यह फल होता है कि वह नागलोक में समवस्थित होकर अप्सराओं के साथ आनन्दानुभव किया करता है। हे राजेन्द्र! फिर वहाँ से नरक नामक उत्तम तीर्थ में गमन

करे। उस तीर्थ में स्नान करके देव का अभ्यर्चन करे तो वह मनुष्य कभी भी नरक को नहीं देखता है। इसके अनन्तर भारभूति नाम वाले तीर्थ पर जावे और उपवास में परायण होवे ॥ १७। १८ ॥ फिर इसके उपरान्त ऋचावतार शाम्भव तीर्थ का समासादन करे तथा वहाँ पर भगवान् विष्णु का अर्चन करने से वह मनुष्य रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥ १९ ॥ इस तीर्थ में जिसका नाम भारभूति है स्नान करके जहाँ तहाँ मृत हुए महात्मा की भी निश्चय ही गणेश्वरी (गणेश सम्बन्धिनी) गति हुआ करती है। कार्तिक मास में महेश्वर का समर्चन करके अश्वमेध यज्ञ के पुण्य से दशगुना फल प्राप्त हुआ करता है—ऐसा महामनीषी लोग कहा करते हैं ॥ २०। २१ ॥

दीपकाना शतं तत्र घृतपूर्णन्तु दापयेत ।
विमानं सूर्यसङ्काशैर्व्रजेत यत्र शङ्कर ॥२२
वृषभं य प्रयच्छेत् शङ्खकुन्देन्दुसप्रभम् ।
वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति ॥२३
धेनुमेकान्तु यो दद्यात्तस्मिन्तीर्थे नराधिप ! ।
पायसं मधुसंयुक्तं भक्ष्याणिविविधानि च ॥२४
यथाशक्त्या च राजेन्द्र ! ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।
तस्य तीर्थप्रभावेणसर्वं कोटिगुणंभवेत् ॥२५
नर्म्मदाया जलं पीत्वा ह्यर्चयित्वा वृषध्वजम् ।
दुर्गतिञ्चनपश्यन्तितस्मिंस्तीर्थेनराधिप ! ॥२६
हंसयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति ।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च हिमवांश्च महोदधिः ॥२७
गङ्गाद्याः सरितो यावत्तावत् स्वर्गेमहीयते ।
अनाशकन्तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थेनराधिप ॥२८
गर्भवासं तु राजेन्द्र ! न पुनर्जायते पुमान् ।
ततोगच्छेत् राजेन्द्र ! आषाढीतीर्थमुत्तमम् ॥२९

तत्र स्नात्वा नरो राजन्निन्द्रस्यार्द्धासन लभेत ।
स्त्रियास्तीर्थं ततो गच्छेन् सर्वपापप्रणाशनम् ॥३०

वहाँ पर एक सौ दीपकों का घृत से पूर्ण करके प्रज्वलित करे और उनका दान करे। वह पुरुष जहाँ भगवान् शङ्कर होते हैं सूर्य के सदृश विमानों के द्वारा गमन किया करता है ॥ २२ ॥ जो आदमी, शख-कुन्द और इन्दु के समान प्रभा से सम्पन्न वहाँ पर वृषभ का दान किया करता है वह वृष से समन्वित यान के द्वारा रुद्रलोक में गमन किया करता है ॥ २३ ॥ हे नराधिप ! उस तीर्थ में जो कोई एक धेनु का दान किया करता है—मधु से संयुक्त पायस और अनेक प्रकार के भक्ष्यों को यथा शक्ति हे राजेन्द्र ! ब्राह्मणों के लिए भोजन कराता है। उस तीर्थ के प्रभाव से यह सभी करोड़ गुना फल वाला होता है ॥ २४।२५॥ हे नराधिप ! नर्मदा के जल का पान करके और वृषध्वज का अभ्यर्चन करके उस तीर्थ में जाने वाला मनुष्य कभी भी अपनी दुर्गति को नहीं देखता है। वह मनुष्य हंस से युक्त यान के द्वारा सीधा रुद्रलोक को चला जाता है। जब तक चन्द्र—सूर्य—हिमवान्—महोदधि और गङ्गा आदि सरिताएँ संसार में स्थित हैं तब तक वह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है। हे राजेन्द्र ! गर्भ के वास को फिर कभी भी प्राप्त नहीं किया करता है। इसके अनन्तर हे राजेन्द्र ! आम आपाढ़ी तीर्थ में गमन करना चाहिए। हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य इन्द्र के आधे आसन पर अपनी सस्थिति प्राप्त किया करता है। इसके पीछे स्त्री के तीर्थ में गमन करे जो सब प्रकार के पापों का नाश करने वाला है ॥२६–३०॥

तत्रापि स्नातमात्रस्य ध्रुव गाणेश्वरी गति ।
ऐरण्डीनर्मदयोश्च सङ्गम लोकविश्रुतम् ॥३१
तच्च तीर्थं महापुण्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
उपवासपरो भूत्वा नित्यव्रतपरायण. ॥३२

एतत्तीर्थप्रभावेण मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
सर्वतीर्थाभिषेकन्तु य पश्येत् सागरेश्वरम् ॥४१
योजनाभ्यन्तरे तिष्ठन्नावर्त्ते सस्थित. शिव. ।
त दृष्ट्वा सर्वतीर्थानि दृष्टान्येव न सशय: ॥४२

पश्चिमोदाय की सन्धि मे स्वर्ग द्वार विघट्टन है। वहाँ पर देवगण—गन्धर्व—ऋषिवृन्द—सिद्ध और चारण ये सब तीनो सन्ध्याओ मे विमलेश्वर देवेश की समाराधना किया करते हैं। हे राजन् ! वहाँ पर मनुष्य स्नान करके रुद्रलोक मे प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है। यह विमलेश परम प्रमुख तीर्थ है जो न हुआ और न हो॥। वहाँ पर उपवास करके जो भगवान् विमलेश्वर का दर्शन किया करते हैं वे सब अपने पहिले जन्मो मे सात जन्मो के किये हुए पापो से मुक्त होकर सीधे अन्त समय अमरालय को चले जाया करते हैं। इसके पीछे हे राजेन्द्र ! उत्तम कौशिकी तीर्थ मे गमन करे ॥ ३६ । ३७ । ३८ । ३६ ॥ हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके उपवासों मे परायण होवे और एक रात्रि मे वहाँ निवास करके नियत अशन वाला तथा नियत जो रहता है वह इस तीर्थ के प्रभाव से ब्रह्म हत्या से मुक्त हो जाया करता है। जो मनुष्य सर्व तीर्थों के अभिषेक सागरेश्वर का दर्शन किया करता है। योजन के अभ्यन्तर मे आवर्त्त मे प्रभु शिव स्थित रहते हुए वहाँ पर समवस्थित रहते हैं। उसका केवल एक ही तीर्थ का दर्शन करके उस दर्शक ने सभी तीर्थों को देखा हुआ ही समझ लेना चाहिये अर्थात् उसने अन्य सभी का दर्शन कर लिया है—इसमे कुछ भी सशय नहीं है ॥ ४०–४२ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तो यत्र रुद्र: स गच्छति ।
नर्मदासङ्गम यावद्यावच्चामरकण्टकम् ॥४३
क्षत्रान्तरे महाराज ! तीर्थकोटचो दशस्मृता: ।
तीर्थात्तीर्थान्तर यत्रऋषिकोटिनिषेवितम् ॥४४

तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! नर्म्मदोदधिसङ्गमम् ॥३३
जामदग्न्यमिति ख्यात सिद्धोयत्र जनार्दन ।
यत्रष्ट्वा वहुभिर्यज्ञैरिन्द्रो देवाधिपोऽभवत ॥३४
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! नर्म्मदादधिसङ्गमे ।
त्रिगुण चाश्वमेधस्य फलप्राप्नोतिमानव ॥३५

वहाँ पर भी केवल स्नान भर कर लेने वाले की निश्चय ही गाणेश्वरी गति हुआ करती है। ऐरण्डी और नर्म्मदा इन दोनो सरिताओं का सङ्गम लोक म परम प्रसिद्ध है। वह तीर्थ महान् पुण्य वाला है और समस्त पापो के नाश करने वाला भी है। वहाँ पर उपवास मे परायण होकर तथा नित्य ही व्रतो मे तत्पर होकर वहाँ स्नान करके हे राजेन्द्र ! मनुष्य ब्रह्महत्या से भी मुक्त हो जाया करता है। इसके उपरान्त हे राजेन्द्र ! नर्मदा और उदधि का जहाँ सङ्गम होता है वहा जाना चाहिए। वहाँ जाने वाला मानव अश्वमेध यज्ञ के पुण्य से तिगुना पुण्य-फल प्राप्त किया करता है॥ ३१–३५॥

पश्चिमस्योदधे सन्धौ स्वर्गद्वारविघट्टनम् ।
तत्र देवा सगन्धर्वा ऋषय सिद्धचारणा ॥३६
आराधयन्ति देवेश त्रिसन्ध्य विमलेश्वरम् ।
तत्र स्नात्वा नरोराजन् ! रुद्रलोकेमहीयते ॥३७
विमलेश पर तीर्थ न भत न भविष्यति ।
तत्रोपवास कृत्वा ये पश्यन्ति विमलेश्वरम् ॥३८
सप्तजन्मकृत पाप हित्वा यान्त्यमरालयम् ।
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! कौशिकीतीर्थमुत्तमम् ॥३९
तत्र स्नात्वा नरो राजन्तुपवासपरायण ।
उपोष्य रजनीमेका नियतो नियताशन ॥४०

एतत्तीर्थप्रभावेण मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
सर्वतीर्थाभिषेकं तु यः पश्येत् सागरेश्वरम् ॥४१
योजनाभ्यन्तरे तिष्ठन्नावर्त्ते संस्थितः शिवः ।
तं दृष्ट्वा सर्वतीर्थानि दृष्टान्येव न संशयः ॥४२

पश्चिमोदधि की सन्धि में स्वर्ग द्वार विघट्टन है। वहाँ पर देव-गण—गन्धर्व—ऋषिवृन्द—सिद्ध और चारण ये सब तीनों सन्ध्याओं में विमलेश्वर देवेश की समाराधना किया करते हैं। हे राजन्! वहाँ पर मनुष्य स्नान करके रुद्रलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है। यह विम-लेश परम प्रमुख तीर्थ है जो न हुआ और न होगा। वहाँ पर उपवास करके जो भगवान् विमलेश्वर का दर्शन किया करते हैं वे सब अपने पहिले जन्मों में सात जन्मों के किये हुए पापों से मुक्त होकर सीधे अन्त समय अमरालय को चले जाया करते हैं। इसके पीछे हे राजेन्द्र! उत्तम कौशिकी तीर्थ में गमन करे ॥ ३६। ३७। ३८। ३९॥ हे राजन्! वहाँ पर स्नान करके उपवासों में परायण होवे और एक रात्रि में वहाँ निवास करके नियत अशन वाला तथा नियत जो रहता है वह इस तीर्थ के प्रभाव से ब्रह्म हत्या से मुक्त हो जाया करता है। जो मनुष्य सर्व तीर्थों के अभिषेक सागरेश्वर का दर्शन किया करता है। योजन के अभ्यन्तर में आवर्त्त में प्रभु शिव स्थित रहते हुए वहाँ पर समवस्थित रहते हैं। उसका केवल एक ही तीर्थ का दर्शन करके उस दर्शक ने सभी तीर्थों को देखा हुआ ही समझ लेना चाहिये अर्थात् उसने अन्य सभी का दर्शन कर लिया है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ४०-४२ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तो यत्र रुद्रः स गच्छति ।
नर्म्मदासङ्गमं यावद्यावच्चामरकण्टकम् ॥४३
क्षेत्रान्तरे महाराज! तीर्थकोट्यो दशस्मृताः ।
तीर्थात्तीर्थान्तरं यत्रर्षिकोटिनिषेवितम् ॥४४

साग्निहोत्रैस्तु विद्वद्भिः सर्वैर्ध्याननिपरायणैः ।
सेवितानेन राजेन्द्र ! त्वीप्सितार्थप्रदायिका ॥४५
यस्त्विदं व पठेन्नित्यं शृणुयाद्वापि भारत ।
तस्य तीर्थानि सर्वाणि ह्यभिषिञ्चन्ति पाण्डव ! ॥४६
नर्म्मदा च सदा प्रीता भवेद्वै नात्र संशय ।
प्रीतस्तस्य भवेद्रुद्रो मार्कण्डेयो महामुनि ॥४७
वन्ध्या चैव लभेत् पुत्रान् दुर्भगा सुभगा भवेत् ।
कन्या लभेत भर्तारं यश्च वाञ्छेत् तु यत् फलम् ॥४८
तदेव लभते सर्व नात्र कार्या विचारणा ।
ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो विजयी भवेत् ।४६
वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रः प्राप्नोति सद्गतिम् ।
मूर्खस्तु लभते विद्यां त्रिसन्ध्यं य पठेन्नर ॥
नरकञ्च न पश्येत्तु वियोगञ्च न गच्छति ॥५०॥

वह पुरुष सभी पापो से छुटकारा पाकर वहा पर ही चला जाता है जहाँ पर साक्षात् भगवान् रुद्र विराजमान रहा करते हैं और वहा पर वह तब तक रहता है जब तक नर्मदा का सङ्गम और अमरकण्टक ससार म स्थित है । ४३॥ इसी बीच मे हे महाराज ! दश तीर्थ कोटिया बनाई गई हैं। तीर्थ म दूसरे तीर्थ म जहा पर ऋषि कोटि निषेवित है । अग्नि होत्र करने वाले—ध्यान मे परायण समस्त विद्वानो के द्वारा सेवित हुए इससे हे राजेन्द्र ! यह अभीष्ट अर्थ को प्रदान करने वाली हुआ करती है ॥४४, ४५॥ हे पाण्डव ! जो तीर्थों के ... य का नित्य ही पाठ किया

और जो दुर्भगा होती है वह सुभगा होजाया करती है। जो कन्या होती है मनोभीष्ट स्वामी की प्राप्ति कर लेती है और जो भी कोई जैसा भी कुछ फल चाहता है वह उसी समय मे तुरन्त ही सब कुछ पा जाया करता है— इस विषय मे कुछ भी विचारण (व्यर्था) करने की आवश्यकता ही नहीं है। जो ब्राह्मण होता है उसको वेद के ज्ञान का लाभ होता है और जो क्षत्रिय है वह सदा युद्ध मे विजय प्राप्त करने वाला होता है। वैश्य अपने व्यवसाय मे लाभन्वित होता है तथा शूद्र की सद्गति हो जाया करती है। जो महामूढ होता है उसे विद्या का लाभ होता है। जो नर इसका तीनो सन्ध्याओ मे पाठ किया करता है वह कभी भी नरक का दर्शन नही किया करता है और न कभी किसी से उस का वियोग ही हुआ करता है। ॥४७, ४८, ४६, ५०॥

७७–भृगु वंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

इत्याकर्ण्य स राजेन्द्र ओङ्कारस्याभिवर्णनम् ।
ततः पप्रच्छ देवेश मत्स्यरूप जलार्णवे ॥१
ऋषीणा नाम गोत्राणि वंशावतरण तथा ।
प्रवराणा तथा साम्यमसाम्य विस्तराद ॥२
महादेवेन ऋषय शप्ता स्वायम्भुवान्तरे ।
तेषा वैवस्वते प्राप्ते सम्भव मम कीर्तय ॥३
दाक्षायणीनच तथा प्रजा कीर्तय मे प्रभो ।
ऋषीणा च तथा वंश भृगुवंशविवर्धनम् ॥४
मन्वन्तरेऽस्मिन् सप्राप्ते पूर्वं वैवस्वते तथा ।
चरित्र कथ्यते राजन् । ब्रह्मण परमेष्ठिन ॥५
महादेवस्य शापेन त्यक्त्वा देह स्वय तथा ।
ऋषयश्च समुद्भूताहुते शुक्रे महात्मन ॥६

देवाना मातरो दृष्ट्वा देवपत्न्यस्तथैव च ।
स्कन्नशुक्र महाराज ! ब्रह्मण परमेष्ठिन ॥७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इस प्रकार से इस ओङ्कार के अभिवचन का श्रवण करके फिर इसके उपरान्त उस मत्स्य के स्वरूप वाले देवेश्वर से उस जलार्णव मे पूछा गया था । श्री मनुजी ने कहा—हे भगवन् ! अब ऋषियो के शुभ नाम तथा गोत्र—वशो का अवतरण एव प्रवरो की समता और असमता आप कृपा करके विस्तार के साथ वर्णन कीजिएगा ॥१, २॥ स्वायम्भुव मन्वन्तर मे महादेव जी के द्वारा ऋषियो को शाप दे दिया गया था वैवस्वत प्राप्त होने पर उनका भी सम्भव आप मुझ कीर्तन करके श्रवण कराइये ॥३॥ हे प्रभो ! आप मेरे सामने दाक्षायणी (दक्ष प्रजापति से समुत्पन्न) जो प्रजा हुई थी उसका भी वर्णन करिये तथा ऋषियो का वश एव भृगु के वश की विशेष वृद्धि भी बतलाइये ॥४॥ श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! पहिले इस वैवस्वत मन्वन्तर के सम्प्राप्त होने पर परमेष्ठी ब्रह्माजी का जो चरित्र है वह कहा जाता है । महादेव जी के शाप से स्वय ही देह का त्याग करके महात्मा के शुक्र के च्युत हो जाने पर ऋषिगण समुत्पन्न हुए थे । देवो की मातायें देख कर उसी भाँति देव पत्नियाँ भी समुत्पन्न हुई थी हे महाराज ! परमेष्ठी ब्रह्माजी का शुक्र (वीर्य) स्कन्न हो गया था । ॥५, ६, ७॥

तज्जुहाव ततो ब्रह्मा ततो जाता हुताशनात् ।
ततो जातो महातेजा भृगुश्च तपसा निधि ॥८
अङ्गारस्त्वङ्गिरा जातो ह्यर्चिभ्योऽत्रिस्तथैव च ।
मरीचिभ्यो मरीचिस्तु ततो जातो महातपा ॥९
केशैस्तु कपिशो जात पुलस्त्यश्च महातपा ।
केशै प्रलम्बै पुलहस्ततोजातोमहातपा ॥१०
वसुमध्यात् समुत्पन्नो वसिष्ठस्तु तपोधन ।

भृगु पुलोम्नस्तुसुतादिव्याभार्यामविन्दत ।।११
यस्यामस्य सुता जाता देवा द्वादशयाज्ञिकाः ।
भुवनो भौवनश्चैव सुजन्यः सुजनस्तथा ।।१२
शुचिक्रतुश्च मूर्धा च त्याज्यश्च वसुदश्च ह ।
प्रभवश्चा ययश्चैव दक्षोऽथद्वादशस्तथा ।।१३
इत्येते भृगवो नाम देवा द्वादश कीर्तिताः ।
पौलोम्याजनयन् विप्रान्देवानातुकनीयसः ।।१४

इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने हवन किया था फिर हुताशन से उत्पत्ति हुई थी। इसके उपरान्त महान् तेज वाले तपों की निधि भृगुदेव समुप न हुए थे ।।८।। अङ्गारों में अङ्गिरा उत्पन्न हुए और हुताशन की अर्चियों से अत्रि ऋषि की उत्पत्ति हुई थी और इसके अनन्तर मरीचियों म महान् तपस्वी महर्षि मरीचि उत्पन्न हुए थे ।।९।। केशों से कपिश और महान् तपस्वी पुलस्त्य उत्पन्न हुए। पुलम्ब केशों से फिर महान् तपस्वी पुलह समुत्पन्न हुए ।।१०।। वसु के मध्य में तप के ही धन वाल वसिष्ठ ऋषि प्रसून हुए थे। भृगु महर्षि ने पुलोमा की पुत्री को अपनी दिव्य भार्या बनाई थी ।।११।। इसी भार्या में उस महर्षि के द्वादश याज्ञिक सुत उत्पन्न हुए थे। उन बारह सुतों के नाम ये हैं—भुवन—भौवन-सुजन्य-सुजन-शुचि क्रतु—मूर्द्धा—त्याज्य—वसुद—प्रभव—अव्यय और दक्ष ये द्वादश हैं। य सब भृगु वश वाल बारह देव कीर्तित हुए थे जो पौलोमी म देवों के छोटे भाई विप्रा को जन्म ग्रहण कराया था ।।१२, १३, १४।।

च्यवनन्तु महाभागमाप्नुवान तथैव च ।
आप्नुवानात्मजश्चौर्वो जमदग्निस्तदात्मजः ।।१५
और्वो गोत्रकरस्तेषां भार्गवाणां महात्मनाम् ।
तत्र गोत्रकरास्त्वन्य भृगार्व दीप्ततेजस ।।१६
भगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च ।
ओर्वश्च जमदग्निश्च वात्स्यो दण्डिर्नडायन. ।।१७

वगायनो वीतिहव्य पैलश्चैवाथ शौनक ।
शौनकायन जीवन्ति रावेद कापणिस्तथा ॥१८
वहीनरिर्विरूपाक्षो रौहित्यायनिरेव च ।
वश्वानरिस्तथा नीलो लुब्धः सावणिकश्चस ॥१६
विष्णु पौरोऽपि बालाकिरैलिकोऽनन्तभागिन ।
भतभार्गेयमाकण्डजविना वीतिनस्तथा ॥२०
मण्डमाण्डव्यमाडूकफेनपास्तनितम्तथा ।
स्थलपिण्ड शिखावण शाकराक्षिस्तथैवच ॥२१

महाभाग च्यवन तथा आप्नुवान् उपन हुए। आप्नुवन का आत्मज औव हुआ और उसका पुत्र जमदग्नि हुआ था। उन महान् आमा वाला भार्गवो क गोत्र के करने वाला औव हुआ था तथा अन्य भी दीप्त तज वाने भृगु क गोत्रकर हुए थ ॥१५ १६॥ अब उन सब के नामो का उल्लेख किया जाता है—भृगु—च्यवन—आप्नुवान—औव—जमदग्नि—वात्स्य—दण्डि—नडायन—वैगायन—वीति हव्य—शौनकायन—जीवन्ति—आवद—कापणि—वैहीनरि—विरूपाक्ष—रौहित्यायनि—वैश्वानरि—नील—लुब्ध—सावणिक—विष्णु—पौर—बालाकि—ऐलिक—अनन्त भागिन—भृत—भार्गेय—मार्कण्ड—जविन—वीतिन—मण्ड—माण्डव्य—माण्डूक—फेनप—स्तनित—स्थल पिण्ड—शिखावण और शाकराक्षि ॥१७।१८।१६।२०।२१॥

जालधि सौधिक क्षुभ्य कुत्स यो मौद्गलायन ।
यमायना दवपति पाण्डुरोचि सगालव ॥२२
गाङ्गकृत्यश्चातवि म।विदभ्रविण्णायनस्तथा ।
गार्ग्यायना गायनश्च ऋषिर्गार्हायनस्तथा ॥२३
गाल्गायना पाल्यायना पशाण्णायन एव च ।
वर्णिताि शाङ्गरवा पाणेयिनीर्दृकायनि ॥२४
साम्यादिर्वाह्यसिरपेव सौधिण्यायनिर्मण्ली ।

आलुकि. सौचकिः कौत्सस्तथान्यः पैङ्गलायनिः ॥२५
सात्यायनिर्मालायनि· कौटिलिः कोचहस्तिक. ।
सोहसोक्ति. सकौवाक्षि कौसिश्चान्द्रमसिस्तथा ॥२६
नैकजिह्वो जिह्वकश्च व्यघाद्यो लोहवैरिण. ।
शारद्वतिकनेतिष्योलोलाक्षिश्चलकुण्डल. ॥२७
वागायनिश्चानुमति पूर्णिमागतिकोऽसकृत् ।
सामान्येन यथा तेषा पञ्चते प्रवरामता: ॥२८

जालधि–सौविक–क्षुम्य–कुरमन्य–मौद्गलायन–कर्मायन–देवपति–पाण्डरोचि–सगालव–सांकृत्य–चातकि–सर्पि–यज्ञपिण्डायन–गर्ग्यायन–गायन–ऋषि–गार्ह्यायन–गोष्ठायन–वात्सायन – वैशम्पायन–वैकर्णिन–शाङ्करव–याज्ञेयि–भ्राष्ट्र कायनि–लालाटि–नाकुलि–लौक्षिण्य–परिमण्डल आलुकि–सौचकि–कौत्स–पैङ्गलायनि–सात्यायनि–मालायनि– कौटिल–कौच हस्तिक–सोहसोक्ति–सकौवाक्षि–कौसि–चान्द्रमसि–नैकजिह्व–जिह्वक–व्यघाद्य–लोहवैरिण–शारद्वतिकन–तिष्य–लोलाक्षि–चल कुण्डल–वागायनि–अनुमति–पूर्णिमा गतिक ये सब सामान्य रूप स थे। इनमे पाँच सब मे प्रवर माने गये हैं ।२२।२३।२४।२५।२६।२७।२८॥

भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च ।
और्वश्च जमदग्निश्च पञ्चैते प्रवरा मता ॥२९
अत. पर प्रवक्ष्यामि शृणु त्वन्यान् भृगूद्वहान् ।
जमदग्निर्विदश्चैव पौलस्त्या वैजभृत्तथा ॥३०
ऋषिश्चभयजातश्च कायनि. शाकटायनः ।
और्वेया मारुताश्चैवसर्वपाप्रवरा शुभाः ॥३१
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च ।
परस्परमवैवाह्या ऋषय. परिकीर्तिता. ॥३२
भृगुदासा मार्गपथा ग्राम्यायनिकटायना ।
आपस्तम्बिस्तथा विल्विर्नैकशिः कपिरेवच ॥३३

आर्ष्टिषेणो गादभिश्च कार्दमायनिरेवच।
आश्वायनिस्तथारूपिर्यं चार्षेया प्रकीत्तिता ॥३४
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैवच।
आर्ष्टियेणस्तथारूपिः प्रवरा पञ्चकीतिताः ॥३५

वे पांचो प्रवरो के नाम ये हैं—भृगु–च्यवन–आप्नुवान–और्व और जमदग्नि ये ही पांच प्रवर माने गये हैं ॥२६॥ इसके आगे मैं अन्य भृगु-द्वहों को बतलाता हू। उनका श्रवण तुम करलो–जमदग्नि–विद–पौलस्त्य–बैजभृत्त–ऋषि–उभय जात–कायनि–शाकटायन–और्वेय और मारुत सबमे प्रवर एव शुभ थे ॥३०।३१॥ भृगु–च्यवन और आप्नुवान ये सब परस्पर मे अवैवाह्य ऋषिगण कीत्तित किये गये हैं ॥३२॥ भृगुदास–मार्गपथ–ग्राम्यायनि—कटायनि—आपस्तम्बि—बिल्वि–नैकशि—कपि–आर्ष्टिषेण–रूपि–ये सब आर्षेय परिकीत्तित हुए हैं। इनमे भृगु–च्यवन–आप्नुवान—आर्ष्टिषण और रूपि ये पांच प्रवर माने गये हैं ॥३३।३४।३५॥

परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीत्तिता ।
भास्करा वा वीतिहव्यो वा मथितस्तु तथादम ॥३६
जैवन्त्यायनिर्मौञ्जश्च पिलिश्चैव चलिस्तथा ।
भागिलो भगावित्तिश्च कौशापिरत्वथ काश्यपि ॥३७
वालपि श्रमादगेपि सौरस्तिथिरतथैव च ।
गार्गीयरत्वथ जाबालिस्तथा पौष्ण्यायनो ह्युपि ॥३८
रामदश्च सर्वेषामार्षेया प्रवरा मता ।
भृगुश्च वीतहव्यश्च तथा रैवसवैवसौ ॥३९
परस्परमवैवाह्या ऋषय परिकीत्तिता ।
शालायनि शाकटाक्षा मैत्रेय खाण्डवस्तथा ॥४०
द्रोणायनो रौक्मायना पिशली चापि कायनि ।
हंसजिह्वस्तथैषामार्षेया प्रवरा मता ॥४१
ए परस्पर मे अवैवाह्य ऋषिगण कीत्तित हुए हैं। भास्कर—वीति

हव्य—मथित—दम—जैवान्त्यायनि—मौञ्ज—पिलि—चलि—भगिल—भागवित्ति—कौशापि-काश्यपि-बालपि-श्रमदागेपि-सौर—तिथि-गार्गीय-जाबालि—पौष्ण्यायन-ऋषि और ग्रामद य सब आर्षेय एव प्रवर माने गये हैं। भृगु-वीतहव्य-रैवस ये सब परस्पर मे अवैवाह्य ऋषिगण कहे गये हैं। शालयनि-शाकटाक्ष-मैत्रेय—खाण्डव—द्रौणायन—रौक्मायन—पिशली—कायनि—हसजिह्व ये सब आर्षेय प्रवर माने गये हैं ॥३६॥ ॥३७, ३८, ३९, ४०, ४१॥

भृगुश्चैवाथ वध्र्यश्वो दिवोदासस्तथैव च ।
परस्परमवैवाह्या ऋषय परिकीर्तिता ॥४२
एकायनो याज्ञपतिर्मत्स्यगन्धस्तथैव च ।
प्रत्यूहश्च तथा सौरिश्चौक्षिर्वै कादमायनि ॥४३
तथा गृत्समदो राजन् ! सनकश्च महान् ऋषि ।
प्रवरास्तु तथाक्तानामार्षेया परिकीर्तिता ॥४४
भृगुगृत्समदश्चैव आर्षवितौ प्रकीर्त्तितौ ।
परस्परमवैवाह्या ऋषी वै परिकीर्तितौ ॥४५
एते तवोक्ता भृगुवंशजाता महानुभावा नृप गोत्रकारा ।
एषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं विजहातिजन्तु ॥४६

भृगु—वध्र्यश्व—दिवोदास य सब परस्पर म अवैवाह्य ऋषिगण परिकीर्तित किये गये हैं। एकायन—याज्ञपति—मत्स्यगन्ध—प्रत्यूह—सौरि—औक्षि—कादमायनि—हे राजन् ! गृत्समद और महान् ऋषि सनक ये कहे हुए ऋषियों मे प्रवर तथा आर्षेय कहे गये हैं। भृगु—गृत्समद ये दोनो आर्ष कीर्त्तित किये गये हैं। य दोनो परस्पर म ऋषि अवैवाह्य कीर्तित हुए हैं। ये भृगु के वंश म उत्पन्न महानुभाव गोत्र करने वाले हैं। हे नृप ! इन नामो के कीर्तन से जन्तु समग्र पापो को त्याग दिया करता है ॥४२, ४३ ४४, ४५, ४६॥

७८—आङ्गिरसवंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

मरीचितनया राजन् ! सुरूपा नाम विश्रुता ।
भार्या चाङ्गिरसो देवास्तस्याः पुत्रा दश स्मृताः ॥१
आत्मायुर्दमनो दक्षः सदःप्राणस्तथैव च ।
हविष्माश्च गविष्ठश्चऋतः सत्यश्च ते दश ॥२
एते चाङ्गिरसोनाम देवा वै सोमपायिनः ।
सुरूपा जनयामास ऋषीन् सर्वेश्वरानिमान् ॥३
बृहस्पतिङ्गौतमञ्च सवत्तमृषिमुत्तमम् ।
उतथ्य वामदेवं च अजस्यमृषिजन्तथा ॥४
इत्येते ऋषय.सर्वेगोत्रकाराःप्रकीर्तिताः ।
तेषां गोत्रसमुत्पन्नान् गोत्रकारान्निबोध मे ॥५
उतथ्योगौतमश्चैव तौलेयोऽभिजितस्तथा ।
साधनेमिःसलोगाक्षिःक्षीरः कौष्टिकिरेवच ॥६
राहुकर्णिः सौपुरिश्च कैरातिःसामलोमकिः ।
पौपजितिर्भार्गवतो ह्यृपिश्चैरीडवस्तथा ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् मरीचि के पुत्री सुरूपा—इस नाम से प्रसिद्ध भार्या थी । आङ्गिरस देव उनके दश पुत्र बताये गये हैं ।।१।। आत्मायु—दमन—दक्ष—सदः प्राण—हविष्मान्—गविष्ठ—ऋत—सत्ये ये दश उनके नाम थे । ये सब आङ्गिरस नाम वाले सोमपायी देव थे । इन सर्वेश्वर सब ऋषियों को सुरूपा ने ही जन्म दिया था ।।२, ३।। बृहस्पति—गौतम—सम्वर्त—उत्तम ऋषि—उतथ्य—वामदेव—अजस्य—ऋषिज—ये सब ऋषिगण गोत्रकार कहे गये हैं । अब उनके गोत्र में समुत्पन्न जो गोत्र कार हैं उनको भी मुझसे जान लेना चाहिये । उतथ्य—गौतम—तौलेय—अभिजित—साधनेमि—सलोगाक्षि—क्षीर—कौष्टिक—राहुकर्णि—सौपुरि—कैराति—सामलोमकि—पौर्पाजति—भागवत—ऋषि—ऐरीडव ।।४-७।।

कारोटकः सजीवी च उपविन्दुसुर्रैपिणौ ।
वाहिनीपतिर्वैशाली क्रोष्टा चैवारुणायनिः ।।८
सोमोत्रायनिकामोरुकौशल्या पार्थिवास्तथा ।
रौहिण्यायनिरेवाग्नी मूलपः पाण्डुरेव च ।।६
क्षपाविश्वकरोऽग्निश्च पारिकाराररिव च ।
इत्यार्षेयाः प्रवराश्चैव तेषां च प्रवरान् शृणु ।।१०
अङ्गिरा सुवचोतथ्य उशिजश्च महानृषिः ।
परस्परमववाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।।११
आत्रेयायनिसौवेष्ट्यौ अग्निवेश्य. शिलास्थलि· ।
वालिशायनिश्चैकेपी वाराहिर्वाष्कलिस्तथा ।।१२
सौटिश्चत्रिणकर्णिश्चप्रावहिश्चाश्वलायनि ।
वाराहिर्वर्हिसादी च शिखाग्रीविस्तथैव च ।।१३
कारकिश्च महाकापिस्तथा चोडुपति प्रभु ।
कौचकिर्धूमितश्चैव पुष्पान्वेषिस्तथैव च । १४

कारोटक—सजीवी—उपविन्दु—सुरैपिण—वाहिनीपति-वैशाली-क्रोष्टा—वारुणायनि—सोमोत्रायनि—कामोरु—कौशल्य—पार्थिव—रौहिण्यायनि—अग्नि—मूलप—पाण्ड—क्षपाविश्वकर—अरि—पारिकारारि—येत्यार्षेय और प्रवर ये अब आगे उनके प्रवरों का श्रवण करो। अङ्गिरा-सुवचोतथ्य—उशिज—महानृषि—ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कीर्तित किये गये हैं। आत्रेयायनि-सौवेष्ट्य-अग्निवेश्य—शिलास्थलि-वालिशायनि-एकेपि-वाराहि-वर्हिसादी-शिखाग्रीवि—कारकि—महाकापि-उडुपति प्रभु—कौचकि—धूमति—पुष्पान्वेषी ।।८, ६, १०, ११, १२।। ।।१३, १४।।

सोमतन्विब्रह्मतन्विः सालडिर्बालडिस्तथा ।
देवरारिर्देवस्थानिर्हारकार्णिः सरिद्भुविः ।।१५
प्रावेपिः साद्यसुग्रीविस्तथा गोमेदगन्धिकः ।

मत्स्याच्छाद्यो मूलहरः फलाहारस्तथैव च ॥१६
गाङ्गोदधि. कोरुपतिः कौरुक्षेत्रिस्तथैव च ।
नायकिर्जैत्यद्रोणिश्च जैह्वलायनिरेव च ॥१७
आपस्तम्बिर्मौञ्जवृष्टिमर्ष्टिपिङ्गलिरेव च ।
पैलश्चैव महातेजा शालङ्कायनिरेव च ॥१८
द्व्यख्येयो मारुतश्चैषां द्व्यार्षेयः प्रवरो नृप ! ।
अङ्गिरा प्रथमस्तेषां द्वितीयश्च बृहस्पतिः ॥१९
तृतीयश्च भरद्वाजः प्रवराः परिकीर्तिताः ।
परस्परमवैवाह्या इत्येते परिकीर्तिताः ॥२०
काण्वायनाः कोपचयास्तथा वात्स्यतरायणा. ।
भ्राष्टकृद्राष्ट्रपिण्डी च लैन्द्राणिः सायकायनि ॥२१

सोमतन्वि -ब्रह्मतन्वि–सालडि–बालडि–देवरारि देव स्थानि–हारिकर्णि–सग्द्रुवि–प्रावेपि–साद्य सुग्रीवि—गोमेद गन्धिक–मत्स्याच्छाद्य—मूलहर–फलाहार–गङ्गोदधि–कोरुपति–कौरुक्षेत्रि–नायकि—जैत्यद्रोणि—जैह्वलायनि–आपस्तम्बि–मौञ्ज वृष्टि–मार्ष्टिपिङ्गलि–पैल–महातेजा—शालङ्कायनि —द्व्याख्येय–मारुत—द्व्यार्षेय—प्रवर–हे नृप ! उनमे अंगिरा प्रथम था और द्वितीय बृहस्पति था। तीसरा भरद्वाज ये सब प्रवर कीर्तित किये गये हैं। ये परस्पर में अवैवाह्य कहे गये हैं। काण्वायन–कोपचय–वात्स्य तरायण—भ्राष्टकृत—राष्ट्रपिण्डी—लैन्द्राणि–सायकायनि ॥१५॥ ॥१६, १७, १८, १९, २०, २१॥

क्रोष्टाक्षो बहुवीती च तालकृन्मधुरावहः ।
लावकृद्गालविद्गाथो मार्कटिः पौलिकायनि. ॥२२
स्कन्दसश्च तथा चक्री गार्ग्य. श्यामायनिस्तथा ।
बलाकिः साहरिश्चैव पञ्चार्षेया. प्रकीर्तिताः ॥२३
अङ्गिराश्च महातेजा देवाचार्यो बृहस्पतिः ।
भरद्वाजस्तथा गर्गः सैन्यश्च भगवानृषिः ॥२४

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
कपीतरः स्वस्तितरो दाक्षि.शक्तिःपतञ्जलिः ॥२५
भूयसिर्जलसन्धिश्चबिन्दुर्मादिःकुसीदकिः ।
ऊर्वस्तु राजकेशी च वौपडि. शसपिस्तथा ॥२६
शालिश्चकलशीकण्टःऋषिःकारीरयस्तथा ।
काटयोघान्यायनिश्चैवभावास्यायनिरेव च ॥२७
भारद्वाजि.सौबुधिश्च लघ्वी देवमतीस्तथा ।
त्र्यार्षेयाऽभिमनश्चैव प्रवरो भूमिपोत्तम ॥२८

क्रोष्टाक्षी—बहुवीती—तालकृत—मधुरावह—लावकृत्—गाल-विद्—गाथी—मार्कंटि—पौलकायनि—स्कन्दस—चक्री-गार्ग्य-श्यामायनि-वालाकि, सार्हर, ये पाँच आर्षेय प्रकीर्तित हुए हैं। अङ्गिरा, महातेजा, देवाचार्य्य बृहस्पति, भरद्वाज, गर्ग, सैन्य, भगवान् ऋषि ये परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कहे गये हैं। कपीतर, स्वस्तितर, दाक्षि, शक्ति, पतञ्जलि, भूयसि, जलसन्धि, बिन्दु माहि, कुसीदकि, ऊर्व, राजकेशी, वौपडि, शसपि, शालि, कलशीकण्ट, ऋषि कारीरय, काटय, धान्यायनि भावास्यायनि, भारद्वाजि, सौबुधि, लघ्वी, देवमती, हे भूमिपोत्तम! ये त्र्यार्षेय, अभिमन प्रवर वाले थे ॥२२, २३, २४, २५, २६, २७, २८॥

अङ्गिरा दमवाह्यश्च तथा चैवाप्युरुक्षयः ।
परस्परायणवर्णी च लौक्षिर्गार्ग्य हरिस्तथा ॥२९
गालविश्चैव त्र्यार्षेयः सर्वेषा प्रवरो मतः ।
अङ्गिरा सकृतिश्चैव गौरवीतिस्तथैव च ॥३०
परस्परमवैवाह्या ऋषय. परिकीर्तिताः ।
बृहदुक्थो वामदेवस्तथा त्रि. प्रवरा मता· ॥३१
अङ्गिरा बृहदुक्थश्च वामदेवस्तथैव च ।
कुत्साकुत्सैरववाह्या एवमाहुः पुरातना ॥३२

रथीतराणां प्रवरा त्र्यार्षेया: परिकीर्तिता: ।
अङ्गिराश्च विरूपश्च तथैवच रथीतर: ॥३३
रथीतराह्यवैवाह्या नित्यमेव रथीतरे: ।
विष्णुवृद्धि: शिवमतिर्जतृण: कत्तृणस्तथा ॥३४
पुत्रवश्च महातेजास्तथा वैरपरायण: ।
त्र्यार्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरो नृप ! ॥३५

अङ्गिरा, दमवाह्य, उरुक्षय, परस्परायण्त्रपर्णी, लौक्षि, गार्ग्य, हरि, गालवि, त्र्यार्षेय, सबका प्रवर माना गया है। अङ्गिरा, संकृति, गौर धीति ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कीर्तित किये गये हैं। बृहदुक्थ, वामदेव ये त्रिप्रवर माने गए हैं। अङ्गिरा, बृहदुक्थ, वामदेव, कुत्साकुत्से से ये अवैवाह्य थे-ऐसा पुरातन मनीषीगण कहते हैं। रथीतरों में प्रवर ये त्र्यार्षेय परिकीर्तित हुए हैं। अङ्गिरा, विरूप और उसी भाँति से रथीतर। रथीतरों से नित्य ही विवाहन करने के योग्य थे। विष्णु वृद्धि, शिवमति जतृण कत्तृण, पुत्रव, महातेजा, वैरपरायण हे नृप ! इन सबका त्र्यार्षेय प्रवर अभिमत था ॥२६।३०।३१।३२।३३।३४।३५॥

अङ्गिरा मत्स्यद-ध्रश्च मुद्गलश्च महातपा: ।
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ॥३६
हसजिह्वो देवजिह्वो ह्यग्निजिह्वो विराडप: ।
अपाग्नेयस्त्वश्वयुश्च परण्यस्ताविमौद्गला: ॥३७
त्र्यार्षेयाभिमतास्तेषां सर्वेषां प्रवरा: शुभा: ।
अङ्गिराश्चैव ताण्डिश्च मौद्गल्यश्च महातपा: ॥३८
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।
अपाण्डुश्च गुरुश्चैव तृतीय: शाकटायन: ॥३९
तत: प्रागाथमा नारी मार्कण्डो मरण: शिव: ।
मटुमर्कटपश्चैव तथा नाडायनाह्यृषि: ॥४०
श्यामायनस्तथैवैषां त्र्यार्षेया: प्रवरा शुभा: ।

अङ्गिराश्चाजमीणश्च कटयश्चैव महातपाः ॥४१
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
तित्तिरिः कपिभूश्चैव गार्ग्यश्चैव महानृपिः ॥४२

अङ्गिरा, मत्स्यदग्ध, मुद्गल, महातपा ये ऋषिगण आपस में अवैवाह्य कहे गये हैं। हंसजिह्व, देवजिह्व, अग्नि जिह्व, विराडप, अपाग्नेय, अश्वयु, परण्यास्ताविमद्गल ये उनके द्वयर्षेय सबके परम शुभ प्रवर अभिमत हुए हैं। अङ्गिरा, ताण्डि, मौद्गल्य, महातपा ये सब ऋषिगण आपस में विवाह न करने के योग्य थे–ऐसे कहे गये हैं। अपाण्डु, गुरु, तृतीय शाकटायन, इसके उपरान्त प्रागाथमा नारी, मार्कण्ड, मरण, शिव, कटुमकटप, नाडायन, ऋषि, श्यामायन उसी प्रकार से त्र्यार्षेय इनके शुभ प्रवर थे। आङ्गिरा, आजमीढ, कटय, महातपा ये सब परस्पर में ऋषिगण अवैवाह्य कहे गये हैं। तित्तिरि, कपिभू, गार्ग्य और महान् ऋषि ॥३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२॥

त्र्यार्षेयो हि मतस्ते सर्वेषां प्रवरः शुभः ।
अङ्गिरास्तित्तिरिश्चैव कपिभूश्च महानृपिः ॥४३
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
अथ ऋक्षभरद्वाजौ ऋषिवान् मानवस्तथा ॥४४
ऋषिमैत्रवरश्चैव पञ्चार्षेयाः प्रकीर्तिताः ।
अङ्गिराः सभरद्वाजस्तथैव च बृहस्पतिः ॥४५
ऋषिर्मित्रवरश्चैव ऋषिवान् मानवस्तथा ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥४६
भारद्वाजो हुतःशौङ्ग शैशिरेयस्तथैव च ।
इत्येते कथिताः सर्वे द्व्यामुष्यायणगोत्रजाः ॥४७
पञ्चार्षेयास्तथा ह्येषां प्रवराः परिकीर्तिताः ।
अङ्गिराश्च भरद्वाजस्तथैव च बृहस्पतिः ॥
मौद्गल्यः शैशिरश्चैव प्रवराः परिकीर्तिताः ॥४८

एते सर्वोक्ताङ्गिरसस्तु वंशे महानुभावा ऋषिगोत्रकारा ।
येषान्तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषा जहाति ॥४६

उन सबका त्र्यर्षेय शुभ प्रवर माना गया है । अङ्गिरा, तित्तिरि, कपिभू, महानृषि, ये सब परस्पर मे अवैवाह्य ऋषिगण कीर्तित किये गये हैं । इसके उपरान्त ऋक्ष, भरद्वाज, ऋषिवान्, मानव ऋषि और मैत्रवर ये पाँच आर्षेय कीर्त्तित किये गये हैं । अङ्गिरा, भरद्वाज बृहस्पति ऋषि, मित्रवर, ऋषिवान् मानव ये सब परस्पर म अवैवाह्य ऋषिगण कहे गये हैं । भारद्वाज, हुत, शौङ्ग, शैशिरेय, य सब द्व्यामुष्यायण गोत्र मे समुत्पन्न कहे गए थे ॥४३, ४४, ४५, ४६, ४७॥ इन सबके पाँच आर्षेय प्रवर परिकीर्त्तित हुए हैं उनमे अंगिरा, भरद्वाज, बृहस्पति, मौद गल्य, शैशिर ये प्रवर कहे गये हैं ॥४८॥ ये सब आङ्गिरस के वंश मे महानुभाव गोत्रकार ऋषिगण आपको बतला दिये गये हैं। जिनके केवल नाम मात्र के ही कीर्तित करने से पुरुष अपना समग्र पाप को त्याग दिया करता है ॥४६॥

७७–अत्रिवंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

अत्रिवंशसमुत्पन्नान् गोत्रकारान्निबोध मे ।
कर्दमायनशाखेयास्तथा शारायणाश्च ये ॥१
उद्दालकि शौणकर्णिरथो शौक्तवश्च ये ।
गौराग्रीवा गौरजिनस्तथा चैत्रायणाश्च ये ॥२
अर्द्धपण्या वामरथ्या गोपनास्तकिबिन्दव ।
कर्णजिह्वो हरप्रीतिर्नैद्राणि शाकलायनि ॥३
तैलपश्च सवैलेय अत्रिर्गोणीपतिस्तथा ।
जलदो भगपादश्च सौपुष्पिश्च महातपा ॥४

छन्दोगेयस्तथं तेषा त्र्यार्पेया: प्रवरा मता: ।
श्यावाश्च तथा निश्चआर्चनानशएव च ॥५
परस्परमवैवाह्या ऋपय· परिकीतिता ।
दाक्षिर्वलि: पणविश्च ऊर्णनाभि: शिलार्दनि: ॥६
बीजवापी शिरोयश्च मौञ्जकेशो गविष्ठिर: ।
भलन्दनस्तथ तेषा त्र्यार्पेया. प्रवरा मता: ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा–अत्रि के वंश मे उत्पन्न होने वाले गोत्रकारों का ज्ञान मुझसे प्राप्त करलो जो कर्दमायन शाखेय तथा शारायण थे । उद्दालकि, शौण, कर्णिरथ और जो शौक्रतव थे । जो गौर ग्रीव, गौरजिन तथा चैत्र यण थे । अर्द्धपण्य, वामरथ्य, गोपन, तकिबिन्दु, कर्णजिह्व, हरप्रीति, नैद्राणि, शाकलायनि, तैलप, सवैलेय, अत्रि, गोणीपति-जलद, भगपाद, सौ पुष्पि, महातपा और छन्दोगेय, इनके त्र्यार्षेय प्रवर माने गये हैं । श्यावाश्व, त्रिश्व और आर्चनानश ये आपस मे अवैवाह्य ऋषिगण कहे गये हैं । द क्षि, वलि, पर्णवि, ऊर्णनाभि शिलार्दनि, बीजवापी शिरीष, मौञ्जकेश, गविष्ठिर और भलन्दन ये इनके प्रवर और त्र्यार्षेय माने गये हैं ॥१-७॥

अत्रिगविष्ठिरश्चैव तथा पूर्वातिथि: स्मृत: ।
परस्परमवैवाह्या ऋपय: परिकीतिता. ॥८
आत्रेयपुत्रिकापुत्रानत ऊद्‌र्ध्वं निबोध मे ।
कालेयाश्च सचालेया वासरथ्यास्तथ व च ॥९
धात्रेयाश्चैव मैत्रेयास्त्र्यार्पेया: परिकोर्तिता. ।
अत्रिश्च वामरथ्यश्च पौत्रिश्चैवमहानृपि: ॥
परस्परमवैवाह्या ऋपय. परिकीत्तिता: ॥१०
इत्यत्रिवशप्रभवास्तवाह्या महानुभावा नृपगोत्रकारा:
येपा तु नाम्ना परिकीर्त्तितेन पाप समग्र पुरुषो जहाति ॥११

अत्रि गविष्ठिर पूर्वातिथि य ऋषिगण परस्पर मे अववाह्य परिकीर्तित किय गय हैं ।।८।। अब आश्रय पुत्रिका के पुत्रो को भी सुमस समझ लो । कात्रेय सचानेय वासरथ्य श्रात्रय मैत्रय यार्वेय कीर्तित किये गये हैं । अत्रि वामरथ्य पौत्रि महान् ऋषि स सब ऋषिगण आपस मे विवाह न करने के ही योग्य थ । य सब अत्रि क वश म उत्पन्न होन वाले तपगोत्रकार महानुभाव हैं जो तुम्हारे सामन वर्णित कर दिय गए हैं । जिनके शुभ नामो के कीर्तन मात्र स ही पुरुष समग्र पाप का त्याग कर दिया करता है ॥ -११॥

८०—कुशिकवशज ऋषियों के नाम गोत्र वश प्रवर वर्णन

अत्रेरेवापर वश तव वक्ष्यामि पार्थिव ।।
अत्रे सोम सुत श्रीमास्तस्य वशोद्भवानप ॥१
विश्वामित्रस्तु तपसा ब्राह्मण्य समवाप्तवान् ।
तस्य वशमह वक्ष्ये त मे निगदत शृणु ॥२
विश्वामित्रो देवरातस्तथा वहृतिगालव ।
वतण्डश्च सलङ्कश्च ह्यभयश्चायतायन ॥३
श्यामायना याज्ञवल्क्या जाबाला स धवायना ।
बाभ्रव्याश्व करीषाश्च स रत्या अथ सश्रुता ॥४
उलपा औपगहृचा पयोदजनप दपा ।
खरवाचो हलयमा साधिता वास्तुकौशिका ॥५
त्र्यार्षेया प्रवरास्तेषा सवषा परिकीर्त्तिता ।
विश्वामित्रो देवरात उद्दालश्च महायशा ॥६
परस्परमववाह्या ऋषय परिकीर्त्तिता ।
देवश्रवा सुजातेया सोमुका रारुरायना ॥७

तथा वैदेहराता ये कुशिकाश्च नराधिप ! ।
त्र्यार्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरः शुभः ॥८

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे पार्थिव ! अब मैं अत्रि के दूसरे वंश का वर्णन करूँगा। हे नृप ! सोम अत्रिका सुत श्रीमान् सोम उसका वंशोद्भव था। विश्वामित्र ने तपश्चर्या के द्वारा ब्राह्मणत्व की प्राप्ति कर ली थी। मैं अब उसके वंश का भी वर्णन करूँगा। बतलाने वाले मुझसे उसका आप लोग श्रवण कर लेवें। विश्वामित्र—देवरात—वैकृतिगालव—वतण्ड—सलङ्क—अभय—आयतायन—श्यामायन—याज्ञवल्क्य—जाबाल—सैंधवायन—बाभ्रव्य—करीष—संश्रुत्य—सश्रुत—उलूप—औपगहय—पयोद जन पादव—खरवाच—हलयम—साधित—वास्तु कौशिक—इन सबके त्र्यर्षेय प्रवर कीर्तित किए गए हैं। विश्वामित्र—देवरात—महायशा उद्दाल थे परस्पर में विवाह न करने के योग्य ही हैं—ऐसे ही ऋषिगण कहे गए हैं। देवश्रवा—सुजातेय—सौसुक—कारुकायन—तथा वैदेहरात—हे नराधिप ! जो कुशिक है इन सबका शुभ प्रवर त्र्यर्षेय अभिमत है ॥१-८॥

देवश्रवा देवरातो विश्वामित्रस्तथैव च ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥९
धनञ्जय कपर्देयः परिकूटश्च पार्थिव ! ।
पाणिनिश्चैव त्र्यार्षेयाः सर्व एते प्रकीर्तिताः ॥१०
विश्वामित्रस्तथाद्यश्च माधुच्छन्दस एव च ।
त्र्यार्षेया प्रवरा ह्येते ऋषयः परिकीर्तिताः ॥११
विश्वामित्रो मधुच्छन्दास्तथा चैवाघमर्षण ।
परस्परमवैवाह्याऋषयः परिकीर्तिताः ॥१२
कमलायजिनश्चैव अश्मरथ्यस्तथैव च ।
वञ्जुलिश्चापि त्र्यार्षेय सर्वेषां प्रवरो मतः ॥१३
विश्वामित्रश्चाश्वरथो वञ्जुलिश्च महातपाः ।

परस्परमवैवाह्या ऋषय परिकीर्तिता ॥१४

देवश्रवा, देवरात्र तथा विश्वामित्र य ऋषिगण परस्पर विवाह न करने के योग्य कहे गए हैं ।।६।। हे पार्थिव ! धनञ्जय कपर्दैय, परिकूट और पाणिनि ये सब त्र्यार्षेय कीर्तित किए गये हैं ॥१०॥ विश्वामित्र तथा आद्य और मधुच्छन्दस ये त्र्यार्षेय प्रवर ऋषिवर बताए गए हैं ॥११॥ विश्वामित्र मधुच्छन्द, अघमर्षण ये आपस मे अवैवाह्य ऋषिगण कीर्तित हुए हैं ॥१२॥ कमलायजनि अघमरथ्य, वञ्जुलि सबका त्र्यार्षेय प्रवर माना गया है । १३ । विश्वामित्र अश्वरथ, महातपा वञ्जुलि य परस्पर मे अवैवाह्य ऋषिगण परिकीर्तित हुए हैं ॥१४॥

विश्वामित्रोलोहितश्च अष्टक पूरणस्तथा ।
विश्वामित्र पूरणश्च तयोर्द्वौप्रवरो स्मृतौ ॥१५
परस्परमवैवाह्या पूरणाश्च परस्परम् ।
लोहिता अष्टकाश्चैषा त्र्यार्षेया परिकीर्तिता ॥१६
विश्वामित्रो लोहितश्च अष्टकश्च महातपा ।
अष्टका लोहितैनित्यमववाह्या परस्परम् ॥१७
उदरेण ऋथकश्च ऋषिश्चोदावहिस्तथा ।
शाट्यायनि करीराशी शालङ्कायनिलावकी ॥१८
मौञ्जायनिश्चभगवानृत्र्यार्षेया परिकीर्तिता ।
खिलिखिलीस्तथाविद्योविश्वामित्रस्तथवच ॥
परस्परमववाह्या ऋषय परिकीर्तिता ॥१९॥
एते तवोक्ता कुशिका नरेन्द्र ! महानुभावा सततद्विजेन्द्रा ।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पाप समग्र पुरुषो जहाति ॥२०

विश्वामित्र और लोहित—अष्टक–पूरण–विश्वामित्र और पूरण इन दोनों के दो प्रवर कहे गए हैं । पूरण आपस मे अवैवाह्य है । लोहित और अष्टक इनके त्र्यार्षेय बताय गए हैं ॥१५ १६॥ विश्वामित्र लोहि त महातपा अष्टक ये अष्टक लोहितों के साथ आपस मे अवव ह्य हैं ॥१७॥

उदरेणु, त्र्यक, ऋषि उदावहि,शाटघायनि, करीराशी,शालयङ्काय, तिला-वकि, मौञ्जायनि, भगवान् ये न्यार्षेय कीर्तित हुए हैं। खिलिखिलि, विद्य तथा विश्वामित्र ये परस्पर में ऋषिगण अवैवाह्य कहे गए हैं ॥१८,१९॥ हे नरेन्द्र ! ये आपको द्विजेन्द्र महानुभाव सतत कुशिक सब बतला दिये गए हैं जिनके परम शुभ नामों के सकीर्तन मात्र से ही पुरुष अपने समस्त पापों को त्याग कर विशुद्ध हो जाया करता है ॥२०॥



८१–कश्यपवंशज-ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

मरीचे: कश्यपः पुत्रः कश्यपस्य तथा कुले ।
गोत्रकारान् ऋषीन् वक्ष्ये तेषा नामानि मे शृणु ॥१
आश्रायणि ऋ'षिगणो मेषकीरिटकायना ।
उदग्रजामाठराश्च भोजा विनयलक्षणा. ॥२
शालाहलेया कौरिष्टा कन्यकाश्चासुरायणा ।
मन्दाकिन्या वै मृगया श्रुतया भोजयापना: ॥३
देवयाना गोमयानद्यधश्छाया भयाश्च ये ।
कात्यायना शाक्रयाणा वर्हियोगगदायना. ॥४
भवनन्दि महार्चाक्रि दाक्षपायन एव च ।
योधयाना कातिवयो हस्तिदानास्तथैव च ॥५
वात्स्यायनानि कृतजा ह्याश्वलायनिनस्तथा ।
प्रागायणा पौलमौलिराश्ववातायनस्तथा ॥६
कौवेरकाश्च श्यात्तारा अग्निशर्मायणश्च ये ।
मेषपा. वंकरसपास्तथा चैव तु वभ्रव ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—महामहर्षि मरीचि का कश्यप पुत्र हुआ था तथा कश्यप के कुल में जो गोत्रकार ऋषिगण हुए थे उनकी शुभ

नामावली अब आप मुझसे श्रवण करलो ॥१॥ आश्रायणि ऋषिगण, मेष-कीरिटकायन, उदग्रजामाठर, भोज, विनय लक्षण, शालाहलेय, कौरिष्ट, कन्यक, आसुरायण, मन्दाकिनी मे मृगय, श्रुतम, भोजयापन, देवयान, गोमयान, अधश्छय्या, भया, कात्यायन, शाक्रयाण, बर्हियोग गदायन, भव-नन्दि, महाचक्रि, दाक्ष पायन, योधमान, कात्तिवय हस्तिदान, वात्स्यायनि कृतज, आश्वलायनि, प्रागायण, पौलमौलि, आश्व वातायन, कौवेरक, श्याकार, अग्निशर्मायण, मेषप, कंकरसप, तथा बभ्रव ॥२-७॥

प्राचेयो ज्ञानसञ्ज्ञेया आग्ना प्रासेव्य एव च ।
श्यामोदरा वैवशपास्तथाचैवोद्वलायना: ॥८
काष्ठाहारिणमारीचाआजिहायनहास्तिका ।
वैकर्णया काश्यपेया सासिसाहारिनायना ॥९
मान्तगिनश्च भृगवस्त्यार्षेया: परिकीर्तिता ।
वत्सर कश्यपश्चैव निध्रवश्चमहातपा ॥१०
परस्परमवैवाह्या ऋषय परिकीर्तिता ।
अत पर प्रवक्ष्यामि द्व्यामुष्यायणगोत्रान् ॥११
अनसूयो नाकुरय स्नातपो राजवतप ।
दौशिरोदवहिश्चैव सैरन्ध्रीरोपसेवकि: ॥१२
या मुनि काद्रपिङ्गाक्षि सजातम्दिस्थैव च ।
दिवावष्टाश्व इत्येते भक्तया ज्ञेयाश्च काश्यपा ॥१३
श्यार्षेयाश्च तथैवैषा सर्वेषा प्रवरा शुभा ।
वत्सर काश्यपश्चैव वसिष्ठश्चमहातपा. ॥१४

प्राचेय, ज्ञान सज्ञेय, अग्नि, प्रासेव्य, श्यामोदर, वैवशप, उद्वलायन, काष्टाहारिण, मारीच, आजिहायन, हास्तिक, वैकर्णेय, काश्यपेय, सासि साहारिनायन, मतङ्गिनि, भृगुगण य सब त्र्यार्षेय परिकीर्तित हुए हैं। अब यहा से आगे हम द्व्यामुष्यायण गोत्रों के विषय में वर्णन करेंगे। अनसूय, नाकुरय स्नातप्य, राज वतप दौशिरोदवहि, सैरन्ध्रीरोप सेवकि,

यामुनि, काद्रुपिङ्गाक्षि, सजातम्बि, दिवावष्टाश्व ये इतने भक्ति भाव से काश्यपों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इनके सबके त्यार्षेय शुभ प्रवर हैं। वत्सर, काश्यप, वसिष्ठ महातपा ।।८-१४।।

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
संयातिश्च नभश्चोभौ पिप्पल्योऽथ जलन्धरः ।।१५
भुजातपूरः पूर्यश्च कर्दमो गर्द्दभीमुखः ।
हिरण्यबाहुकरातावुभौ काश्यपगोभिलौ ।।१६
कुलहो वृषकण्डश्च मृगकेतुस्तथोत्तरः ।
निदाघमसृणौ भत्स्या महान्तः केवलाश्च ये ।।१७
शाण्डिल्यो दानवश्चैव तथा व देवजातयः ।
पैप्पलादिस्तु प्रवरा ऋषयःपरिकीर्तिताः ।।१८
त्र्यार्षेयाभिमतास्तेषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः ।
असितो देवलश्चैव कश्यपश्च महातपाः ।।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।।१९।।
ऋषिप्रधानस्य च कश्यपस्य दाक्षायणीभ्यः सकलप्रसूतम् ।
जगत्समग्रं मनुसिंह पुण्यं किं ते प्रवक्ष्याम्यहमन्तरेण ।। २०

ये समस्त ऋषिगण परस्पर में अवैवाह्य बतलाये गये हैं। संयाति, नभ ये दोनों, पिप्पल्य, जलन्धर, भुजातपूर, पूर्य, कर्दम, गर्दभी मुख, हिरण्य बाहुक, काश्यप, गोभिल, कुलह, वृषकण्ड, मृगकेतु, उत्तर, निदाघ, मसृण, भत्स्य, महान्त, केवल, शाण्डिल्य, दानव, देवजाति, पैप्पलादि ये सब ऋषिवृन्द प्रवर कहे गए हैं इन सबके शुभ प्रवर त्र्यार्षेय अभिमत हुए हैं। असित, देवल और महातपा कश्यप ये ऋषिगण परस्पर में अविवाह्य हैं—ऐसा कीर्तित किया गया है। समस्त ऋषियों में परम प्रधान कश्यप के दाक्षायणीयों से यह सम्पूर्ण प्रसूत हुआ है। यह सम्पूर्ण जगत् सिंह के तुल्य मनु का पुण्य रूप है। अब मैं इसके उपरान्त आपको क्या बतलाऊँ ।।१५-२०।।

८२-वशिष्ठ वंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

वसिष्ठवंशजान् विप्रान् निबोध वदतो मम।
एकार्षेयस्तु प्रवरा वासिष्ठाना प्रकीर्तित ॥१
वसिष्ठा एव वासिष्ठा अविवाह्या वसिष्ठजैः।
व्याघ्रपादाऔपगवावैक्लवा शाद्वलायना ॥२
कपिष्ठला औपलोमा अलब्धाश्चपठा कठा।
गोपायानावोधपाश्चदाकव्याहृयथवाहृयका ॥३
बालिशया पालिशयास्ततोवाग्ग्रन्थयश्चये।
आपस्थूणा शीतवृत्त स्तथाब्राह्मपुरयका ॥४
नामा ना स्वस्तिकरा शाण्डिर्निगौडिनिस्तथा।
वाडोहलिश्च सुमनाश्चापावृद्धिस्तथैव च ॥५
चौलिवौलिब्रह्मबल पौलि श्रवस एव च।
पौण्वा याज्ञवल्क्यश्च एकार्षेयामहृषय ॥६
वसिष्ठ एषा प्रवर अविवाह्या परस्परम्।
शतानयो महाकर्ण कौरव्य क्रोधिनस्तथा ॥७

कपिञ्जलावालखिल्याभागवित्तायनाश्चये ।
कौलायन कालशिखःकोरकृष्णा सुरायणाः ॥८
शाकाहार्या. शाकधिय. काण्वा उपलपाश्चये ।
शाकायनाउहाकाश्चअथमापशरावयः ॥६
दाकायनावालवयोवाकयो गोरथास्तथा ।
लम्बायना श्यामवयो ये चकोडोदरायणाः ॥१०
प्रलम्बायनाश्च ऋषय औपमन्यव एव च ।
साङ्ख्यायनाश्चऋषयस्तथावै वेदशेरका ॥११
पालङ्कायन उद्‌गाहा ऋषयश्च वलेक्षव ।
मातेया ब्रह्मवलिन पर्णागारिस्तथैव च ॥१२
त्र्यार्षेयाऽभिमनश्चैषा सर्वेषा प्रवरस्तथा ।
भिगीवसुवशिष्ठश्च इन्द्रप्रमदिरेवच ॥१३
परस्परमवैवाह्या ऋषय. परिकीर्तिता ।
औपस्थलास्वस्यलया पालोहाला हलाश्च ये ॥१४

कपिञ्जल, बाल खिल्य, भाग वित्तायन, कौलायन, काल शिख, कोर कृष्ण, सुरायण, शाकाहार्य, शाकधी, काण्व, उपलप, शाकायन, उहाक, मापशरावय, दाकायन, बालवय, वाकय, गोरथ, लम्बायन, श्याम वय कोडोदरायन, प्रलम्बायन ऋषिगण, औपमन्यव, साङ्ख्यायन ऋषि-वर्ग, वेदशेरक, पलङ्कायन, उद्गाह ऋषिगण, बलेक्षव, मातय, ब्रह्मवलिन, पर्णागारि, इन सबके प्रवर त्र्यार्षेय अभिमत है। भिगीवसु वशिष्ठ और इन्द्र प्रमदि ये ऋषिगण आपस में विवाह विधि नहीं करने के योग्य होते हैं—ऐसा ही कहा गया है। औपस्थल स्वस्थल ये—पालोहल—हल ॥८-१४॥

माध्यन्दिनो माक्षाय पैप्पलादिर्विचक्षुषः ।
सैशृङ्गायन सैवल्या. कुण्डिनश्च नरोत्तम ! ॥१५
त्र्यार्षेयाभिमताश्चैषा सर्वेषा प्रवरा शुभा ।

वसिष्ठमित्रावरुणौ कुण्डिनश्च महातपा ॥१६
परस्परमवैवाह्या ऋषय परिकीर्तिता ।
शिवकर्णो वयश्चैव पादपश्च तथैव च ॥१७
त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैषा सर्वेषा प्रवरस्तथा ।
जातकर्ण्योवसिष्ठश्च तथैवात्रिश्च पार्थिव ! ॥
परस्परमवैवाह्या ऋषय परिकीर्तिता ॥१८
वसिष्ठवशेऽभिहिता मयैते ऋषिप्रधाना सतत द्विजेन्द्रा ।
येषा तु नाम्ना परिकीर्तितेन पाप समग्र पुरुषो जहाति ॥१६

माध्यन्दिन, माक्षतप पैप्पलादि, विचक्षुप, चैश्रृङ्गायन संवर्क, कुण्डिन हे नरोत्तम ! इन सब के परम शुभ प्रवर त्र्यार्षेय अभिमत हैं। वसिष्ठ, मित्रावरुण, महातपा कुण्डिन ये ऋषि वृन्द परस्पर म अवैवाह्य हैं—ऐसा कीर्तित किया गया है। शिवकर्ण, वय पादप इन सबका त्र्यार्षेय प्रवर अभिमत है। हे पार्थिव ! जातकर्ण्य वसिष्ठ तथा अत्रि य ऋषि वृन्द आपस मे विवाहन करने के योग्य ही कहे गये हैं। १५ १८॥ मैंने आपको वसिष्ठ के वश मे ऋषियो मे प्रधान और निरन्तर द्विजेन्द्र आपको कह दिये गये है जिनके परम शुभ नामो के परिकीर्तन से पुरुष अपने सम्पूर्ण पापो का त्याग कर दिया करता है ॥१६॥

८३—ऋषियों के आख्यान में निमि का वर्णन

वसिष्ठस्तु महातेजानिमे पूर्वपुरोहित ।
बभूव पार्थिवश्रेष्ठ ! यज्ञास्तस्य समं तत ॥१
श्रान्तात्मापार्थिवश्रेष्ठ ! विशश्राम तदा गुरु ।
त गत्वा पार्थिवश्रेष्ठो निमिर्वचनमब्रवीत् ॥२
भगवन्यष्टुमिच्छामि तन्मा याजयमाचिरम् ।

तमुवाच महातेजा वसिष्ठ पार्थिवोत्तमम् ॥३
कञ्चित्कालं प्रतीक्षस्व तव यज्ञे सुसत्तम ।
श्रान्तोऽस्मि राजन् ! विश्रम्य याजयिष्यामि ते नृप ॥४
एवमुक्तः प्रत्युवाच वसिष्ठं नृपसत्तम ।
पारलौकिककार्ये तु कः प्रतीक्षितुमुत्सहेत् ॥५
न च मे सौहृदं ब्रह्मन् ! कृतान्तेन बलीयसा ।
धर्मकार्ये त्वरा कार्या चलं यस्माद्धि जीवितम् ॥६
धर्मपथ्यौदना जन्तुर्मृतोऽपि सुखमश्नुते ।
श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णेचापराह्णिकम् ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—महर्षि वसिष्ठ महान् तेजस्वी थे और निमि के पूर्व पुरोहित थे। हे पार्थिव श्रेष्ठ उसके चारों ओर यज्ञ थे उस समय में श्रान्त आत्मा गुरु ने विश्राम किया था। उनके समीप में जाकर निमि ने यह वचन कहा था। हे भगवन् ! मैं यजन चाहता हूँ—मुझे शीघ्र यजन कराइये। महान् तेज वाले वसिष्ठ जी ने उस श्रेष्ठ राजा से कहा था—कुछ समय तक प्रतीक्षा करो। आपके परम श्रेष्ठ यज्ञों से हे राजन् ! मैं थक सा गया हूँ मैं कुछ समय तक विश्राम करके ही यजन कराऊँगा ॥३ ४॥ इस प्रकार से जब कहा गया था उसने हे नृपश्रेष्ठ ! वसिष्ठ जी से कहा था कि पारलौकिक कार्य में कौन मनुष्य होगा जो प्रतीक्षा करने का उत्साह करेगा। हे ब्रह्मन् ! उस महान् बली यमराज से मेरी कोई मित्रता नहीं है। धर्म के कार्य में तो शीघ्रता करनी चाहिए क्योंकि यह मानव का जीवन तो चल और अस्थिर हुआ करता है ॥५, ६॥ धर्म रूपी पथ्य अन्न वाला यह जन्तु मृत होकर भी सुख का आनन्दोपभोग किया करता है। जो कार्य अर्थात् धर्म सम्बन्धी कर्म कल करने का विचार हो उसे आज ही करना चाहिए और जो दोपहर के बाद करने का हो उसको दोपहर के पूर्व ही कर डाले—इसी प्रकार धार्मिक कृत्य का ही जितनी

ही इस शरीर को शाश्वत मानता हूँ। धर्म कार्य में मैं इसको अशाश्वत मानता हूँ। इस सङ्कट में ऋणवान् हूँ। वह मैं सम्भृत सम्भार वाला मूल को उपागत हुआ हो गया था। यदि आप मुझे याजन नहीं करायेंगे तो मैं किसी अन्य याजक के समीप में चला जाऊँगा। इस प्रकार से उस समय में उस निमि के द्वारा वह श्रेष्ठ ब्राह्मण जब कहा गया था तो उसने महान् क्रोध से उस निमि को शाप दे दिया था कि तू विदेह हो जायेगा क्योंकि परम शान्त गुरु को त्याग करके किसी अन्य द्विजोत्तम के समीप जाना चाहता है ॥८-१४॥

धर्मज्ञस्तु नरेन्द्र ! त्वं याजकं कर्तुमिच्छसि ।
निमिस्तं प्रत्युवाचाथ धर्मकार्यरतस्य मे ॥१५
विघ्नङ्करोषि नान्येन याजनञ्च तथेच्छसि ।
शापंददासि यस्मात्त्वं विदेहोऽयमविष्यसि ॥१६
एवमुक्ते तु तौ जातौ विदेहौ द्विजपार्थिवौ ।
देहहीनौ तयोर्जीवौ ब्रह्माणमुपजग्मतुः ॥१७
तावागतौ समीक्ष्याथ ब्रह्मावचनमब्रवीत् ।
अद्यप्रभृति ते स्थानं निमिर्जीव ददाम्यहम् ॥१८
नेत्रपक्ष्मसु सर्वेषां त्वं वसिष्यसि पार्थिव ।
त्वत् सम्बन्धात्तथा तेषां निमेषः सम्भविष्यति ॥१९
चालयिष्यन्ति तु तदा नेत्रपक्ष्माणि मानवाः ।
एवमुक्ते मनुष्याणां नेत्रपक्ष्मसु सर्वशः ॥२०
जगाम निमिजीवस्तु वरदानात् स्वयम्भुवः ।
वसिष्ठ जीवं भगवान् ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥२१

हे नरेन्द्र ! धर्म के ज्ञाता आप हैं और आप याजक करना चाहते हैं। इसके अनन्तर निमि ने उसको इसका उत्तर दिया था कि धर्म्म में रति रखने वाले मेरे कार्य में विघ्न करते हैं और अन्य के द्वारा कराये जाने वाले याजन को नहीं चाहते हैं। इसीलिए आप शाप दे रहे हैं कि

तू विदेह हो जायगा तो तू भी विदेह हो जायगा। इस प्रकार से कहने पर वे दोनों ही द्विज और पार्थिव विदेह हो गये थे। उन दोनों के देह से हीन जीवों का ब्रह्मा जी के समीप में पहुँचे थे। उन दोनों का समागत हुए देखकर ब्रह्माजी ने यह वचन कहा—आज से लेकर हे निमि के जीव! तुमको मैं स्थान देता हूँ हे पार्थिव! तुम सब के नेत्रों के पक्ष्म में निवास करोगे ।।१८-१९।। मनुष्य उस समय में नेत्रों के पक्ष्मों का चलन करेंगे। इस तरह से कहने पर सब ओर मनुष्यों के नेत्रों के पक्ष्मों पर वह निमि का जीव स्वयम्भू प्रभु के वरदान से चला गया था। फिर ब्रह्माजी ने वसिष्ठ महर्षि के जीव से यह वचन कहा था—।।२० २१।।

मित्रावरुणयोः पुत्रो वसिष्ठ ! त्वं भविष्यसि।
वसिष्ठेतिच्चते नाम तत्रापिच भविष्यति ।।२२
जन्मद्वयमतीतञ्च तत्रापि त्वं स्मरिष्यसि।
एतस्मिन्नेव काले तु मित्रश्च वरुणस्तथा ।।२३
बदर्याश्रममासाद्य तपस्तेपतुरव्ययम्।
तपस्यतोस्तयोरेव कदाचिन्माधवे ऋतौ ।।२४
पुष्पितद्रुमसंस्थाने शुभे दयितमारुते।
उर्वशी तु वरारोहा कुर्वती कुसुमोच्चयम् ।।२५
सुसूक्ष्मरक्तवसना तयोर्दृष्टिपथङ्गता।
तां दृष्ट्वा सुमुखीं सुभ्रूं नीलनीरजलोचनाम् ।।२६
उभौ चक्षुभतुर्धैर्यात्तद्रूपपरिमोहितौ।
तपस्यतोस्तयोर्वीर्यमस्खलच्च मृगासने ।।२७
स्कन्नं रेतस्तदा दृष्ट्वा शापभीतौ परस्परम्।
चक्रतुः कलशे शुक्रं तोयपूर्णे मनोरमे ।।२८

हे वसिष्ठ ! तू मित्रावरुणों का पुत्र होगा। वहाँ पर भी 'वसिष्ठ'—यह तेरा नाम होगा।।२२।। वहाँ पर भी तुझे बीते हुए दो जन्मों का स्मरण होगा। इसी समय में मित्र और वरुण बदर्याश्रम को

प्राप्त करके अव्यय तपस्या का सेवन करने लगे थे। उन दोनों के इस प्रकार से तपश्चर्या करने पर किसी समय माधव ऋतु में परम शुभ और वहन करने वाली द्रुमों से युक्त पुष्पित द्रुमों के संस्थान में पुष्पों के स्तवकों उछालती हुई वरारोहवाली उर्वशी जो कि अत्यन्त वागीक और रक्तवर्ण के वस्त्र धारण कर रही थी तप करने वाले उन दोनों की दृष्टि में आ गई थी अर्थात् दोनों ने उर्वशी को देख लिया था। उस नीले कमलों के सदृश लोचनों वाली सुन्दर मुख से सम्पन्न सुभ्रू को देख कर उसके रूप लावण्य पर मोहित हुए वे दोनों ही धैर्यहीन होकर क्षोभ वाले हो गये थे। तपस्या करते हुए उन दोनों का वीर्य मृगासन पर स्खलित हो गया था। इसके उपरान्त जब उन्होंने अपने स्कन्न हुए वीर्य को देखा तो वे दोनों शाप से भयभीत हो गये थे और उन्होंने वहाँ पर स्थित जल से भरे हुए मनोहर कलश में उस वीर्य्य को डाल दिया था ॥ २३, २४, २५ २६, २७, २८॥

तस्मादृषिवरौ जातौ तेजसा प्रतिमौ भुवि ।
वसिष्ठश्चाप्यगस्त्यश्चमित्रावरुणयार्द्वयोः ॥२९
वसिष्ठस्तूपयेमेऽथ भागिनीं नारदस्य तु ।
अरुन्धती वरारोहा तस्या शक्तिमजीजनत् ॥३०
शक्तेः पराशर पुत्रस्तस्य वंश निबोध मे ।
यस्य द्वैपायनः पुत्र स्वयं विष्णुरजायत ॥३१
प्रकाशो जनितो येन लोके भारत चन्द्रमाः ।
पराशरस्य तस्य त्व श्रृणु वंशमनुत्तमम् ॥३२
काण्डपपो वाहनपो जैह्यपो भौमतापनः ।
गोपालिरेषां पञ्चम एते गौरा पराशराः ॥३३
प्रपोहयावाह्य मयाः ख्याते या कौतुजातय ।
हर्यश्विः पञ्चमो ह्येषा नीलाज्ञेया. पराशराः ॥३४
कार्ष्णायना. कपि मुखा. काकेयस्थाजपातयः ।

पुष्कर पञ्चमश्चैषा कृष्णाज्ञेया पराशरा ॥२५

उसी वीर्य से भूमण्डल में तेज से समन्वित उन दोनों मित्रावरुणों के दो ऋषियों में परम श्रेष्ठ समुत्पन्न हुए थे। उनमें एक का नाम वसिष्ठ था और दूसरे का नाम अगस्त्य था ॥ २६ ॥ वसिष्ठ ने नारद की भगिनी के साथ विवाह किया था जिस वरारोहा का नाम अरुन्धती था। उस अरुन्धती मे उसने शक्ति का समुत्पन्न किया था। शक्ति का पुत्र पराशर हुआ था। अब उसका जो भी वंश हुआ उसे मुझसे समझ लो। जिस पराशर का स्वयं विष्णु द्वैपायन पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ ३०, ३१ ॥ वह ऐसा था जिसने लोक मे भारत चन्द्रमा प्रकाश को प्रसून किया था उस पराशर मुनि का जो उत्तम वंश था उसे तुम श्रवण करलो ॥३२ काण्डपप—वाहनप—जैह्नप—भौम तापन और इनमे पाँचवा गोपा था। ये गौर पाराशर थे ॥ ३३ ॥ प्रय—हयावाह्य मय और ख्यात मे कौतुक जातियां हैं तथा पञ्चम हय शिव म नीलान य पराशर हैं ॥ ३४ कार्ष्णायन—कपिमुख—काकेयस्थ—जपाति और इनमें पाँचवा पुष्कर सब कृष्णाज्ञय पाराशर हैं ॥ ३५ ॥

आविष्टायन वालेयास्वायष्टाश्चोपयाश्च ये ।
इषीकहस्ताश्चत व पञ्चश्वेता पराशरा ॥ ३६
पाटिका वादरिश्चवस्तम्बा व क्रोधनायना ।
क्षैमिरेषा पञ्चमस्तु एते श्यामा पराशरा ॥३७
खल्यायना वार्ष्णायनास्तनेय खलु यूथपा ।
तं तरेषा पञ्चमस्तु एते धूम्रा पराशरा ॥३८
उक्तास्वते नृप ! वंशमुख्या पराशरा सूर्यसमप्रभावा ।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥ ३९

आविष्टायन—वालेय—स्वायष्ट—उपय—इषीक हस्त य पाँच श्वेत पराशर थे ॥ ३६ ॥ पाटिक—वादरि—स्तम्ब क्रोधानायन और इनका पाँचवा क्षैमि य श्याम पराशर हुए थे। खल्यायन—वार्ष्णायन—तलेय—

यूपप और इनमे पञ्चम तन्ति ये सब घूम्र पराशर हैं। हे नृप! ये सूर्य के समान प्रभाव वाले वंश में प्रमुख पराशर सब आपके समक्ष में वर्णित कर दिये गये हैं जिनके शुभ नामों के ही कीर्तन करने से मनुष्य अपने समस्त पापों से छुटकारा पाकर परम विशुद्ध हो जाया करता है ॥ ३७, ३८ । ३९ ॥

८४—ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

अत: परमगस्त्यस्य वक्ष्येवंशोद्भवान्द्विजान् ।
अगस्त्यश्चकरम्भश्चकौशल्य करटस्तथा ॥१
सुमेधसोमयोभुवस्तथा गान्धारकायणा ।
पौलस्त्या पौलहाश्चैवक्रतुवंशभवास्तथा ॥२
आर्षेयाभिमताश्चैषा सर्वेषा प्रवरा. शुभाः ।
अगस्त्यश्च महेन्द्रश्च ऋषिश्चैव मयोभुव ॥३
परस्परमवैवाह्या ऋषय· परिकीर्तिता. ।
पौर्णमासाः पारणाश्च आर्षेया परिकीर्तिताः ॥४
अगस्त्यः पौर्णमासश्च पारणश्च महातपाः ।
परस्परमवैवाह्याः पौर्णमासास्तु पारणः ॥५
एवमुक्तो ऋषीणान्तु वंश उत्तमपौरुष ।
अतः पर प्रवक्ष्यामि किम्भवानद्य कथ्यताम् ॥६
पुलहस्य पुलस्त्यस्य क्रतोश्चैवमहात्मन. ।
अगस्त्यस्य तथा चैवक्रय वंशस्तदुच्यताम् ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इससे आगे मैं अगस्त्य मुनि के वंश में समुत्पन्न द्विजों का वर्णन करता हूँ—अगस्त्य—करम्भ—कौशल्य—करट—सुमेधस—मयोभुव—गान्धारकायण—पौलस्त्य—पौलह—ऋतुवंश भव—

इन सबके शुभ प्रवर आर्षेय अभिमत हैं। अगस्त्य-महेन्द्र और मयोभुव ऋषि ये समस्त ऋषिगण परस्पर मे अवैवाह्य हैं ऐसा परिकीर्तित किया गया है। पौन मास और पारण आर्षेय कीर्तित किये गये हैं। अगस्त्य-पौर्ण मास तथा महान् तपस्वी पारण—ये आपस मे विवाह करने के योग्य नहीं थे और पौर्ण मास पारणों के साथ विवाह्य नहीं था। इस प्रकार से ऋषियों का उत्तम पौरुष वाला वंश मैंने कह दिया है। इससे आगे आज क्या कहूँ? आप ही यह मुझे बतलाइये। महर्षि मनु ने कहा—पुलह पुलस्त्य—क्रतु जो महान् आत्मा वाला था उसका अगस्त्य का वंश कैसे हुआ—यही अब बतलाइये ॥ १–७ ॥

क्रतुः खल्वनपत्योऽभूद्राजन्वैवस्वतेऽन्तरे।
इध्मवाहं स पुत्रत्वे जग्राह ऋषिसत्तमः ॥८
अगस्त्यपुत्रं धर्मज्ञ आगस्त्याः क्रतवस्ततः।
पुलहस्य तथा पुत्रास्त्रयश्च पृथिवीपते ॥ ९
तेषां तु जन्म वक्ष्यामि उत्तरत्र यथाविधि।
पुलहस्तु प्रजां दृष्ट्वा नातिप्रीतमनाः स्वकाम्। १०
अगस्त्यजं दृढास्यं तु पुत्रत्वे वृतवांस्ततः
पौलहाश्च तथा राजन् ! आगस्त्याः परिकीर्तिताः ॥११
पुलस्त्यो वयसम्भूतान् दृष्ट्वा रक्षः समुद्भवान्।
अगस्त्यस्य सुतं धीमान् पुत्रत्वे वृतवांस्तत ॥१२
पौलस्त्याश्च तथा राजन्नागस्त्याः परिकीर्तिताः।
सगोत्रत्वादिमे सर्वे परस्परमनन्वयाः ॥१३
एते तवोक्ताः प्रवरा द्विजानां महानुभावानृपवंशवाराः।
एषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥१४

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन्! वैवस्वत मन्वन्तर मे क्रतु बिना सन्तान वाला हुआ था। उस श्रेष्ठ ऋषि ने इध्मवाह को पुत्रत्व के रूप में ग्रहण किया था ॥ ८ ॥ वह धर्म का ज्ञाता अगस्त्य का

पुत्र था। इनके पश्चात् ऋतुगण्य आगस्त्य कहे गये थे। हे पृथिवी पते! पुलह के तीन पुत्र थे। अब मैं उत्तर मे यथाविधि इनके जन्म के विषय मे वर्णन करूँगा। पुलह ने अपनी प्रजा को देखा था तो वह—अत्यन्त प्रीति युक्त मन वाला नहीं था। इसके उपरान्त उसने दृढास्य जगस्त्य से समुत्पन्न को पुत्रत्व के रूप मे वरण कर लिया था। हे राजन्! उसी प्रकार से पौलह आगस्त्य परिकीर्तित हुए थे। पुलस्त्य के अन्वय में समुद्गतों को राक्षसों से समुद्भत वाले देख कर धीमान् ने अगस्त्य के सुत को ही पुत्रत्व मे वृत कर लिया था।।९।।१०।।११।।१२।। तथा हे राजन्! वे पौलस्त्य आगस्त्य कीर्तित हुये। सगोत्र होने से य सब परस्पर में अन्वय वाले नहीं थे। ये सब ऋषो के बराबर महानुभाव द्विजों मे, प्रवर थे? इनका वर्णन आपको सुना दिया है! इनके नामों के कीर्तन से मनुष्य अपने सम्पूर्ण पापों को त्याग देता है।।१३।१४।



८५—मनुमत्स्य संवादे धर्म वंश वर्णन

अस्मिन्वैवस्वते प्राप्ते शृणु धर्मस्य पार्थिव!।
दाक्षायणीभ्यः सकल वंश दवतमुत्तमम् ॥१
पर्वतादिमहादुर्गशरीराणि नराधिप!।
अरुन्धत्या, प्रसूतानि धर्माद्वैवस्वतेऽन्तरे ॥२
अष्टौ च वसव पुत्रा सोमपाश्चविभास्तथा।
धरोध्रुवश्चसामश्चआपश्चैवानिलानलौ ॥३
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिता।
धरस्य पुत्रो द्रविण कान पत्रोध्रुवस्यतु ॥४
कालस्यावयवानान्तु शरीराणि नराधिप!।
मूर्तिमन्ति च कालाद्धि मनसूतान्यनेपत ॥५

सोमस्य भगवान् वर्चा श्रीमाश्चापस्य कीर्त्यते ।
अनेकजन्मजनन कुमारस्त्वनलस्यतु ॥६
पराजवाश्चानिलस्य प्रत्यूपस्य तु देवल ।
विश्वकर्मा प्रभासस्य त्रिदशाना स वर्धकि ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे पार्थिव ! इस वैवस्वत अन्तर के प्राप्त होने पर दाक्षायणियो से सम्पूर्ण उत्तम अस्मि दैवत वश का श्रवण कीजिएगा ॥ १ ॥ हे नराधिप ! इस ववस्वत अन्तर मे धर्म से अरु धती से पर्वत आदि महा दुर्ग शरीर प्रसूत हुए थे ॥ २ ॥ आठ वसुगण पत्र-विश्व के सोमप धर ध्रुव-सोम-आप-अनिल-अनल-प्रत्यूष प्रभास ये सब अष्ट वसुगण कीर्तित किये गये हैं । धर का पुत्र द्रविण हुआ और काल ध्रुव का पुत्र हुआ था । हे नराधिप ! काल के अवयवो के शरीर मूर्तिमान् सम्पूर्ण काल से ही सम्प्रसूत हुए थे ॥ ३, ४ ५ ॥ सोम का सुत भगवान् वर्चा था और जल का पुत्र श्रीमान् हुआ था—ऐसा कहा जाता है । अनल का पुत्र अनेक जन्म जनन कुमार था । अनिल का आत्मज पुरोजवा तथा प्रत्यूष का पुत्र देवल प्रसूत हुआ था । प्रभास का पुत्र विश्वकर्मा था तथा त्रिदशो का वह वर्धकि था ॥६, ७ ॥

समीहितकरा प्रोक्ता नागवीथ्यादयो नव ।
लम्बापुत्र स्मृतोघोषोभानो पुत्राश्चभानव ॥८
ग्रहर्क्षाणाञ्च सर्वेषामन्येषा चामितौजसाम् ।
मरुत्वत्या मरुत्वन्त सर्वेपुत्रा प्रकीर्तिता ॥९
सङ्कल्पायाश्चसङ्कल्पस्तथापुत्र प्रकीर्तित ।
मुहूर्ताश्चमुहूर्ताया साध्या साध्यासुता स्मृता ॥१०
मनोमनुश्च प्राणश्च नरोपानो च वीर्यवान् ।
चित्तहार्योऽयनश्चैवहमानारायणस्तथा ॥११
विभुश्चापिप्रभुश्चैवसाध्याद्वादशकीर्तिता ।
विश्वायाश्चतथापुत्राविश्वदया प्रकीर्तिता ॥१२

पतिव्रतानाधमज्ञ । पूज्यास्तस्यापि ता सदा ॥३
अत्र त वर्णयिष्यामि यथा पापप्रणाशिनीम् ।
यथा विमोक्षितो भर्त्ता मृत्युपाशाद्यत स्त्रिया ॥४
मद्रषु शाक्लो राजा बभूवाश्वपति पुरा ।
अपुत्रस्तप्यमानोऽसौ पुत्रार्थी सवकामदाम् ॥५
आराधयति सावित्रीलक्षिताऽसौद्विजात्तमै ।
सिद्धार्थकहूयमानासावित्रीप्रत्यहद्विज ॥६
शतसख्यश्चतुर्थ्यां तु दशमासागत दिन ।
षान तु दशयामास स्वात्तन मनुजश्वरम् ॥७

सावित्री देवी की समाराधना की थी। सिद्धार्थक द्विजों के द्वारा प्रतिदिन वह सावित्री दवी हूयमान हुई थी ॥ ६ ॥ वे द्विज सन सन्ध्या वाले थे और जब दस मास व्यतीत हो गये तो चतुर्थी के दिन में समय आने पर उन मनुजेश्वर को सावित्री ने प्रत्यक्ष होकर अपना साक्षात् दर्शन दिया था ॥ ७ ॥

राजन् ! भक्तोऽसि मे नित्य दास्यामि त्वा सुता सदा ।
ता दत्ता मत्प्रसादेन पुत्री प्राप्स्यसि शोभनाम् ॥८
एतावदुक्त्वा सा राज्ञ प्रणतस्यैव पार्थिव ! ।
जगामादर्शन देवी यथा वै नृप ! चञ्चला ॥६
मालती नाम तस्यासीद्राज्ञः पत्नी पतिव्रता ।
सुषुवे तनया काले सावित्रीमिव रूपत ॥१०
सावित्र्याहुतया दत्ता तद्रूपसदृशी तथा ।
सावित्री च भवत्वेषा जगाद नृपतिर्द्विजान् ॥११
कालेन यौवन प्राप्ता ददौ सत्यवते पिता ।
नारदस्तु ततः प्राह राजान दीप्ततेजसम् ॥१२
संवत्सरेण क्षीणायु भविष्यति नृपात्मज. ।
सकृत्कन्या प्रदीयन्तेचिन्तयित्वानराधिप ॥१३
तथापि प्रददौ कन्या द्युमत्सेनात्मजे शुभे ।
सावित्र्यपि च भर्तारमासाद्य नृपमन्दिर ॥१४

सावित्री ने कहा—हे राजन् ! आप मेरे नित्य ही परम भक्ति करने वाले हैं। मैं भी अति प्रसन्न होकर तुमको एक सुता दूँगी। मेरे प्रसाद से दी हुई परम शोभन उस पुत्री को आप प्राप्त कर लेंगे ॥ ८ ॥ हे पार्थिव ! बस इतना ही कहकर वह देवी प्रणाम करते हुए राजा के सामने से अदर्शन को प्राप्त हो गई थी जैसे विद्युत छिप जाया करती है ॥ ६ ॥ उस राजा की एक मालती नाम वाली पतिव्रता पत्नी थी उसने समय के सम्प्राप्त होने पर रूप लावण्य में साक्षात् सावित्री

देवी के सदृश तनया को प्रसूत किया था ॥१०॥ समाहुव हुई सावित्री ने उसके ही रूप के समान उसे प्रदान किया था। राजा ने द्विजो से कहा था कि यह नाम से सावित्री ही होवे ॥११॥ समय आने पर वह यौवन को प्राप्त हो गई थी और उसके पिता ने सत्यवार नाम वाले वर को उसका दान कर दिया था। इसके उपरान्त देवर्षि नारदजी ने दीप्त तेज वाले राजा से कहा था कि यह नृप का आत्मज एक ही वर्ष मे क्षीण आयु वाला हो जायगा। नराधिप ! भली भांति विचार करके ही कन्या को एक ही बार प्रदान किया जाया करता है ॥ १२। १३ ॥ तो भी उस राजा ने द्युम सेन के पुत्र को जो शुभ था अपनी कन्या सावित्री का दान कर दिया था। उस सावित्री ने भी नप को मंदिर मे अपने स्वामी को प्राप्त कर लिया था ॥ १४ ॥

नारदस्य तु वाक्येन दूयमानेन चेतसा ।
शुश्रूषा परमा चक्र भर्तृ श्वशुरयोवने ॥१५
राज्याद् भ्रष्ट समायस्तु नष्टचक्षुनराधिप ।
न तुतोष समासाद्य राजपुत्री तथा स्नुषाम् ॥१६
चतुर्थेऽह्नि मत य तथा सत्यवता द्विजा ।
श्वशुरणाभ्यनुज्ञाता तदा राजसुतापि सा ॥१७
चक्र त्रिरात्र धर्मज्ञा प्राप्ते तस्मिस्तदा दिने ।
चारुपुष्पफलाहार सत्यवासु ययौवनम् ॥१८
श्वशुरेणाभ्यनुज्ञाता याचनाभङ्गभीरुणा ।
सावित्र्यपि जगामार्ता सह भर्त्रा महद्वनम् ॥ १९
चेतसा दूयमानेन गूहमाना महद्भयम् ।
वन पप्र छ भर्तार द्रुमाश्चासद्दशास्तथा ॥२०
आश्वासयामास सराजपुत्री वनान्तावनपद्मविशालनेत्राम् ।
सन्दर्शननाथ द्रुमद्विजाना तथा मृगाणा विपिन नवीर ॥२१

श्री नारदजी के वाक्य से दूयमान हृदय से उस सावित्री ने वन

मे अपने स्वामी और श्वशुर की अत्यधिक शुश्रूषा करती थी ॥ १५ ॥ राज्य से भ्रष्ट-चक्षुओं के नष्ट हो जाने वाले भार्या मे संयुत नराधिप उस राजपुत्री स्नुषा को प्राप्त करके सन्तुष्ट नहीं हुए थे ॥ १६ ॥ हे द्विजगण ! सत्यवान को आज से चौथे दिन मे मरना है । उस समय मे उस राजसुता को श्वशुर ने अभ्यनुज्ञात किया था अर्थात् आज्ञा थी । उस समय मे उस दिन के आने पर धर्म की ज्ञाता त्रिरात्र (व्रत) किया था । चारु पुष्प और फलों के आहार करने वाले सत्यवान् वन मे चले गये थे । याचना क भङ्ग से भयभीत श्वशुर के द्वारा आज्ञा प्राप्त करने वाली वह सावित्री भी अपने स्वामी के साथ ही उस महान् वन को चली गयी थी । बहुत ही दु खित चित्त से उस महान् भय को अन्दर ही छिपाती हुई उसने वन मे भर्त्ता से और प्रमद । द्रुमों से पूछा था । वन मे उसने परम क्लान्त-पद्म के समान विशाल नेत्रों वाली उस राजपुत्री को नृवीर ने विपिन मे मृगों तथा द्रुमों और द्विजों (पक्षियों) के सन्दर्शन के द्वारा समाश्वासन दिया था ॥ १७ । १८ । १६ । २० । २१ ॥

८७—सावित्री उपाख्यान (२)

वनेऽस्मिन् शाद्वलाकीर्णे सहकार मनोहरम् ।
नेत्रघ्राणसुख पश्य वसन्त गतिवर्धन ॥१
वनेऽप्यशोक दृष्टवैन रागवन्त सुपुष्पितम् ।
वसन्ती हसतीवाय ममैवायतलोचने ! ॥२
दक्षिणे दक्षिणतता पश्च रम्या वनस्थलीम् ।
पुष्पितः किंशुकैर्युक्ताज्वलितानलसप्रभैः ॥३
सुगन्धिकुसुमामोदो वनराजिविनिर्गत. ।
करोति वायुर्दाक्षिण्यमावयो क्लमनाशनम् ॥४

पश्चिमेन विशालाक्षि ! कणिकारैः सुपुष्पितैः ।
काञ्चनेन विभात्येषा वनराजीमनोरमा ॥५
अतिमुक्तलताजालरुद्धमार्गा वनस्थली ।
रम्या सा चारुसर्वाङ्गी कुसुमोत्करभूषण ॥६
मधुमत्तालिझङ्कारव्याजेन वरवर्णिनी ।
चापाकृष्टि करोतीव कामः पार्श्वे जिघांसया ॥७

सत्यवान् ने कहा—इस वन में जो शाद्वल से एकदम समाकीर्ण है मनोहर सहकार को तथा नेत्रों एवं घ्राण को सुखकर—रति के वर्धन करने वाले वसन्त को देखो ॥ १ ॥ हे आयत लोचनों वाली ! यह वसन्त इस वन में राग से सुसम्पन्न और सुन्दर पुष्पों से समन्वित अशोक को देखकर मानो मेरा उपहास कर रहा है ॥ २ ॥ दक्षिण में दाहिनी ओर जलती हुई अग्नि की प्रभा के सदृश प्रभा वाले पुष्पित किंशुकों (ढाक के वृक्षों) से युक्त-परम रम्य इस वनस्थली को देखो ॥ ३ ॥ वन की पंक्ति से निकला हुआ सुगन्धित कुसुमों के आमोद (गन्ध) से युक्त यह वायु हम दोनों के क्लम के नाश करने वाले दाक्षिण्य को कर रहा है। ॥ ४ ॥ हे विशालाक्षि ! पश्चिम दिशा में यह परम मनोरम वनों की राजि सुन्दर पुष्पों वाले कणिकारों से काञ्चन के वर्ण के तुल्य शोभित हो रही है ॥ ५ ॥ अतिमुक्त लताओं के जाल अवरुद्ध मार्गों वाली यह वनस्थली चारु (सुन्दर) सम्पूर्ण अङ्गों वाली तथा कुसुमों के उत्करों के भूषणों वाली वहरम्य ललना के तुल्य शोभा दे रही है ॥ ६ ॥ यह वरवर्णिनी के समान ही है और पार्श्व में कामदेव मारने की इच्छा से चाप का आकर्षण मानों कर रहा है ॥ ७ ॥

फलास्वादलसद्वक्त्रपुंस्कोकिलविनादिता ।
विभाति चारुतिलका त्वमिवैषा वनस्थली ॥८
कोकिलश्चूतशिखरे मञ्जरीरेणुपिञ्जरः ।
गदितैर्व्यक्तां याति कुलीनश्चेष्टितैरिव ॥९

पुष्परेणुविलिप्ताङ्गी प्रियामनु सरिद्वने ।
कुसुम कुसुम याति कूजन् कामी शिलीमुखः ॥१०
मञ्जरी सहकारस्य कान्तावच्चाग्रपीडिताम् ।
स्वदते वहुपुष्पेऽपि पुंस्कोकिलयुवा वने ॥११
काक. प्रसूना वृक्षाग्रे स्वामेकाग्रेण चञ्चुना ।
काकी सम्भावयत्येष पक्षाच्छादितपुत्रिकाम् ॥१२
शुमाङ्गनिम्नमासाद्य दयितामहितो युवा ।
नाहारमपि चादत्ते कामाक्रान्तः कपिञ्जलः ॥१३
कलविङ्कस्तु रमयन् प्रियोत्सङ्गं समास्थितः ।
मुहुर्मुहुर्विशालाक्षि ! उत्कण्ठयति कामिनः ॥१४

फलों के आस्वाद से शोभित मुख वाली कोयलों की ध्वनियों से विशेष नाद वाली—चारु तिलक से संयुत यह वनस्थली तुम्हारी ही तरह शोभित हो रही है ॥ ८ ॥ आम्र वृक्ष की शाखाओं के शिखर पर मञ्जरी के पराग से पिञ्जर वर्ण वाली कोकिल अपनी मधुर ध्वनि से ही अपने चेष्टितों में कुलीन की भाँति ही प्रकटता को प्राप्त हुआ करता है ॥ ९ ॥ इस सरिता से समन्वित वन में यह महाकामी भौंरा पुष्पों के पराग से विशेष रूप से लिप्त अङ्गों वाली अपनी प्रिया के पीछे पीछे गुञ्जार करता हुआ फूल से फूल पर आया करता है। वन में युवा कोकिल बहुत प्रकार के पुष्पों से समन्वित होने पर भी कान्ता की भाँति मनुपीडित सहकार की मञ्जरी का आस्वाद लिया करता है ॥ १०, ११ ॥ यह कौआ वृक्ष के अग्रभाग में प्रसूता और पक्षों में आच्छादित पुत्रिका वाली अपनी प्रिया काकी (कौआ की पत्नी) को एकाग्र चोंच से प्यार करता है। ॥ १२ ॥ काम से समाक्रान्त हुआ—दयिता के साथ रहने वाला युवा कपिञ्जल शुभाङ्ग निम्न को प्राप्त कर आहार भी ग्रहण नहीं कर रहा है ॥ १४ ॥ हे विशालाक्षि ! अपनी प्रिया के उत्सङ्ग में संस्थित हुआ

रमण करने वाला कलविङ्क बारम्बार कामी पुरुष को उत्कण्ठित कर रहा है ॥ १४ ॥

वृक्षशाखां समारूढः शुकोऽय सह भार्यया ।
करेण लम्बयन् शाखां करोति सफलं शिरः ॥१५
वनेऽत्र पिशितास्वादतृप्तो निद्रामुपागतः ।
शेते सिंहयुवा कान्ता चरणान्तरगामिनी ॥१६
व्याघ्रयोर्मिथुनं पश्य शैलकन्दरसंस्थितम् ।
ययोर्नेत्रप्रभालोके गुहाभिन्नेव लक्ष्यते ॥१७
अयं द्वीपी प्रियां लेढि जिह्वाग्रेण पुनः पुनः ।
प्रीतिमायाति च तयालिह्यमानः स्वकान्तया ॥१८
उत्सङ्गकृतमूर्धानं निद्रापहृतचेतसम् ।
जन्तूद्धरणतः कान्तं सुखयत्येव वानरी ॥१९
भूमौ निपतिता रामा मार्जारी दर्शितोदरीम् ।
नखदन्तदशस्येष न च पीडयते तथा ॥२०
शशकः शशकी चाभे समुमे पीडिते इमे ।
संलीनगात्रचरणे कर्णौ ध्यानमुपागते ॥२१

वृक्ष की शाखा पर अपनी प्रिय भार्या के साथ समारूढ़ यह शुक अपने कर से शाखा को लम्बित करता हुआ सिर को सफल करता है। ॥ १५ ॥ इस वन में मांस के स्वाद से तृप्त हुआ सिंह निद्रा को उपागत हो गया है और उसकी कान्ता उस अपने भर्ता सिंह के चरणों के मध्य में लेटी हुई है ॥ १६ ॥ पर्वत की कन्दरा में संस्थित दो व्याघ्रों के जोड़े को देखो जिन दोनों के नेत्रों की प्रभा के प्रकाश से गुहा भिन्न-सी हुई लक्षित हुआ करती है ॥ १७ ॥ यह हाथी अपनी जिह्वा के अग्र भाग से पुनः-पुनः अपनी प्रिया को चाट रहा है। और अपनी कान्ता के द्वारा जिस समय में यह स्वयं लिह्यमान होता है तो उसको परम प्रसन्नता हुआ करती है। यह वानरी गोद में मस्तक को रखने वाले तथा निद्रा से

अवहृत चेतना वाले अपने कान्त का जन्तुओं के उद्धरण के द्वारा सुखित ही किया करती है ॥ १८। १६ ॥ यह मार्जार भूमि में पड़ी हुई और अपने उदर को दिखाने वाली अपनी रम्या पत्नी को नाखून और दशनों से उसका दशन करता है किन्तु उसको किसी प्रकार की पीडा नहीं पहुँचाता है ॥ २० ॥ ये शशक और शशकी दोनों पीड़ित होकर सो गये हैं। इनके गात्र और चरण संश्लिष्ट थे और कानों के द्वारा ही प्रकटता को प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

स्नात्वा सरसि पश्चाच्चं नागस्तु मदनप्रिय. ।
सम्भावयति तन्वङ्गीमृणालकवलै.प्रियाम् ॥२२
कान्तप्रोथसमुत्थानैः कान्तमार्गानुगामिनी ।
करोति कवलं मुस्तैर्वराही पोतकानुगा ॥२३
दृढाङ्गसन्धिर्मेहिषः कर्दमाक्ततनुर्वने ।
अनुव्रजजि धावन्ती प्रियबद्धचतुष्करः ॥२४
पश्य चार्वङ्गि ! सारङ्ग त्वं कटाक्षविभावनैः ।
सभार्यमाहिपश्यन्त कौतूहलममन्विम् ॥२५
पश्य पश्चिमपादेन रोही कण्डूयते मुखम् ।
स्निहार्द्रभावात्स्पंत भर्त्तारं शृङ्गकोटिना ॥२६
द्राग्गिमाञ्चमरी पश्य सितबालामगच्छतीम् ।
अन्वास्ते चमरः कामी माञ्चपश्यतिगर्वित. ॥२७
आतिपे गवयं पश्य प्रहृष्ट भार्यया सह ।
रोमन्थनं प्रकुर्वाण काकङ्कुदि वारयन् ॥२८

पद्मों से आढ्य सरोवर में मदन प्रिय नाग अपनी तन्वङ्गी प्रिया को मृणाल के कवलों के द्वारा प्रणय का प्रदर्शन कर रहा है ॥ २२ ॥ अपने बच्चों के पीछे अनुगमन करने वाली वाराही अपने कान्त के प्रोथ समुत्थानों से कान्त के ही मार्ग का अनुसरण करने वाली होती हुई मुस्तों से कवल किया करती है ॥ २३ ॥ वन में दृढ अङ्गों की सन्धि वाला—

बीच मे अवत शरीर वाला और प्रिय वद्ध चतुष्टर महिष धावन करती हुई महिषी के पीछे दौड लगा रहा है ॥ २४ ॥ हे चारु अङ्गो वाली ! तुम इस सारङ्ग को देखो जो अपने कटाक्ष क विभावना से भार्या क सहित एव कौतूहल से युक्त मुझको देख रहा है ॥ २५ ॥ स्नेह के आर्द्र भाव से अपने सीग की नोक से स्वामी का कषण करती हुई रोही अपने पीछे के पैर से मुख को खुजला रही है—इसे भी देखलो ॥ २६ ॥ बहुत ही शीघ्र इस सित बालो वाली और गमन न करती हुई चमरी को देखिए। यह कामी चमर इसके पीछे है तथा अत्यन्त गर्वित होता हुआ मुझको देखता है ॥ २७ ॥ रोम थन करता हुआ ककुद पर कौए का निवारण करने वाले अपनी भार्या के साथ आतप मे प्रकृष्ट इस गवय को देखलो ॥ २८ ॥

पश्येम भार्यया सार्द्ध न्यस्ताग्रचरणद्वयम् ।
विपुले बदरीस्कन्धे बदराशनकाम्यया ॥२६
हस सभार्यं सरसि विचरन्त सुनिर्मलम् ।
सुमुक्तस्येन्दुबिम्बस्य पश्च व श्रियमुद्वहन् ॥३०
सभार्यश्चक्रवाकोऽय कमलाकरमध्यग ।
करोति पद्मिनी यान्ता सुपुष्पाँ व सुन्दरी ॥३१
मया फलोच्चय सुभ्रु । त्वया पुष्पोच्चय कृत ।
इन्धन न कृत सुभ्रु ! तत्करिष्यामि साप्रतम् ॥३२
त्वमस्य सरसस्तीरे द्रुमच्छाया समाश्रिता ।
क्षणमात्रप्रतीक्षस्व विश्रमस्वच भामिनि ॥३३
एवमेतत्करिष्यामि मम दृष्टिपथस्त्वया ।
दूर कान्त ! न वक्तव्याविभेमि गहन वन ॥३४
तत स काष्ठानि चकार तस्मिन्वन तदा राजसुतासमक्षम् ।
तस्या ह्यदूरे सरसस्तदानी सेन च सा त मृतमेव राजन् ॥३५

भार्या क साथ म रहने वाले—दोनो चरणो को आगे न्यस्त

करन वाले बेरों के खाने की कामना से विपुल बदरी स्कन्ध मे दोनों चरणों को आगे रखकर स्थित इसको देखो ॥ २६ ॥ सुमुक्त इन्दु के बिम्ब की श्री को उद्वहन करते हुए भार्या के सहित सरोवर मे सुनिर्मल विचरण करते हुए हंस को देख लो ॥ ३० ॥ भार्या के सहित रहने वाला यह चक्रवाक पक्षी जो कि इस कमलाकर (तालाब) के मध्य मे गमन कर रहा है । वह अपनी सुन्दरी कान्ता को सुन्दर पुष्पो वाली पद्मिनी के समान कर रहा है ॥ ३१ ॥ हे सुभ्रु ! मैंने तो फलो का उच्चय किया है और तुमने पुष्पो का उच्चय किया है किन्तु हे सुभ्रु ! हममे से किसी ने भी ईंधन एकत्रित नही किया है सो अब मैं उसे करूँगा ॥ ३२ ॥ हे भामिनि ! तुम इस सरोवर के तट पर स्थित वृक्ष की छाया मे समाश्रित होकर रहो और एक क्षण के लिये मेरे आने की प्रतीक्षा करना ॥ ३३ ॥ सावित्री ने कहा—मैं जैसा भी आप कहते हैं वही करूँगी। आप मेरी दृष्टि से ही मार्ग मे रहेंगे अर्थात् इतनी दूरी पर ही रहिए कि मैं आपको देखती रहूँ । हे कान्त ! आपको अधिक दूर नही जाना चाहिए । मैं गहन वन मे डरती हूँ ॥ ३४ ॥ श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—इसके पश्चात् उसने उस बन मे काष्टों को एकत्रित किया था और उस समय मे राजसुता के सामने ही किया था । हे राजन् ! उस सर के समीप मे ही उस समय मे उस सावित्री ने उसे मृत ही मान लिया था ॥३५॥

८८—सावित्री उपाख्यान (२)

तस्य पाटयतः काष्ठ जज्ञे शिरसि वेदना ।
स वेदनार्तः सङ्क्रम्य भार्यां वचनमब्रवीत् ॥१
आयासेन ममानेन जाता शिरसि वेदना ।

तमश्च प्रविशामीव न च जानामि किञ्चन ॥२
त्वदुत्सङ्गे शिरः कृत्वा स्वप्तुमिच्छामि सांप्रतम् ।
राजपुत्रीमेवमुक्त्वा तदा सुष्वाप पार्थिवः ॥३
तदुत्सङ्गे शिरः कृत्वा निद्रयाविललोचनः ।
पतिव्रता महाभागा ततः सा राजकन्यका ॥४
ददर्श धर्मराजं तु स्वयं तं देशमागतम् ।
नीलोत्पलदलश्यामं पीताम्बरधरं प्रभुम् ॥५
विद्युल्लतानिबद्धाङ्गं सतोयमिव तोयदम् ।
किरीटेनार्कवर्णेन कुण्डलैश्च विराजितम् ॥६
हारभारार्पितोरस्कं तथाङ्गदविभूषितम् ।
तथानुगम्यमानं च कालेन सह मृत्युना ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा — काष्ठ का पाठन करते हुए उस के शिर में बडी वेदना समुत्पन्न हो गई थी। वह उस समय में उस वेदना से समुत्पीड़ित होकर अपनी भार्य्या सावित्री के समीप मे आकर उससे यह वचन बोला—बिना आयास वाले इस काष्ठ-सञ्चय के कार्य करने से मेरे शिर में वेदना समुत्पन्न हो गई है। मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि किसी अन्धकार में मैं प्रवेश कर रहा हूँ—मैं कुछ भी नहीं जान पा रहा हू कि क्या कारण है। अब तो मैं तुम्हारी गोद मे अपना शिर रखकर सोना चाहता हूँ। वह पार्थिव उस राजपुत्री सावित्री से इस प्रकार से कह ५.र सो गया था ॥१, २, ३॥ उसके उत्सङ्ग में अपना मस्तक रख कर वह निद्रा से आविल (मलिन) लोचनों वाला हो गया था। इसके अनन्तर उस महाभागा राज कन्या पतिव्रता ने स्वयं ही उस स्थल पर समागत हुए धर्म्म राज को देखा था जो नील कमल के दल के समान श्याम वर्ण वाला—पीताम्बर धारी—विद्युल्लता से निबद्ध अङ्ग वाले जल से युक्त मेघ के सदृश था तथा सूर्य्य समान वर्ण वाले किरीट और कुण्डलों से शोभित था। वह धर्मराज उरःस्थल में हारों के भार से भूषित था

तथा भुजाओं में अङ्गद धारण किये हुए था और उसके पीछे काल मृत्यु स्तथ में चला आ रहा था ।।५-७।।

स तु संप्राप्य तं देशं देहात्सत्यवतस्तदा ।
अंगुष्ठमात्रं पुरुष पाशवद्धं वशंगतम् ॥८
आकृष्य दक्षिणामाशां प्रययौ सत्वर तदा ।
सावित्र्यपि वरारोहा दृष्ट्वातं गतजीवितम् ॥९
अनुवव्राज गच्छन्तन्धर्मराजमतन्द्रिता ।
कृताञ्जलिरुवाचाथ हृदयेन प्रवेपता ॥१०
इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्यातु मध्यमम् ।
गुरुं शुश्रूषया चैव ब्रह्मलोक समश्नुते ॥११
सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैतेत्रय आदृताः ।
अनादृतास्तु यस्यैतेसर्वास्तस्याफला क्रिया ॥१२
यावत्त्रयस्तेजीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् ।
तेषां च नित्यं शुश्रूषा कुर्यात्प्रियहिते रतः ॥१३
तेषामनुपरोधेन पारतन्त्र्यं यदाऽऽचरेत् ।
तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ॥
त्रिष्वप्येतेषु कृत्य हि पुरुषस्य समस्यते ॥१४॥

वह धर्मराज उस स्थल पर आकर सत्यवान् के शरीर से उस समय में अंगुष्ठ मात्र जो लिङ्ग शरीरधारी पुरुष था उसको पाशवद्ध करके अपने वश में कर खींचकर शीघ्रता से दक्षिण दिशा की ओर उसी समय चल दिया था। वह वरारोहा सावित्री भी उस अपने स्वामी को जीवित रहित देखकर अतन्द्रित होती हुई उसी के पीछे अर्थात् गमन करने वाले धर्मराज के पीछे २ चल दी थी। इसके उपरान्त वह हाथ जोड़ कर काँपते हुए हृदय से यह बोली—॥८, ९, १०॥ यह जीवात्मा माता की भक्ति से इस लोक को—पिता की भक्ति से मध्यम को और गुरु की शुश्रूषा से ब्रह्मलोक को प्राप्त किया करता है। उस पुरुष ने सभी ?

का समादर कर लिया है जिसने इन तीनों ऊपर बताये हुए धर्मों को पूर्ण कर लिया है। जिसने इन तीनों का आदर नहीं किया है उसकी समस्त अन्य क्रियाएँ बिल्कुल ही फलहीन हुआ करती हैं। जब तक ये तीनों ही जीवित हैं तब तक अन्य किसी का समाचरण नहीं करना चाहिए। जो प्रिय के हित में रत है उसे उनकी नित्य ही शुश्रूषा करनी चाहिए। उनके अनुपरोध से जब भी पारतन्त्र्य का आचरण करे वह—वह सब उनको मन वचन और कर्म के द्वारा निवेदन कर देना चाहिये। पुरुष का इन तीनों में भी पूर्ण कृत्य स्थित रहा करता है ॥११-१४॥

कृतेन कामेन निवर्त्तयाशु धर्मा न तेभ्योऽपि हि उच्यते।
ममोपरोधस्तव च क्लम स्यात्तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि ॥१५
गुरुपूजारतिभक्ता त्वञ्च साध्वी पतिव्रता।
विनिवर्त्तस्व धर्मज्ञे। ग्लानिर्भवति तेऽधुना ॥१६
पतिर्हि देवत स्त्रीणां पतिरेव परायणम्।
अनुगम्य स्त्रिया साध्व्या पतिः प्राणधनेश्वरः ॥१७
मितन्ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य च दातारं भर्त्तारं का न पूजयेत् ॥१८
नीयते यत्र भर्त्ता मे स्वयं वा यत्र गच्छति।
मयापि तत्र गन्तव्यं यथाशक्ति सुरोत्तम। ॥१९
पतिमादाय गच्छन्तमनुगन्तुमहं यदा।
त्वां देव! न हि शक्ष्यामि तदा त्यक्ष्यामि जीवितम् ॥२०
मनस्विनी तु या काचित् वैधव्याक्षरदर्पिता।
मुहूर्त्तमपि जीवेत मण्डनार्हा ह्यमण्डिता ॥२१

कृत काम से अब तुम अति शीघ्र निवृत्त हो जाओ उनके लिये भी धर्म नहीं है—यह कहा जाता है। मेरा उपरोध और तुम्हारा क्लम (श्रम) होगा। अब इसी कारण से मैं बोलता हूँ ॥१५॥ आप तो गुरुजन की पूजा में रति वाली—भक्त—साध्वी और परम पतिव्रता हैं। हे धर्मज्ञे! यहाँ

आप वापिस लौट जाइये। अब आपको बहुत ग्लानि हो रही है ॥१६॥ सावित्री ने कहा—स्त्रियों का परम देवता पति ही होता है और पति ही परायण होता है। अतएव साध्वी स्त्री के द्वारा प्राण धनेश्वर पति का सर्वदा अनुगमन करना चाहिए ॥१७॥ स्त्री को उसका पिता परिमित ही दिया करता है—भाई और सुत भी स्त्री को परिमित ही दिया करते हैं। अपरिमित का दाता अपने स्वामी का पूजन कौन सी स्त्री नहीं करेगी? ॥१८॥ हे सुरोत्तम! जहां पर मेरे स्वामी को ले जाया जा रहा है अथवा स्वयं आप जहां पर जा रहे हैं। मुझको भी यथा शक्ति वहीं पर जाना चाहिए ॥१९॥ जब मैं मेरे पति को लेकर गमन करने वाले आपका हे देव! मैं अनुगमन नहीं कर सकूंगी तो मैं अपने भी जीवन का त्याग कर दूंगी ॥२०॥ जो कोई भी मण्डन के योग्य मनस्विनी स्त्री जब वैधव्य के अक्षरों से दूषित होकर अमण्डित हो जाती है तो वह एक मुहूर्त्त भर भी जीवित रहेगी? ॥२१॥

पतिव्रते! महाभागे! परितुष्टोऽस्मि ते शुभे!।
विना सत्यव्रत प्राणैर्वरं वरय माचिरम् ॥२२
विनष्टचक्षुषोराज्यञ्चक्षुषा सह कारय।
च्युतराष्ट्रस्य धर्मज्ञ! श्वशुरस्य महात्मनः ॥२३
दूरे पथे गच्छ निवर्त भद्रे! भविष्यतीद सकलं त्वयोक्तम्।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाधुना तेन तव ब्रवीमि ॥२४

यमराज ने कहा—हे पतिव्रते! हे महान् भाग वाली! हे शुभे! मैं तुम से बहुत ही सन्तुष्ट हो गया हूं। अब तुम सत्यवान् के प्राणों के बिना अन्य कोई भी वरदान मुझसे माँग लो और अधिक विलम्ब मत करो ॥ २२ ॥ सावित्री ने कहा—हे धर्मज्ञ! विनष्ट नेत्रों वाले मेरे महान् आत्मा वाले श्वशुर की जिनका कि राज्य च्युत हो गया है अब आप उनको आँखों के सहित पुनः राज्य प्राप्त करा दीजिये ॥ २३ ॥ यमराज ने कहा—हे भद्रे! दूर मार्ग में तुम चली जाओ और वापिस

लौट आओ। जो आपने कहा है वह सभी कुछ हो जायगा। अब मेरी ओर से रोक होगी और तुमको परिश्रम होगा इसीलिए मैं उक्त तुमसे यह कह रहा हूँ ॥ २४ ॥

८६—सावित्री उपाख्यान (३)

कुतः क्लमः कुतो दुःखं सद्भिः सह समागमे ।
सतान्तस्मान्न मे ग्लानिस्त्वत्समोपे सुरोत्तम ! ॥१
साधूनां वाप्यसाधूनां सन्त एव सदागतिः ।
नैवासतां नैव सतामसन्तो नैवमात्मनः ॥२
विषाग्निसर्पशस्त्रेभ्यो न तथा जायते भयम् ।
अकारणं जगद्वैरिखलेभ्यो जायतेयथा ॥३
सन्तः प्राणानपि त्यक्त्वा परार्थं कुर्वते यथा ।
तथाऽसन्तोऽपि सन्त्यज्य परपीड़ासु तत्परा. ॥४
त्यजत्यसूनयं लोकस्तृणवद्यस्य कारणात् ।
परोपघातशक्तास्त परलोकन्तथा सतः ॥५
निकायेषु निकायेषु तथा ब्रह्मा जगद्गुरुः ।
असतामुपघाताय राजानं ज्ञातवान् वयम् ॥६
नरान् परीक्षयेद्राजा साधून् सम्मानयेत्सदा ।
निग्रहश्चासतांकुर्यात्सलोके लोकजित्तमः ॥७

सावित्री ने कहा—सत्पुरुषों के साथ समागम होने पर दुःख कहाँ है और क्लम भी कहाँ है। हे सुरोत्तम! आपके समीप में जो कि सत्पुरुष हैं मुझे तो बिल्कुल भी ग्लानि नहीं होती है ॥ १ ॥ साधु पुरुष हों अथवा असाधु जन हों इन सबकी सन्त ही सदा गति हुआ करते हैं अर्थात् सबका उद्धार सन्त ही किया करते हैं। जो असन्त हैं वे न तो

सत्पुरुषों का—न असत्पुरुषों का और अपने आपका ही उद्धार किया करते हैं असन्तों में उद्धार करने की कोई भी क्षमता ही नहीं हुआ करती है ॥ २ ॥ *विष—अग्नि—सर्प और शस्त्र से उतना भय नहीं होता है* जैसा बिना ही कारण के इस जगत् के वैरी खलों से भय उत्पन्न हो जाया करता है। सन्त पुरुष तो अपने प्राणों का भी परित्याग करके सदा दूसरों के अर्थ को किया करते हैं उसी भाँति असन्त पुरुष भी प्राणों तक परित्याग कर दूसरों को पीड़ा देने में परायण रहा करते हैं ॥३, ४॥ यह लोक जिसके कारण से प्राणों को तिनके के समान त्याग देता है। उसी प्रकार से सत्पुरुष जो परायों उपघात में समर्थ होते हैं वे परलोक को भी त्याग *दिया करते हैं* ॥५॥ उसी प्रकार से इस जगत् के गुरु श्री ब्रह्माजी ने निकाय—निकायों में असत्पुरुषों के उपघात के लिये स्वयं ही राजा को ज्ञात किया है ॥६॥ राजा का कर्त्तव्य है कि वह नरों की परीक्षा करे और सदा साधुपुरुषों का सम्मान करना चाहिए। जो राजा असत्पुरुषों *का निग्रह किया करता है और उनको ऐसा करना भी चाहिए क्योंकि* उसका यह कर्त्तव्य भी है वही इस लोक में लोकों का परम श्रेष्ठ जेता होता है ॥७॥

निग्रहेणासतां राजा सताञ्च परिपालनम् ।
एतावदेव कर्त्तव्यं राज्ञा स्वर्गमभीप्सुना ॥८
राजकृत्यं हि लोकेषु नास्त्यन्यज्जगतीपते ।
असतां निग्रहादेव सताञ्च परिपालनात् ॥९
राजभिश्चाप्यशास्तानामसतां शासिता भवान् ।
तेन त्वमधिको देवो देवेभ्यः प्रतिभासि मे ॥१०
जगत्तु धायनेमद्भिः सतामग्र्यस्तयाभवान् ।
तेन त्वामनुयान्त्या मे क्लमो देव ! न विद्यते ॥११
तुष्टोऽस्मि ते विशालाक्षि ! वचनैर्धर्मसंगतैः ।
विना सत्यवतः प्राणाद् वरं वरय मा चिरम् ॥१२

सहोदराणां भ्रातृणां कामयामि शतं विभो ! ।
अनपत्यः पिता प्रीतिं पुत्रलाभात् प्रयातु मे ॥१३
तामुवाच यमो गच्छ यथागतमनिन्दिते ! ।
और्ध्वदेहिककार्येषु यत्नं भर्तुः समाचर ॥१४

असतो का निग्रह और सत्पुरुषो का परिपालन करने से वह वस्तुतः राजा कहलाने के योग्य होता है जो स्वर्ग की प्राप्ति करने का इच्छुक है उस राजा का यही इतना कर्तव्य होता है। हे जगतीपते ! लोको मे राजा का यही कृत्य होता है इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही है असतो का निग्रह और सतो के परिपालन का कर्त्तव्य ही तो राजाओ का कार्य हुआ करता है। राजाओ के द्वारा भी जो शासित नही होते हैं उन असतो के सबके शासन करने वाले फिर आप होते है। इसी कारण से मुझे तो समस्त देवो से भी अधिक देव आप ही प्रतीत हो रहे हैं। ॥८।९।१०॥ यह जगत् तो सत्पुरुषो के द्वारा ही धारण किया जाता है और उन सत्पुरुषो मे आप सब प्रधान है। इसी कारण से आपके पीछे अनुगमन करने वाली मुझको हे देव ! कोई भी श्रम नही होता है। यमराज ने कहा—हे विशालाक्षि ! तुम्हारे इन धर्मसङ्गत वचनों से मैं तुमसे परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो गया हूँ। सत्यवान् के प्राणो को छोडकर अन्य जो भी आप चाहे वह वरदान मुझसे मांगलो। विलम्ब मत करो ॥ ११ । १२ ॥ सावित्री ने कहा—हे विभो ! मैं अपने सौ सहोदरो के प्राप्त करने की कामना रखती हूँ। मेरे पिता सन्तान हीन है सो वे पुत्रो के लाभ से प्रसन्न हो जावे। फिर यमराज ने उस सावित्री से कहा—हे अनिन्दिते ! अब तुम जिस मार्ग से आई हो वापिस चली जाओ और अपने स्वामी के और्ध्व देहिक कार्यों के करने मे यत्न करो ॥ १३, १४ ॥

नानुगन्तुमयं शक्यस्त्वया लोकान्तरं गतः ।
पतिव्रतासि तेन त्वं मुहूर्तमनुयास्यसि ॥१५

माता पृथिवी की मूर्त्ति है और भाई तो अपनी आत्मा की ही मूर्त्ति होता है ॥ २१ ॥

जन्मना पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिं शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥२२
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य तु सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥२३
तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमन्तप उच्यते ।
न च तैरननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥२४
तएव हि त्रयो लोकास्तएव त्रय आश्रमाः ।
तएव च त्रयोवेदास्तथैवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ॥२५
पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माता दक्षिणतः स्मृतः ।
गुरुराहवनीयश्च साग्नित्रेता गरीयसी ॥२६
त्रिषु प्रमाद्यते नेषु त्रीन् लोकान् जयते गृही ।
दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते ॥२७
कृतेन कामेन निवर्त भद्रे ! भविष्यतीदं सकलं त्वयोक्तम् ।
ममोपरोधस्तव च बलम् स्यात् तथाऽधुना तेन तवब्रवीमि ॥२८

मनुष्यों के समुत्पन्न होने में, उसके माता-पिता जन्म से ही पूर्ण क्लेश को सहा करते हैं उस क्लेश की निष्कृति मनुष्य सौ वर्षों में भी नहीं कर सकता है ॥२२॥ अतएव मनुष्य का यह परम कर्त्तव्य होता है कि उनका नित्य ही उसे प्रिय करना चाहिए तथा जो आचार्य हो उसका भी सर्वदा प्रिय करे। इन तीनों के तुष्ट होने पर ही मनुष्य का सभी प्रकार का तप समाप्त हो जाया करता है। वे तीनों ही उसके तीन लोक हैं—वे तीनों उसके तीन आश्रम हैं—वे तीनों ही तीन वेद हैं तथा ये ही तीन मनुष्य की तीन अग्नियाँ हैं। पिता गार्हपत्य अग्नि—माता दक्षिणाग्नि और गुरु आहवनीय अग्नि है। ये ही सबसे बड़ी तीन अग्नियों वाला वह माना जाता है। इन तीनों के विषय में कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। जो इस बन्धन का पालन करता है वह गृही तीनों लोकों

को जीत लिया करता है और अपने शरीर की कान्ति से वह दीप्यमान होता हुआ देव के ही समान दिवलोक मे आनन्द का अनुभव किया करता है ।।२३-२७।। यमराज ने कहा—हे भद्रे ! कृत काम से निवृत हो जाओ जो तुमने कहा है वह सम्पूर्ण हो जायगा । मेरी ओर से उपरोध होगा और तुमको श्रम होगा । इसी से तुमसे यह मैं बोलता हूँ ।।२८।।

९०–सावित्री उपाख्यान (४)

धर्मार्जिने सुरश्रेष्ठ ! कुतो ग्लानिः श्रमस्तथा ।
त्वत्पादमूलसेवा च परम धमकारणम् ।।१
धर्मार्जिनन्तथा काय पुरुषेण विजानता ।
तल्लाभ· सवलाभेभ्यो यदा देव विशिष्यते ।।२
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गो जन्मनः फलम् ।
धर्महीनस्य कामार्थौ वन्ध्यासुतसमौ प्रभो ! ।।३
धर्मादर्थस्तथा कामो धर्माल्लोकद्वय तथा ।
धर्मएकोऽनुयात्येन यत्र क्वचन गामिनम् ।।४
शरीरेण सम नाश सर्वमन्यद्धि गच्छति ।
एको हि जायते जन्तुरेकएव विपद्यते ।।५
धमस्तमनुयात्येको न सुहृन्न च बान्धवाः ।
क्रियासौभाग्यलावण्य सर्व धर्मेण लभ्यते ।।६
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रशर्वेन्दुयमार्काग्न्यनिलाम्भसाम् ।
वस्वश्विधनदादाना ये लोका· सवकामदाः ।।७

हे सुरश्रेष्ठ ! धर्म के अर्जन करने मे ग्लानि और श्रम क्यो होगा ? आपके चरणो की मूल सेवा ही परम धर्म का कारण है ।। १ ।। विशेष ज्ञान रखने वाले पुरुष को उसी भाँति से धर्म का अर्जन करना

चाहिए। हे देव ! जबकि उस धर्म्म का लाभ सभी प्रकार के लाभो से विशिष्ट हुआ करता है ।।२।। धर्म्म—अर्थ और काम यही त्रिवर्ग मनुष्य ज म का परम फल होता है। हे प्रभो ! जो धर्म्म से हीन पुरुष है उसके काम और अर्थ वन्ध्या के सुतो के ही समान हुआ करते हैं ।।३।। धर्म से अर्थ तथा काम और धर्म्म से दोनो लोक होते हैं। जहा पर भी यह गमन करता है उसक पीछे एक धर्म्म ही अनुगमन किया करता है ।।४।। अन्य सभी कुछ शरीर के ही साथ मे नाश को प्राप्त हो जाया करता है। यह जन्तु एक ही अकेला समुत्पन्न हुआ करता है और एक ही अकेला मृत्यु को प्राप्त होता है ।।५।। जब यह मृ युगत होता है तो उस समय मे केवल एक मात्र धर्म्म ही उसका अनुगमन किया करता है। उस समय मे न तो कोई मित्र साथ मे जाया करता है और न बान्धव ही उसके साथ जाते है। क्रिया—सौभाग्य और रूप लावण्य ये सभी कुछ धर्म्म के द्वारा ही प्राप्त किये जाया करते है ।।६।। ब्रह्मा—इन्द्र—उपेन्द्र—शव—इन्दु—यम—अर्क—अग्नि—अनिल—जल—वसु—अश्विनी कुमार और धनद आदि वे जो समस्त कामनाओ के प्रदान करने वाले लोक हैं इनकी प्राप्ति मनुष्य धर्म्म के ही द्वारा किया करता है। हे पुरुषो के अन्त करने वाले ! धर्म से ही मनोहर द्वीप और सुन्दर सुख देने धनो को यह पुरुष प्राप्त करता है ।।७।।

धर्मेण तानवाप्नोति पुरुष पुरुषान्तक ।
मनोहराणि द्वीपानि वर्षाणि सुसुखानि च ।।८
प्रयान्ति धर्मेण नरास्तथैव नरगण्डिका ।
नन्दनादीनि मुख्यानि देवोद्यानानियानि च ।।९
तानि पण्यन लभ्यन्ते नाकपृष्ठन्तथा नरं ।
विमानानि विचित्राणि तथवाप्सरस शुभा ।।१०
तजसानि शरीराणिसदा पुण्यवतापलम् ।
राज्य नृपतिपूजा च यामसिद्धिस्तथेप्सिता ।।११

मस्काराणि च मुख्यानि फलपुण्यस्य दृश्यते ।
स्वमर्वैदूर्यदण्डानि चण्डांशुसदृशानिच ॥१२
चामराणि सुराध्यक्ष ! भवन्ति शुभकर्मणाम् ।
पूर्णेन्दुमण्डलाभेन रत्नांशुकविकाशिना ॥१३
धार्यतां याति छत्रेण नरः पुण्येन कर्मणा ।
जयशङ्खस्वरौघेण सूतमागधनिः स्वनैः ॥१४

मनुष्य धर्म्म के द्वारा ही मरुगण्डिश को प्राप्त किया करते हैं और नन्दन आदि मुख्य देवो के जो उद्यान हैं उनमे चले जाया करते हैं। पुण्य के द्वारा ही इन सबको प्राप्ति होती है तथा मनुष्यो के द्वारा नाक-पृष्ठ को भी प्राप्त किया जाता है। विचित्र विमान तथा परम शुभ अप्सराएँ और तैजस शरीर आदि सब सदा पुण्य वालो का ही फल है। राज्य-नृपतियों के द्वारा पूजा-ईप्सित काम सिद्धि एव मुख्य मस्कार यह सभी पुण्य का ही फल दिखलाई देता है। हे सुराध्यक्ष ! सावर्ण एव वैदूर्य के दण्ड जो कि सूर्य के ही समान हैं और चामर इन सबकी प्राप्ति होना शुभ कर्म्मों का ही फल होना है। पूर्ण चन्द्र की आभा वाले और रत्नांशुक विनाशी छत्र के धारण करने का अवसर मनुष्य पुण्य कर्म्म के द्वारा ही प्राप्त किया करता है। जयकार बतलाने वाले शखो क स्वर-समूह मे तथा सूत और मागधो की ध्वनियो से समन्वित भी मनुष्य पुण्य कर्म्म से ही होना है॥ ८– ४॥

वरासन सभृङ्गार फल पुण्यस्य कर्मण. ।
वराम्नपान गीतञ्च भृत्यमाल्यानुलेपनम् ॥१५
रत्नवस्त्राणि मुख्यानि फल पुण्यस्य कर्मण. ।
रूपौदार्यगुणोपेतास्त्रियश्चातिमनोहरा ॥१६
वास: प्रासादपृष्ठेपु भवन्ति शुभकर्मिण ।
सुवर्णकिङ्किणीमिश्रचामरापीडधारिण. ।१७
वहन्ति तुरगा देव नर पुण्येन कर्मणा ।

सस्य द्वाराणि यजनन्तपोदानन्दमः क्षमा ॥१८

ब्रह्मचर्यं तथा सत्यन्तीर्थानुभरण शुभम् ।
स्वाध्यायसेवासाधूना सहवासः सुराचथम् ॥१९

गुरूणां चैव शुश्रूषा ब्राह्मणाना च पूजनम् ।
इन्द्रियाणा जयश्चैव ब्रह्मचयममत्सरम् ॥२०

तस्माद्धमः सदा कार्योनित्यमेव विजानता ।
नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य च वा कृतम् ॥२१

मृङ्गार के सहित वरासन भी पुण्य कर्म्म का फल होता है श्रेष्ठ अन्न—पान—गीत—मृत्य—माल्य और अनुलेपन—रत्न औ वस्त्र इस प्रकार की मुख्य वस्तुऐ प्राप्त होना भी परम पुण्य कर्म्म का फल होता है। रूप लावण्य एव अनेक सद्गुणो से सम्पन्न अतीव मनोहर स्त्रियाँ—बडे महलो मे निवास शुभ कर्म्म वालो को ही होता है। हे देव! सुवर्ण की किंकणी से मिश्रित चामर एव आपीड के धारण करने वाले तुरग मनुष्य को पुण्य कर्म से वहन किया करते हैं। उस पुरष के द्वार-यजन – तप—दान—क्षमा- ब्रह्मचर्य—सत्य—शुभ तीर्थानुभरण—स्वाध्याय—साधु सेवा—सहवास—सुरो का अर्चन—गुरुवर्ग की सुश्रूषा—ब्राह्मणो का अभ्यर्चन—इन्द्रियो के ऊपर विजय—मत्सरता का अभाव—इन सबकी प्राप्ति पुण्य कर्म्म के द्वारा हुआ करती है ॥ १५, १६, १७, १८, १९, २० ॥ इस कारण से ज्ञानवान पुरुषो को नित्य ही धर्म्म का समाचरण करना चाहिए क्योकि मृत्यु इसके कृत तथा अकृत की कुछ भी प्रतीक्षा नहीं किया करती है ॥२१॥

बालएवचरेद्धर्ममनित्य देव ! जीवितम् ।
कोहि जानाति कस्याद्यमृत्युरेवापतिष्यति ॥२२

पश्यतोऽप्यस्य लोकस्य मरण पुरत स्थितम् ।
अमरस्येव चरितमत्याश्चर्यं सुरोत्तम ! ॥२३

युवत्वापेक्षया बालोवृद्धत्वापेक्षया युवा ।

मृत्योरुत्सङ्गमारूढ़: स्थविरः किमपेक्षते ॥२४
तत्रापि विण्ड(न्द)तस्त्राण मृत्युनातस्यका गतिः ।
न भयमरणन्त्वत्रप्राणिनामभय क्वचित् ॥
तत्रापि निर्भयाः सन्तः सदा सुकृतकारिणः ॥२५
तुष्टोऽस्मितेविशालाक्षि ! वचनैर्धर्मसङ्गतैः ।
विना सत्यवतः प्राणान् वरंवरयमाचिरम् ॥२६
वरयामि त्वया दत्तं पुत्राणा शतमौरसम् ।
अनपत्यस्य लोकेषु गतिः किल न विद्यते ॥२७
कृतेन कामेन निवर्त भद्रे ! भविष्यतीद सकलं यथोक्तम् ।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि ॥२८

हे देव ! बालक को ही नित्य धर्म्म का आचरण करना चाहिए क्योंकि यह जीवन अनित्य है । कौन जानता है कि किसकी मृत्यु आज ही आ जायगी । इस लोक के देखते ही हुए मौत सामने स्थित रहा करती है । हे सुरोत्तम ! देव के समान इसका चरित होता है—यही महान् आश्चर्य की बात है । युवावस्था में स्थित की अपेक्षा बालक और वृद्धता की अपेक्षा युवा इस मृत्यु की गोद में समारूढ़ हो रहा है । जो एकदम स्थविर है वह फिर किस अवस्था की अपेक्षा किया करता है । ॥ २ , २३, २४ ॥ इस दशा में भी मृत्यु के द्वारा त्राण की प्राप्ति करने वाले उसकी क्या गति होगी । मरण भय नहीं है । प्राणियों को अभय कहा है । जो सुकृत के करने वाले हैं वे वहाँ पर भी सदा सन्त पुरुष निर्भय होते हैं ॥ २५ ॥ यमराज ने कहा—हे विशालाक्षि ! तुम्हारे धर्म्म से सङ्गत वचनों से अत्यन्त ही परितुष्ट हो गया हूँ किन्तु सत्यवान के प्राणों को छोड़कर शीघ्र ही मुझसे कोई सा वरदान माँगने । सावित्री ने कहा—हे भगवन् ! आपके द्वारा दिये हुए सौ औरस पुत्रों का वरदान मैं चाहती हूँ क्योंकि जो सन्तान से हीन है उसकी लोकों में कोई भी गति नहीं है । यमराज ने कहा—हे भद्रे ! अब तेरा काम पूर्ण हो गया है

तुम वापिस लौट जाओ। जो भी तुमने कहा है वह सभी हो जायगा। साथ चलने मे मेरा उपरोध (रुकावट) है और तुमको व्यर्थ श्रम होता है। इसी से मैं तुमसे यह बोल रहा हूँ ॥ २६, २७, २८ ॥

६१–सावित्री उपाख्यान (५)

धर्माधर्मविधानाज्ञ ! सर्वधर्मप्रवर्त्तक ! ।
त्वमेव जगतो नाथः प्रजासंयमनोयमः ॥१
कर्मणामनुरूपेण यस्माद्यमयसे प्रजाः ।
तस्माद्वै प्रोच्यसे देव ! यम इत्येव नामतः ॥२
धर्मेणेमाः प्रजा सर्वा यस्माद्रञ्जयसे प्रभो ! ।
तस्मात्ते धर्मराजेति नाम सद्भिर्निगद्यते ॥३
सुकृतं दुष्कृतंचोभे पुरोधाय यदाजनाः ।
त्वत्सकाशमृता यान्ति तस्मात्त्व मृत्युरुच्यसे ॥४
काल कलार्द्ध कलयन् सर्वेषां त्वं हि तिष्ठसि ।
तस्मात् कालेति ते नाम प्रोच्यते तत्त्वदर्शिभिः ॥५
सर्वेषामेव भूतानां यस्मादन्तकरो महान् ।
तस्मात्त्वमन्तकः प्रोक्तः सर्वदेवैर्महाद्युते ! ॥६
विवस्वतस्त्वं तनयः प्रथमं परिकीर्तितः ।
तस्मताद्वैवस्वतोनाम्ना सर्वलोकेषु कथ्यते ॥७

सावित्री ने कहा – हे सब धर्मों के प्रवर्त्तक ! आप तो धर्म के मर्म का जो विधान है उसके ज्ञाता हैं और आप ही इन जगतों के नाथ हैं तथा प्रजाओं के संयमन करने वाले यम हैं ॥ १ ॥ कर्मों के अनुरूप जिस कारण से आप प्रजाओं का यमन किया करते हैं हे देव ! इसी कारण से "यम"—इस नाम से आपको पुकारा जाया करता है। हे

प्रभो ! क्योंकि धर्म के द्वारा इन समस्त प्रजाओं का आप रञ्जन किया करते हैं इसी से सत्पुरुषों के द्वारा आप "धर्मराज"—इस नाम से पुकारे जाया करते हैं ॥ २, ३ ॥ जब मनुष्य सुकृत और दुष्कृत इन दोनों को आगे रखकर मृत्युगत होकर आपके समीप मे जाया करते है इसी कारण से आपको "मृत्यु"—इस नाम से कहा जाया करता है। काल को कलार्द्ध कलन करते हुए सबके मध्य में आप स्थित रहा करते हैं इसी कारण से तत्त्वदर्शियों के द्वारा "काल"—यह नाम आपका कहा जाता है। क्योंकि सभी प्राणियो के आप महान् अन्त कर देने वाले हैं इसी कारण से हे महाद्युते! समस्त देवो के द्वारा आपका अन्तक कहा गया है। आप विवस्वान् के पुत्र प्रथम कहे गये हैं इसीलिये समस्त लोकों में 'वैवस्वत'—इस नाम स आपको कहा जाता है ॥४–७॥

आयुष्ये कर्मणि क्षीणे गृह्णासि प्रसभञ्जनम् ।
तदा त्व कथ्यसे लोके सवप्राणिहरेतिवै ॥८
तव प्रसादाद्देवेश ! सङ्करो न प्रजायते ।
सता सदा गतिर्देव ! त्वमेव परिकीर्तित ॥९
जगतोऽस्यजगन्नाथ ! मर्यादापरिपालक ।
पाहि मा त्रिदशश्रेष्ठ ! दु खताशरणागताम् ॥
पितरौ च तथैवास्य राजपुत्रस्य दु खितौ ॥१०
स्तवेन भक्त्याधर्मज्ञ ! मया तुष्टेन सत्यवान् ।
तव भर्ता विमुक्तोऽयलब्धकामाव्रजाबले ! ॥११
राज्य कृत्वा त्वया सार्द्धं वत्सराशोतिपञ्चकम् ।
नाकपृष्ठमथारुह्य त्रिदशैः सहरयते ॥१२
त्वयि पुत्रशतञ्चापिसत्ययान् जनयिष्यति ।
ते चापिसर्वे राजान क्षत्रियास्त्रिदशोपमाः । १३
मुख्यास्त्वन्नाम पुत्रास्या भविष्यन्ति हि शाश्वताः ।
पितुश्च ते पुत्रशत भविता तव मातरि ॥१४

आयुष्य मे कर्म के क्षीण होने पर आप मनुष्य को बलपूर्वक ग्रहण किया करते हैं उस समय मे लोक मे आप "सर्व प्राणिहर" इस नाम मे कहे जाते हैं। हे देवेश! आपके प्रसाद से सङ्कर नही होता है। हे देव! सत्पुरुषो की सदा आप ही गति कीर्तित किये गये है। हे जगन्नाथ! आप इस जगत् के मर्यादा के परिपालक हैं। हे देवो मे परमश्रेष्ठ! शरणागति मे समागत दु खिता मेरी रक्षा करो। इस राजपुत्र के माता पिता इसी भाँति परम दु खित हो रहे हैं ॥ ८, ९, १० ॥ यमराज ने कहा—हे धमज्ञे! तेरे इस स्तव से और भक्तिभाव से तुष्ट हुए मेरे द्वारा तेरा स्वामी सत्यवान् छोड दिया गया है। हे अबले! अवलब्ध काली तुम यहाँ स चली जाओ। यह अब तेरे साथ राज्य का सुख भोग कर पिचासी वर्ष तक जीवित रह कर फिर अन्त मे स्वर्ग पर समारोहण कर देवो के साथ रमण करेगा। यह सत्यवान् तुझमे सौ पुत्र समुत्पन्न करेगा। वे भी सब देवताओ के समान क्षत्रिय राजा लोग होगे। तुम्हारे नाम से पुत्रो की आख्या वाले प्रमुख एव शाश्वत होगे और तुम्हारी माता मे तुम्हारे पिता से भी एक सौ पुत्र उत्पन्न होगे ॥ ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४ ॥

मालव्या मालवानामशाश्वता पुत्रपौत्रिण ।
भ्रातरस्ते भविष्यन्तिक्षत्रियास्त्रिदशोपमा ॥१५
स्तोत्रेणानेनधमज्ञे ! कल्पमुत्थाय यस्तु माम् ।
कीर्तयिष्यति तस्यापिदीर्घमायुर्भविष्यति ॥१६
एतावदुक्त्वा भगवान् यमस्तु प्रमुच्य त राजसुत महात्मा ।
अदर्शन तत्र यमो जगाम कालेन सार्द्ध सह मृत्युना च ॥१७

मालवों के नाम वाले मालवो मे शाश्वत पुत्र एव पौत्र होगे। वे देवों के समान उपमा वाले क्षत्रिय तेरे भाई होगे। हे धर्मज्ञे! जो पुरुष प्रात काल मे उठकर इस स्तोत्र के द्वारा मेरा कीर्तन करेगा उसकी भी दीर्घ आयु हो जायगी ॥ १५ । १६ ॥ मत्स्य भगवान् ने कहा—इतना

कहकर महात्मा भगवान् यमराज ने उस राजपुत्र को छोड़कर वहीं पर वह यमराज काल और मृत्यु के साथ ही अदर्शन को प्राप्त हो गये थे ॥ १७ ॥

६२–सावित्री उपाख्यान (६)

सावित्री तु ततः साध्वीजगामवरवर्णिनी ।
यथा यथा गतेनैव यत्रासीत्सत्यवान् मृतः ॥१
सा समासाद्य भर्तारं तस्योत्सङ्गगतं शिरः ।
कृत्वा विवेश तत्वज्ञो लम्बमाने दिवाकरे ॥२
सत्यवानपि निर्मुक्तो धर्मराजाच्छनै- शनैः ।
उन्मीलयत नेत्राभ्यां प्रास्फुरच्च नराधिप ! ॥३
ततः प्रत्यागप्राण. प्रिया वचनमब्रवीत् ।
क्वासौ प्रयातः पुरुषो यो मामप्यपकर्षति ॥४
न जानामिवरारोहे ! कश्चासौपुरुष.शुभे ।
वनेऽस्मिन्चारुसर्वाङ्गि ! सुप्तस्यचदिनगतम् ॥५
उपवासपरिश्रान्ता दु.खिता भवती मया ।
अस्मद्दुर्हृदयेनाद्य पितरौ दु.खितौ तथा ॥
द्रष्टुमिच्छाम्यहं सुभ्रु ! गगने त्वरिता भव ॥६

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—इसके अनन्तर वर वर्णिनी साध्वी सावित्री जैसे ही मार्ग से गयी थी और जहाँ पर मृत सत्यवान् था वैसे ही वह चली गयी थी। उसने अपने स्वामी को प्राप्त करके जिसका शिर उसके गोद में था इस तरह से उसके शिर को रखकर दिवाकर के लम्बमान होने पर उस तत्वज्ञो ने उस स्थल पर प्रवेश किया था ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ सत्यवान् का जीवात्मा धर्मराज से धीरे धीरे निर्मुक्त होकर हे नराधिप ! उसने नेत्रों का उन्मीलन किया था और वह [illegible]

इसके पश्चात् प्रत्यागत प्राण वाला वह होकर अपनी प्रिया से यह वचन बोला—वह पुरुष कहाँ चला गया जो मुझको भी अपकर्षित कर रहा है। हे चारु-हे वरारोहे ! हे शुभे ! मैं नहीं जानता हूँ यह कौन पुरुष था। हे सर्वाङ्गि ! आज इस वन मे सोते हुए मुझको पूरा दिन व्यतीत हो गया है। मैंने उपवास से परिश्रान्त आपको भी दुःखित किया है। हमारे बुरे हृदय से आज हमारे माता–पिता भी बहुत दुःखित हुए हैं। हे सुभ्रु ! मैं माता पिता के दर्शन करना चाहता हूँ अब गमन करने मे शीघ्रता वाली हो जाओ ।३–६॥

आदित्येऽस्तमनुप्राप्ते यदि ते रुचितं प्रभो ।
आश्रमन्तु प्रयास्यावः श्वशुरो हीनचक्षुषौ ॥७
यथा वृत्तञ्च तत्रैव शृणु वक्ष्ये यथाश्रमे ।
एतावदुक्त्वा भर्तारं सह भर्त्रा तदा ययौ ॥८
आससादाश्रमं चैव सह भर्त्रा नृपात्मजा ।
एतस्मिन्नेव काले तु लब्धचक्षुर्महीपतिः ॥९
द्युमत्सेनः सभार्यस्तु पर्यतप्यत भार्गव ।
प्रियपुत्रमपश्यन्वै स्नुषाञ्चैवाथ कर्शिताम् ॥१०
आश्वास्यमानस्तु तथा स तु राजा तपोधनैः ।
ददर्श पुत्रमायान्तं स्नुषया सह कानने ॥११
सावित्री तु वरारोहा सह सत्यवता तदा ।
ववन्द तत्र राजानं सभार्यं क्षत्रपुङ्गवम् ॥१२
परिष्वक्तस्तदा पित्रा सत्यवान् राजनन्दनः ।
अभिवाद्य ततः सर्वान् वने तस्मिंस्तपोधनान् ॥१३
उवास तत्र तां रात्रिमृषिभिः सह धर्मवित् ।
सावित्र्यपि जगादाथ यथावृत्तमनिन्दिता ॥१४

सावित्री देवी ने कहा—हे प्रभो ! भगवान् सूर्य के अस्तता को प्राप्त होने पर यदि आपको पसन्द हो तो आश्रम में चलें । तात श्वशुर

उज्जहार वरारोहा भर्तृ पक्ष तथैव च ।
मोक्षयामास भर्तार मृत्युपाशगत तदा ॥२०
तस्मात्साध्व्य स्त्रिय पूज्या सतत देववन्नरैं ।
तासा राजन् ! प्रसादेन धार्यते व जगत्त्रयम् ॥२१
तासान्तु वाक्य भवतीह मिथ्या न जातु लोकेषु चराचरेषु ।
तस्मात्सदा ता परिपूजनीया कामान् समग्रानभिकामयान ॥२२

उसी रात्रि मे जो महाव्रत ग्रहण किया था उसको समाप्त किया था। इसके अनन्तर सभी जन उस राजा की स्त्रियो के समीप मे सेना के सहित तुय वाद्यो से समन्वित राज्यार्थ के लिये निम्न प्रश्न मे वहाँ पर समागत हुए और उस समय मे उ होने प्रकृति शासन को विज्ञापित किया था। हे नृपते ! नेत्रहीन आपका जिसने पहिले राज्य अपहृत किया था उस राजा को आपके ही अमा या ने मार डाला है और अब आप ही उस पुर के राजा हैं। यह श्रवण करके वह राजा द्यु म सेन चतुरङ्गी बल के साथ वहाँ पर चला गया था और महा मा धमराज से अपने सम्पूण राज्य को पुन प्राप्त कर लिया था। वराङ्गना सावित्री ने भी सौ भाइयो की प्राप्ति करली थी। इस प्रकार स उस परम साध्वी पति व्रता ने जो नप की आ मजा थी अपने पिता के पक्ष का भी उद्धार कर दिया था तथा उस वरारोहा ने भाइयो के पक्ष का भी उद्धार कर दिया। उस समय म पातिव्रत के महान् प्रबनतम बल स अपने भर्ता को मृत्यु के परम घोर पाश से मुक्त करा दिया था। इसी कारण से मनुष्यो को पूजा करनी चाहिए। हे राजन् ! उनके ही प्रसाद स य तीनो भुवन धारण किय जात हैं॥ १४, १६, १७ १८ १६ २०, २१। इन बराबर लोको म कभी भी उन सतीसाध्वी महिलाओ के वचन मिथ्या नही हुआ करते हैं इसी कारण स सम्पूण कामनाओ को प्राप्त करन वाल मनुष्यो क द्वारा सवदा उन नारियो की अभ्यचना अवश्य ही करनी चाहिए॥२२॥

६३—अभिषिक्त राजा का कृत्य वर्णन

राज्ञोऽभिषिक्तमात्रस्य किन्नुकृत्यतमं भवेत् ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सम्यग्वेत्तियतोभवान् ॥१
अभिषेकार्द्रशिरसा राज्ञा राज्यावलोकिना ।
सहायवरण कार्यं तत्र राज्य प्रतिष्ठितम् ॥२
यदप्यल्पतरं कर्म तदप्येकेन दुश्चरम् ।
पुरुषेणासहायेन किमु राज्य महोदयम् ॥३
तस्मात्सहायान् वरयेत् कुलीनान्नृपतिः स्वयम् ।
शूरान् कुलीनजातीयान् बलयुक्तान् श्रियान्वितान् ॥४
रूपसत्वगुणोपेतान् सज्जनान् क्षमयान्वितान् ।
क्लेशक्षमान् महोत्साहान् धर्मज्ञाश्च प्रियवदान् ॥५
हितोपदेशकान्राज्ञ स्वामिभक्तान्यशोऽर्थिनः ।
एवंविधान्सहायांश्चशुभकर्मसु योजयेत् ॥६
गुणहीना अपि तथा विज्ञाय नृपतिः स्वयम् ।
कर्मस्वेव नियुञ्जीत यथायोग्येषु भागशः ॥७

महर्षि मनु ने कहा—जिस राजा का राज्यासन पर अभिषेक कर दिया जावे उस अभिषिक्त नृपति का क्या कर्त्तव्य है क्योंकि केवल उसका अभिषेक भर ही हुआ है। यह सभी कुछ मुझे बतलाइये क्योंकि आप तो सभी कुछ को भली भाँति जानते हैं ॥ १ ॥ श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—अभिषेक के द्वारा भीगे हुए मस्तक वाले और राज्य के कार्यों के देखने वाले राजा को चाहिए कि वह उस प्रतिष्ठित राज्य में वहाँ पर अपनी सहायता करने वालों का वरण करे ॥ २ ॥ चाहे बहुत ही छोटा सा भी कोई कार्य हो किन्तु वह भी एक के द्वारा पूर्ण कर लेना महान् कठिन हुआ करता है जिस पुरुष का कोई भी सहायक न हो। यह साधारण से साधारण कार्यों के विषय में भी ऐसा ही देखा जाता है किन्तु राज्य

शासन तो महान् उदय वाला एक परम विशाल कार्य है ॥ ३ ॥ अतएव नृपति को स्वय ही कुलीन सहायको का वरण करना चाहिए वे सहायक ऐसे होने चाहिए जो शूरवीर हो—अच्छे कुल और उत्तम जाति में समुत्पन्न होने वाले हों—बल से सम्पन्न एव श्री से समन्वित होवे ॥४॥ राजा को अपने सहायको के वरण करने मे देखना चाहिए कि वे रूप और सत्व गुण से युक्त हो—सज्जन हो—क्षमा से सयुक्त हो—क्लेशों के सहन करने मे समर्थ हो—महान उत्साह वाले हो—धर्म के ज्ञाता हो—प्रिय वचन बोलने वाले हो। राजा को सदा हित का उपदेश करने वाले—स्वामी के परम भक्त हुओर यश क चाहने वाले हो। इस तरह के भली भाँति खूब देखभाल कर सहायको का वरण राजा को करना चाहिए और फिर उनको शुभ कर्मों मे योजित करना चाहिए। जो गुणों से हीन हो इनको भी राजा स्वय जानकर यथा योग्य कर्मों में भाग करके नियुक्त करना चाहिए ॥ ५, ६, ७ ॥

कुलीन शीलसम्पन्नो धनुर्वेदविशारद ।
हस्तिशिक्षाश्वशिक्षासु कुशल श्लक्ष्णभाषिता ॥८
निमित्त शकुने ज्ञाते वेत्ताचैव चिकित्सिते ।
कृतज्ञ कर्मणा शूरस्तथा क्लेशसहोऽऋजुः ॥९
व्यूहतत्त्वविधानज्ञ फल्गुसारविशेषवित् ।
राज्ञा सेनापति कार्यो ब्राह्मण क्षत्रियोऽथवा ॥१०
प्राशु सुरूपो दक्षश्च प्रियवादी न चोद्धतः ।
चित्तग्राहश्च सर्वेषा प्रतीहारो विधीयते ॥११
यथोक्तवादी दूत स्याद्देशभाषाविशारद ।
शक्त क्लेशसहो वाग्मी देशकालविभागवित् ॥१२
विज्ञातदेशकालश्च दूत स स्यान्महीक्षित ।
वक्ता न समय य काले स दूतो नृपतेर्भवेत् ॥१३
प्रांशवो व्यायता शूरा दृढभक्ता निराकुला ।

राज्ञा तु रक्षिण- कार्या- सदा क्लेशसहा हिता: ।।१४

सेनापति राजा का एक परम सहायक अङ्ग होता है। वह कैसा होना चाहिए यह बतलाया गया है। राजा का सेनापति—शील स्वभाव से युक्त—धनुर्विद्या का महान् विद्वान्-हाथियों और अश्वों की शिक्षा में परम प्रवीण कोमल और मधुर भाषण करने वाला—शकुन के निमित्तों का जानने वाला-चिकित्सा के विषय का ज्ञाता—कृतज्ञ—कर्मों से शूर-क्लेशों का सहिष्णु-सरल-गूढ़ तत्वों के विधान का ज्ञाता—निरर्थक एव सार के तत्वों का जानकार ऐसे अनेक गुणों से विशिष्ट सेना का स्वामी राजा को बनाना चाहिये क्योंकि सेना ही राज्य एव प्रजा की रक्षा करने वाली होती है और सेनापति उसका प्रधान होता है। वह सेनापति जाति का ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय होना चाहिए। वह प्राशु—सुन्दर रूप वाला—दक्ष और प्रियवादी होना चाहिये उद्धत स्वभाव वाला उसको नहीं रहना चाहिये। राजा का दूत सभी के चित्त को ग्रहण करने वाला और प्रतीहार बनाना चाहिये। दूत को जैसा भी कहा जावे वही कहने वाला तथा देश भाषा का विद्वान् होना चाहिए। जो राजा का दूत हो उसको शक्तिशाली—क्लेशों का सहन करने वाला-वाग्मी-देश और काल के विभाग का ज्ञान रखने वाला तथा देश एव काल का विज्ञाता होना आवश्यक है। जो जिसके काल में वक्ता नहीं है वही दूत राजा का होता है।। ८, ६, १०, ११, १२, १३ ।। राजा को अपनी रक्षा करने वाले ऐसे ही व्यक्तियों को करना चाहिए जो प्रांशु-व्यायत-शूर दृढ़ भक्त-निराकुल-सदा क्लेशों के सहन करने के स्वभाव वाले तथा हित हों ।। १४ ।

अनाहार्यो नरःसश्च दृढभक्तिश्च पार्थिवे ।
ताम्बूलधारी भवति नारी वाप्यथ तद्गुणा ।।१५
षाड्गुण्यविधितत्त्वज्ञो देशभाषाविशारद- ।
सन्धिविग्रहक कार्यो राजा नयविशारद ।।१६

कृताकृतज्ञो भृत्यानां ज्ञेयः स्याद्देशरक्षिता ।
आयव्ययज्ञोलोकज्ञो देशोत्पत्तिविशारदः ॥१७
सुरूपस्तरुण प्रांशु दृढभक्ति कुलोचित. ।
शूरः क्लेशसहश्चैव खड्गधारी प्रकीर्तितः ॥१८
शूरश्च बलयुक्तश्च गजाश्वरथकोविद ।
धनुर्धारी भवेद्राज्ञः सर्वक्लेशसह शुचि ॥१९
निमित्तशकुनज्ञानी हयशिक्षाविशारदः ।
हयायु र्वेदतत्त्वज्ञो भुवोभागविचक्षण. ॥२०
बलाबलज्ञो रथिन स्थिरदृष्टि प्रियम्वदः ।
शूरश्च कृतविद्यश्च सारथि. परिकीर्तितः ॥२१

राजा का ताम्बूलधारी अनाहार्य्य—अनुशस और राजा मे दृढ भक्ति वाला होना चाहिये अथवा उन्हीं गुणों वाली पुरुष न होकर ताम्बूलधारिणी नारी भी हो सकती है ॥ १५ ॥ राजा के द्वारा षाड्गुण्य विधि के तत्व का ज्ञाता—देश भाषा का विद्वान् और नीति शास्त्र का पण्डित, सन्धि एवं विग्रह करने वाला नियुक्त होना चाहिये । देश का रक्षिता भृत्यों के कृत और अकृत के जानने योग्य होवे । जो आय और व्यय का ज्ञाता होता है वह लोक का वेत्ता तथा देश की उत्पत्ति का मनीषी मनुष्य होना चाहिये । राजा का खड्गधारी सुन्दर रूप वाला—तरुण—प्रांशु—दृढ भक्ति वाला—समुचित कुल में समुत्पन्न—शूरवीर—क्लेशों

विषय में भलीभाँति विज्ञता रखता हो। स्थिर दृष्टि वाला-प्रिय बोलने वाला-शूर-कृतविद्य हो ॥ १७-२१ ॥

अनाहार्य. रुचिर्दक्षश्चिकित्सितविदाम्वरः।
सूपशास्त्रविशेषज्ञः सूदाध्यक्षः प्रशस्यते ॥२२
सूदशस्त्रविधानज्ञाः परभेद्या कुलोद्गताः।
सर्वे महानसे धार्याः कृत्तकेशनखा नराः ॥२३
समः शत्रौ च मित्रे च धर्मशास्त्रविशारदः।
विप्रमुख्यः कुलीनश्च धर्माधिकरणी भवेत् ।२४
कार्यास्तथाविधास्तत्र द्विजमुख्याः सभासदः।
सर्वदेशाक्षराभिज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ।२५
लेखकः कथितो राज्ञः सर्वाधिकरणेषु वै।
शीर्षोपेतान् सुसम्पूर्णान् समश्रेणिगतान् समान् ।२६
अक्षरान्वै लिखेद्यस्तु लेखकः स वरः स्मृतः।
उपायवाक्यकुशलः सर्वशास्त्रविशारदः ।२७
बह्वर्थवक्ता चाल्पेन लेखकः स्यान्नृपोत्तम।
पुरुषान्तरतत्त्वज्ञः प्रांशुश्चाप्यलोलुपः ।२८

जो शीषको से समन्वित—सुसम्पूर्ण—सम और समान श्रेणी मे गत अ तरो को लिखा करता है । हे नृपोत्तम ! जो बहुत ही थोडे में बहुत बडे अधिक अथ का कहने वाला हो—उपाय वाक्यो मे कुशल हो और समस्त शास्त्रों का महा पण्डित हो ऐसा ही लेखक होना चाहिये । जो दानदाता हो वे भी राजा के द्वारा ऐसे पुरुषो को नियुक्त किया जाना चाहिये जो दूसरे पुरुषो के अ तर को पहिचानने वाले हों अर्थात् अ ये के हृदय के तत्वो के ज्ञाता हो—प्राशु एव अलोलुप भी होवे ॥ २३ ४ २५ २६ २७, २८ ॥

धर्माधिकारिण कार्या जना दानकरा नरा ।
एवम्विधास्तथा कार्या राज्ञा दौवारिका जना । २६
लाहवस्त्राजिनादीनारत्नानाञ्च विधानवित् ।
विज्ञाताफल्गुसाराणामनाहाय शुचि सदा ॥३०
निपुणश्चाप्रमत्तश्च धनाध्यक्ष प्रकीर्तित ।
आयद्वारेषु सर्वेषु धनाध्यक्षसमा नरा ॥३१
व्यवहारेषु च तथा कतव्या पृथिवीक्षिना ।
परम्परागतो य स्यादष्टाङ्ग सुचिकित्सिते ॥३२
अनाहाय स वद्य स्यात् धर्मात्मा च कुलोद्गत
प्राणाचाय स विज्ञ या वचनात्तस्य भूभुजा ॥३३
राजन् ! राज्ञा सदा कार्य यथाकार्य पृथक जन ।
हस्तिशिक्षाविधानज्ञो वनजातिविशारद ॥३४
क्लेशक्षमस्तथा राज्ञा गजाध्यक्ष प्रशस्यते ।
तैरेव गुणयुक्त स्वासनश्च विधीयत ॥३५

उपयुक्त गुणो स विशिष्ट नर ही दान करने वाले धर्माधिकारी नियुक्त करने चाहिए । राजा के द्वारा इसी प्रकार के दौवारिकों की नियुक्ति करनी चाहिए जो लाहू—वस्त्र—अजिन आदि—रत्नों की विधि का [illegible] और [illegible] हो—[illegible] और [illegible]

है—इसके ज्ञाता अनाहार्य्य—सदा शुचि—निपुण और अप्रमत्त मनुष्य ही राजा के धन (कोष) का अध्यक्ष होना चाहिए। समस्त आवक द्वारों में धनाध्यक्ष के तुल्य ही नर नियुक्त होने चाहिए ॥ २६, ३०, ३१॥ व्यय द्वारों में भी राजा को उसी प्रकार के मनुष्यों की नियुक्ति करनी चाहिए। जो अष्टाङ्गों में भली भाँति चिकित्सा का ज्ञान रखता हो—परम्परा से समागत हो—धर्मात्मा—अच्छे कुल में समुत्पन्न हो और अनाहार्य्य हो वही पुरुष राजघर में वैद्य होने का अधिकारी होता है। राजा के द्वारा वरण से उसको वह प्राणाचार्य्य जानना चाहिए। हे राजन् ! राजा के द्वारा सदा जनो से पृथक् यथा कार्य्य वन जाति का पण्डित और हाथियों की शिक्षा के विधान का ज्ञाता एवं क्लेशों के सहन करने में समर्थ ऐसा राजा का गजाध्यक्ष परम प्रशस्त माना जाता है और इन्हीं गुणों से समन्वित अपने आसन वाला भी विशेष रूप के प्रशस्त होता है ॥ ३२, ३३, ३४, ३५॥

गजारोही नरेन्द्रस्य सर्वकर्मसु शस्यते।
हयशिक्षाविधानज्ञश्चिकित्सितविशारदः ॥३६
अश्वाध्यक्षो महीभर्त्तुः स्वासनश्च प्रशस्यते।
अनाहार्यश्च शूरश्च तथा प्राज्ञः कुलोद्गतः ॥३७
दुर्गाध्यक्षः स्मृतो राज्ञ उद्युक्तः सर्वकर्मसु।
वास्तुविद्याविधानज्ञो लघुहस्तो जितश्रमः ॥३८
दोषदर्शी च शूरश्च स्थपतिः परिकीर्तितः।
यन्त्रमुक्ते पाणिमुक्ते विमुक्ते मुक्तधारिते ॥३९
अस्त्राचार्यो निरुद्वेगः कुशलश्च विशिष्यते।
वृद्धः कुलोद्गतः सूक्तः पितृपैतामहः शुचिः ॥४०
राज्ञामन्तःपुराध्यक्षो विनीतश्च तथेष्यते
एवं सप्ताधिकारेषु पुरुषाः सप्त ते पुरे ॥४१
परीक्ष्य चाधिकार्याः स्यू राज्ञा सर्वेषु कर्मसु।

स्थापनाजातितत्त्वज्ञ सततं प्रतिजाग्रता ॥४२

राजा का गज पर समारोहण करने वाला सभी प्रकार के कर्मों मे प्रशसनीय होता है। अश्वो की शिक्षा के विधान का जानने वाला तथा चिकित्सा के विषय मे पण्डित राजा का अश्वो पर रहने वाला अध्यक्ष और स्वासन प्रशस्त माना जाता है। अनाहार्य और शूर तथा प्राज्ञ एव अच्छे कुल मे उत्पन्न राजा का दुर्ग का अध्यक्ष कहा गया है जो सभी प्रकार के कर्मों मे उद्युक्त रहा करता है। वास्तु कला की विद्या मे महा पण्डित—हलके हाथ वाला—श्रम को जीत लेने वाला—दीर्घदर्शी और शूर स्थपति कीर्तित किया गया है। यन्त्र मुक्त मे—पाणि मुक्त मे—विमुक्त मे और मुक्त धारित में अस्त्राचार्य उद्वेग से रहित एव कुशल विशिष्ट हुआ करता है। पिता–पितामह से चले आने वाला—पवित्र—वृद्ध तथा कुलीन सूक्ष्म एव विनीत राजाओ का अन्त पुर का अध्यक्ष अभीष्ट हुआ करता है। इस प्रकार से इन सात अधिकार के पदो पर पुर मे सात पुरुष राजा के द्वारा भली भाँति परीक्षा करके अधिकार के योग्य नियुक्त करना चाहिये जो कि सभी कर्मों मे उपयुक्त हाव और सभी कर्मो मे निरन्तर प्रतिजाग्रत और जाति के तत्त्व के ज्ञाता को इनका स्थापन करना चाहिए ॥३६–४ ॥

राज्ञ स्यादायुधागारे दक्ष कर्मसु चाद्यत ।
कर्माण्यपरिमेयानि राज्ञो नृपकुलोद्वह ! ॥४३
उत्तमाधममध्यानि बुद्ध्वा कर्माणि पार्थिव ।
उत्तमाधममध्येषु पुरुषेषु नियोजयेत् ॥४४
नरकर्मविपर्यासाद्राजा नाशमवाप्नुयात् ।
नियोग पौरुष भक्ति श्रुत शौर्य कुल नयम् ॥४५
ज्ञात्वा वृत्तिविधातव्या पुरुषाणां महीक्षिता ।
पुरुषान्तरविज्ञानतत्त्वसारनिबन्धनात् ॥४६
य्र्गिमन्त्रयत्वाम राजा मन्त्र पृथक् पृथक् ।

मन्त्रिणामपि नो कुर्यान्मन्त्रिमन्त्रप्रकाशनम् ॥४७
क्वचिन्न कस्य विश्वासो भवतीह सदा नृणाम् ।
निश्चयस्तु सदामन्त्रे कार्यएकेनसूरिणा ॥४८
भवेद्वा निश्चयावाप्तिः परबुद्ध्युपजीवनात् ।
एकस्यैव कार्यमतुं भूयः कार्यो विनिश्चयः ॥४६

नृपति के अमुद्यों के आगार में ऐसा ही व्यक्ति नियुक्त किया जाना चाहिये जो दक्ष हो और सभी कर्मों में उद्यत रहता हो। हे नृप कुलोद्वह! राजा के यहाँ उसके अपरिमेय कर्म हुआ करते हैं। पार्थिव का कर्त्तव्य है कि कर्मों की उत्तम-मध्यम और अधम श्रेणियों को समझ कर ही उत्तम-मध्यम-अधम पुरुषों में से तदनुसार ही पुरुषों को नियोजित करे। यदि उत्तम कर्म में मध्यम और मध्यम कर्म में उत्तम पुरुष की विपर्यास से नियुक्ति की जावेगी तो इस विपरीतता से नृप का नाश हो जायगा। राजा को नियोग-पौरुष-भक्ति-श्रुत-शौर्य-कुल और नय इन सबको भली भाँति समझ बूझ कर ही पुरुषों की वृत्तिका विधान करना चाहिये और दूसरे पुरुषों के विज्ञान एवं तत्वसार के विवरण से ही नियुक्ति करने की नितान्त आवश्यकता होती है ॥ ४३, ४४, ४५, ४६ ॥ राजा को चाहिए कि वह पृथक्-पृथक् बहुत से लोगों से स्वेच्छया मन्त्रणा करे और अपने मन्त्रियों से भी अपने मन्त्र का प्रकाशन कभी नहीं करना चाहिए ॥ ४७ ॥ इस संसार में राजाओं का कहीं पर भी किसी का विश्वास नहीं हुआ करता है और सदा किसी भी एक सूरि से अपने विचारणीय मन्त्र में निश्चय कर लेना चाहिए। अथवा राजा को अपने निश्चय की प्राप्ति पर बुद्धि के उपजीवन में किसी भी एक से ही हो जावे तो भी पुनः उसका विविध निश्चय अवश्य ही अन्यों के द्वारा भी करना चाहिये ॥ ४८, ४६ ॥

ब्राह्मणान् पर्युपासीत त्रयीशास्त्रसुनिश्चितान् ।
नासच्छास्त्रवतो मूढान्स्ते हि लोकस्य कण्टकाः ॥५०

वृद्धान् हि नित्य सेवेत विप्रान् वेदविद शुचीन् ।
तेभ्य शिक्षेत विनय विनीतात्मा च नित्यश ।५१
समग्रा वशगा कुर्य्यात् पृथिवी नात्र सशय ।
बहवोविनयाद्भ्रष्टा राजान सपरि-छदा ॥५२
वनस्थाचैव राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे ।
त्रैविद्यभ्यस्त्रीविद्या दण्डनीति च शाश्वतीम् ॥५३
आन्वाक्षिकी स्वात्मविद्याम्वार्तारम्भाश्च लोकत ।
इन्द्रियाणा जये योग समातिष्ठेद्दिवानिशम् ॥५४
जितेन्द्रियोहि शक्नोति वशेस्थापयितु प्रजा ।
यजेतराजा बहुभि क्रतुभिश्च सदक्षिणं ॥५५
धर्मार्थंचय विप्रेभ्यो दद्याद्भोगान्धनानि च ।
साम्वत्सरिकमाप्तश्च राष्ट्रादाहारयेद्बलिम् ॥५६

सीखने में समास्थित होना चाहिए ॥५३, ५४॥ जो राजा इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखकर जितेन्द्रिय होता है वह अपनी प्रजा को वश में रख सकता है। राजा का परम कर्त्तव्य है कि वह दक्षिणा से सयुत बहुत से क्रतुओं के द्वारा यजन किया करे। धर्म और अर्थ के लिये विप्रों को भोग एव धनों का दान देना चाहिए। प्रति सम्वत्सरों तथा मासों के हिसाब से उसे राष्ट्रों से बलि का आहरण करना चाहिए ॥५५, ५६॥

स्यात्स्वाध्यायपरोलोके वर्त्तेतपितृबन्धुवत् ।
आवृत्तानागुरुकुलात्द्विजानापूजकोभवेत् ॥५७
नपाणामक्षयो ह्येष विधिर्वाह्योऽभिधीयते ।
ततस्तेनानवा मित्रा हरन्ति न विनश्यति ॥५८
तस्माद्राज्ञा विधातव्यो ब्राह्मो वै ह्यक्षयो विधिः।
समोत्तमाधमं राजा ह्याहूय पालयेत्प्रजा ॥५९
न निवर्तत सग्रामात् क्षात्रं व्रतमनुस्मरन् ।
सग्रामेस्वनिवर्तित्व प्रजाना परिपालनम् ॥६०
शुश्रूषा ब्राह्मणनाञ्च राज्ञा निश्रेयसम्परम् ।
कृपणानाथवृद्धाना विधवानाञ्च पालनम् ॥६१
योगक्षेमञ्च वृत्तिञ्च तथैव परिकल्पयेत् ।
वर्णाश्रमव्यवस्थान तथाकार्यं विशेषत ॥६२
स्वधर्मप्र-युतान् राजा स्वधर्मे स्थापयेत्तथा ।
आश्रमेषुतथा कार्यमन्न तैलञ्च भाजनम् ॥६३

नृप को लोक में सर्वदा स्वाध्याय परायण होना चाहिए और प्रजाजनों में सबके साथ तदनुकूल पिता एवं बन्धु के तुल्य ही व्यवहार करे। जो द्विज गुरुकुलों से अपनी अवधि पूर्ण कर वापिस आवें उनकी पूजा राजा को करनी चाहिए ॥५७॥ राजाओं के लिए यह विधि अक्षय एव ब्राह्म कही जाती है। इससे वह अनव मित्रों का हरण किया करते हैं तथा कभी विनाश को प्राप्त नहीं होता है। अतएव राजा को इस

अक्षय विधि को करना ही चाहिए। राजा का कर्त्तव्य है कि वह सम— उत्तम और अधमो के द्वारा समाह्वान कर प्रजाजनो का पालन किया करे ॥५८, ५६॥ नृप को कभी भी अपने क्षत्रियो के व्रत एव धम का स्मरण करते हुए सग्राम से मुह नही मोडना चाहिए। सग्रामो मे अनिवृत होना भी प्रजा का पूण परिपालन ही होना है। ब्राह्मणों की शुश्रूषा राजाओ के कल्याण करने वाली परम श्रेय ही होती है। राजा का कर्त्तव्य है कि जो कृपण–अनाथ–वृद्ध एव विधवा हो उनका भली भाँति पालन करे और उनका योग क्षेम तथा वृत्ति की परिकल्पना कर देवे। विशेष रूप से वर्णों एव आश्रमो की व्यवस्था का कार्य सम्पन्न करना राजा का नितान्त आवश्यक कर्म है। जो मनुष्य अपने धम का त्याग करके कर्त्तव्य से च्युत हो गये हैं उनको पुन अपने उचित धर्म के मार्ग पर राजा को स्थापित करना चाहिए। जो आश्रम वासी हैं उनके आश्रमो मे अन्न–तैल और भोजन आदि की व्यवस्था नृप को ही कर देनी चाहिए ॥६०-६३॥

स्वयमेवानयेद्राजा सत्कृतान्नावमानयेत् ।
तापसे सर्वकार्याणि राज्यमात्मानमेव च ॥६४
निवेदयेत्प्रयत्नेन देववच्चिरमर्चयेत् ।
द्वे प्रज्ञे वदितव्ये च ऋजवी वक्रा च मानवै ॥६६
गृहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मन ।
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्तेनातिविश्वसेत् ॥६७
विश्वासाद्भयमुत्पन्न मूलादपि निकृन्तति ।
विश्वासयेच्चाप्यपरतन्तत्त्वभूतेन हेतुना ॥६८
बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमे ।
वृकवच्चापि लुम्पेत शशवच्च विनिक्षिपेत ॥६६
दृढप्रहारी च भवेत तथा शूरश्च नृप ।
चित्राकारश्च शिखिवद्दृढभक्तस्तथा श्ववत् ॥७०

आश्रमो मे जो आवश्यक वस्तुएँ हो उनकी व्यवस्था राजा को स्वय ही ग्रानयन कर करनी चाहिए। जो सत्कार करने के योग्य पुरुष हैं उनका कभी भूलकर भी राजा को अपमान नही करना चाहिए। राजा को अपने समस्त काम्य—राज्य और अपने आपको भी तपस्वियो के लिये समर्पित कर देना चाहिये और प्रयत्न पूर्वक निवेदन करके देवो की भाँति ही चिरकाल पर्यन्त उनकी अभ्यर्चना करे। मनुष्यों के द्वारा दो प्रकार की बुद्धियों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये जो कि ऋज्वी और वक्रा नाम वाली कही जाया करती हैं। जो वक्रा बुद्धि है उसका ज्ञान प्राप्त करके उसे कभी भी सेवन नहीं करना चाहिए। जब भी वह आक्र वक्रावुद्धि उपस्थित हो तो उसका प्रावबाध कर देना चाहिए। ऐसे ढग से रहना चाहिए कि कोई भी दूसरा इसक छिद्र को न जान सके और दूसरे के छिद्र को स्वय समझ ले ॥६४, ६५, ६६॥ अपने गुप्त अङ्गों की भाँति ही अपने कर्म को गोपनीय रखना चाहिये तथा अपने आपके छिद्र की रक्षा करे। जो पुरुष विश्वास करने के योग्य नहीं है उस पर कभी विश्वास नहीं करे किन्तु जो विश्वास का पात्र हो उस पर भी प्रत्यधिक पूर्ण विश्वास नहीं करना चाहिए। विश्वास के घात से जो भय समुत्पन्न होता है वह मूलो का भी छेदन कर दिया करता है। तत्वमूल हेतु से दूसरे को भी विश्वास दिला देना चाहिए ॥६७, ६८॥ बगुला की भाँति अर्थों का चिन्तन करे और सिंह के समान पराक्रम से यत्न करे। वृक (भेडिया) के तुल्य लुप्त होकर छिप जावे तथा शश के सदृश विनिक्षेप करने वाला होवे। नृप को एक शूकर के समान दृढ प्रहार करने वाला होना चाहिये। शिखि के तुल्य चित्रकार तथा कुत्ते के तुल्य दृढभक्ति वाला होना चाहिए ॥६९, ७०॥

तथा च मधुराभाषी भवेत्कोकिलवन्नृपः।
काकशङ्की भवेन्नित्यमज्ञातवसतिं वसेत् ॥७१
नापरीक्षितपूर्वञ्च भोजनं शयनं व्रजेत्।

प्राप्त करने की इच्छा रखता है उसको चाहिए कि अपने सहायता करने वाले लोगों को बनावे। राजा को उचित योग्यता रखने वाले प्राणधारियों को ही कर्मों में योजित करना चाहिए ।।७३-७६।। जो पुरुष परम धर्मिष्ठ हों उनको ही धर्म के कार्यों मे और जो अतीव शूरवीर हों उन्हें संग्राम के कार्यों में एवं जो परम निपुण हों उन्हें अर्थ सम्बन्धी कृत्यों में और जो पवित्र हों उनको ही सभी कर्मों में योजित करना चाहिए ।।७७।।

स्त्रीषु षण्ट नियुञ्जीत तीक्ष्णं दारुण दारुणकर्मसु ।
धर्मे चार्थेच कामे च नये च रविनन्दन ! ।।७८
राजा यथार्हं कुर्याच्च उपधाभिः परीक्षणम् ।
समतीतोपदान् भृत्यान् कुर्याच्छन्तवनेचरान् ।।७९
तत्पादान्वेषणो यत्तास्तदध्यक्षांस्तु कारयेत् ।
नवमादीनि कर्माणिनृप कार्याणिपार्थिव ।।८०
सर्वथा नेष्यते राज्ञस्तीक्ष्णोपकरणक्रमः ।
कर्माणि पापसाध्यानियानि राज्ञो नराधिप ! ।।८१
सन्तस्तानि न कुर्वन्तितस्मात्तानित्यजेन्नृपः ।
नेष्यतेपृथिवीनातानतीक्ष्णोपकरणक्रिया ।।८२
यस्मिन् कर्मणि यस्य स्याद्विशेषेण च कौशलम् ।
तस्मिन् कर्मणि त राजा परीक्ष्य विनिवेशयेत् ।।८३
पितृपैतामहान् भृत्यान् सवकर्मसु योजयेत् ।
विनादायादकृत्येषुपरीक्षा स्वकृतान्तरान् ।।८४

स्त्रियों से सम्बन्धित सभी कार्यों में नपुंसक पुरुषों की नियुक्ति करे तथा जो अत्यन्त दारुण कर्म हो उनमें तीक्ष्ण प्रकृति वाले पुरुषों को रखे। हे रविनन्दन ! धर्म—अर्थ—काम और नय में राजा को उपधाओं के द्वारा भली भाँति परीक्षण करके ही जो जिस कार्य के करने की क्षमता रखता हो उसी को उसमें नियुक्ति करनी चाहिए। समतीतोपद सभी

वस्त्रं पुष्पमलङ्कारं यच्चान्यन्मनुजोत्तम ।।७२
न गाहेज्जनसम्बाधं नचाज्ञानजलाशयम् ।
अपरीक्षितपूर्वञ्च पुरुषराप्तकारिभि ।।७३
नारोहेत्कुञ्जरं व्यालं नादान्तं तुरगं तथा ।
नाविज्ञातां स्त्रियं गच्छेन्नैव देवोत्सवे वसेत् ।।७४
नरेन्द्रलक्ष्म्या धर्मज्ञ त्राता यत्तोभवेन्नृप ।
सद्भृत्याश्च तथा पुष्टा सततं प्रतिमानिता ।।७५
राज्ञा सहाया कर्तव्या पृथिवी जेतुमिच्छता ।
यथार्हञ्चाप्यसम्भृतो राजा कर्मसु योजयेत् ।।७६
धर्मिष्ठान् धर्मकार्येषु शूरान् संग्रामकर्मसु ।
निपुणानर्थकृत्येषु सर्वानेव तथा शुचीन् ।।७७

नृप को कोकिल के समान मधुर आभाषण करने वाला होना चाहिए। जो वसति अज्ञात है उसी में निवास करना चाहिए। राजा को चोर के तुल्य शङ्कायुक्त रहना चाहिये। बिना परीक्षा किए हुए कभी भी राजा को भोजन एवं शयन नहीं करना चाहिए। हे मनुजोत्तम! इसी भाँति से पहिले परीक्षा करके ही वस्त्र-पुष्प-अलङ्कार तथा अन्य वस्तु का उपयोग में लाना चाहिए। ७२, ७३॥ किसी भी जन सम्बाध का गाहन न करे और जो जलाशय अज्ञात है उसमें भी तैर कर अवगाहन राजा को नहीं करना चाहिए। इन सबकी परीक्षा भी आप्तकारी पुरुषों के द्वारा ही पहिले करा लेनी चाहिए। राजा का कर्त्तव्य है कि जिसका पहिले अच्छी तरह से ज्ञान न किया गया हो ऐसे गज—व्याल तथा अदान्त अश्व पर समारोहण नहीं करे। जिस स्त्री के विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त न कर लिया जावे उसका गमन नृप को नहीं करना चाहिए और देवोत्सव में कभी भी निवास न करे। हे धर्मज्ञ! क्योंकि नृप नरेन्द्र लक्ष्मी का त्राता होता है उसको [illegible] भृत्यों को सदा परिपुष्ट और प्रतिमानित रखना चाहिये। जो राजा इस समग्र भूमि के ऊपर जय

प्राप्त करने की इच्छा रखता है उसको चाहिए कि अपने सहायता करने वाले लोगों को बनावे। राजा को उचित योग्यता रखने वाले प्राणधारियो को ही कर्म्मों में योजित करना चाहिए ॥७३-७६॥ जो पुरुष परम धर्म्मिष्ठ हो उनको ही धर्म के कार्यों मे और जो अतीव शूरवीर हो उन्हे संग्राम के कार्यों में एव जो परम निपुण हों उन्हें अर्थ सम्बन्धी कृत्यो मे और जो पवित्र हो उनको ही सभी कर्म्मों मे योजित करना चाहिए ॥७७॥

स्त्रीषु पण्ढ नियुञ्जीत तीक्ष्ण दारुण दारुणकर्मसु ।
धर्मे चार्थेच कामे च नये च रविनन्दन ! ॥७८
राजा यथार्हङ्कुर्याच्च उपधाभिः परीक्षणम् ।
समतीतोपदान् भृत्यान् कुर्याच्छस्तवनेचरान् ॥७९
तत्पादान्वेषणो यत्तास्तदध्यक्षास्तु कारयेत् ।
सवमादीनि कर्माणिनृप कार्याणिपार्थिव ॥८०
सर्वथा नेष्यते राज्ञस्तीक्ष्णोपकरणक्रमः ।
कर्माणि पापसाध्यानियानि राज्ञो नराधिप ! ॥८१
सन्तस्तानि न कुर्वन्तितस्मात्तानित्यजेन्नृपः ।
नेष्यतेपृथिवीशातान्तीक्ष्णोपकरणक्रिया ॥८२
यस्मिन् कर्मणि यस्य स्याद्विशेषेण च कौशलम् ।
तस्मिन् कर्मणि त राज्ञा परीक्ष्य विनिवेशयेत् ॥८३
पितृपैतामहान् भृत्यान् सवकर्मसु योजयेत् ।
विनादायादकृत्येपुपरीक्षा स्वकृतान्तरान् ॥८४

स्त्रियों से सम्बन्धित सभी कार्यों मे नपुंसक पुरुषो की नियुक्ति करे तथा जो अत्यन्त दारुण कर्म्म हो उनमे तीक्ष्ण प्रकृति वाले पुरुषो को रखे। हे रविनन्दन ! धर्म—अर्थ—काम और नय मे राजा को उपधाओ के द्वारा भली भाँति परीक्षण करके ही जो जिस कार्य के क ने की क्षमता रखता हो उसी को उसम नियुक्ति करनी चाहिए। समतीतोपद वर्गो

को वस्तवक मे भृत्य बनावे ॥७८, ७६॥ उनके पादान्वेषण करने वाले उनक अन्वयो को भी नियोजित करे। इसी प्रकार के सभी कर्मों को नृपो के द्वारा पूर्ण करना चाहिए। हे पार्थिव ! राजा का सर्वथा तीक्ष्ण उपकरण का क्रम अभीष्ट नही हुआ करता है। हे नराधिप ! राजा के जो कुछ ऐसे कर्म्म होते हैं जो कि पापो द्वारा साध्य हुआ करते हैं सत्त पुरुष उनको कभी नही किया करते हैं अतएव राजा का कर्त्तव्य है कि उनको त्याग देवे। राजाओ को तीक्ष्ण उपकरणो की क्रिया कभी भी अभीष्ट नही—हुआ करती है। जिस कर्म्म मे जिस पुरुष की विशेष रूप से कुशलता हो उस कर्म्म मे राजा को उसकी परीक्षा करके ही उस पुरुष का विनिवेश करना उचित होता है। जो ऐसे भृत्य हैं कि उनके और अपने पिता—पितामह के समय से ही चले आने वाले हैं उनको सभी प्रकार क कर्मों मे नियुक्त कर देना चाहिए। स्वकृतान्तरो को द याद कृत्यो मे परीक्षा के बिना भी नियुक्त कर देवे। ८०-८४॥

नियुञ्जीत महाभाग। तस्य ते हितकारिण ।
परराजगृहात्प्राप्तान जनसग्रहकाम्यया ॥८५
दुष्टान् वाप्यथवादुष्टान आश्रयीत प्रयत्नत ।
दुष्ट विज्ञाय विश्वास न कुर्यात्तत्रभूमिप ॥८६
वृत्ति तस्यापि वर्तेत जनसग्रहकाम्यया ।
राजा देशान्तरप्राप्त पुरुष पूजयेद् भृशम् ॥८७
मामय दशसम्प्राप्ता बहुमानेन चिन्तयेत ।
याम भृत्याजन राजा नव कुर्यान्नराधिप ॥८८
न च वा सविभक्तास्तान् भृत्यान् कुर्यात्कथञ्चन ।
शत्रवाऽगिनविष सर्पा निस्त्रिश इति चिन्तयेत् ॥८६
भृत्या मनुजशार्दूल। रुषितादच तथवत ।
तथा चारग चारिश राजा विज्ञायनित्यश ॥६०

हे महाभाग ! जन–संग्रह की कामना से दूसरे राज गृह से प्राप्त हुए उसके उन हितकारियों को नियुक्त करना चाहिए। दुष्ट हों अथवा अदुष्ट हों प्रयत्न से उनको आश्रय देवे। राजा को दुष्ट को जानकर उसका विश्वास नहीं करना चाहिए। जन–संग्रह की कामना से उसकी वृत्ति कर देनी चाहिए। राजा को अन्य देश से प्राप्त हुए पुरुष की अत्यधिक पूजा करनी चाहिए ॥८५, ८६, ८७॥ यह मेरे देश में प्राप्त हुआ है अतएव उसके विषय में बहुमान चिन्तन करना चाहिए! हे नराधिप ! राजा को इच्छापूर्वक भृत्यार्जन नहीं करना चाहिये ॥८ ॥ उन भृत्यों को किसी भी प्रकार से सविभक्त नहीं करे। शत्रुओं को अग्नि—विष–सर्प और विस्त्रिश ऐसा ही चिन्तन करना चाहिए ॥ ८६ ॥ हे मनुज शार्दूल ! जो सत्य रक्षित हो जावें उनके विषय में एक ओर से राजा को चारों के द्वारा नित्य ही चरित्र का विशेष ज्ञान करते रहना चाहिये ॥ ६० ॥

गुणिना पूजन कुर्यान् निर्गुणानाञ्चशासनम् ।
कार्यता.सततराजन् ! राजानश्चारचक्षुषः ।।६१
स्वके देने परे देशे ज्ञानशीलान् विचक्षणान् ।
अनाहार्यान् क्लेशसहान्नियुञ्जीत तथाचरान् ॥६२
जनस्याविदितान् सौम्यान् तथा ज्ञातान् परस्परम् ।
वणिजो मन्त्रकुशलान् सावत्सरचिकित्सकान् ॥६३
तथा प्रव्राजिताकाराश्चारान् राजा नियोजयेत् ।
नैकस्य राजा श्रद्दध्यान् चारस्यापि सुभाषिनम् ॥६४
द्वयोः सम्बन्धमाज्ञाय श्रद्दध्यान्नपतिस्तदा ।
परस्परस्याविदितौ यदिस्यातान्च तावुभौ ॥६५
तस्माद्राजा प्रयत्नेन गूढाश्चारान्नियोजयेत् ।
राजापरागोमृत्यानां जनस्यचगुणागुणान् ॥६६
सर्व राजा चरायत्तन्तेषु यत्नपरोभवेत् ।

कमणा केन मे लोके जन सर्वोऽनुरज्यते ॥८७
विरज्यते केन तथा विज्ञेय तन्महीक्षिता ।
विरागजनक लोके वर्जनीय विशेषत ॥८८
तथा च रागप्रभवा हि लक्ष्म्यो राज्ञा मताभास्करवंशचन्द्र ।
तस्मात्प्रयत्नेन नरेन्द्रमुख्यै कार्योऽनुरागो भुवि मानवेषु ॥८९

राजा का कर्त्तव्य है कि जो गुणीजन हो उनका सत्कार एव पूजन करे तथा जो गुणहीन हों उन पर शासन करे। हे राजन्! राजा लोग निर तर चारो के चक्षुओं वाले ही कहे जाया करते हैं ॥ ९१ ॥ अपने राष्ट्र तथा देश मे तथा दूसरे देश मे ज्ञान के शील वाले—विचक्षण—अनाहर्य और क्लेश सहचरो की नियुक्ति करनी चाहिए ॥ ९२ ॥ राजा का कर्त्तव्य है कि ऐसे गुप्तचरो को नियुक्त करे जिनको साधारणत मनुष्य नही जानते हो—सौम्य—परस्पर मे ज्ञात—वणिज म त्र कुशल—साम्वत्सर चिकित्सक—प्रव्राजितो (साधु स न्यासियो) के आकार अर्थात् वेश-भूषा वाले हो। राजा को किसी भी एक गुप्तचर के कथन पर भी श्रद्धा कभी नही कर लेनी चाहिए ॥९३, ९४॥ जब दो चार उसी एक विषय का समान रूप से प्रतिपादन करे तभी राजा को विश्वास करना चाहिए कि तु दोनो के सम्ब ध को पहिले समझ कर ऐसा करे। यदि वे दोनो भी परस्पर म अविदित हो तो उनके सम्ब ध का ज्ञान लेना बहुत-ही आवश्यक है। इसी कारण स राजा को अत्यन्त गूढ चरो की निर्युक्ति करना उचित है। भृत्यो के राग और अपराग तथा जनो के गुण और अवगुण का ज्ञान लेना सब कुछ गुप्तचरो क ही (राजाओ का) अधीन होता है अतएव राजाओ को उन के विषय म यत्न परायण होना ही चाहिए। राजा का परम कर्तव्य यही है कि वह यह सवदा जानता-समझता रहे कि मेरे किस कर्म से लोक म सब लोग म अनुरञ्जित होते हैं और कौन सा मेरा कर्म है जिससे लोगों को बुरा मालूम होता है जो लोगो म विराग समुत्पन्न करने वाला कार्य है। उसको पूण रूप से वर्जित

कर देना चाहिए । हे भास्कर वेश के चन्द्र ! राजाओ की लक्ष्मी राग से समुत्पन्न होने वाली हैं—ऐसा ही माना गया है । इस कारण से राज-प्रमुखो को चाहिए कि प्रयत्न पूर्वक भूमण्डल मे मानवो मे राजाओ को भली भांति अनुराग करना चाहिए ॥६५-६६॥

६४—राजकृत्य वर्णन (१)

यथा न वर्तितव्य स्यान्मनो राज्ञोऽनुजीविना ।
तथा ते कथयिष्यामि निबोध गदता मम ॥१
राजा यत्तु वदेद्वाक्यं श्रोतव्य तत्प्रयत्नत. ।
आक्षिप्य वचन तस्य न वक्तव्य तथा वच: ॥२
अनुकूल प्रिय तस्य वक्तव्य जनसंसदि ।
रहोगतस्य वक्तव्यमप्रिय यद्धित भवेत् ॥३
परार्थमस्य वक्तव्य समे चेतसि पार्थिव ।
स्वार्थ: सुहृद्भिर्वक्तव्यो न स्वय तु कथञ्चन ॥४
कार्य्यातिपात. सर्वेषु रक्षितव्य: प्रयत्नत. ।
नच हिंस्य धन किञ्चित् नियुक्तेनचकर्मणि ॥५
नोपेक्ष्यस्तस्यमानश्च तथा राज्ञ प्रियो भवेत ।
राज्ञश्चनतथाकार्य्यं वेषभाषितचेष्टितम् ॥६
राजलीला न कर्तव्या तद्विद्विष्टञ्च वर्जयेत् ।
राज्ञ समोऽधिकोवानकार्य्योवेषोविजानता ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—राजा के अनुजीवी के द्वारा मन जिस प्रकार मे नही बरतना चाहिए वही मैं आपको बतलाऊंगा । अब आप मुझसे इसको समझ लो । जिसको कि मैं कह रहा हूँ ॥१॥ राजा जो कुछ भी वचन कहे उसे प्रयत्न पूर्वक श्रवण कर लेना चाहिए । उसके

वचन पर आक्षेप करके फिर कुछ भी अपना वचन नही कहना चाहिए। ॥२॥ जन ससद मे उस नृप का प्रिय और अनुकूल ही वचन बोलना चाहिए। यदि कोई उसके हित को बतलाने वाला भी वचन कहना हो तो उसे चाहे वह अप्रिय भी हो उसी समय मे उससे कहना चाहिए जब एकान्त में स्थित हो ॥३॥ हे पार्थिव ! इसका परमार्थ चित्त के सम होने पर ही बोलना चाहिए। यदि अपना कोई स्वार्थ हो तो उसे स्वय कभी भी न कहकर मित्रो के द्वारा ही कहलाना चाहिए ॥४॥ सब मे कार्यातिपात प्रयत्न पूर्वक रक्षित रखना चाहिये। कर्म मे नियुक्त होने पर कुछ भी धन नहीं मारना चाहिए ॥५॥ उसके मान की कभी भी उपेक्षा नही करनी चाहिए। इसी प्रकार से मनुष्य राजा का प्रिय हो जाया करता है। राजा के तुल्य वेष—भाषित और चेष्टित जैसा भी वैसा ही स्वय नही करना चाहिए ॥ ६ ॥ राजा की लीला नही करे और उसका जो भी कुछ विद्विष्ट हो वह भी वर्जित कर देना चाहिए। राजा के ही समान अथवा उससे भी अधिक वेष अच्छी तरह से जानते हुए कभी नही करना चाहिए। ७॥

द्यूतादिषु तथैवान्यत कौशल तु प्रदर्शयेत।
प्रदर्श्यकौशल चास्य राजानन्तु विशेषयेत् ॥८
अन्त पुरजनाध्यक्ष वैरिदूत निराकृत।
ससर्गं न व्रजद्राजन् विना पार्थिवशासनात् ॥९
निस्नहतान्चावमान प्रयत्नेन तु गोहयेत्।
यच्च गुह्य भवद्राज्ञो न तल्लोके प्रकाशयेत ॥१०
नृपेण श्रावित यत्स्याद्वाच्यावाच्य नृपोत्तम।
नतत्सश्रावयत्लोक तथा राज्ञोऽप्रियो भवेत ॥११
आज्ञाप्यमाने वा यस्मिन समुत्थाय त्वरान्वित।
किमहकरवाणीति वाच्योराजा विजानता ॥१२
कार्यावस्था च विज्ञाय यायाग्र यथा गमत्।

सततं क्रियमाणेऽस्मिन् लाघवन्तु व्रजेद् ध्रुवम् ॥१३
राज्ञः प्रियाणि वाक्यानि चात्यर्थं पुनःपुनः।
महासुशीलस्तुभवेत्नचापि भ्रुकुटीमुखः ॥१४

उसी भाँति द्यूत (खेल) आदि में अन्य कौशल का प्रदर्शन करे और इसका कौशल प्रदर्शित करके राजा की विशेषता का प्रदर्शन करना चाहिए। हे राजन्! राजा के शासन के बिना अन्तःपुर के जनाध्यक्षों के साथ—शत्रु के दूतों के साथ और जो राजा के द्वारा निराकृत हो उनके साथ संसर्ग नहीं करना चाहिए ॥८, ९॥ स्नेह के अभाव को और अवमान को प्रयत्न के साथ गोपन करके रखना चाहिए और जो राजा का कोई भी गोपनीय विषय हो उनका भी कभी प्रकाशन नहीं करे। हे नृपोत्तम! वाच्य तथा अवाच्य नृप के द्वारा जो भी श्रावित हो उसे लोक में कभी भी श्रावित न करे। ऐसा करने से राजा का वह उसे अप्रिय हो जाया करता है। किसी भी दूसरे को आज्ञा देने पर भी शीघ्रता से स्वयं उठकर राजा से यह कहना चाहिये कि क्या मैं इस कार्य का सम्पादन करलूं—यही एक ज्ञाता पुरुष का कर्त्तव्य है ॥१०, ११, १२॥ कार्य की अवस्था को विशेष रूप से जानकर जैसा भी वह कार्य होवे उसको निरन्तर करते हुए भी लाघव निश्चय रूप से करे ॥१३। राजा के प्रिय वाक्यों को अत्यधिक और बारम्बार नहीं कहे। राजा के समक्ष में महान् सुशील ही रहना चाहिए तथा कभी भृकुटियों को चढ़ाकर न रक्खे ॥१४॥

नातिवक्ता न निर्वक्ता न च मात्सरिकस्तथा।
आत्मसम्भावितश्चैव न भवेत्तु कथञ्चन ॥१५
दुष्कृतानि नरेन्द्रस्य न तु सङ्कीर्तयेत् क्वचित्।
वस्त्रमस्त्रमलङ्कारं राज्ञा दत्तं तु धारयेत् ॥१६
औदार्येण न तद्देयमन्यस्मै भूतिमिच्छता।
तथैवात्मामन कार्यो दिवा स्वप्नो न कारयेत् ॥१७
नानिर्दिष्टे तथाद्वारे प्रविशत्तु कथञ्चन।

न च पश्येत्तु राजानमयोग्यासु च भूमिषु ॥१८
राज्ञस्तु दक्षिणे पार्श्वे वामे चोपविशेत्तदा ।
पुरस्ताच्च तथापश्चादासनं तु विगर्हितम् ॥१६
जृम्भा निष्ठीवनङ्कास कोप पर्यस्तिकाश्रयम् ।
भृकुटि वान्तमुदगारन्तत्समीपे विवर्जयेत ॥२०
स्वयं तत्र न कुर्वीत स्वगुणाख्यापनं बुध ।
स्वगुणाख्यापने युक्ता परमेव प्रयोजयेत् ॥२१

राजा के सामने न तो अत्यधिक बोलने वाला ही रहे और न बिल्कुल न बोलने वाला मौन होकर ही रहे। मत्सरता से युक्त भी होकर न रहे तथा किसी भी प्रकार से आत्म सम्भावित भी नहीं रहना चाहिए ॥८५॥ जो कुछ भी राजा के द्वारा किये हुए दुष्कृत हों उनका कभी भी कहीं पर संकीर्तन नहीं करना चाहिए। जो भी कभी दैवात् राजा के द्वारा प्राप्त वस्त्र—अस्त्र और अलङ्कार हों तो उनको धारण करके रहना चाहिए ॥१६॥ भूति के चाहने वाले को उदारता से उनको कभी दूसरे को नहीं दे डाले और वहीं पर अपना आसन रखना चाहिए तथा दिन में स्वप्न नहीं करे ॥१७॥ जो द्वार अनिर्दिष्ट हो या मार्ग हो उसमें किसी भी प्रकार से प्रवेश नहीं करना चाहिए। अयोग्य भूमियों में समवस्थित राजा को कभी नहीं देखना चाहिए। सर्वदा राजा के दक्षिण तथा वाम भाग में ही उपविष्ट होना चाहिए। राजा के आगे अथवा पीछे अपना आसन रखना गर्हित होता है ॥१८ १६॥ राजा के समीप में जब भी कभी उपस्थित होवे तो मनुष्य को चाहिए कि जंभाई—थूक का थूकना—खाँसना—पर्यस्तिका (मसनद आदि का सहारा लेकर बैठना—भृकुटि चढ़ाना—वान्ति करना—डकार लेना इन सबका वर्जन कर देवे। बुध पुरुष को राजा के समक्ष में स्वयं अपने गुणों का ख्यापन अपने मुख से नहीं करना चाहिए प्रत्युत अपने गुणों के प्रख्यापन करने के लिये दूसरों को ही प्रयोजित करना उचित ॥२०, २१॥

हृदय निर्मल कृत्वा परा भक्तिमुपाश्रित ।
अनुजीविगणैर्भाव्य नित्य राज्ञामतन्द्रितै ।।२२
शाठ्य लौल्य च पैशून्य नास्तिक्य क्षुद्रता तथा ।
चापल्यञ्च परित्याज्य नित्य राज्ञोऽनुजीविभि ।।२३
श्रुतिविद्यासुशीलैश्च सयोज्यात्मानमात्मना ।
राजसेवान्तत कुर्याद भूतयेभूतिवर्द्धनीम् ।।२४
नमस्कार्या सदा चास्य पुत्रवल्लभमन्त्रिण ।
स चवैश्चास्यविश्वासोनतुकार्य कथञ्चन ।।२५
अपृष्टश्चास्य न ब्रयात् काम ब्रूयात्तथा यदि ।
हित तथ्यञ्च वचनहितै सहसुनिश्चितम् ।।२६
चित्तञ्चैवास्य विज्ञेय नित्यमेवानुजीविना ।
भर्त्तराराधनकुर्याच्चित्तज्ञोमानव सुखम् ।।२७
रागापरागौ चैवास्य विज्ञेयौ भूतिमिच्छता ।
त्यजेद्विरक्तो नृपती रक्तवृत्तिन्तु कारयेत् ।।२८
विरक्त कारयेन्नाश विपक्षाभ्युदय तथा ।
आशावर्द्धनक कृत्वा फलनाश करोति च ।।२६
अकोपोऽपि सकोपाभ प्रसन्नोऽपि च निष्फल ।
वाक्य च समद वक्ति वृत्तिच्छेद करोति वै ।।३०

जो राजाओ के अनुजीवी गण हो उनका अपना हृदय निर्मल करके पराभक्ति का उपाश्रय करते हुए नित्य ही अनन्द्रित रहना चाहिए। राजा के अनुजीवियो को शठता–लौल्य–पैशून्य–नास्तिकता–क्षुद्रता–चापल्य—इन दोनो का सर्वदा परित्याग कर देना चाहिए ।।२२, २३।। श्रुति–विद्या और सुशीलता गुणा वाले पुरुषो को आत्मा के द्वारा अपनी आत्मा को सयोजित करके अन्तत वैभव की प्राप्ति के लिए भूति के वर्धन करने वाली राजा की सेवा करनी चाहिए। राजा के पुत्र–वल्लभ व मन्त्रियोंको सदा नमस्कार करना उचित है। सचिवों के द्वारा इसका किसी प्रकार से

भी विश्वास नहीं करना चाहिए ॥-४, ५॥ बिना कुछ पूछे हुए इसस भाषण करे। यदि इच्छा वाने तो हितो व सहित अति सुनिश्चित हित और तथ्य वचन बोलना चाहिये ॥ ६॥ जा राजा के अनुजीवी हो उनको नित्य ही इसके चित्त की वृत्ति को जानते रहना चाहिए। चित्त की वृत्ति का ज्ञान रखने वाले मानव को सुख पूर्वक स्वामी का समाराधन करना चाहिए। विभूति के प्राप्त करने की इच्छा वाले पुरुष को इस राजा के राग एव अपराग को अच्छी तरह से जान लेना अत्य त आवश्यक है। इनको जान कर फिर त्याग करे। विरक्त नही रहे। नपति रक्त वृत्ति करावे। विरक्त नाश कराता है और विपक्ष का अभ्युदम कराता है। आशा की वृद्धि करके फल का नाश किया करता है। बिना काम वाला भी क्रोध से युक्त के समान होता है। प्रस न होता हुआ भी निष्फल है तथा मद से युक्त वाक्य बोलता है और वृत्ति का छेदन कर देता है। ॥२८-३०॥

प्रदेशवाक्यमुदितो न सम्भावयतेऽ यथा।
आराधनासु सर्वासु सुप्तवच्च विचेष्टते ॥३१
कथासु दोष क्षिपति वाक्यभङ्ग करोति च।
लक्ष्यते विमुखश्चव गुणसङ्कीतनेऽपि च ॥३२
दृष्टिंक्षिपति चान्यत्र क्रियमाणे च कर्म णि।
विरक्तलक्षण चतत् शृणु रक्तस्य लक्षणम् ॥३३
दृष्ट्वा प्रस नो भवति वाक्य गृह्णाति चादरात्।
कुशलादिपरिप्रश्न सप्रयच्छति चासनम् ॥३४
विविक्तदर्शने चास्य रहस्येन न शङ्कते।
जायते हृष्टवदन श्रुत्वा तस्य तु तत्कथाम् ॥३५
अप्रियाण्यपि वाक्यानि तदुक्तान्यभिन दते।
उपायनञ्च गृह्णाति स्तोकमप्यादरात्तथा ॥३६

कथान्तरेषु स्मरति प्रहृष्टवदनस्तथा ।
इति रक्तस्य कर्त्तव्या सेवा रविकुलोद्वह ! ॥३७
मित्र न चापत्सु तथा च भृत्या भजन्ति ये निर्गुणमप्रमेयम् ।
विभुं विशेषेण च ते व्रजन्ति सुरेन्द्रधामामरवृन्दजुष्टम् ॥३८

उदित हुआ प्रदेश वाक्य को अन्यथा सम्भावित नहीं होता है और सब आराधनाओं में सुप्त की भाँति विचेष्टित किया करता है। कथाओं में दोषों का क्षेप किया करता है और वाक्य का भङ्ग करता है। गुणों के सङ्कीर्त्तन करने पर भी विमुख के समान दिखलाई देता है। कर्मों के करने पर भी अन्यत्र दृष्टि डालना है—ये ही एक विरक्त पुरुष के लक्षण हुआ करते हैं। अब जो अनुरक्त होता है उसके लक्षणों का भी श्रवण करलो। देखकर परम प्रसन्न अनुरक्त हुआ करता है और जो भी वाक्य कहा जाता है उसे बड़े ही आदर से ग्रहण करता है। कुशल क्षेम का प्रश्न आदि करता है और उपविष्ट होने के लिये आसन दिया करता है विविक्त दर्शन में और इसके एकान्त में इसकी शङ्का नहीं करता है। उसकी उस कथा को श्रवण करके प्रसन्न मुख हो जाया करता है ॥ ३१-३५ ॥ उसके द्वारा कहे हुए अप्रिय वाक्यों को भी अभिनन्दित किया करता है तथा थोड़े से भी उपायन को बड़े आदर से ग्रहण करता है। अन्य कथाओं में प्रहृष्ट मुख वाला होकर स्मरण करता है। हे रविकुलोद्वह ! इस प्रकार के अनुरक्त की सेवा करनी चाहिए। आपत्ति के समयों में मित्र को उस प्रकार से नहीं जिस तरह भृत्यगण हैं वे अप्रमेय और निर्गुण की सेवा करते हैं। वे भृत्य देववृन्दों के द्वारा सेवित सुरेन्द्र के धाम को तथा विशेष रूप से विभु को प्राप्त किया करते हैं ॥ ३६। ३७। ३८ ॥

९५—राजकृत्य वर्णन (२)

राजा सहायसंयुक्त प्रभूतयवसेन्धनम् ।
रम्यमानतसामन्त मध्यमन्देशमावसेत् ॥१
वैश्यशूद्रजनप्रायमनाहार्यं तथापरैः ।
किञ्चिद्ब्राह्मणसंयुक्तं बहुकर्मकरन्तथा ॥२
अदैवमातृकं रम्यनुरक्तजनान्वितम् ।
करैरापीडितञ्चापि बहुपुष्पफलं तथा ॥३
अगम्यं परचक्राणां तद्वासगृहमापदि ।
समदुःखसुखं राज्ञः सततं प्रियमास्थितम् ॥४
सरीसृपविहीनञ्च व्याघ्रतस्करवर्जितम् ।
एवंविधं यथालाभं राजा विषयमावसेत् ॥५
तत्र दुर्गं नृपः कुर्यात् षण्णामेकतमं बुधः ।
धनुर्दुर्गं महीदुर्गं नरदुर्गं तथैव च ॥६
वार्क्षं चैवाम्बुदुर्गं च गिरिदुर्गं च पार्थिव ! ।
सर्वेषामेव दुर्गाणां गिरिदुर्गं प्रशस्यते ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—राजा को अपने सहायकों से समन्वित होकर प्रभूत यवस और इन्धन वाले—रम्य एवं आनत सामन्तों वाले मध्यम देश में निवास करना चाहिए ॥ १ ॥ वह स्थल ऐसा होना चाहिए जिसमें राजा का निवास हो वैश्य और शूद्रजन बहुतायत से रहते हों एवं दूसरों के द्वारा जो आहार्य न हो सके। राजा का निवास स्थल कुछ ब्राह्मणों से भी युक्त तथा बहुत कर्मों के करने वाला होवे ॥ २ ॥ अदैव मातृक—रम्य—अनुरञ्जित जनों से युक्त—करों से आपीडित तथा बहुत पुष्प एवं फलों वाला—पर (शत्रु) के चक्रों की अगम्य ऐसा आपत्ति काल में वास गृह होना चाहिए। सुख और दुःख में सम—निरन्तर राजा का प्रिय—सरीसृपों से विहीन—व्याघ्र और तस्करों से

के अग्रभाग मे परम सुदृढ देव का आलय होना चाहिए। दूसरे वीथी के अग्रभाग मे राजा के रहने का वेश्म गृह निर्मित किया जाना चाहिए। तीसरी वीथी के अग्रभाग मे धर्म का अधिकरण करना चाहिये और चतुर्थ वीथी के अग्रभाग मे गोपुर विरचित करे। इस प्रकार से उस पुर को चौकोर—आयत और वृत्त कराना चाहिए। मुक्तिहीन—त्रिकोण—यवमध्य अथवा चौकोर और आयत पद्मावृत्त पुर की रचना करावे। नदी के तीर पर निवास करते हुए अर्ध चन्द्र की प्रशंसा किया करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रयत्नपूर्वक विशेष ज्ञाता को नहीं करना चाहिए। ॥८-१४॥

राज्ञा कोशगृहं कार्यं दक्षिणे राजवेश्मनः ।
तस्यापि दक्षिणे भागे गजस्थानं विधीयते ॥१५
गजानां प्राङ्मुखी शाला कर्तव्या वाप्युदङ्मुखी ।
आग्नेये च तथा भागे आयुधागारमुच्यते ॥१६
महानसश्च धर्मज्ञ ! कर्मशालास्तथापरा ।
गृहं पुरोधसः कार्यं वामतो राजवेश्मनः ॥१७
मन्त्रिवेदविदाञ्चैव चिकित्साकर्त्तुरेव च ।
तत्रैव च तथा भागे कोष्ठागारं विधीयते ॥१८
गवां स्थानं तथैवात्र तुरगाणां तथैव च ।
उत्तराभिमुखा श्रेणी तुरगाणां विधीयते ॥१९
दक्षिणाभिमुखा वाथ परिशिष्टास्तु गर्हिता ।
तुरगास्तेतथाधार्या प्रदीपैः सार्वरात्रिकैः ॥२०
कुक्कुटान् वानरांश्चैव मर्कटांश्च विशेषतः ।
धारयेदश्वशालासु सवत्सां धेनुमेव च ॥२१

राजा के निवास गृह के दक्षिण भाग में राजा को अपना कोषगृह बनाना चाहिए। उसके भी दक्षिण भाग में गजों के रहने का स्थान निर्मित करावे ॥ १५ ॥ गजशाला का मुख पूर्व अथवा उत्तर दिशा की

ओर करवाना चाहिए। आग्नेय भाग में आयुधों का आगार बनाना अभीष्ट होता है। हे धर्म्मज्ञ ! महानस (रसोई घर) दूसरी कर्मशालाएँ और पुरोहित का गृह ये सब राजा के वेश्म के वाम भाग म निर्मित करावे। वहीं पर उसी भाग मे मन्त्री—वेदवेत्ता और चिकित्सा करने वाले का गृह तथा कोष्ठागार भी निर्मित कराने चाहिये ॥१६। १७। १८॥ यहीं पर गौओं का स्थान—तुरङ्गों का स्थान करावे। तुरङ्गों की जो श्रेणी है वह उत्तर की ओर मुख वाली होनी चाहिये; अथवा दक्षिणाभिमुख हो। परिशिष्ट सभी गहित कही गयी हैं। वे तुरग सम्पूर्ण रात्रि मे जलने वाले प्रदीपों के साथ रखने चाहिए। उन अश्वशालाओं में कुक्कुटों—वानरों—मर्कटों और विशेष रूप से वत्स क सहित धेनु को भी रखना चाहिए ॥ १९, २०, २१ ॥

अजाश्च धार्या यत्नेन तुरगाणा हितषिणा।
गोगजाश्वादिशालासु तत्पुरोषस्य निर्गमः ॥२२
अस्तगते न कर्तव्यो देवदेवे दिवाकरे।
तत्र तत्र यथास्थान राजाविज्ञाय सारथीन् ॥२३
दाद्यादावसथस्थान सर्वपामनुपूवशः।
योधाना शिल्पिनाञ्चैव सर्वपामविशेषत ॥२४
दद्यादावसथान् दुर्गे कालमन्त्रविदा शुभान्।
गोवैद्यानश्ववैद्याश्च गजवद्यास्तथैवच ।२५
आहरेत भृश राजा दुर्गे हि प्रबला रुजः।
कुशीलवाना विप्राणा दुर्गे स्थान विधीयते ॥२६
न बहूनामतो दुर्गे विनाशार्थं तथा भवेत्।
दुर्गे च तत्र कर्तव्या नानाप्रहरणान्विताः ॥२७
सहस्रघातिनो राजस्तैस्तु रक्षा विधीयते।
दुर्गे द्वाराणि गुप्तानि कार्याण्यपि च भूभुजा ॥२८

अश्वों के हित चाहने वाले को यत्नपूर्वक अजाओं को भी वहाँ

पर रखना आवश्यक होता है। गौ—गज और अश्व आदि की शालाओं में उनके पुरीष (मल) का निर्गम (निकालना) देवों के देव भगवान् दिवाकर के अस्त हो जाने पर नहीं करना चाहिए। यहाँ-वहाँ पर स्थानों के अनुसार राजा को विशेष रूप से समझ कर सारथियों की नियुक्ति करे तथा उन सबके प्रानुपूर्वश आवसथ (रहने का) स्थान भी देवे। योधाओं को तथा शिल्पियों को सबके साधारण रूप से और काल मन्त्र वेत्ताओं को परम शुभ आवसथ दुर्ग मे देवे। राजा को चाहिए कि वह गौओं के वैद्य—अश्वों के वैद्य और गजों की चिकित्सा करने वाले लोगों को अच्छी तरह से अधिक सख्या मे लाकर रक्खे क्योंकि दुर्ग मे बीमारियाँ भी बहुत प्रबल हुआ करती हैं। कुशीलव विप्रों का दुर्ग मे स्थान किया जाता है ॥ २०, २३ २४. २५, २६ ॥ दुर्ग मे कार्य के बिना फालतू बहुतों को उस प्रकार से स्थान नहीं देवे। हे राजन्! दुर्ग मे अनेक प्रकार के प्रहरणों (शस्त्रों) से समन्वित सहस्र घातियों को नियुक्त करना चाहिए क्योंकि उनके द्वारा रक्षा की जाया करती है। राजा के द्वारा अपने दुर्ग म गुप्त द्वार भी निर्मित करा कर रखने चाहिए ॥ २७, २८ ॥

सञ्चयश्चात्र सर्वेषामायुधाना प्रशस्यते।
धनुषा क्षेपणीयानान्तोमराणा च पार्थिव. ॥२९
शराणामथ खड्गाना कवचाना तथैव च।
लगुडाना गुडानाश्च हुडाना परिघ सह ॥३०
अश्मनाञ्च प्रभताना मुद्गराणा तथैव च।

सर्वेषां शिल्पिभाण्डानां सञ्चयश्चात्र चेष्यते ।
वादित्राणाञ्च सर्वेषामौषधीनान्तथैव च ॥३४
यवसानां प्रभूतानामिन्धनस्य च सञ्चयः ।
गुडस्य सर्वतैलानां गोरसानान्तथैव च ॥३५

यहाँ पर दुर्ग में सभी आयुधों का संग्रह रखना परम प्रशस्त होता है। पार्थिव को धनुषों का—क्षेपणीयों का और तोमरों का सञ्चय रखना आवश्यक है। शरों का—कवचों का—खड्गों का—लगुड—गुडान—हुड और परिघों का भी संग्रह करे। बहुत तादाद में पाषाणों का—मुद्गरों का—त्रिशूलों का—पट्टिशों का और हे पार्थिव कुठारों का भी संग्रह करना चाहिए ॥ २६, ३०, ३१ ॥ नरोत्तम का प्रास—मसूल—शक्ति—परश्वध—चक्र—चर्म के सहित वर्मों का भी वहाँ दुर्ग में संग्रह होना उचित होता है। कुद्दाल—क्षुर—वत्र—पीटक—तुष—दात्र और अङ्गारों का भी सञ्चय करे। सभी प्रकार के शिल्पियों के भाण्डों का सञ्चय भी दुर्ग में अभीष्ट होता है। सब तरह के वादित्र और सभी ओषधियाँ तथा प्रभूत यवस और इंधन का सञ्चय वहाँ रक्खे। गुड, सभी तरह के तैल और गोरसों का संग्रह दुर्ग में करना आवश्यक है॥ ३२।३३ ३४। ३५ ॥

वसानामथ मज्जानां स्नायूनामस्थिभिः सह ।
गोचर्मपटहानाञ्च यवगोधूमयोरपि ॥३६
तथैवाभ्रटानाञ्च यवगोधूमयोरपि ।
रत्नानां सर्ववस्त्राणां लोहानामप्यशेषतः ।३७
कलायमुद्गमाषाणाञ्चणकानान्तिलैः सह ।
तथा च सर्वशस्यानां पांशुगोमययोरपि ॥३८
शणमर्जरसं भूर्जं जतुलाक्षा च टङ्कणम् ।
राजा सञ्चिनुयाद्दुर्गे यच्चान्यदपि किञ्चन ॥३९
कुम्भाश्चाशीविषा कार्या व्यालसिंहादयस्तथा ।

मृगाश्च पक्षिणश्चैव रक्ष्यास्ते च परस्परम् ॥४०
स्थानानि च विरुद्धाना सुगुप्तानि पृथक् पृथक् ।
कर्तव्यानि महाभाग ! यत्नेन पृथिवीक्षिता ॥४१
उक्तानि चाप्यनुक्तानि राजद्रव्याण्यशेषतः ।
सुगुप्तानि पुरे कुर्याज्जनाना हितकाम्यया ॥४२

राजा का परम कर्तव्य है कि वह वसा—मन्त्र—अस्थियो के साथ स्नायु—गोचर्म—पटह—सभी प्रकार के धान्य—अम्बर—यव—गोधूम (गेहूँ)—रत्न—सभी वस्त्र—सम्पूर्ण प्रकार के लोहे—कलाप-मुद्ग—माष (उर्द)—तिल—चना—सभी तरह के शस्य—पासु—गोमय-शण-सर्जरस—भूर्ज-जतु—लाक्षा—टङ्कण (सुहागा) और अन्य भी जो कुछ हो इन सबका सञ्चय दुर्ग मे राजा को करना ही चाहिए। आशीविषो के द्वारा कुम्भो के करे तथा व्याल—सिंह आदि मृग और पक्षिगण इन सबकी परस्पर मे रक्षा करनी चाहिये ॥३६।३७।३८।३९।४०॥ आपस मे जो भी जीव विरोध रखने वाले हैं उनका अलग २ स्थान निर्मित करावे और अच्छी तरह उन्हे गुप्त रक्खे। हे महाभाग ! राजा को यत्न के साथ यह सभी कुछ करना चाहिए। जो बता दिये गये हैं और जो नही भी कहे गये हैं उन सम्पूर्ण राजद्रव्यो को पुर मे सुगुप्त जनता के हित की कामना से रखना चाहिए ॥ ४१। ४२ ॥

जीवकर्षभकाकोलमामलक्याटरूपकान् ।
शालपर्णी पृश्निपर्णी मुद्गपर्णी तथैव च ॥४३
माषपर्णी च मदद्वैसारिवेद्वेबलात्रयम् ।
वारा श्वसन्ती वृष्या च बृहती कण्टकारिका ॥४४
शृङ्गी शृङ्गाटकी द्रोणी वर्षाभूदभरेणुका ।
मधुपर्णी विदार्यौ द्वे महाक्षीरा महातपाः ॥४५
धन्वनः सहदेवाह्वा कटुकैरण्डक विषः ।
पर्णी शताह्वा मृद्वीका फल्गु खर्जरयष्टिकाः ॥४६

एवमादीनि चान्यानि विज्ञेयो मधुरोगणः ।
राजा सञ्चिनुयात्सर्वं पुरे निरवशेषतः ॥५४
दाडिमाम्रातकौ चैव तिन्तिड़ीकाम्लवेतसम् ।
भव्यकर्कन्धुलकुचकरमर्द्दकरूपकम् ॥५५
बीजपूरककण्डूरे मालतीराजबन्धुकम् ।
कोलकद्वयपर्णानि द्वयोराम्नातयोरपि ॥५६

राज सर्षप—धान्याक—मृष्यप्रोक्त—उत्कटा—काल शाक—पद्म बीज—गोवल्ली—मधुवल्लिका—शीतपाकी—कुवेराक्षी—काक जिह्वा—उरु पुष्पिका—पर्वत—त्रपुष—गुञ्जा तक—पुनर्नवा दोनों—कसेरु—कारु काश्मीरी—बल्या—शालूक—केसर—सब तुष धान्य—क्षीर—क्षौद्र—तक्र—तैल—बसा—मज्जा—घृत—नीप—अरिष्टक—क्षोड़ वाताय—सोमवाणक—इस प्रकार के धान्य मधुरोगण—इस सभी का पूर्ण रूप से सञ्चय राजा को करना आवश्यक है ॥ ५०, ५१, ५२, ५३, ५४ ॥ दाड़िम—आम्रातक—तिन्तिडीक—आम्लवेतस—भव्य कर्कन्धु—लकुच—करमर्द्द—करूपक—बीजपूरक—कण्डुर—मालती—राजवन्धुक—दोनो कोलक पर्ण—दोनो आम्नात ॥ ५५, ५६ ॥

पारावत नागरकं प्राचानोलकमेव च ।
कपित्थामलकं चुक्रफलन्दन्तशठस्य च ॥५७
जाम्ववं नवनीतञ्च सौवीरकतुषोदके ।
सुरासवञ्च मद्यानि मण्डतक्रदधीनि च ॥५८
शुक्लानि चैव सर्वाणि ज्ञेयमम्लगण द्विज ।
एवमादीनि चान्यानि राजा सञ्चिनुयात्पुरे ॥५९
सैन्धोद्भिदपाठेऽपावयसामुद्रलोमकम् ।
कुप्यसौवर्चलविड़ वालकेयं यवाह्वकम् ॥६०
औवं क्षारं कालभस्म विज्ञेयो लवणोगणः ।
एवमादीनि चान्यानि राजा सञ्चिनुयात्पुरे ॥६१

पिप्पली पिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् ।
कुवेरक मरिचकं शिग्रुभल्लातसर्षपाः ॥६२
कुष्ठाजमोदाकिणिहीहिङ्गुमूलकधान्यकम् ।
कारवीकुञ्जिका याज्या सुमुखा कालमालिका ॥६३

पारावत-नागरक-प्राचीनोलक—कपित्थ—आमलक—चुक्रफल-दन्तशठ—जाम्बव—नवनीत—सौवीरक—रुपोदक-सुरा—आसव—मद्य-मण्ड—तक्र—दधि—सब शुक्ल पदार्थ—हे द्विज ! और अम्लगण इस प्रकार के सभी पदार्थों का सञ्चय राजा को अपने पुर में करना चाहिए। सैंधोद्भिद—पाठेय—पावय—सामुद्र—लोमक—कुप्य—सौवर्चल-विड-वालकेय—यवाह्वक—औवं—क्षार—कालभस्म लवण गण- इस भाँति के पदार्थों का पुर में संग्रह राजा को करना आवश्यक है। पिप्पली—पिप्पली मूल—चव्य—चित्रक—नागर-कुवेरक-मरिच-शिग्रु-भल्लातक-सर्षप—कुष्ठ—अजमोद—आकिणि—हिङ्गु—मूलक —धान्यक-कारवी-कुञ्जिका—याज्या—सुमुखा—काल मालिका—॥५७-६ ॥

फणिज्जकोथलशुन भूस्तृणा सुरसन्तथा ।
कायस्था च वयस्था च हरिताल मनःशिला ॥६४
अमृता च रुदन्ती च राहिष कुङ्कुमन्तथा ।
जया एरण्डकाण्डीर सल्लकीहञ्जिका तथा ॥६५
सर्वपित्तानि मूत्राणि प्रायोहरितकानि च ।
फलानि चैव हि तथा सूक्ष्मैला हिङ्गुपत्रिका ॥६६
एवमादीनि चान्यानि गणः कटुकसंज्ञितः ।
राजा सञ्चिनुयाद्दुर्गे प्रयत्नेन नृपोत्तम ! ॥६७
मुस्तञ्चन्दनह्रीबेरकृतमालकदारवः ।
दारुद्रानक्तदाशारनक्तमालकदम्बकम् ॥ ६८
दूर्वा पटोलकटुका दीर्घत्वक् पत्रकं वचा ।
किरातत्तिक्तभूतुम्बी विषा चातिविषा तथा ॥६९

सालीसपत्रतगरं सप्तपर्णविकङ्कताः ।
काकोदुम्बरिका दिव्या तथा चैव सुरोद्भवा ॥७०

हरिफशिञ्ज, कोथ, लशुन, भूस्तण, सुरस, कायस्थ, वयस्थ, हरिताल, मैनशिल, अमृता, रुदन्ती, रोहिप, कुंकुम, जया ऐरण्ड, काण्डीर, सल्लकी, हञ्जिका, सभी पित्ता, मूत्र, प्रायोह्वरितक, फल, सूक्ष्मएला, हिंगुपत्रिका इस प्रकार के सब धान्य और कटुक संज्ञा वाला गण। हे नृपोत्तम! राजा को अपने दुर्ग में सबका सञ्चय करना चाहिए। मुस्त, चन्दन, ह्रीबेर, कृतमालक, दारु, दरिद्र, अनलद, उशीर, नक्तमाल, कदम्बक, दूर्वा, पटोल, कटुका, दीर्घत्वक्, पत्रक, वचा, किरात, तिक्त, भूतुम्बी, विषा, अतिविषा, तालीस पत्र, तगर सप्तपर्ण, विकङ्कता, काकोदुम्बरिका, दिव्या, सुरोद्भवा॥ ६४-७०॥

षड्ग्रन्था रोहिणी मासी पर्पटश्चाथ दन्तिका ।
रसाञ्जनं भृङ्गराजं पतङ्गी परिपेलवम् ॥७१
दुःस्पर्शा गुरुणी कामा श्यामाकं गन्धनाकुली ।
रूपपर्णी व्याघ्रनख मञ्जिष्ठा चतुरङ्गुला ॥७२
रम्भा चैवाङ्कुरास्फोता तालास्फोता हरेणुका ।
वेत्राग्र वेतसस्तुम्बी विषाणो लोध्रपुष्पिणी ॥७३
मालतीरक्तकृष्णाख्य वृश्चिका जीविता तथा ।
पर्णिका च गुडूची च सगणस्तिक्तसंज्ञकः ॥७४
एवमादीनि धान्यानि राजा सञ्चिनुयात्पुरे ।
अभयामलके चोभे तथैव च बिभीतकम् ॥७५
प्रियङ्गुधातकी पुष्प मोचाख्या चार्जुनासनाः ।
अनन्तास्त्रीतुवरिका स्योनाकं कट्फलन्तथा ॥७६
भूर्जपत्रं शिलापत्रं पाटलापत्रलोमकम् ।
समङ्गात्रिवृतामूलकार्पासगैरिकाञ्जनम् ॥७७

षड्ग्रन्था, रोहिणी, मासी पर्पट, दन्तिका, रसाञ्जन, भृङ्गराज,

पतङ्गी, परिपेलव, दुस्पर्शा, गुरूणी, कामा, श्यामाक, गन्धनाकुली, स्व-पर्णी व्याघ्रनख, मञ्जिष्ठा, चतुरंगुला, रम्भा, अकुगास्फोता, ताला स्फोता, हरेणुका, वेत्र ग्र, वैतस, तुम्बी, विषाणी, लोध्रपुष्पिणी, मालती, कन्कृष्णा, वृश्चिका, जीविना, पर्णिका, गुडूची, सरणा, तिक्त संज्ञावाला,इसतरह के सभी पदार्थों का सञ्चय राजा को अपने पुरमे करना चाहिए। अभया, आमलक, विभीतक, प्रियगु, धातकी, पुष्प मोच, अर्जुनासन, अनन्ता स्त्री, तुवरिका स्यनाना, कटुफल, भूर्जपत्र, शिलापत्र, पाटला पत्र, लोमक, समङ्गा, त्रिवृतामूल कार्पास, गैरिक, अञ्जन ॥७१-७७॥

विद्रुमं स मधूच्छिष्टकुम्भिकाकुमुदोत्पलम् ।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थकिंशुका. शिशुपा शमी ॥७८
प्रियालपीलुकासारिशिरीषा. पद्मकस्तथा ।
बिल्वोऽग्निमन्थ· प्लक्षञ्च श्यामाकश्च वको घनम् ॥७९
राजादन करीरञ्च धान्यक प्रियकस्तथा ।
कङ्कोलाशोकवदरा: कदम्बखदिरद्वयम् ॥८०
एषा पत्राणि साराणिमूलानि कुसुमानिच ।
एवमादीनिचान्या निक्षायाख्यामतोरसः ॥८१
प्रयत्नेन नृपश्रेष्ठ । राजा सञ्चिनुयात्पुरे ।
कीटाश्च मारणे याग्या व्यङ्गताया तथैवच ॥८२
वातधूमाम्च मार्गाणा दूपणानि तथैव च ।
धार्याणि पार्थिवैर्दुर्गं तानि वदामि पार्थिव ॥८३
विषाणा धारण कार्यं प्रयत्नेन महीभुजा ।
विचित्राश्चाङ्गदा धार्या विषस्य शमनास्तथा ॥८४

करीर–धा यक–प्रिरक–ककोल—अशोक—वदर–कदम्ब –खदिर—इनके पत्र–सार–मूल और कुसुम इस प्रकार के तथा अ य आदि कषाय नाम वाला रस माना गया है। हे नृपो मे परमश्रेष्ठ ! राजा को चाहिए इन सबका प्रयत्नपूवक अपने पुर मे सञ्चय करे। व्यञ्जता मे मारण मे योग्य कीट—मार्गों के वातधूम तथा दूषण राजाओ को दुर्ग मे रखने चाहिए हे पार्थिव ! उनको मैं बतलाऊँगा। महीभुज को प्रयत्न पूवक विषों को धारण करना चाहिए। विचित्र अङ्गद तथा विष के शमन करने वाले भी रखने चाहिए ॥७८–८४॥

रक्षोभूतपिशाचघ्ना पापघ्ना पुष्टिवर्धना ।
कलाविदश्च पुरुषा पुरे धार्या प्रयत्नत ॥ ८५
भीतान् प्रमत्तान् कुपितास्तथैव च विमानितान् ।
कुभृत्यान् पापशीलाश्च न राजा वासयेत्पुर ॥८६
यन्त्रायुधाट्टालचयोपपन्न समग्रधान्यौषधिसम्प्रयुक्तम् ।
वणिग्जनश्च वृतमावसेत दुर्गं सुगुप्त नृपति सदव ॥८७

राजा क द्वारा अपने पुर मे राक्षस, भूत और पिशाचो के हनन करने वाले–पापों का विनाश करने वाले—पुष्टि के बढ़ाने वाले कलाओं क वेत्ता पुरुष प्रयत्न पूवक रखने चाहिए। ॥ ८५ ॥ जो पुरुष भीत—प्रमत्त—कुपित—विमानित—पापशील और कुभृत्यो को अपने पुर में कभी नही बसाना चाहिए ॥ ८६ ॥ कनक के मुद—अट्ट लिकाओ क समूह म उत्पन्न तथा सम्पूण धा य एव ओषधियो स समुत–वणिग्जनो के द्वारा समावृत और भलीभाँति रक्षित दुग म ही राजा को सदैव निवास करना चाहिए ॥८७॥

६६—राजधर्म वर्णन (१)

रक्षोघ्नानि विषघ्नानि यानि धार्याणि भूभुजा ।
अगदानि समाचक्ष्व तानि धर्मभृताम्वर ! ॥१
बिल्वाटकी यवक्षार पाटलावाह्लिकोषणाः ।
श्रीपर्णी शल्लकीयुक्तोनिक्वाथ प्रोक्षणपरम् ॥२
सविष प्रोक्षित तेन सद्यो भवति निर्विषम् ।
यवस-धवपानीयवस्त्रशय्यासनोदकम् ॥३
कवचाभरण छत्र बालव्यजनवेश्मनाम् ।
शेलु. पाटलातिविषा शिग्रुमूर्वा पुननवा ॥४
समङ्गावृषमूलञ्च कपित्थवृषशोणितम् ।
महादन्तशठन्तद्वत् प्रोक्षण विषनाशनम् ॥५
लाक्षाप्रियगु मञ्जिष्ठा सममेला हरेणुका
यष्ट्याह्वा मधुरा चैव बभ्रुपित्तेनकल्पिताः ॥६
निखनेद्गोविषाणस्थ सप्तरात्र महीतले ।
तत. कृत्वा मणि हेम्ना बद्ध हस्तेन धारयेत् ॥७

महर्षि मनु ने कहा—हे धर्मधारियो मे परमश्रेष्ठ ! राक्षसों के हनन करने और विषो का नाश करने वाले भी राजा को धारण करने अर्थात् रखने चाहिए उन अगदो को आप बतलाइये ॥१॥ श्रीमत्स्य भगवान् ने कहा—बिल्वाटकी, यवक्षार पाटला, बाह्लि कोषणा, श्रीपर्णी और शल्लकी इनका क्वाथ सर्वश्रेष्ठ प्रोक्षण होता है। यदि कोई भी विषयुक्त हो तो उससे प्रोक्षित होकर वह तुरन्त ही निर्विष हो जाया करता है। यव, सैन्धव, पानी, वस्त्र, शय्या, आसन, उदक, कवचाभरण, बाल व्यंजन, वेश्म, इनके विष का नाश शेलु, पाटल, अतिविषा, शिग्रु, मूर्वा, पुनर्नवा, समङ्गा, वृषमूल, कपित्थ, वृषशोणित और महादन्तशठ इन सबके उसी भाँति प्रोक्षण करने से हो जाया करता है ॥ २।३।४

। ५ ।। लाक्षा, प्रियङ्गु, मञ्जिष्ठा ये सब समान भाग और एला (इला यची), हरेणुका, यष्टि नामवाली, मधुरा बभ्रु पित्त से कल्पित कर रखे। इसके अनन्तर मणि का हेम से बद्ध करके हाथ में धारण करना चाहिए ।। ६, ७ ।।

ससृष्ट सविष तेन सद्यो भवति निर्विषम् ।
मनोह्वया शमीपत्र तुम्बिका श्वेतसर्षपा ।।८
कपित्थकुष्ठमञ्जिष्ठा पित्तेन श्लक्ष्णकल्पिता ।
शुनो गो कपिलाश्च सौम्याक्षिप्तोऽपरोगद ।।९
विषजित् परम काय मणिरत्नञ्च पूर्ववत् ।
मूषिका जतुका चापि हस्ते बद्धा विषापहा ।।१०
हरेणमामी मञ्जिष्ठा रजनी मधुकामधु ।
अक्षत्वक् सुरस लाक्षा श्वपित्त पूर्ववद्भुवि ।।११
वादित्राणि पताकाश्च पिष्टैरेतै प्रलेपिता ।
श्रुत्वा दृष्ट्वा समाघ्राय सद्योभवति निर्विष ।।१२
त्र्युषण पञ्चलवण मञ्जिष्ठा रजनीद्वयम् ।
सूक्ष्मलात्रिवृतापत्र विडङ्गानीन्द्रवारुणी ।।१३
मधुक वेतस क्षौद्र विषाणे च निधापयेत् ।
तस्मादुष्णाम्बुना भाव प्रागुक्त योजयेत्तत ।।१४
शुक्ल सर्जरसोपेतसर्षपा एलवालुकं ।।१५
सुवोगा तस्करसुगे कुसुमैरजु नस्य तु ।
धूपो वासगृहे हन्ति विष स्थावरजङ्गमम् ।।१६

इससे ससृष्ट सविष तुरन्त ही निर्विष हो जाया करता है। मनोह्वया, शमीपत्र, तुम्बिका श्वेत सर्षप कापित्थ, कुष्ठ मञ्जिष्ठा, पित्त के द्वारा श्लक्ष्ण कल्पित किये हुए हे सौम्य ! कुत्ता, गौ और कपिला के लिये अक्षिप्त यह दूसरा अगद होता है ।। ८ । ९ ।। पूर्व की भाँति मणिरत्न परम विषजित् करना चाहिए। मूषिका और जतुका भी

हाथ में बाँधने पर विष के अपहरण करने वाली होती है ॥ १० ॥ हरेणु मासी, मञ्जिष्ठा, रजनी हल्दी', मधुका, मधु, अक्षत्वक्, सुरस, लाक्षा (लाख)—इनको पूर्व की ही भाँति श्वान को पित्त लेकर पेषण करे करे और इससे वादित्रों और पताकाओं पर प्रलेप करे तो श्रवण करके—देख करके और सूँघ करके तुरन्त ही विष से रहित हो जाया करता है। ॥ ११ । १२ ॥ त्र्यूषण—पाँचों लवण—मजीठ—दोनों प्रकार की हल्दी—छोटी इलायची—त्रिवृतापत्र—विडङ्ग—इन्द्र वारुणी—मधुक—वेतस और क्षौद्र—इन सबको विषाण में निधापित करो केवल उष्ण जल से पहिले बताये हुए को योजित करना चाहिए। शुक्लमज्ज रस से युक्त—सर्षप—और एलवालुकों से समन्वित—सुवोगा—नक्कर—सुर तथा अर्जुन वृक्ष के पुष्प इनके द्वारा निर्मित धूप निवास गृह में देवे तो स्थावर और जङ्गम दोनों के विष का हनन हो जाया करता है ॥१३-१६॥

न तत्र कीटा न विषन्ददुंरा न सरीसृपाः ।
न कृत्या कर्मणाञ्चापि धूपोऽयं यत्र दह्यते ॥१७
कल्पितंश्चन्दनक्षीरपलाशद्रुमवल्कलैः ।
मूर्वैलावालुसरसानाकुलीतण्डलीयकैः ॥१८
क्वाथः सर्वोदकार्येषु काकमाचीयुता हितः ।
रोचनापत्रनेपालीकुङ्कुमैस्तिलकान् वहन् ॥१९
विषैर्न बाध्यते स्याच्च नरनारीनृपप्रियः ।
चूर्णं हरिद्रामञ्जिष्ठाकिणिहीकणनिम्बजं ॥२०
दिग्ध निर्विषतामेति गात्रं सर्वविषार्दितम् ।
शिरीषस्य फलं पत्रं पुष्पत्वङ्मूलमेव च ॥२१
गोमूत्रघृष्टो ह्यगदः सर्वकर्मकरः स्मृतः ।
एकवीर ! महौषध्यः शृणु चातः परं नृपः ! ॥२२

जिस स्थान में इस धूप को जलाया जाता है वहाँ पर कोई भी कीट नहीं रहते हैं। न कोई विष का प्रभाव ही रहता है और दर्दुर

तथा सरीसृप भी नहीं रहा करते हैं। वहाँ पर कृत्या के भी कर्म्मों की स्थिति नहीं होती है ॥ १७॥ चन्दन, क्षीर, पलाश, द्रुम वल्कल, मूर्वा, एला, वालु, सरसा, नाकुली और तण्डुलीय इनसे कल्पित क्वाथ जो कि काकमोची से युक्त हो तो वह सब उद कार्यों में हितप्रद होता है। रोचना पत्र, नेपाली और कुंकुम से युक्त तिलों को वहन करने वाला नर-नारी, नृप प्रिय कभी भी विषों से बाधित नहीं हुआ करता है। हरिद्रा, मजीठ, त्रिण ही कण और निम्बज इनसे दिग्ध गात्र जो सब विषों से अर्दित हो शीघ्र ही निर्विषता को प्राप्त हो जाता है। शिरीष वृक्ष के फल पत्र, पुष्प, त्वचा और मूल इन पाँचों अङ्गों को गोमूत्र के साथ पीस डाले तो यह सब काम करने वाला अगद हो जाता है—ऐसा कहा गया है। हे एक वीर ! हे नृप ! इससे भी परम महौषधियों के विषय में मुझसे आप श्रवण कीजिए ॥१८-२२॥

बन्ध्या कर्कोटकी राजन् ! विष्णुक्रान्ता तथोत्कटा ।
शतमूली सितानन्दा बला मोचा पटोलिका ॥२३
सोमापिण्डा निशा चैव तथा दग्धरुहा च या ।
स्थले कमलिनी या च विशाली शङ्खमूलिका ॥२४
चण्डाली हस्तिमगधा गोऽजापर्णी करम्भिका ।
रक्ता चैव महारक्ता तथा बर्हिशिखा च या ॥२५
कोशातकी नक्तमाल प्रियालञ्च सुलोचनी ।
वारुणी वसुगन्धा च तथा वै गन्धनाकुली ॥२६
ईश्वरी शिवगन्धा च श्यामला वंशनालिका ।
जातुकाली महाश्वेता श्वेता च मधुयष्टिका ॥२७
वज्रकः पारिभद्रश्च तथा वै सिन्धुवारकाः ।
जीवानन्दा वसुच्छिद्रा नतनागरकण्टका ॥२८

हे राजन् ! बन्ध्या, कर्कोटकी, विष्णुक्रान्ता, उत्कटा, शतमूली, सितानन्दा, बला, मोचा, पटोलिका, सोमापिण्डा, निशा, दग्धरुहा, स्थल

कमलिनी, विशाली, मख मूलिका, चण्डाली,[1] हस्ति मगधा, गोऽजापर्णा, करम्भिका, रक्ता, महारक्ता, बर्हिशिखा, कोशातकी, नक्तमाल, प्रियाल, सुलोचनी, वारुणी, वसुगन्धा, गन्धनाकुली, ईश्वरी, शिवगन्धा, श्यामला, वशनालिका, जतुकाली, महाश्वेता, श्वेता, मधुयष्टिका, वज्रक, पारिभद्र, सिन्धुवारक, जीवानन्दा, वसुच्छिद्रा, नत नागर कण्टका ॥ २३, २४, २५ २६, २७, २८ ॥

नालश्च जाली जातीच तथाच वटपत्रिका ।
कार्तस्वर महानीला कुन्दुरुहं सपादिका ॥२९
मण्डूकपर्णी वाराही द्वे तथा तण्डुलीयके ।
सर्पाक्षी लवली ब्राह्मी विश्वरूपासुखाकरा ॥३०
रुजापहो वृद्धिकरी तथाचैव तु शल्यदा ।
पत्रिका रोहिणी चैव रक्तमाला महोषधी ॥३१
तथामलकवन्दाक श्यामचित्रफला च या ।
काकोली क्षीरकाकोली पीलुपर्णी तथैव च ॥३२
केशिनी वृश्चिककालीच महानागा शतावरी ।
गरुडीच तथा वेगा जले कुमुदिनीतथा ॥३३
स्थले चोत्पलिनी या च महाभूमिलता च या ।
उन्मादिनीसामराजीसर्वरत्नानिपार्थिव ॥३४
विशेषान्मरकतादीनि कीटपक्षं विशेषतः ।
जीवजातादच मणयः सर्वे धार्याः प्रयत्नतः ॥३५

नाल, जाली, जाती, वट पत्रिका, कार्त स्वर, महानीला, कुन्दुरुहं, सपादिका, मण्डूक पर्णी, वृद्धिकरी, शल्यदा, पत्रिका, रोहिणी, रक्तमाला, महोषधी, आमलक, वन्दाक, श्याम चित्रफला, काकोली, क्षीर काकोली, पीलुपर्णी, केशिनी, वृश्चिकाली, वाराही दोनों—तण्डुलीयक, सर्पाक्षी, लवली, ब्राह्मी, विश्वरूपा, सुखाकरा, रुजापह, महानागा, शतावरी, गरुडी, वेगा, जल में कुमुदिनी, स्थल में उत्पलिनी, महाभूमि-

लता, उन्मादिनी सोमराजी, हे पार्थिव ! समस्त रत्न, विशेष रूप से मरकत आदि-विशेष रूप से कीटपक्ष, जीवजात और सब मणियाँ यत्नपूर्वक धारण करने चाहिए ।। २६-३५ ।।

रक्षोघ्नाश्च विषघ्नाश्च कृत्यावेतालनाशना ।
विशेषान्नरनागाश्च गोखरोष्ट्रसमुद्भवा ।।३६
सर्पतित्तिरगोमायुवस्त्र(क)मण्ठकजाश्च ये ।
सिंहव्याघ्रर्क्षमार्जारद्वीपिवानरसंभवा ॥
कपिञ्जला गजा वाजिमहिषैणभवाश्च ये ।।३७।।
इत्येवमेतैः सकलैरुपेतन्द्रव्यैश्च सर्वं स्वपुर सुरक्षितम् ।
राजा वसेतत्र गृह सुशुभ्र गुणान्वित लक्षणसम्प्रयुक्तम् ।।३८

राक्षसो के हनन वाले—विष के नाशक, कृत्या और बैताल के नाश करने वाले—विशेष रूप से नर और नाग—गोखर उष्ट्रो समुद्भव वाले—सर्प, तित्तिर, गोमायु वस्त्र और मण्डकज—सिंह, व्याघ्र ऋक्ष, मार्जार, द्वीपी और वानरों से समुत्पन्न—कपिञ्जल, गज, वाजि, महिष और एण से प्रसूत इस प्रकार से इन सबसे समुपेत तथा सब द्रव्यो के द्वारा सुरक्षित अपने पुर में राजा को निवास करना चाहिए जो कि राजा का गृह सुशुभ्र-गुणो से समन्वित और सभी सुन्दर लक्षणो से सम्प्रयुक्त होना चाहिए ।। ३६, ३७, ३८ ।।

६७—राजधर्म वर्णन (२)

राजरक्षारहस्यानि यानि दुर्गे निधापयेत् ।
कारयेद्वा महीभर्ता ब्रूहि तत्त्वानि तानि च ।।१
शिरीषोदुम्बरशमीबीजपूरं घृतप्लुतम् ।
क्षुद्योग कथितो राजन् ! मासार्द्धं तु पुरातनं ।।२

कशेरुफलमूलानि इक्षुमूलं तथा बिसम् ।
दूर्वाक्षीरघृतमण्ड: सिद्धोऽयं मासिक: पर: ॥३
नर शस्त्रहत प्राप्तो न तस्य मरण भवेत् ।
कल्मापवेणुना तत्र जनयेत्तु विभावसुम् ॥४
गृहे त्रिरपसव्यन्तु क्रियते यत्र पार्थिव ! ।
नान्योऽग्निर्ज्वलते तत्र नात्र कार्याविचारणा ॥५
कार्पासस्था भुजङ्गस्य तेन निर्मोचन भवेत् ।
सर्पनिर्वासने धूप: प्रशस्त: सतत गृहे ॥६
सामुद्रसैन्धवयवा विद्युद्दग्धा च मृत्तिका ।
तयानुलिप्तं यद्वेश्म नाग्निना दह्यते नृप ! ॥७

महर्षि मनु ने कहा—मही के भरण करने वाला अपने दुर्ग में जिन राज्य की रक्षा के रहस्यों को निधापित करे अथवा करावे आप कृपा करके उन तत्त्वों को बतलाइये ॥ १ ॥ श्रीमत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! शिरीष, उदुम्बर, शमा, बीजपूर को घृत से प्लुत करे इसको पुरातन लोगों के द्वारा क्षुद्योग कहा गया है जो मास के अर्द्ध तक होता है ॥ २ ॥ कशेरु के फल और मूल, ईख का मूल, बिस, दूर्वा, क्षीर घृत, से मण्ड सिद्ध होता है जो पर एव मासिक होता है ॥ ३ ॥ शस्त्र से हत हुए नर को प्राप्त हो जावें तो उसका मरण नहीं होता है । जहाँ पर कल्माप वेणु से विभावसु का जनम करना चाहिए । हे पार्थिव ! जहाँ पर गृह मे तीन बार अपसव्य किया जाता है । वहाँ पर अन्य कोई भी अग्नि नहीं जलती है—इस विषय मे कोई विचारण करने की आवश्यकता नहीं है । कार्पास मे स्थित हो तो उससे भुजङ्ग का निर्मोचन हो जाता है । यह धूप निरन्तर सर्पों के निर्वासन करने के कर्म मे परम प्रशस्त होता है ॥ ३, ४, ५, ६ ॥ सामुद्र सैन्धव, यव, विद्युत से दग्ध मृत्तिका, इससे जो गृह अनुलिप्त किया जावे तो हे नृप ! वह वेश्म अग्नि से कभी भी दग्ध नहीं किया जाता है ॥७॥

लता, उन्मादिनी सोमराजी हे पार्थिव ! समस्त रत्न, विशेष रूप से मर-कत आदि—विशेष रूप से कीटपक्ष, जीवजात और सब मणियाँ यत्नपूर्वक धारण करने चाहिए ॥ २६–३५ ॥

रक्षोघ्नाश्च विषघ्नाश्च कृत्यावेतालनाशना ।
विशेषान्नरनागाश्च गाखरोष्ट्रसमुद्भवा ॥३६
सर्पतित्तिरगोमायुवस्त्र(क)मण्ठकजाश्च ये ।
सिंहव्याघ्रक्षमार्जारद्वीपिवानरसम्भवा ॥
कपिञ्जला गजा वाजिमहिषणमवाश्च ये ॥३७॥
इत्येवमेतै सकलैरुपेतन्द्रव्यैश्च सर्वं स्वपुरं सुरक्षितम् ।
राजा वसेतत्र गृहं सुशुभ्रं गुणान्वितं लक्षणसम्प्रयुक्तम् ॥३८

राक्षसों के हनन वाले—विष के नाशक कृत्या और बैताल के नाश करने वाले—विशेष रूप से नर और नाग—गोखर उष्ट्र समुद्भव वाले—सर्प, तित्तिर गोमायु वस्त्र और मण्डकज—सिंह, व्याघ्र ऋक्ष, मार्जार, द्वीपी और वानरों से समुत्पन्न—कपिञ्जल, गज वाजि, महिष और एण से प्रसूत इस प्रकार से इन सबसे समुपेत तथा सब द्रव्यों के द्वारा सुरक्षित अपने पुर में राजा को निवास करना चाहिए जो कि राजा का गृह सुशुभ्र—गुणों से समन्वित और सभी सुन्दर लक्षणों से सम्प्रयुक्त होना चाहिए ॥ ३६, ३७, ३८ ॥

६७—राजधर्म वर्णन (२)

राजरक्षारहस्यानि यानि दुर्गे निधापयेत् ।
कारयेद्वा महीभर्ता ब्रूहि तत्त्वानि तानि च ॥१
शिरोपादुर्यवस्त्रमोधीजपूर पृथुप्लतम् ।
द्युसमान कथिता राजन् ! मासाद्वं सु गुरातान ॥२

छिपा लिया करता है और उसी प्रकार से लज्जा करता है एवं शीघ्रता किया करता है ॥ ११, १२ ॥ हे नृप ! भूमि पर लिखना है—गरदन को घुमाया करता है—मस्तक को खुजलाता है और अपनी आत्मा का परिलोडन किया करता है तथा हे राजन् ! इन विपरीत क्रियाओं में भी निश्चय ही शीघ्रता वाला होता है । इसी तरह के जो चिह्न होते हैं उन विपद के लक्षणों की परीक्षा करनी चाहिए ॥ १३, १४ ॥

समीपविक्षिपेद्वह्नौ तदन्न त्वरयान्वितः ।
इन्द्रायुधसवर्णन्तु रूक्षं स्फोटसमन्वितम् ॥१५
एकावर्तन्तु दुर्गन्धि भृशञ्चटचटायते ।
तद्धूमसेवनाज्जन्तोः शिरोरोगश्च जायते ॥१६
सविषेऽन्ने विलीयन्ते न च पार्थिव ! मक्षिकाः ।
निलीनाश्च विपद्यन्ते संस्पृष्टे सविषे तथा ॥१७
विरज्यति चकोरस्य दृष्टिः पार्थिवसत्तम ! ।
विकृतिञ्च स्वरो याति कोकिलस्यतथानृप ! ॥१८
गतिस्खलति हंसस्य भृङ्गराजश्च कूजति ।
क्रौञ्चो मदमथाभ्येति कृकवाकुर्विरौति च ॥१९
विक्रोशतिशुकोराजन् ! सारिकावमतेततः ।
चामीकरोऽन्यतोयातिमृत्युं कारण्डवस्तथा ॥२०
मेहते वानरो राजन् ! ग्लायते जीवजीवकः ।
हृष्टरोमा भवेद्बभ्रुः पृषतश्चैव रोदिति ॥२१

समीप में स्थित लोगों का त्वरा से समन्वित होते हुए ही उस अन्न को अग्नि में प्रक्षिप्त कर देना चाहिए । इन्द्रायुध के वर्ण के समान—रूक्ष, स्फोट से संयुत, एकावर्त्त, दुर्गन्ध से युक्त होकर अत्यन्त चट-चट ध्वनि किया करती है । उसके धूम के सेवन से जन्तु के शिर में वेदना और रोग समुत्पन्न हो जाया करता है ॥ १५, १६ ॥ हे पार्थिव ! विष से युक्त अन्न में मक्खियाँ विलीन नहीं हुआ करती हैं तथा सविष अन्न

दिवा च दुर्गे रक्ष्योऽग्निर्वाति वाते विशेषत. ।
विषाच्च रक्ष्योनृपतिस्तत्रयुक्तिनिबोधमे ॥८
क्रीडानिमित्त नृपति धारयेन्मृगपक्षिण ।
अन्न वै प्राक् परीक्षेत वह्नौ चान्यतरेषु च ॥६
वस्त्र पुष्पमलङ्कार भोजनाच्छादन तथा ।
नापरीक्षितपूर्वन्तु स्पृशेदपि महामति ॥१०
स्याच्चासौ वक्त्रसन्तप्त सोद्वेगश्च निरीक्षते ।
विषदोऽथ विष दत्त यच्च तत्र परीक्षते ॥११
स्रस्तोत्तरीयो विमना. स्तम्भकुड्यादिभिस्तथा ।
प्रच्छादयति चात्मान लज्जते त्वरते तथा ॥१२
भुव विलिखति ग्रीवा तथा चालयते नृप ! ।
कण्डूयति च मूर्द्धान परिलोड्याननन्तथा ॥१३
क्रियासु त्वरितो राजन् ! विपरीतास्वपि ध्रुवम् ।
एवमादीनि चिह्नानि विषदस्य परीक्षयेत् ॥१४

दिन के समय मे दुर्ग मे अग्नि की रक्षा करनी चाहिए। विशेष रूप से उस समय मे रक्षा करनी आवश्यक है जब वायु वहन किया करता है। खास तौर से नृपति की सुरक्षा अवश्य ही करनी चाहिए। इसमें जो युक्ति अमल में लाई जावे उसको भी तुम मुझसे समझ लो। ॥ ८ ॥ क्रीडा के निमित्त राजा को मृगो और पक्षियों को धारण करना चाहिये। सर्व प्रथम अग्नि में अन्न की परीक्षा कर लेनी अत्यावश्यक है। अन्य तर पदार्थों मे भी वस्त्र, पुष्प, अलङ्कार, भोजन तथा आच्छादन इन सबका महान् मति वाले राजा को पहिले भली भाँति परीक्षा किये बिना कभी भी स्पर्श नही करना चाहिए ॥ ६, १० ॥ यह वक्त सन्तप्त होने और उद्वेग के सहित विपत्तियों को देखता है। वहाँ पर दिये हुये विष की जो परीक्षा करता है अपने उत्तरीय वस्त्र को छोड़ देने वाला-उदास स्तम्भ कुड्य आदि से अपना आपा ढक लिया करता है अर्थात्

छिपा लिया करता है और उसी प्रकार से लज्जा करता है एवं शीघ्रता किया करता है ॥ ११, १२ ॥ हे नृप ! भूमि पर लिखता है—गरदन को घुमाया करता है—मस्तक को खुजलाता है और अपनी आत्मा का परिलोडन किया करता है तथा हे राजन् ! इन विपरीत क्रियाओं में भी निश्चय ही शीघ्रता वाला होता है । इसी तरह के जो चिह्न होते हैं उन विपद के लक्षणों की परीक्षा करनी चाहिए ॥ १३, १४ ॥

समीपे विक्षिपेद्वह्नौ तदन्नं त्वरयान्वितः ।
इन्द्रायुधसवर्णन्तु रूक्षं स्फोटसमन्वितम् ॥१५
एकावर्तन्तु दुर्गन्धि भृशञ्चटचटायते ।
तद्धूमसेवनाज्जन्तोः शिरोरोगश्च जायते ॥१६
सविषेऽन्ने विलीयन्ते न च पार्थिव ! मक्षिकाः ।
निलीनाश्च विपद्यन्ते संस्पृष्टे सविषे तथा ॥१७
विरज्यति चकोरस्य दृष्टिः पार्थिवसत्तम ! ।
विकृतिश्च स्वरो याति कोकिलस्य तथा नृप ! ॥१८
गतिः स्खलति हंसस्य भृङ्गराजश्च कूजति ।
क्रौञ्चो मदमथाभ्येति कृकवाकुर्विरौति च ॥१९
विक्रोशति शुको राजन् ! सारिका वमते ततः ।
चामीकरोऽन्यतो याति मृत्युं कारण्डवस्तथा ॥२०
मेहते वानरो राजन् ! ग्लायते जीवजीवकः ।
हृष्टरोमा भवेद्बभ्रुः पृषतश्चैव रोदिति ॥२१

समीप में स्थित लोगों का त्वरा से समन्वित होते हुए ही उस अन्न को अग्नि में प्रक्षिप्त कर देना चाहिए । इन्द्रायुध के वर्ण के समान—रूक्ष, स्फोट से संयुत, एकावर्त, दुर्गन्ध से युक्त होकर अत्यन्त चट-चट ध्वनि किया करती है । उसके धूम के सेवन से जन्तु के शिर में वेदना और रोग समुत्पन्न हो जाया करता है ॥ १५, १६ ॥ हे पार्थिव ! विष से युक्त अन्न में मक्खियाँ विलीन नहीं हुआ करती हैं तथा सविष अन्न

के सम्पर्श होने पर वे मक्षिकाऐं उसी में विलीन हो जाया करती हैं। ।। १७ ।। हे पार्थिव श्रेष्ठ ! चकोर पक्षी की दृष्टि विगत अर्थात् हीनता को प्राप्त हो जाया करती है। हंस की गति जो कि अति प्रशसनीय होती है स्खलित हो जाया करती है -भृङ्गराज कूजन करता है। क्रौञ्च मद को प्राप्त हो जाता है और कृकवाकु विरुत करने लगता है। हे राजन् ! शुक विक्रोशन करता है--सारिका वमन करती है। चामीकर अन्य ओर जाता है--कारण्डव मृत्यु को प्राप्त होता है--हे राजन् ! वानर मेहन करता है--जीव जीवक ग्लानि करता है--वभ्रु हृष्ट रोमों वाला होता है और पृषत रुदन करता है ॥ ८-२१ ॥

हृष्टमायाति च शिखी विषसन्दर्शनान्नृप ! ।
अन्नञ्च सविष राजश्चिरेण च विपद्यते ।।२२
तदा भवति निःश्राव्य पक्वपर्युषितोपमम् ।
व्यापन्नरसगन्धञ्च चन्द्रिकाभिस्तथा युतम् ।।२३
व्यञ्जनानान्तु शुष्कत्व द्रवाणां बुद्बुदोद्भवः ।
ससैन्धवानां द्रव्याणां जायते फेनमालिता ।।२४
सस्यराजिश्च ताम्रा स्यात् नीला च पयसस्तथा ।
कोकिलाभा च मद्यस्य तोयस्य च नृपोत्तम ! ।। ५
धान्याम्लस्य तथा कृष्णा कपिला कोद्रवस्य च ।
मधुश्यामा च तक्रस्य नीला पीता तथैव च ।।२६
घृतस्योदकसङ्काशा कपोताभा च सक्तुनः ।
हरिता माक्षिकस्यापि तैलस्यच तथारुणा ।।२७
फलानामप्यपक्वानां पाकः क्षिप्रं प्रजायते ।
प्रकोपश्चैव पक्वानां माल्यानां म्लानता तथा ।।२८

हे नृप! विष के सदर्शन से शिखी हर्षको प्राप्त होता है। हे राजन्! विष के सहित अन्न चिरकाल मे विपन्न करता है। उस समय मे निःश्राव्य – व्यापन्न रस और गन्ध से युक्त— चन्द्रिकाओं से समन्वित और

पत्र पर्युषितोपम हो जाता है ॥२२, २३॥ व्यञ्जनों में शुष्कता—द्रव पदार्थों में बुद्‌बुदों की उत्पत्ति और जो स्नेहद में युक्त पदार्थ हैं उनमें फेन मालिका उत्पन्न हो जाया करती है। जो सस्यों राजि है ताम्र वर्ण वाली और पय की आभा नीली हो जाती है। मद्य एवं तोय की आभा कोकिला के तुल्य हो जाया करती है। हे नरोत्तम! धान्याम्ल की कृष्ण और कोद्रव की कपिल—तक्र की मधुश्याम, नील, पीत, हो जाया करती है। घृत की उदक के समान तथा कपोत जैसी आभा हो जाती है। माक्षिक (शहद) की हरी एवं तैल की अरुण आभा होती है। जो फल अपक्व होते हैं उन पर प्रकोप होता है तथा मान्शा की म्लानता हो जाया करती है ॥२४-२८॥

मृदुता कठिनाना स्यात् मृदूनाञ्च विपर्ययः।
सूक्ष्मणा स्पदलन तथा चैवातिरङ्कता ॥२६
श्यामसमण्डलता चैव वस्त्राणां वै तथैव च।
लोहानाञ्च मणीनाञ्च मलपङ्कोपदिग्धता ॥३०
अनुलेपनगन्धाना माल्यानाञ्च नृपोत्तम।
विगन्धता च विज्ञेयातया राजन्! जलस्य तु ॥३१
दन्तकाष्ठत्वच. श्यामास्तनुसत्वास्तथैव च।
एवमादीनि चिह्नानि विज्ञेयानि नृपोत्तम! ॥३२
तस्माद्राजा सदा तिष्ठेत् मणिमन्त्रोपधागणैः।
उक्तैं सरक्षितो राजा प्रमादपरिवर्जकः ॥३३
प्रजातरामूलमिहावनीशस्तद्रक्षणाद्राष्ट्रमुपैति वृद्धिम् ॥
तस्मात्प्रयत्नेन नृपस्य रक्षा सर्वेण कार्या रविवंशचन्द्र ॥३४

जो कठिन एवं कठोर द्रव्य हैं उनमें कोमलता और जो स्वभाव से ही मृदु पदार्थ हैं उनमें विपर्यय हो जाया करता है। सूक्ष्म पदार्थों का रूप का दलन होता है तथा अतिरङ्कता आ जाया करती है। वस्त्रों में श्याम मण्डलता होती है। सब प्रकार के लोह और मणियों में मल के

पङ्क की उपदिग्धता हो जाती है। हे नृपोत्तम ! जो अनुलेपन करने के द्रव्य हैं जिनमें सुन्दर गन्ध होती है उनमें और माल्यों में तथा जल में विगन्धता उत्पन्न हो जाया करती है। दन्तकाष्ठ की त्वचा श्याम और तनु सत्व हो जाती है। हे नृपोत्तम ! इस प्रकार से इन चिन्हों को जान लेना चाहिए। इसी कारण से राजा को सर्वदा मणि-मन्त्र और औषधों के गणों से संयुत होकर ही निवास करना चाहिए अथवा स्थित रहना चाहिए इन उक्त पदार्थों से अच्छी तरह से संरक्षित एवं प्रमाद से परिवर्जित राजा को होना चाहिए ॥२८-३३॥ यहाँ पर प्रवनीश प्रजा के तरु का मूल होता है। उसका संरक्षण रहने से ही राष्ट्र वृद्धि को प्राप्त होता है। हे रविवंश चन्द्र ! इसी कारण से सब प्रकार के प्रयत्न से नृप की रक्षा करनी चाहिए। ३४॥

६८—राजधर्म वर्णन (३)

राजन् ! पुत्रस्य रक्षा च कर्तव्या पृथिवीक्षिता।
आचार्यश्चात्र कर्तव्यो नित्ययुक्तश्च रक्षिभिः ।१
धर्मकामार्थशास्त्राणि धनुर्वेदञ्च शिक्षयेत्।
रथे च कुञ्जरे चैन व्यायामङ्कारयेत्सदा।२
शिल्पानि शिक्षयेच्चैन नाप्तैर्मिथ्या प्रियं वदेत्।
शरीररक्षाव्याजेन रक्षिणोऽस्य नियोजयेत् ।३
नचास्य सङ्गो दातव्यः क्रुद्धलुब्धावमानितैः।
तथा च विनयेदेनं यथा च यौवनगोचरे ॥४
इन्द्रियैर्नापकृष्येत सतां मार्गात्सुदुर्गमात्।
गुणाधानमशक्यन्तु यस्य कर्तुं स्वभावतः ॥५
बन्धनं तस्य कर्तव्यं गुप्तदेशे सुखान्वितम्।
अविनीतकुमारं हि कुलमाशु विशीर्यते ॥६

अधिकारेपु सर्वेपु विनीत विनियोजयेत् ।
आदौ स्वल्पे तत. पश्चात्क्रमेणाय महत्स्वपि ॥७

श्री मत्स्य भगवान् न कहा—हे राजन् ! राजा को अपने पुत्र की रक्षा करनी चाहिये और रक्षा करने वालो के सहित नित्य युक्त यहाँ पर आचार्य को नियुक्त करना चाहिए ॥१॥ उस पुत्र को धर्म—काम और अर्थ शास्त्रो को तथा धनुर्वेद की शिक्षा दिलवानी चाहिए। रथ मे तथा कुञ्जर मे भी दीक्षित करावे और सदा इस अपने पुत्र से व्यायाम करवाना चाहिए ॥२॥ इस पुत्र को अनेक शिल्पों की शिक्षा दिलवावे। ऐसा प्रयत्न करे कि वह प्राप्त अर्थात् सत्य वक्ता होवे और कभी उसे मिथ्या बोलने का अवसर ही न होवे। राजा के पुत्र के शरीर की रक्षा के मिष से रक्षियों को नियोजित करना चाहिए ॥३॥ क्रुद्ध—लुब्ध और अपमानित हुए व्यक्तियों के साथ इस पुत्र का सङ्ग कभी भी न होने देवे। जैसे ही यह यौवन मे पदार्पण करे इसको विनीत बनाना चाहिए ॥४॥ सज्जनो के सुदुर्गम मार्ग से इन्द्रियो के द्वारा अपकृष्ट नही होने देवे। स्वभाव म ही अशक्य गुणो का आधान करना चाहिये। किसी गुप्त देश मे सुख से समन्वित उसका बन्धन करना चाहिए। जो राज कुमार अविनीत होता है उसका कुल शीघ्र ही विशीर्ण हुआ करता है। सभी अधिकार के कार्यों मे विनीत का नियोजन करना चाहिए। आदि मे छोटे पद पर इसके पश्चात् क्रम से बड़े पदो पर भी नियुक्तियाँ करे ॥५, ६, ॥

मृगया पानमक्षाश्च वर्जयेत् पृथिवीपति. ।
एतान्ये सेवमानास्तु विनष्टाः पृथिवीक्षतः ॥८
बहवो नरशार्दूल ! तेषा सङ्ख्या न विद्यते ।
दिवा स्वाप क्षितीशस्तु विशेषेणविवर्जयेत् ॥९
वाक्पारुष्य न कर्त्त य दण्डपारुष्यमेव च ।
परोक्षनिन्दा च तथा वर्जनीया महीक्षिता ॥१०
अर्थस्य दूपण राजा द्विप्रकार विवर्जयेत् ।

अर्थाना दूषणञ्चैक तथार्थेषु च दूषणम् ॥११
प्राकाराणा समुच्छेदो दुर्गादीनामसत्क्रिया ।
अर्थाना दूषण प्रोक्त विप्रकीर्णत्वमेव च ॥१२
अदेशकाले यद्दानमपात्रे दानमेव च ।
अर्थेषु दूषण प्रोक्तमसत्कर्मप्रवतनम् ॥१३
काम क्रोधोमदोमानो लोभो हर्षस्तथैव च ।
एते वर्ज्याः प्रयत्नेन सादर पृथिवीक्षिता ॥१४

जो पृथिवी का स्वामी हो उसको मृगया (शिकार)—मदिरा पान और अक्षक्रीडा (द्यूत) का परिवर्जन कर देना चाहिए। इन का जो सेवन किया करत हैं वे भूपतिगण विनष्ट हो जाया करते है। हे नरशार्दूल! ऐसे बहुत-से राजा लोग हैं उनकी कोई भी सख्या नही हैं राजा को दिन मे निद्रा लेना विशेष रूप से वर्जित कर देनी चाहिए। राजा का कर्त्तव्य है कि ह कभी भी वाणी की कठोरता न करे तथा दण्ड देने मे भी अत्यन्त कठोर उसे नही होना चाहिए। नृपति को परोक्ष मे किसी की भी निन्दा नहीं करनी चाहिए। अथ के दो प्रकार के दूषण का वजन राजा को करना आवश्यक है—एव अर्थों का दूषण तथा अर्थों मे दूषण। प्रकारो का समुच्छेद और दुर्गादि की असत्क्रिया यही अर्थो का दूषण कहा गया है तथा विप्रकीणता भी अर्थो का दूषण होता है। अनुचित देश तथा अनुपयुक्त काल मे जो दान दिया जाता है और दान का जो पात्र ही नही है उसको दान देना एव असत्कर्म्म मे प्रवर्त्तन करना अर्थो मे दूषण बताया गया है। पृथिवी के स्वामी को प्रयत्न पूर्वक आदर क सहित काम—क्रोध—मद—मान—लोभ और हर्ष इनका वर्जन अवश्य ही कर देना चाहिए ॥८-१४॥

एतेषा विजय कृत्वा कार्यो भृत्यजयस्ततः ।
कृत्वा भृत्यजय राजा पौरान् जानपदान् जयेत् ॥१५
कृत्वा च विजयन्तेषा शत्रून् बाह्यास्ततो जयेत् ।

बाह्याश्च विविधा ज्ञेयास्तुल्याभ्यन्तरकृत्रिमाः ॥१६
गुरवस्ते यथापूर्वं तेषु यत्नपरो भवेत् ।
पितृपैतामह मित्रमित्रञ्च तथा रिपोः । १७
कृत्रिमञ्च महाभाग ! ि.त्र त्रिविधमुच्यते ।
तथापि च गुरुः पूर्वं भवेत्तत्रापि चादृतः ॥१८
स्वाम्यमात्यो जनपदो दुर्गं दण्डस्तथैव च ।
कोशोमित्रञ्चधर्मज्ञ ! सप्ताङ्गं राज्यमु-यते ॥१६
सप्ताङ्गस्यापि राज्यस्य मूलस्वामी प्रकीर्तितः ।
तन्मूलत्वात्तथाङ्गाना सतुरक्ष्यः ॥२०
षड़ङ्गरक्षा कर्त्तव्या तथा तेन प्रयत्नतः ।
अङ्गेभ्यो यस्तथैकस्तु द्रोहमाचरतेऽल्पधीः ॥२१

इन सब पर अपना पूर्ण विजय करके ही राजा को फिर अपने भृत्यों पर भी जय प्राप्त करना चाहिए। जब भृत्यों पर विजय करली जावे तो फिर इसके उपरान्त पौरों एवं जानपदों पर विजय करना आवश्यक होता है ॥१५॥ इन सब पर विजय को स्थापित करके इसके अनन्तर ही राजा को बाहिर रहने वाले शत्रुओं पर जय का लाभ लेना चाहिए। जो बाह्य शत्रु होते हैं वे अनेक प्रकार के हुआ करते हैं। वे तुल्य—आभ्यन्तर और कृत्रिम होते हैं ॥१६। वे यथा पूर्व बहुत बड़े हुआ करते हैं इसलिए उनमें यत्न परायण राजा को होना आवश्यक है। पिता पितामह के समय से चले आने वाला मित्र तथा रिपु का अमित्र (शत्रु हे महाभाग ! कृत्रिम मित्र तीन प्रकार का कहा जाता है। तो भी पूर्व गुरु होता है। उसमें भी आदृत होना चाहिए। हे धर्मज्ञ ! स्वामी—अमात्य—जनपद—दुर्ग—दण्ड—कोश और मित्र इन सात अङ्गों वाला राज्य कहा जाया करता है। यद्यपि राज्य के ये उपर्युक्त सात अङ्ग होते हैं तो भी इन सातों में भी मूल स्वामी ही कीर्तित किया गया है। सभी अङ्गों का उसको मूल होने से उसकी प्रयत्न पूर्वक रक्षा

करनी चाहिए। अन्य छै अङ्गों की भी उसके द्वारा प्रयत्न के साथ सुरक्षा करनी चाहिए। इन अङ्गों में जो कोई एक द्रोह किसी भी अङ्ग से करता है वह अल्प बुद्धि वाला ही होता है ॥१७-२१॥

बन्धस्तस्य तु कर्तव्य शीघ्रमेव महीक्षिता।
न राज्ञा मृदुना भाव्य मृदुर्हि परिभूयते ॥२२
न भाव्य दारुणेनातितीक्ष्णादुद्विजते जनः।
काले मृदुर्यो भवति काले भवति दारुणः ॥२३
राजा लोकद्वयापेक्षी तस्य लोकद्वय भवेत्।
भत्यैः सह महीपाल परिहासं विवर्जयेत् ॥२४
भृत्याः परिभवन्तीह नृप हर्षवशङ्गतम्।
व्यसनानि च सर्वाणि भूपति परिवर्जयेत् ॥२५
लोकसग्रहणार्थाय कृतकव्य सनो भवेत्।
शौण्डीरस्य नरेन्द्रस्य नित्यमुद्रिक्तचेतस ॥२६
जना विरागमायान्ति सदादुसेव्यभावत.।
स्मितपूर्वाभिभाषीस्यात्सर्वस्यैवमहीपति ॥२७
बध्येष्वपि महाभाग ! भ्रुकुटि न समाचरेत्।
भाव्यधर्मभृतां श्रेष्ठ ! स्थूललक्ष्येणभूभुजा ॥२८

राजा का कर्तव्य है कि ऐसे द्रोह करने वाले व्यक्ति का बन्ध कर देवे और शीघ्र ही उसको बाँध कर बन्द कर देना चाहिए। राजा को मृदु नहीं होना चाहिए जो राजा मृदु होता है वह परिभूत हो जाया करता है ॥२२॥ राजा को अत्यन्त दारुण भी नहीं होना चाहिए क्योंकि अत्यन्त तीक्ष्ण राजा से प्रजाजन उद्विग्न हो जाया करते हैं। जो राजा उचित समय पर मृदु होता है तथा आवश्यकता के अनुसार उचित अवसर पर दारुण होता है वह दोनों लोकों की अपेक्षा वाला हुआ करता है और उसके दोनों ही लोक सफल हुआ करते है। राजा को अपने भृत्यों के साथ कभी भी परिहास नहीं करना चाहिए। जो राजा हर्ष के वशङ्गत हो

जाया करता है उसको भृत्य परिभूत कर दिया करते हैं। राजा को सभी प्रकार के व्यसनों को परिवर्जित कर देना चाहिए। लोक के सङ्ग्रहण के लिए यदि कोई व्यसन करने वाला भी होवे तो उसे कृतक व्यसनी ही होना चाहिए। जो नरेन्द्र शौण्डीर होता है उससे नित्य ही उद्विग्न चित्त वाले मनुष्य विराग को प्राप्त हो जाते हैं और उनके हृदय में सदा द्वेष्य भावना उत्पन्न हो जाया करती है। महीपति का कर्त्तव्य है कि सभी के साथ मुस्कराते हुए भाषण करने वाला होवे। जो लोग अपराधों के कारण वध के भी योग्य हो हे महाभाग! उन पर भी राजा को अपनी भौंहें तिरछी नहीं करनी चाहिए। हे धर्मधारियों में परम श्रेष्ठ! राजा को सर्वदा स्थूल लक्ष्य से युक्त ही होना चाहिए ॥२३-२८॥

स्थूललक्षस्य वशगा सर्वाभवति मेदिनी ।
अदीर्घसूत्रश्च भवेत् सर्वकर्मसु पार्थिवः ॥२६
दीर्घसूत्रस्य नृपतेः कर्महानिर्ध्रुवम्भवेत् ।
रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि ॥३०
अप्रिये चैव कर्तव्ये दीर्घसूत्रः प्रशस्यते ।
राज्ञा संवृतमन्त्रेण सदा भाव्यं नृपोत्तम ! ॥३१
तस्यासंवृतमन्त्रस्य राज्ञः सर्वापदो ध्रुवम् ।
कृतान्येव तु कार्याणि ज्ञायन्ते यस्य भूपतेः ॥३२
नारब्धानि महाभाग ! यस्य स्याद्वसुधावशे ।
मन्त्रमूलसदाराज्यंतस्मान्मन्त्रः सुरक्षितः ॥३३
कर्तव्यः पृथिवीपालैर्मन्त्रभेदभयात्सदा ।
मन्त्रवित्साधितो मन्त्रः सम्पत्तीनांसुखावहः ॥३४
मन्त्रच्छलेन बहवो विनष्टाः पृथिवीक्षितः ।
आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ॥३५

जिस नृप का मूल लक्ष्य होता है उसकी यह सम्पूर्ण भूमि वशगामिनी हुआ करती है। पार्थिव को समस्त कर्मों में दीर्घसूत्री नहीं

रहना चाहिए। जो नृपति दीर्घ सूत्री होता है उसके कर्मो की हानि निश्चित रूप से हो जाया करती है। राग मे—दृप मे—मान मे—द्रोह मे—पाप कर्म मे और अप्रिय कत्तव्य मे दीर्घसूत्र होना प्रशस्त माना गया है। हे नृपोत्तम ! राजा को अपना मन्त्र संवृत रखने वाला सर्वदा होना चाहिए। जो राजा अपने मन्त्र को असंवृत रखता है उसको सभी आपत्तियां निश्चित रूप से आ जाया करती हैं। जिस राजा के कार्य किये जाने पर ही लोगो को मालूम हुआ करते हैं और हे महाभाग ! आरम्भ किये हुए या पूर्व मे नहीं ज्ञात होते हैं उस राजा के वश मे यह समग्र वसुधा हुआ करती है। राज्य का मूलतत्व मन्त्र ही सदा होता है इसलिए मन्त्र को पूर्ण रूप से सुरक्षित रखना चाहिए। मन्त्र के भेद के होने वाले भय से राजाओ को सदा उसे पूर्ण रक्षित रखना आवश्यक है। मन्त्र के ज्ञाता के द्वारा सुसाधित मन्त्र सभी सम्पत्तियो का और सुख का देने वाला हुआ करता है। मन्त्र के छल से बहुत से राजा लोग विनष्ट हो गये हैं। आकार—इङ्गित—गति—चेष्टा—भाषण—नेत्र तथा मुख की विकृति—इनके द्वारा अन्तर्गत मनका ज्ञान हो जाया करता है और जो नीति शास्त्र में कुशल होते हैं वे सभी कुछ मन का भाव जान लिया करते हैं और जो ऐसे कुशल हैं उनके वश मे यह सम्पूर्ण वसुंधरा रहा करती है ॥२६-३५॥

नयस्य वक्त्र विकारश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ।
नयस्य कुशलस्तस्य वशे सर्वा वसुन्धरा ॥३६
भवताह महीपाल सदा पार्थिवनन्दन ! ।
नास्तु मन्त्रयन्मन्त्रं राजा न बहुभिः सह ॥३७
नाराहद्विषमा नावमारोहितनाविक्रम् ।
य चास्य भूमिजयिना नवयु परिचारिणम् ॥३८
तानानयद्वन्गवान् ग्रामादिभिरुपक्रम ।
यथा न स्यात् कृशाभाव प्रजानामनवेक्षया ॥३९

तथा राज्ञा प्रकर्तव्यं स्वराष्ट्रं परिरक्षता ।
मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ।।४०
सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धव. ।
भृतो वत्सो जातबलः कर्मयोग्यो यथा भवेत् ।।४१
तथा राष्ट्रं महाभाग ! भृत कर्मसहम्भवेत् ।
यो राष्ट्रमनुगृह्णाति राज्यं स परिरक्षति ।।४२

हे पार्थिव नन्दन ! ऐसे परम-कुशल राजा के वश मे यहाँ पर यह पृथ्वी वशीभूत रहा करती है। राजा को कभी एक अकेला ही मन्त्रणा नही करनी चाहिए और बहुतों के साथ भी अपने गुप्त मन्त्रों के विषय मे मन्त्रणा नहीं करे। राजा को कभी भी विषम नौका पर समारोहण नहीं करना चाहिए जिसके नाविक के विषय मे पहिले परीक्षण नहीं कर लिया हो। जो इसकी भूमि पर विजय प्राप्त करने वाले परिपन्थी हो उन सबको साम आदि उपक्रमों के द्वारा अपने वश मे ले आना राजा का कर्त्तव्य होना चाहिए। जिससे प्रजाओ के अनवेक्षण से कृशीभाव न होने पावे। अपने राष्ट्र का परिरक्षण करने वाले नृप को उसी भाँति करना चाहिए कि मोह से जो अनवेक्षण करके अपने राष्ट्र का अपनी ओर आकर्षण कर लेवे। जो ऐसा नही करता है वह नृप बान्धवों के सहित शीघ्र ही अपने राज्य से और जीवन से भी भ्रष्ट हो जाया करता है। अतएव ऐसा ही होवे जो भृत-वत्स-जातबल और कर्म के योग्य होवे। हे महाभाग ! राष्ट्र को उसी भाँति करे जो भृत और कर्म सह हो जावे। जो राष्ट्र पर अनुग्रह किया करता है वह राज्य का परिरक्षण करता है ।।३७-४२।।

सञ्जातमुपजीवेत्तु विन्दते स महत्फलम् ।
गृह्याद्धिरण्य धान्यञ्च मही राजासु रक्षिताम् ।।४३
महता तु प्रयत्नेन स्वराष्ट्रस्य च रक्षिता ।
नित्य स्वेभ्यः परेभ्यश्च यथा माता यथा पिता ।।४४

गोपितानि सदा कुर्यात् सयतानीन्द्रियाणि च ।
अजस्रमुपयोक्तव्य फलन्तेभ्यस्तथैव च ॥४५
सर्वं कर्मेदमायत्त विधाने दैवमानुषे ।
तयोर्दैवमचिन्त्यञ्च पौरुषे विद्यते क्रिया ॥४६
एव महीं पालयतोऽस्य भर्तु र्लोकानुराग परमो भवेत्तु ।
लोकानुरागप्रभवा च लक्ष्मीलक्ष्मीवयश्चापि पराचलक्ष्मी॥४७

जो सञ्जात है उसको उपजीवित करे तो महान् फल वह प्राप्त किया करता है । वह राजा हिरण्य—धान्य—और सुरक्षित मही का ग्रहण करता है । बड़े भारी प्रयत्न से अपने राष्ट्र की जो रक्षा करने वाला है वह नित्य ही अपने लोगो से और दूसरो से माता तथा पिता की भाँति ही समादर प्राप्त करता है । राजा का कर्त्तव्य है कि वह सदा इन्द्रियो को सयत एव गोपित करे और निरन्तर उनसे उपयुक्त फल प्राप्त करना चाहिए ॥४३, ४४, ४५॥ दैवमानुष विधान मे सम्पूर्ण यह कर्म अधीन है उन दोनो मे जो दैवी विधान है वह विशेष चिन्तन के योग्य नहीं है और पौरुष मे ही क्रिया विद्यमान रहा करती है ॥४६॥ इस प्रकार से इस मही के पालन करने वाले इस नृप का परम लोकानुराग हुआ करता है । जब लोक का अनुराग राज मे होता है तो उसी से समुत्पन्न होने वाली लक्ष्मी हुआ करती है और लक्ष्मीवान् की ही परा-लक्ष्मी होती है ॥४७॥

६६—दैव और पुरुषार्थ मे कौन बड़ा है ?

दैवे पुरुषकारे च किं ज्यायस्तद्ब्रवीहि मे ।
अत्र मे सशयो देव ! चछेत्तुमर्हस्यशेषत ॥१
स्वमेव कर्म दैवाख्य विद्धि देहान्तरार्जितम् ।
तस्मात्पौरुषमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनीषिण ॥२

प्रतिकूलन्तथा दैवं पौरुषेण विहन्यते ।
मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यमुत्थानशालिनाम् ॥३
येषां पूर्वकृतं कर्म सात्विकं मनुजोत्तम ! ।
पौरुषेण विना तेषां केषाञ्चिद्दृश्यते फलम् ॥४
कर्मणा प्राप्यते लोके राजसस्य तथा फलम् ।
कृच्छ्रेण कर्मणा विद्धि तामसस्य तथा फलम् ॥५
पौरुषेणाप्यते राजन् ! प्रार्थितव्यं फलं नरैः ।
दैवमेव विजानन्ति नरा पौरुषवर्जिता. ॥६
तस्मात्त्रिकाल संयुक्तं दैवन्तु सफलं भवेत् ।
पौरुषं दैवसम्पत्त्या काले फलति पार्थिव ! ॥७

महर्षि मनु ने कहा—हे देव ! दैव और पुरुषकार में कौन बड़ा है ? यह मुझे बतलाइये । इसमें मुझे संशय हो रहा है सो इसका छेदन आप पूर्णतया कर दीजिये ॥ १ ॥ श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—दैव नाम वाला जो कर्म है वह भी अपना ही कर्म समझना चाहिए क्योंकि वह वही अपना किया हुआ कर्म है जो दूसरे (प्रथम) देह के द्वारा अर्जित किया गया है। इसीलिये मनीषी लोग इस संसार में पौरुष को ही श्रेष्ठ कहा करते हैं ॥ २ ॥ यदि दैव प्रतिकूल भी होता है तो उसका पौरुष के द्वारा हनन हो जाया करता है । ऐसा देखा जाता है कि जो मङ्गल आचार से युक्त और नित्य ही उत्थानशाली लोग होते हैं वे पौरुष से प्रतिकूल दैव को विनष्ट कर देते हैं ॥ ३ ॥ हे मनुजोत्तम ! जिन पुरुषों का पूर्व जन्मों में किया हुआ सात्त्विक कर्म होता है ऐसे कुछ पुरुषों का अच्छा फल बिना ही पौरुष के किये देखने में आता है ॥ ४ ॥ लोक में राजस कर्म का फल कर्म के द्वारा ही प्राप्त किया जाता है । तामस कर्म का फल कठिन कर्म के द्वारा समझ लो ॥ ५ ॥ हे राजन् ! पौरुष के द्वारा मनुष्यों को प्रार्थित फल की प्राप्ति की जाया करती है । जो मनुष्य पौरुष से वर्जित हुआ करते हैं वे तो केवल एक दैव को ही जाना

करते हैं ॥ ६ ॥ इसलिये त्रिकाल से संयुक्त दैव सफल हुआ करता है। हे पार्थिव! पौरुष जो है वह दैव की सम्पत्ति से समय पर फल दिया करता है ॥ ७ ॥

दैवं पुरुषकारश्च कालश्च पुरुषोत्तम!।
त्रयमेतन्मनुष्यस्य पिण्डितंस्यात् फलावहम् ॥८
कृष्टिवृष्टिसमायोग दृश्यन्ते फलसिद्धयः।
तास्तु काले प्रदृश्यन्ते नैवाकाले कथञ्चन ॥९
तस्मात्सदैव कर्तव्य सधर्मं पौरुषं नरैः।
विपत्तावपि यस्येह परलोके ध्रुवं फलम् ॥१०
नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान् न च दैवपरायणाः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन आचरेद्धर्ममुत्तमम् ॥११
त्यक्त्वाऽलसान् दैवपरान् मनुष्या-
नुत्थानयुक्तान्पुरुषान् हि लक्ष्मीः।
अन्विष्य यत्नाद् वृणुयान्नृपेन्द्र!
तस्मात्सदोत्थानवता हि भाव्यम् ॥१२

हे पुरुषोत्तम! दैव-पुरुषकार और काल-ये तीनों का तिगड्डा पिण्डित होकर ही मनुष्य को फल देने वाला हुआ करता ॥ ८ ॥ कृष्टि और वृष्टि के समान ही योग फल सिद्धियों के दिखलाई दिया करते हैं। वे काल के उपस्थित होने पर ही अच्छी तरह से दिखलाई दिया करते हैं और असमय में किसी भी प्रकार से दिखलाई नहीं देते हैं। इससे मनुष्यों को सदैव धर्म के सहित पौरुष करना ही चाहिये। चाहे विपत्ति भी क्यों न हो पुरुषकार करे क्योंकि जिसका इस लोक में और परलोक मे निश्चित फल होता है। जो आलसी नर होते हैं वे और केवल दैव को ही मानने मे परायण होते हैं वे लोग अर्थों की प्राप्ति नही किया करते हैं। इसलिये सभी प्रकार के प्रयत्नों से उत्तम धर्म का समाचरण करना चाहिए। हे नृपेन्द्र! यह लक्ष्मी अलस-

करके उत्थान से युक्त पुरुषों को ही खोज करके यत्नपूर्वक वरण किया करती है। इसी कारण से मनुष्य को सदा उत्थान वाला ही होना चाहिए ॥ ६-१२ ॥

१००–राजधर्म वर्णन में साम प्रयोग वर्णन

उपायांस्त्व समाचक्ष्व सामपूर्वान् महाद्युते ! ।
लक्षणञ्च तथा तेषां प्रयोगञ्च सुरोत्तम ! ॥१
सामभेदस्तथा दानदण्डञ्च मनुजेश्वर ! ।
उपेक्षा च तथा माया इन्द्रजालञ्च पार्थिव ! ॥२
प्रयोगाः कथिता सप्त तन्मे निगदतः शृणु ।
द्विविधं कथितं साम तथ्यञ्चातथ्यमेव च ॥३
तत्राप्यतथ्य साधूनामाक्रोशायैव जायते ।
तत्र साधु प्रयत्नेन सामसाध्यो नरोत्तम ! ॥४
महाकुलीना ऋजवोधर्मनित्याजितेन्द्रियाः ।
सामसाध्या न चातथ्यन्तेषु मामप्रयोजयेत् ॥५
तथ्य साम च कर्तव्य कुलशीलादि वर्णनम् ।
तथा तदुपचाराणा कृतानाञ्चैव वर्णनम् ॥६

महर्षि मनु ने कहा—हे महाद्युत वाले ! हे सुरोत्तम ! अब आप साम पूर्वक जो उपाय हों उनका वर्णन कीजिए। उन उपायों का लक्षण और प्रयोग भी बतलाने की कृपा कीजिये ॥ १ ॥ श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे मनुजेश्वर ! हे पार्थिव ! साम, भेद, दान, दण्ड, उपेक्षा, माया और इन्द्रजाल—ये सात प्रयोग कहे गये हैं। मैं अब उनको कहता हूँ सो आप मुझसे उनका श्रवण कर लो। यह साम दो प्रकार का कहा गया है। एक तथ्य साम होता है और दूसरा अतथ्य

करत हैं ।। ६ ।। इसलिये त्रिकाल से संयुक्त दैव सफल हुआ करता है । हे पार्थिव ! पौरुष जो है वह दैव की सम्पत्ति से समय पर फल दिया करता है ।। ७ ।।

दैव पुरुषकारश्च कालश्च पुरुष त्तम ! ।
त्रयमेतन्मनुष्यस्य पिण्डितस्यात फलावहम् ।।८
कृष्टिवृष्टिसमायोग दृश्यन्ते फलसिद्धय ।
तास्तु काले प्रदृश्यन्ते नैवाकाले कथञ्चन ।।६
तस्मात्सदव कत०य सधर्मं पौरुष नरें ।
विपत्तावपि यस्येह परलोके ध्रुव फलम् ।।१०
नालसा प्राप्नुवन्त्यर्थान् न च दैवपरायणा ।
तस्मात्सवप्रयत्नेन आचरेद्धममुत्तमम् ।।११
त्यक्त्वाऽलसान् दैवपरान् मनुष्या-
नुत्थानयुक्तान्पुरुपान् हि लक्ष्मी ।
अन्विष्य यत्नाद् वृणुयान्नृपेन्द्र !
तस्मात्सदोत्थानवता हि भाव्यम् ।।१२

हे पुरुषोत्तम ! दैव–पुरुषकार और काल–ये तीनों का तिगड्डा पिण्डित होकर ही मनुष्य को फल देने वाला हुआ करता ।। ८ ।। कृष्टि और वृष्टि के समान ही योग फल सिद्धियों के दिखलाई दिया करते हैं । वे काल के उपस्थित होने पर ही अच्छी तरह से दिखलाई दिया करते हैं और असमय में किसी भी प्रकार से दिखलाई नही देते हैं । इससे मनुष्यों को सदैव धम के सहित पौरुष करना ही चाहिये । चाहे विपत्ति भी क्यों न हो पुरुषकार करे क्योकि जिसका इस लोक मे और परलोक में निश्चित फल होता है । जो आलसी नर होते हैं वे और केवल दैव को ही मानने म परायण होते हैं वे लोग अर्थों की प्राप्ति नही किया करते हैं । इसलिये सभी प्रकार के प्रयत्नो से उत्तम धम का समाचरण करना चाहिए । हे नृपेन्द्र ! यह लक्ष्मी अलस–दैव परायण मनुष्यों को त्याग

करके उत्थान से युक्त पुरुषों को ही खोज करके यत्नपूर्वक वरण किया करती है। इसी कारण से मनुष्य को सदा उत्थान वाला ही होना चाहिए ॥ ६-१२ ॥

१००—राजधर्म वर्णन में साम प्रयोग वर्णन

उपायास्त्व समाचक्ष्व सामपूर्वान् महाद्युते ! ।
लक्षणञ्च तथा तेषां प्रयोगञ्च सुरोत्तम ! ॥१
सामभेदस्तथा दानदण्डञ्च मनुजेश्वर ! ।
उपेक्षा च तथा माया इन्द्रजालञ्च पार्थिव ! ॥२
प्रयोगाः कथिताः सप्त तन्मे निगदतः शृणु ।
द्विविधं कथितं साम तथ्यञ्चातथ्यमेव च ॥३
तत्राप्यतथ्य साधूनामाक्रोशायैव जायते ।
तत्र साधु प्रयत्नेन सामसाध्यो नरोत्तम ! ॥४
महाकुलीना ऋजवोधर्मनित्याजितेन्द्रियाः ।
सामसाध्या न चातथ्यन्तेषुसामप्रयोजयेत् ॥५
तथ्यं साम च कर्त्तव्यं कुलशीलादि वर्णनम् ।
तथा तदुपचाराणां कृतानाञ्चैव वर्णनम् ॥६

महर्षि मनु ने कहा—हे महाद्युति वाले ! हे सुरोत्तम ! अब आप साम पूर्वक जो उपाय हों उनका वर्णन कीजिए। उन उपायों का लक्षण और प्रयोग भी बतलाने की कृपा कीजिये ॥ १ ॥ श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे मनुजेश्वर ! हे पार्थिव ! साम, भेद, दान, दण्ड, उपेक्षा, माया और इन्द्रजाल—ये सात प्रयोग कहे गये हैं। मैं अब उनको कहता हूँ सो आप मुझसे उनका श्रवण कर लो। यह साम दो प्रकार का कहा गया है। एक तथ्य साम होता है और दूसरा अतथ्य

साम हुआ करता है ॥ २ । ३ ॥ इन दोनो में जो अतथ्य साम साधु पुरुषों के आक्रोश के लिये ही हुआ करता है। हे नरोत्तम ! उसमे प्रयत्नपूर्वक साधु साम ही साध्य होना चाहिये ॥ ४ ॥ महान कुलीन, सरल, नित्य धर्म करने वाले और जितेन्द्रिय पुरुष साम के द्वारा साध्य हुआ करते हैं। उनमें कभी भी अतथ्य साम का प्रयोग नहीं करना चाहिये। तथ्य साम का ही प्रयोग करना चाहिये जिसमे कुल और शील आदि का वर्णन होता है तथा किये हुए उसके उपचारों का वर्णन किया जाता है ॥ ५, ६ ॥

अनयैव तथा यक्त्या कृतज्ञाख्यापनं स्वकम् ।
एवं साम्ना च कर्तव्या वशगा धर्मतत्पराः ॥७
साम्ना यद्यपि रक्षांसि गृह्णन्तीति परा श्रुतिः ।
तथाप्येतदसाधूनां प्रयुक्तं नोपकारकम् ॥८
अतिशङ्कितमित्येव पुरुषं सामवादिनम् ।
असाधवो विजानन्ति तस्मात्तत्तेषु वर्जयेत् ॥९
ये शुद्धवंशाः ऋजवःप्रणीता धर्मस्थिताः सत्यपराविनीता ।
ते सामसाध्याः पुरुषाःप्रदिष्टा मानोन्नता ये सततञ्च राजन् ॥१०

इसी युक्ति से अपने कृतज्ञता का ख्यापन इस प्रकार से साम के द्वारा धर्म मे परायण मनुष्य अपने वशवर्ती करने चाहिए ॥ ७ ॥ यद्यपि साम के द्वारा राक्षस भी ग्रहण किये जाते हैं—ऐसी पराश्रुति है तो भी असाधु पुरुषों में प्रयोग किया हुआ यह कभी उपकार करने वाला नहीं होता है ॥८॥ जो असाधु पुरुष होते हैं वे सामवादी पुरुष को अतिशङ्कित है—ऐसा ही हमेशा जाना करते हैं। इसीलिए इस साम का प्रयोग उनमें वर्जित ही कर देना चाहिए। जो शुद्ध वंश वाले-सरल सीधे-प्रणीत-धर्म मे स्थित-सत्य परायण और विनीत पुरुष हैं उन्ही पुरुषों को साम के द्वारा साध्य कहा गया है। हे राजन् ! जो निरन्तर ही मानोन्मत होते हैं वे ही साम से साध्य हुआ करते हैं ॥ ९, १० ॥

१०१–राजधर्म वर्णन में भेद प्रयोग वर्णन

परस्परन्तु ये दुष्टा क्रुद्धा भीतावमानिता: ।
तेषा भेद प्रयुञ्जीत भेदसाध्या हि ते मता: ॥१
ये तु येनैव दोषेण परस्मान्नापि बिभ्यति ।
ते तु तद्दोषपातेन भेदनीया भृशन्तनः ॥२
आत्मीया दर्शयेदाशा परस्माद्दर्शयेद्भयम् ।
एव हि भेदयेद्भिन्नान् यथावद्वशमानयेत् ॥३
सहितान्हि विना भेद शक्रेणापि सुदु सहा. ।
भेदमेव प्रशसन्ति तस्मान्नयविशारदा: ॥४
स्वमुखेनाश्रयेद्भेदम्भेदम्परमुखेन च ।
परीक्ष्य साधु मन्येत भेद परमुखाच्छ्रुतम् ॥५
सद्य स्वकार्यमुद्दिश्य कुशलैर्येहि भेदिता. ।
भेदितास्ते विनिर्दिष्टा नैव राजार्थवादिभि ॥६
अन्त कोपो बहि कोपो यत्र स्याता महीक्षिताम् ।
अन्त. कोपा महास्तत्र नाशक पृथिवीक्षिताम् ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—जो दुष्ट पुरुष परस्पर मे क्रुद्ध—भीत और अवमानित हैं । उनका भेद प्रयुक्त करना चाहिए क्योंकि वे लोग भेद के द्वारा ही साध्य होते हैं—ऐसा माना गया है ॥ १ ॥ जो लोग जिस ही दोष से दूसरे से भी नहीं डरते हैं वे उस दोष के पात से अत्यन्त ही भेदन करने के योग्य होते हैं ॥ २ ॥ अपनी आशा को दिखलावे और दूसरे से भय का प्रदर्शन करना चाहिए । इसी प्रकार से भिन्नों का भेदन कर और यथावत् उनको अपने वश मे लाना चाहिये ॥ ३ ॥ जो सहित हैं वे बिना भेद के इन्द्र के द्वारा भी सुदु सह हुआ करते हैं । इसलिए ऐसे अवसर पर नय शास्त्र के पण्डित लोग भेद की ही प्रशसा किया करते हैं । अपने मुख से भेद का आश्रय करे और पराये मुख से

भेद ग्रहण करे। अतएव भली भाँति भेद की जाँच करके ही पराये मुख से सुने हुए भेद को मानना चाहिए ॥ ४ । ५ ॥ तुरन्त ही अपने कार्य का उद्देश्य करके कुशल पुरुषों के द्वारा जो भेदित होते हैं वे ही भेदित विनिर्दिष्ट होते हैं और राजा के द्वारा अर्थवादियों से भेदित नहीं हुआ करते हैं ॥ ६ ॥ जहाँ पर राजाओं का अन्तःकोप और बहिःकोप हुआ करता है। इनमे जो अन्तःकोप होता है वह महान् है और नाश करने वाला होता है जो नृपों का विनाशक है ॥ ७ ॥

साम्ना न कोपोवाह्यस्तु कोपः प्रोक्तो महीभृतः।
महिषीयुवराजभ्यां तथासेनापतेर्नृप ॥८
अमात्यमन्त्रिणाञ्चैव राजपुत्रेतथैवच।
अन्तः कोपो विनिर्दिष्टो दारुण पृथिवीक्षिताम् ॥९
बाह्यकोपे समुत्पन्न सुमहत्यपि पार्थिवः।
शुद्धान्तस्तु महाभाग ! शीघ्रमेव जयी भवेत् ॥१०
अपि शक्रसमो राजा अन्तःकोपेन नश्यति।
सोऽन्तः कोपःप्रयत्नेन तस्माद्रक्ष्योमहीभृता ॥११
परतः कोपमुत्पाद्य भेदेन विजिगीषुणा।
ज्ञातीनां भेदनं कार्यं परेषां विजिगीषुणा ॥१२
रक्ष्यश्चैव प्रयत्नेन ज्ञातिभेदस्तथात्मनः।
ज्ञातयः परितप्यन्ते सततं परितापिताः। १३
तथापि तेषां कर्तव्य सुगम्भीरेण चेतसा।
ग्रहण दानमानाभ्यां भेदस्तेभ्यो भयङ्कर ॥१४
न ज्ञातिमनुगृह्णन्ति न ज्ञाति वै स्वसन्ति च।
ज्ञातिभिर्भेदनायास्तु रिपवस्ते न पार्थिवैः। १५
भिन्ना हि शक्या रिपवः प्रभूताः स्वल्पेन सैन्येन निहन्तमानो।
मुसंहताना हि ततस्तु भेदः कार्यो रिपूणा नयशास्त्रविद्भिः ॥१६

राजा का कहा हुआ और जो बाप वाह्य होता है वह साम के

द्वारा नही शान्त नही होना है। हे नृप! राजाओ का अन्त.कोप महिषी–युवराज-सेनापति–अमात्य–मन्त्री और राजपुत्र का महान् दारुण विनिर्दिष्ट किया गया है ॥८, ६॥ सुमहान् बाह्य कोप के समुत्पन्न होने पर भी हे महाभाग! अन्त करण मे शुद्ध राजा बहुत ही शीघ्र जयशील हुआ करता है ॥१०॥ भले ही कोई राजा इन्द्र के समान ही क्यो न होवे वह भी अन्त: कोप से विनष्ट हो जाया करता है। इस कारण से राजा के द्वारा प्रयत्न पूर्वक अन्त कोप की रक्षा करनी चाहिए ॥११॥ विजय प्राप्त करने की इच्छा वाले के द्वारा भेद से दूसरे से कोप का उत्पादन करावे दूसरो के विजिगीषु की ज्ञातियो का भेदन करना चाहिए ॥१२॥ तथा अपना ज्ञाति भेद अत्यधिक प्रयत्न से रक्षित रखना चाहिए। परितापित की हुई ज्ञातियाँ निरन्तर परितप्त हुआ करती हैं ॥१३॥ तो भी सुगम्भीर चित्त के रखने वाले को उनका दान तथा मान से ग्रहण करना चाहिए। उनके साथ भेद करना तो महान् भयङ्कर हुआ करता है ॥१४॥ राजाओ के द्वारा शत्रुगण ज्ञातियो से भेदन करने के योग्य होते हैं अर्थात् शत्रुओं की ज्ञातियो मे भेद कर देना चाहिए और ऐसा कर देवे कि वे अपनी ज्ञातियो पर अनुग्रह तथा विश्वास बिल्कुल ही नही करे ॥१५॥ भेद के द्वारा भिन्न किये हुए बहुत से शत्रु भी युद्ध म बहुत ही थोडी सेना के द्वारा मारे जा सकते हैं नये शास्त्र के ज्ञाताओ को जो सुसहृत हो उनका भेद कर देवे और रिपुओ का भेद अवश्य ही कर देना चाहिए ॥१६॥

१०२–राजधर्म वर्णन में दान प्रयोग वर्णन

सर्वेषामप्युपायाना दान श्रेष्ठतम मतम् ।
सुदत्तेनेह भवति दानेनोभयलोकजित् ॥१
न सोऽस्ति राजन्! दानेनवशगो यो न जायते ।
दानेन वशगा देवाभवन्तीह्मदानृणाम् ॥२

दानमेवोपजीवन्ति प्रजा सर्वा नृपोत्तम ।
प्रियो हि दानवान् लोके सर्वस्यैवोपजायते ॥३
दानवानचिरेणैव तथा राजा परान् जयेत् ।
दानवानेव शक्नोति संहतान् भेदितु परान् ॥४
यद्यप्यलुब्धगम्भीराः पुरुषाः सागरोपमाः ।
न गृह्णन्ति तथाप्येते जायन्ते पक्षपातिनः ॥५
अन्यत्रापि कृतं दानं करोत्यन्यान्यथा वशे ।
उपायेभ्यः प्रशंसन्ति दानं श्रेष्ठतमं जनाः ॥६
दानं श्रेष्ठतमं पुंसां दानं श्रेष्ठतमं परम् ।
दानवानेव लोकेषु पुत्रत्वे ध्रियते सदा ॥७
न केवलं दानपरा जयन्ति भूर्लोकमेकं पुरुषप्रवीराः ।
जयन्ति ते राजसुरेन्द्रलोकं सुदुर्जयं यो विबुधाधिवासः ॥८

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—ये जितने भी उपाय बतलाये गये हैं उन सब मे दान का उपाय सबसे परम श्रेष्ठ उपाय माना गया है। यहाँ संसार मे अच्छी तरह से दिए हुए दान से मनुष्य उभय लोकों का विजेता हो जाया करता है ॥१॥ हे राजन् ! इस लोक मे ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है जो दान के द्वारा वशवर्ती न हो जावे यह दान तो एक ऐसा उत्तम साधन है कि इस दान से सदा मनुष्यों के वश मे देवगण भी आ जाया करते हैं ॥२॥ हे नृपोत्तम ! सम्पूर्ण प्रजा दान को ही समाश्रित करके उपजीवित रहा करती है। इस लोक मे विप्र तो सबका ही दानवान् उत्पन्न हुआ करता है ॥३॥ दान देने वाला राजा बहुत ही शीघ्र शत्रुओं को जीत लिया करता है और जो दान वाला होता है वही संहत परों को भेद युक्त कर सकता है ॥४॥ यद्यपि ऐसे भी पुरुष होते हैं जो अलुब्ध और गम्भीर सागर के समान हैं जो ग्रहण नहीं किया करते हैं तो भी पक्षपाती हो जाते हैं ॥५॥ अन्यत्र भी किया हुआ दान किस तरह से अन्यों को वश मे करा दिया करता है कि तो मनुष्य उपायों से किए हुए दान को

परम श्रेष्ठ तप कह कर इसकी प्रशंसा किया करते हैं। यह दान ही [illegible] का परम श्रेष्ठ साघन होता है और दान की परम [illegible] है। जो दानवान् होता है वह ही लोक में सदा [illegible] में [illegible] है ॥६, ७॥ जो दान परायण प्रवर पुरुष होते हैं वे [illegible] लोक को ही नहीं जीतते हैं वे तो [illegible] को भी जीत लिया करते हैं जो देवगणो के निवास का [illegible] है ॥८॥

१०३—राजधर्म वर्णन में दण्डोपाय वर्णन

न शक्या ये वशे कर्तुं [illegible] ।
दण्डेन तान् वशीकुर्यात् [illegible] ॥१
सम्यक् प्रणयनं [illegible] ।
धर्मशास्त्रानुमा[illegible] ॥२
तस्य सम्यक् [illegible] ।
वानप्रस्थांश्च [illegible] ॥३
स्वदेशे परदेशे वा [illegible] ।
समीक्ष्य [illegible] ॥४
आश्रमी यदि वा [illegible] ।
नादण्ड्यो [illegible] न
अदण्ड्यान् [illegible] ॥
इह [illegible] ॥६
तस्मात् [illegible] ।
दण्ड[illegible] ॥७

ही अपने वश मे करना चाहिए क्योंकि यह दण्ड ऐसा साधन है जो मनुष्यों को वश मे कर देने वाला होता है ।।१।। राजा के द्वारा इस दण्ड का प्रणयन भली भाँति करना चाहिए और धीमान् किसी सहायक के साथ एवं धर्म शास्त्र के अनुसार ही दण्ड का प्रयोग करे ।।२ । राजा के द्वारा उस दण्ड का प्रणयन जिस प्रकार से करना उचित है वह बहुत अच्छा होना चाहिए । वानप्रस्थ—धर्म के ज्ञाता—ममता से रहित—निष्परिग्रह—अपने या पराये देश मे धर्म शास्त्र के महा पण्डितों को भली भाँति दक्षिण करके दण्ड का प्रणयन करना चाहिए क्योंकि इस दण्ड मे सभी कुछ प्रतिष्ठित होता है ।।३, ।। किसी आश्रम मे संस्थित हो—वर्णी (ब्रह्मचारी) हो—पूज्य—महान् और गुरु हो तो ऐसा पुरुष राजा के द्वारा दण्ड देने के योग्य नहीं हुआ करता है क्योंकि वह तो अपने धर्म मे संस्थित रहता है । निष्कर्ष यह है कि जो भी कोई अपने धर्म के मार्ग पर भली भाँति चल रहा है वह कभी भी दण्डनीय नहीं होता है ।।५।। जो राजा दण्ड न देने के योग्य पुरुषों को दण्डित करता है और दण्ड देने के योग्य हो उनको दण्ड नहीं देता है वह राजा यहाँ पर राज्य से परिभ्रष्ट होकर अन्त मे नरक का गामी होता है ।।६।। इस कारण से विनीत भाव वाले राजा के द्वारा लोकों के ऊपर अनुग्रह करने की कामना से धर्म्म शास्त्र के अनुसार ही दण्ड का प्रणयन करना चाहिए ।। ।।

यत्र श्यामो लोहिताक्षादण्डश्चरति निर्भय ।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधुपश्यति ।।८
बालवृद्धातुरयतिद्विजस्त्रीविधवायत ।
मात्स्यन्याय यन भक्षयरन् यदि दण्ड न पातयेत् ।।६
देवदैत्योरगगणा सर्वे भूतपतत्रिण ।
उत्क्रामयेयुर्मर्यादा यदि दण्ड न पातयत् । १०
एप ब्रह्माभिशापेषु भवप्रहरणेषु च ।
सर्वविधप्रयापेषु व्यवसाय च तिष्ठति ।।११

पूज्यन्ते दण्डिनो देवैन पूज्यन्ते त्वदण्डिन ।
न ब्रह्माण विधातार न पूषायमणावपि ॥१२
यजन्ते मानवा. केचित् प्रशान्ता सवकर्मसु ।
रुद्रमग्निञ्च शक्रञ्च सूर्याचन्द्रमसौ तथा ॥१३
विष्णु देवगणाश्चान्यान् दण्डिन पूजयन्ति च ।
दण्ड शास्ति प्रजा सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ॥१४

जहा पर श्याम लोहिताक्ष दण्ड निर्भय होकर चरण किया करता है वहा पर प्रजा को कोई भी मोह नहीं होता है यदि नेता अच्छी प्रकार स देखता है ॥८॥ यदि दण्ड का पालन नहीं किया जाता है तो बालक-वृद्ध-आतुर-यति-द्विज-स्त्री विधवा इनका म त्स्य न्याय स ही दु ट लो । खा जाया करते हैं । यदि दण्ड का पालन नहीं किया जाता है तो देव, दैत्य, उरग गण सब भूत और पतत्री मर्यादा का उल्लंघन कर देवें । ॥६, १०॥ य ब्रह्माभिशापो म—समस्त प्रहरणों म—सब विक्रम कार्यों म और व्यवसाय म स्थित रहा करता है ॥११ । दण्डी देवों के द्वारा पूजे जाया करते हैं और जो अदण्डी होते हैं व नहीं पूजे जाते हैं । विधाता ब्रह्मा और पूषा अयमा की भी पूजा नहीं करते हैं । समस्त कर्मों म कुछ प्रशान्त मानव यजन किया करते हैं । रुद्र अग्नि इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु, देवगण और अन्य दाण्डिगण की पूजा करते हैं । दण्ड ही प्रजा का शासन किया करता है और दण्ड ही सब प्रजा का अभिरक्षण किया करता है ॥१२, १३ १४॥

दण्ड सुप्तेषु जागर्ति दण्ड धर्म विदुर्बुधा ।
राजदण्डभयादेव पापा पाप न कुर्वते ॥१५
यमदण्डभयादेके परस्परभयादपि ।
एव सासिद्धिके लोके सर्व दण्डे प्रतिष्ठितम् ॥१६
अन्धे तमसि मज्जेयुर्यदि दण्ड न पालयेत् ।
यस्माद्दण्डो दमयति अदण्ड्या दमयत्यति ॥

दमनाद्दण्डनाच्चैव तस्माद्दण्ड विदुर्बुधा ॥१७॥
दण्डस्य भीतैस्त्रिदश समेतैर्भागोधृत शूलधरस्य यज्ञे ।
दत्त कुमारे ध्वजिनीपतित्व वर शिशूनाञ्च भयाद्बलस्य ॥१८

सुप्त हुओ मे दण्ड ही जगता है और बुध लोग दण्ड को ही धर्म जानते हैं। राजा के द्वारा प्राप्त होने वाले दण्ड के भय से ही पापी लोग पाप कम नहीं किया करते हैं ॥१५॥ कुछ लोग यमराज के द्वारा मिलने वाले दण्ड के भय से और पारस्परिक दण्ड के भय से भी पाप कम नहीं करते हैं। इस प्रकार से इस सांसिद्धिक लोक मे सभी कुछ दण्ड मे ही प्रतिष्ठित है ॥१६॥ यदि दण्ड का पातन नहीं किया जावे तो सब लोग अघतम मे मज्जन किया करे। क्योकि दण्ड दमन किया करता है और जो अदण्डनीय है उनका भी दमन किया करता है। दमन करने से और दण्डन करने से बुध लोग इसको दण्ड कहते हैं दण्ड से भीतहुए समेत देवो ने यज्ञ मे भगवान् शूलधर का भाग धृत किया था कुमार मे सेनापतित्व का पद दिया था और बल के भय से शिशुओ का वर दिया था ॥१७, १८॥

१०४--राजधर्म वर्णन में देवसाम्यत्व वर्णन

दण्डप्रणयनार्थाय राजा सृष्ट स्वयम्भुवा ।
देवभागानुपादाय सर्वभूतादिगुप्तये ॥१
तेजसा यदमु कश्चिन्नैव शक्नोति वीक्षितुम् ।
ततो भवति लोकेपु राजाभास्करवत्प्रभु ॥२
यदास्य दर्शने लोक प्रसादमुपगच्छति ।
नयनानन्दकारित्वात्तदा भवति चन्द्रमा ॥३
यथा यम प्रियद्वेष्यौप्राप्ते कालेप्रयच्छति ।
तथा राज्ञा नियन्तव्या प्रजास्तद्धि यमव्रतम् ॥४

वरुणेन यथा पाशैर्बद्धएव प्रदृश्यते ।
तथा पापान्निगृह्णीयाद् व्रतमेतद्धि वारुणम् ॥५
परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यति मानवः ।
तथा प्रकृतयो यस्मिन् स चन्द्रप्रतिमो नृप. ॥६
प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यस्यात्सर्वकर्मसु ।
दुष्टसामन्तहिंस्रेषु राजाग्नेयव्रतेस्थितः ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—भगवान् स्वयम्भू ने दण्ड के प्रणयन के ही लिये राजा का सृजन किया था और इस की सृष्टि देवों के भागों को ग्रहण करके समस्त भूतों की रक्षा के लिए की गयी थी ॥१॥ राजा में बहुत तेज होता है और तेज कोई भी इसको देख नहीं सकता है। इसके अनन्तर ही लोकों में राजा भगवान् भास्कर के ही समान प्रभु हुआ करता है। जिस समय में इस राजा के दर्शन में लोक प्रसाद की प्राप्ति किया करता है उस समय में यह नयनों को आनन्दकारी होने से चन्द्रमा हो जाता है ॥२, ३॥ जिस प्रकार से यमराज प्रिय या द्वेष्य कोई कैसा भी हो काल आने पर वह अपने दूत भेजकर बुला ही लेता है उसी भाँति राजा को भी प्रजा के साथ करना चाहिए और यमव्रत धारण कर लेवे। वरुण के द्वारा जिस तरह पाशों से बद्ध होकर ही दिखलाई दिया करता है उसी भाँति पापों से निगृहीत करे—यही वारुण व्रत कहलाता है ॥४, ५॥ जिस तरह परिपूर्ण चन्द्रमा का दर्शन प्राप्त करके मानव परम हर्षित हुआ करता है उसी भाँति जिसमें प्रकृतियाँ है और वह नृप चन्द्रमा के समान ही होता है। राजा नित्य ही समस्त कर्मों में प्रताप से युक्त अत्यन्त तेजस्वी होता है। दुष्ट सामन्त और हिंसक जीवों मे राजा आग्नेय व्रत में स्थित रहा करता है ॥६, ७॥

यथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिव व्रतम् ।
इन्द्रस्यार्कस्य वातस्य यमस्य वरुणस्य च ॥८
चन्द्रस्याग्ने पृथिव्याश्चतेजोव्रत नृपश्चरेत् ।

वार्षिकांश्चतुरो मासान् यथेन्द्रोप्यभिवर्षति ॥९
तथाभिवर्षेत्स्वराज्यंकामैरिन्द्रव्रतस्मृतम् ।
अष्टौमासान्यथादित्यस्तोयंहरतिरश्मिभिः ॥
तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यकमव्रतं हि तत् ॥१०
प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः ।
तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥११

जिस तरह से सब भूतो का विशेष मरण करने वाले का पार्थिव व्रत होता है। इन्द्र सूर्य वायु यम वरुण, चन्द्र अग्नि और पृथिवी का तेजोव्रत नप को चरण करना चाहिए। वर्षा के चार मासो मे जिस तरह से इन्द्र देव वर्षा किया करते हैं उसी भाँति से राजा को अपने राज्य मे प्रजा की कामनाओ की पूर्ति वर्षा भली भाँति करनी चाहिए—इसी को इन्द्रव्रत कहा जाता है। जिस तरह से आठ मास तक सूर्य अपनी किरणो के द्वारा जल का हरण किया करता है उसी तरह से राजा राष्ट्र से कर का आहरण करे—यही नित्य कर्मव्रत कहा गया है ॥८, ९ १०॥ मारुत समस्त भूतो मे प्रवेश करके जिस तरह से सचरण किया करता है वैसे ही चारो के द्वारा राजा को प्रवेश करना चाहिए यही मारुत व्रत कहा जाता है ॥११॥

१०५—ग्रह यज्ञादि का विधान वर्णन

ग्रहयज्ञ कथं कार्यो लक्षहोम कथं नृपे ।
कोटिहोमोऽपिवा देव ! सर्वपापप्रणाशन ॥१
क्रियते विधिना येन यद्दृष्टं शान्तिचिन्तकैः ।
तत्सर्व विस्तराद्देव ! कथयस्व जनार्दन ! ॥२
इदानीं कथयिष्यामि प्रसङ्गादेव ते नृप ।

राज्ञा धर्मप्रसक्तेन प्रजानाञ्च हितेप्सुना ॥३
ग्रहयज्ञः सदा कार्यो लक्षहोमसमन्वितः ।
नदीनां सङ्गमे चैव सुराणामग्रतस्तथा ॥४
सुसमे भूमिभागे च देवज्ञाधिष्ठितो नृपः ।
गुरुणा चैव ऋत्विग्भिः सार्द्धं भूमि परिक्षयेत् ॥५
खनेत् कुण्डञ्च तत्रैव सुसम हस्तमात्रकम् ।
द्विगुणं लक्षहोमे तु कोटिहोमे चतुर्गुणम् ॥६
युग्मा धृ ऋत्विजः प्रोक्ता अष्टौ वै वेदपारगाः ।
कन्दमूलफलाहारा दधिक्षीराशिनोऽपि वा । ७

महर्षिवर मनु ने कहा—हे देव ! नृपों के द्वारा ग्रह यज्ञ और लक्ष होम किस प्रकार से करना चाहिए ? अथवा कोटि होम भी किस तरह से करे जो कि सभी तरह के प्रबल पापों का विनाश करने वाला होता है । ॥१॥ जिस विधि से यह किया जाता है और जो शान्ति चिन्तक लोगों ने देखा है हे जनार्दन देव ! उसका वर्णन आप विस्तार पूर्वक सब कीजिएगा ॥२॥ मत्स्य भगवान् ने कहा—हे नृप ! अब मैं प्रसङ्ग से ही तुमको कहूँगा । प्रजाओं के हित के चाहने वाले और धर्म में प्रसक्त नृप के द्वारा एक लाख होम से संयुत ग्रह यज्ञ सदा ही करना चाहिए । यह यज्ञ नदियों के सङ्गम में तथा देवों के आगे ही करना चाहिए ॥३, ४॥ दैवज्ञों से अधिष्ठित नृप को समतल भूमि के भाग में गुरुदेव और ऋत्विजों के साथ भूमिका परिक्षय करना चाहिए । वहीं पर सुसम और एक हाथ लम्बा चौड़ा कुण्ड भी खोदना चाहिए । एक लक्ष के होम करने में यह कुण्ड दुगुना बनावे तथा कोटि होम करना हो तो चौगुना बड़ा बनवाना आवश्यक है ॥५, ६॥ दोनों में वेदों के पारगामी आठ ऋत्विज बताये गये हैं जो कि कन्द-मूल और फलों के आहार करने वाले अथवा दधि तथा क्षीर के अशन करने वाले होने चाहिए ॥७॥

वेद्या निधापयेच्चैव रत्नानि विविधानि च ।

सिकतापरिवेषाश्च ततोऽग्निञ्च समिन्धयेत् ॥८
गायत्र्या दशसाहस्रं मानस्तोकेन षड्गुणः ।
त्रिंशद्ग्रहादिमन्त्रेश्च चत्वारो विष्णुदैवतैः ॥९
कूष्माण्डजुहुयात्पञ्च कुसुमाद्यैस्तु षोडश ।
होतव्या दशसाहस्रं बादरैर्जातवेदसि ॥१०
श्रियोमन्त्रेण होतव्या सहस्राणि चतुर्दश ।
शेषाः पञ्चसहस्रास्तु होतव्यास्त्विन्द्रदैवतैः ॥११
हुत्वा शतसहस्रस्तु पुण्यस्नान समाचरेत् ।
कुम्भैः षोडशसङ्ख्यैश्च सहिरण्यैः सुमङ्गलैः ॥१२
स्नापयेद्यजमानन्तु ततः शान्तिर्भविष्यति ।
एवं कृते तु यत्किञ्चिद्ग्रहपीडासमुद्भवम् ॥१३
तत्सर्वं नाशतायाति दत्वा वै दक्षिणां नृप ! ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रधाना दक्षिणा स्मृता ॥१४

जो वेदी निर्मित कराई जावे उसमें अनेक प्रकार के रत्नों को निधापित करे और उस वेदी का सिकता से परिवेष बनवाना चाहिए। इसके अनन्तर उसमें अग्नि को समिन्धित करे ॥८॥ गायत्री से दश सहस्र आहूतियाँ देवे। मानस्तोक से षड्गुण—ग्रह आदि के मन्त्रों से तीस—जिसके विष्णु देवता हैं उन मन्त्रों से चार—कूष्माण्डों से पाँच—कुसुम आदि से षोडश और बादरों से दश सहस्र अग्नि में हवन करना चाहिए। ॥९, १०॥ श्री के मन्त्र से चौदह सहस्र आहूतियों द्वारा हवन करे। शेष जो पाँच सहस्र आहूतियाँ हैं वे इन्द्र दैवत मन्त्रों से हवन करनी चाहिए। ॥११॥ सौ सहस्र आहूतियों का हवन करके फिर पुण्य स्नान करे जो सुमङ्गल—सहिरण्य सोलह संख्या वाले कुम्भों के द्वारा किया जाना चाहिए ॥१२॥ इस तरह से यजमान का स्नपन करावे। इसके अनन्तर शान्ति होगी। इस तरह से करने पर जो कुछ भी कष्ट ग्रहों की पीड़ा से समुत्पन्न होगा वह सब नाश को प्राप्त हो जाता है। हे नृप ! फिर दक्षिणा

देवे। सब प्रकार के प्रयत्नों से अच्छी दक्षिणा देनी चाहिए क्योंकि यज्ञ में दक्षिणा परम प्रधान कही गयी है ॥१३, १४॥

हस्त्यश्वरथयानानि भूमिवस्त्रयुगानि च।
अनडुद्गोशत दद्यादृत्विजा चंव दक्षिणाम् ॥१५
यथा विभवसारन्तु वित्तशाठ्यं न कारयेत्।
मासे पूर्णे समाप्तस्तु लक्षहोमो नराधिप ॥१६
लक्षहोमस्य राजेन्द्र ! विधान परिकीर्तितम्।
इदानी कोटिहोमस्य शृणु त्वं कथयाम्यहम् ॥१७
गङ्गातटेऽथ यमुनासरस्वत्योर्नरेश्वर !।
नमदा देविकायास्तु तटे होमो विधीयते ॥१८
तत्रापि ऋत्विजः कार्या रविनन्दन ! षोडश।
सर्वहोमेतु राजर्षे ! दद्याद्विप्रेऽथ वा धनम् ॥१९
ऋत्विगाचार्यसहितो दीक्षा साम्वत्सरी स्थितः।
चैत्रे मासे तु सम्प्राप्ते कार्तिके वा विशेषत ॥२०
प्रारम्भः करणीयो वा वत्सर वत्सरं नृप !।
यजमानः पयोभक्षी फलाशीच तथानघ ! ॥२१

ऋत्विजों को दक्षिणा में हाथी—अश्व, रथ, मान भूमि, वस्त्र, युग, अनड्वान्, सौ गौ आदि समर्पित करे ॥१५॥ जैसा भी अपना वैभव हो उसी के सार के अनुसार ऋत्विजों को दक्षिणा देवे और धन अतुल होते हुए भी दक्षिणा में कृपणता करने का वित्त शाठ्य नहीं करना चाहिए हे नराधिप ! एक मास पूर्ण हो जाने पर यह एक लक्ष आहूतियों का होम समाप्त होजाया करता है। हेराजेन्द्र ! यह एक लक्ष के होम का पूर्ण विधान कीर्तित कर दिया गया है अब मैं कोटि होम के विधान को कहता हूँ उसका आप श्रवण करिये ॥१५-१७॥ हे नरेश्वर ! गङ्गा के तट पर—यमुना सरस्वती के तीर पर—नर्मदा अथवा देविका नदी के तट पर यह होम करे। हेरविनन्दन! उसमें भी सोलह ऋत्विज नियोजित करने चाहिए। हे

देवे और छठवे मास में सत्तू का भोजन देना चाहिए। सातवें मास में पूपा देनी चाहिए तथा आठवें महीना में घन पूपक का भोजन देवे। ॥ २४। २५॥ नवम मास मे पष्टयोदन दवे और दशम मास मे यव पष्टिका का भोजन देना चाहिए। हे रविनन्दन! एकादश मास मे माष के सहित भोजन देवे। हे रवि कुलोद्वह! द्वादश मास के सम्प्राप्त होने पर-षट्रसों के सहित भक्ष्यों से युक्त सर्व काम करने वाला भोजन द्विजो को देना चाहिए। हे राजेन्द्र! मास-मास मे दक्षिणा भी द्विजों को अवश्य ही देनी चाहिए। अहतवासा और सम्वीत होकर परम शुचि होवे और दिनार्द्ध में होम करना चाहिए॥ २६—२८॥

तस्मात् सदोत्थितैर्भाव्य यजमानैः सह द्विजैः।
इन्द्राद्यादिसुराणाञ्च प्रीणनं सर्वकामिकम्॥२६
कृत्वा सुराणां राजेन्द्र! पशुघातसमन्वितम्।
सर्वदानानि देवानामग्निष्टोमञ्च कारयेत्॥३०
एवं कृत्वा विधानेन पूर्णाहुतिं शते शते।
सहस्रे द्विगुणा देया यावच्छतसहस्रकम्॥३१
पुरोडाशस्ततः साध्या देवतार्थं च ऋत्विजैः।
युक्तो वसन् मानवश्च पुनः प्राशार्चनात् द्विजान्। ३२
प्रीणयित्वा सुरान् सर्वान् पितृ नेव ततः क्रमात्।
कृत्वा शास्त्रविधानेन पिण्डानाञ्च समर्पणम्॥३३
समाप्तेनस्य होमस्यविप्राणामथ दक्षिणाम्।
समाञ्चैवतुलां कृत्वाबद्ध्वा शिवद्वयपुनः॥३४
आत्मानं तोलयेत्तत्र पत्नीञ्चैव द्वितीयकाम्।
सुवर्णेन तथात्मानं रजतेन तथा प्रियाम्॥३५

इसलिये द्विजों के ही साथ में यजमानों को सदा उठना चाहिए। इन्द्रादि देवों का प्रीणन सब कामनाएं पूर्ण करने वाला होता॥ २६॥ हे राजेन्द्र! इस प्रकार से सुरों का पशुघात से समन्वित प्रीणन का

सम्पादन करके समस्त प्रकार के दान देवे तथा देवों का अग्निष्टोम करावे इस रीति से सब सम्पादन करके एक-एक शत पर पूर्णाहुति करनी चाहिए। जब सहस्र आहुतियाँ हो जावें तो यावच्छत सहस्रक द्विगुणा आहुति देनी चाहिये। इसके अनन्तर देवता के लिये ऋत्विजों के द्वारा पुरोडाश साध्य करे तथा युक्त होता हुआ वास करे। पुन: मानवों के द्वारा द्विजों का अर्चन करना चाहिये ॥ २६, ३०, ३१, ३२ ॥ सब सुरों का प्रीणन (प्रसन्नता) करके पितृगण के लिये क्रम से शास्त्र में वर्णित विधान के द्वारा पिण्डों का समर्पण करना चाहिये ॥ ३३ ॥ उस होम की समाप्ति होने पर विप्रों को दक्षिणा के देने की व्यवस्था करनी चाहिये। तुला को समान करके दोनों पलड़ों को भली भाँति बाँध करके उसमें अपने आपको और दूसरी अपनी पत्नी का तोलन करे। सुवर्ण से अपने आपको तोले और चाँदी से अपनी प्रिया का तोलन करे ॥ ३४ । ३५ ॥

तोलयित्वा ददेद्राजा वित्तशाठ्यविवर्जितः।
ददेच्छतसहस्रन्तु रूप्यस्य कनकस्य च ॥३६
सर्वस्व वा ददेत्तत्र राजसूयफल लभेत्।
एतड्कृत्वा विधानेन विप्रांस्ताश्च विसर्जयेत् ॥३७
प्रीयता पुण्डरीकाक्षः सवयज्ञेश्वरो हरिः।
तस्मिस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणित भवेत् ॥३८
एव सर्वोपघाते तु देवमानुपकारिते।
एवं शान्तिस्तवाख्याता या कृत्वा सुकृती भवेत् ॥३९
न शोचेज्जन्ममरणे कृताकृतविचारणे।
सर्वतीर्थेषु यत्स्नान सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ॥४०
तत्फल समवाप्नोति कृत्वा यज्ञत्रयं नृप ! ॥४१

राजा को इस भाँति तोलन करके वित्त की शठता का परित्याग करते हुए दान देना चाहिए ॥ ३६ ॥ अथवा अपना सर्वस्व दान कर देवे

तो वहाँ पर राजसूय यज्ञ के पुण्य-फल की प्राप्ति का लाभ करे। इस रीति से विधान के साथ सब कुछ करके फिर उन सब विप्रों को विसर्जित कर देना चाहिए। उस समय मे यह प्रार्थना करनी चाहिए—भगवान् समस्त यज्ञो के ईश्वर श्री हरि पुण्डरीकाक्ष प्रसन्न होवें। उन प्रभु के पूर्णतया सन्तुष्ट हो जाने पर यह सम्पूर्ण जगत् तुष्ट हो जाया करता है और उनके प्रीणित होने पर सब प्रीणित हो जाते हैं। इस प्रकार से देवमानुषो के द्वारा कारित सर्वोपघात होने पर इस रीति से आपकी शान्ति बताई गई है जिसको करके तुम सुकृति हो जाओगे। जन्म और मरण के विषय मे कुछ चिन्ता नहीं करे तथा कृत एव अकृत क विषय में भी शोच न करे। हे नृप! समस्त तीर्थों मे स्नान करने का जो पुण्य-फल होता है और सब यज्ञो मे जो फल होता है वह सम्पूर्ण फल ये तीन यज्ञ करके ही मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥ ३७ । ३८ ॥ ३९ । ४० । ४१ ॥

१०६—यात्राकाल विधान वर्णन

इदानी सर्वधर्मज्ञ ! सर्वशास्त्रविशारद !।
यात्राकालविधानमे कथयस्व महीक्षिताम् ॥१
यदा मन्येत नृपतिराक्रन्देन बलीयसा।
पार्ष्णिग्राहाभिभूतोऽय तदा यात्रा प्रयोजयेत् ॥२
दुष्टायोधा भृता भृत्या साम्प्रतञ्चबलमम।
मूलरक्षासमर्थोस्मि तदायात्रा प्रयोजयेत् ॥३
अशुद्धपार्ष्णिनृपतिनतु यात्रा प्रयोजयेत्।
पार्ष्णिग्राहाधिक सैन्यमूले निक्षिप्यचव्रजेत् ॥४
चैत्र्या वा मार्गशीर्ष्या वा यात्रा यायान्नराधिपः।
चैत्र्या पश्येच्च नैदाघ हन्ति पुष्टञ्च शारदीम् ॥५

विद्विष्टनायक सैन्यं तथा भिन्न परस्परम् ।
व्यसनाशक्तनृपति बलं राजाभियोजयेत् ॥१२
सैनिकानां न शास्त्राणिस्फुरन्त्यङ्गानियत्रच ।
दुःस्वप्नानिचपश्यन्तिबलन्तदभियोजयेत् ॥१३
उत्साहबलसम्पन्नः स्वानुरक्तबलस्तथा ।
तुष्टपुष्टबलो राजा परानभिमुखो व्रजेत् ॥१४

दिव्यान्तरिक्ष और क्षिति से समुत्पन्न उत्पातों से परम पीडित—षडक्ष पीडा से सन्तप्त तथा ग्रहों से पीडित—जलती हुई उल्का जिस दिशा को जाती है—भूकम्पोल्का जिस दिशा को जाती है और केतु को प्रसूत किया करती है। जहाँ पर निर्घात गिरता है उसी दिशा को राजा को गमन करना चाहिये। उस नृप को बल--व्यसन मे युक्त—दुर्भिक्ष से पीडित और जिसके अन्दर कोप समुत्पन्न हो गया हो ऐसे शत्रु पर शीघ्र ही चढाई नृप को कर देनी चाहिए। जिसमे यूका और मक्षिकाऐं बहुत हो-अधिक पङ्कयुक्त—बिल-नास्तिक—भिन्न मर्यादा वाला—मङ्गलवादी—अपेत प्रकृति वाला और निस्सार को जीत लेना चाहिए॥ ७, ८, ९, १०, ११॥ जिस राजा की सेना ऐसी हो कि उसके नायक से विद्वेष हो और जो परस्पर मे भिन्न हो—जिस राजा की आसक्ति व्यसनो मे हो ऐसे बलहीन नृप के साथ अभियोग करना चाहिए अर्थात् युद्ध करे। जिसके सैनिको के पास शस्त्र न हो और जिसमे अङ्ग स्फुरित होते हो—जो बुरे स्वप्न देखते हो ऐसो पर बल का अभियोजन करना चाहिए। उत्साह और बल से युक्त—जिसकी सेना पूर्ण अनुराग वाली हो—तुष्ट ...ल वाला राजा ही अपने शत्रुओं से युद्ध करने को अभिमुख ... १३, १४॥

...रीरस्...णे ...न्ये तथा दुःस्वप्ननाशने ।
...ये जाते शत्रुपुर व्रजेत् ॥१५
...गहेष्वनुगुणेषु च ।

एतदेव विपर्यस्त मार्गशीर्ष्या नराधिप ।
शत्रोर्वा व्यसने यायात् कालएव सुदुर्लभ ॥६
दिव्यान्तरिक्षक्षितिजैरुत्पातै पीडित परम् ।
षडृक्षपीडासन्तप्त पीडितञ्च तथा ग्रहै ॥७

महर्षि मनु ने कहा—हे सब धर्मज्ञ ! आप तो सभी शास्त्रो के महान् मनीषी है इस समय मे राजाओ की यात्रा–काल का जो कुछ विधान हो उसे आप कृपा करके मुझे बतलाइये ।। १ ।। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—जिस समय मे नृपति बलीयान् आक्रन्द से युक्त मान लेवे उस समय मे पार्ष्णिग्राह से अभिभूत इसको तीव्र यात्रा की प्रयोजना करनी चाहिए । दुष्ट योधा—भृत भृत्य है इस प्रकार से इस समय मे म । बल विद्यमान है । मैं इस समय मे मूल रक्षा मे समर्थ हूँ । उसी समय मे यात्रा को प्रयोजित करना चाहिए ।। २ । ३ ॥ जो नृपति अशुद्ध पार्ष्णि वाला हो उस यात्रा प्रयोजित नही करनी चाहिए । पार्ष्णिग्राह से अधिक सैन्य को मूल मे निक्षिप्त करके गमन करे । ४ ।। नराधिप को चैत्री अथवा मार्गशीर्षी पूर्णिमा मे यात्रा के लिये गमन करना चाहिए । चैत्री मे निदाघ के द्रव्य को देखे और शारदी पृष्टि का हनन करता है ५। यह ही मार्गशीर्षी मे विपर्यस्त होता है । नराधिप शत्रु के व्यसन मे गमन करे क्योंकि यह काल ही सुदुर्लभ होता है ।।६।।

ज्वलन्ती च तथवोल्का दिश याञ्च प्रपद्यते
भूकम्पोल्का दिशय ति याञ्चकतु प्रसूयते ॥८
निर्घातश्च पतेद्यत्र ता यायाद्वसुधाधिप ।
स बल व्यसनापेत तथा दुर्भिक्षपीडितम् ॥९
सम्भूतान्तरकोपञ्च क्षिप्र प्रायादरि नृप ।
यूकामाक्षीकबहुल बहुपङ्क तथा विलम् ॥१०
नास्तिक भिन्नमर्याद तथा मङ्गलवादिनम् ।
अपतप्रकृतिञ्चाव नि सारञ्च तथा जयत् ॥११

प्रश्नकाले शुभे जाते परान् यायान्नराधिप ॥१६
एवन्तु दैवसम्पन्नस्तथा पौरुषसंयुत ।
देशकालोपपन्नान्तु यात्रा कुर्यान्नराधिप ॥१७
स्थले नक्रस्तु नागस्य तस्यापि सजले वशी ।
उलूकस्यनिशि ध्वाङ्क्ष सचतस्यदिवावशे ॥१८
एव देशञ्च कालञ्च ज्ञात्वा यात्रा प्रयोजयेत् ॥१६
पदातिनागबहुला सेना प्रावृषि योजयेत् ।
हेमन्ते शिशिरे चैव रथवाजिसमाकुलाम् ॥
खरोष्ट्रबहुला सेना तथा ग्रीष्मे नराधिप ॥२०॥
चतुरङ्गबलोपेता वसन्ते वा शरद्यथ ।
सेना पदातिबहुला यस्य स्यात्पृथिवीपते । २१
अभियोज्यो भवेत्तेन वा शत्रु विषममाश्रित ।
गम्ये वृक्षावृते देशे स्थित शत्रुस्तथैव च । २२

परम घ य अर्थात् अनुकूल शरीर के स्फुरण होने पर, दु स्वप्नो के नाश होने पर और अच्छे निमित्त एव शकुनो के होने पर ही राजा को अपने शत्रु के नगर मे प्रवेश करना चाहिए छैं नक्षत्रो के शुद्ध होने पर तथा ग्रहों के बिल्कुल अपने अनुकूल हो जाने पर ही जब प्रश्न काल परम शुभ होवे तभी राजा को शत्रुओ के ऊपर चढाई करनी चाहिए। इस प्रकार से दैव (भाग्य) से सुसम्पन्न होकर पौरुष से भी पूर्ण समन्वित राजा को देश तथा काल स उपप न यात्रा क नी चाहिए। स्थल मे नाग और सजल देश मे नक्र के वश मे होने पर तथा रात्रि में उलूक एव दिन मे ध्वाङ्क्ष (कौआ) के वशगत होने पर ही इस प्रकार से देश तथा काल का ज्ञान प्राप्त करके राजा को अपनी यात्रा करनी चाहिए ॥ १५। १६। १७। १८। १६॥ वर्षा ऋतु म ऐसी सेना को तैयार करे जिसमे पदाति सैनिक अधिक हो। हेम त और शिशिर ऋतु मे अधिक रथो एव अश्वों की समाकुलता होनी चाहिये। नराधिप को ग्रीष्म ऋतु मे खर

कर तथा दैव त्रिकाल को भी जानकर काल के वेत्ता ज्योतिषियों के मत से पूर्ण रूप से जानकर एवं द्विज और मन्त्र वेत्ताओं के साथ भली भाँति चिन्तन करके ही यात्रा में गमन तथा शत्रु पर अभियोजन करना चाहिए ॥ २४–२७ ॥

१०७–अङ्ग स्फुरण विचार

ब्रूहि मे त्वं निमित्तानि अशुभानि शुभानि च ।
सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठ ! त्वं हि सर्वविदुच्यते ॥१
अङ्गदक्षिणभागे तु शस्तं प्रस्फुरणम्भवेत् ।
अथ शस्तं तथा वामे पृष्ठस्य हृदयस्य च ॥२
अङ्गानां स्पन्दनञ्चैव शुभाशुभविचेष्टितम् ।
तन्मे विस्तरतो ब्रूहि येन स्यात्तद्विधो भुवि ॥३
पृथ्वीलाभो भवेन्मूर्ध्नि ललाटे रविनन्दन ! ।
स्थानं विवृद्धिमायाति भ्रूनसोः प्रियसङ्गमः ॥४
भृत्याप्तिश्चाक्षिदेशे दृग्प्रान्ते धनागमः ।
उत्कण्ठोपगमो मध्ये दृष्टेराजन् ! विचक्षण ॥५
दृगन्धने सङ्गरे च जयं शीघ्रमवाप्नुयात् ।
योषिद्भोगोऽपाङ्गदेशे श्रवणान्ते प्रियाश्रुतिः ॥६
नासिकायां प्रीतिसौख्यप्रजाप्तिरधराष्ठजे ।
कण्ठे तु भोगलाभः स्याद्भोगवृद्धिरथांसयोः ॥७

मनु ने कहा—हे समस्त धर्म धारियों में परम श्रेष्ठ देव ! आपको तो सभी कुछ का ज्ञाता कहा जाता है । अतएव अब आप कृपा करके अशुभ निमित्त मुझे बतलाइए और जो परम अशुभ हों उनको भी बतलाने की कृपा कीजिए ॥१॥ मत्स्य भगवान् ने कहा—मानव के अङ्ग

विपर्ययेण विहिता सर्वस्त्रीणां फलागमः ॥
दक्षिणेऽपि प्रशस्तेऽङ्गे प्रशस्तं स्याद्विशेषतः ॥१२
अतोऽन्यथा सिद्धिप्रजल्पनात्तु फलस्य शस्तस्य च निन्दितस्य ।
अनिष्टचिह्नोपगमे द्विजानां कार्यं सुवर्णेन तु तर्पणंस्यात् ॥१३

बाहुओं के प्रस्फुरण से सुहृत का स्नेह और हाथ में होने से धन का समागम हुआ करता है। पृष्ठ में होने से तुरन्त ही पराजय होती है तथा वक्षः स्थल मे स्पन्दन से जय हुआ करता है। कुक्षियों मे होने से प्रीति उपदिष्ट की गई है और स्तन में स्पन्दन से स्त्री के प्रजनन हुआ करता है। नाभि देश मे प्रस्फुरण होने से स्थान का भ्रंश हुआ करता है तथा अन्त्र में होने से धन का आगम होता है। जानुओं की सन्धि में प्रस्फुरण होने से परों से सन्धि होती है जो कि बहुत बलवान् हुआ करते हैं। हे नृप! हे रविनन्दन! दिशा के एक देश में होने से नाश होता है तथा जङ्घा में स्पन्दन हो तो उत्तम स्थान का लाभ होता है और पैरो मे होने से लाभ के सहित मार्ग का गमन होता है। हे नृप! पादतल मे होने से लाञ्छन लगता है और स्फुरण की ही भाँति फिर कभी जान लेना चाहिए। यह पुरुष के विषय मे ही कहा गया है स्त्रियों के विषय मे विपर्यय से फलागम हुआ करता है। प्रशस्त अङ्ग दक्षिण मे भी विशेष रूप से प्रशस्त होता है इसलिए अन्यथा सिद्धि के प्रजल्पन से प्रशस्त और निन्दित फलका अनिष्ट चिन्हों क उपगम होने पर द्विजों का सुवर्ण के द्वारा तर्पण करना चाहिए ॥८–१३॥

१०८—स्वप्न दर्शन वर्णन

स्वप्नाख्यान कथ देव! गमने प्रत्युपस्थिते।
दृश्यन्तेविविधा काराःकथन्तेषांफलभवेत् ॥१

इदानीं कथयिष्यामि निमित्तं स्वप्नदर्शने ।
नाभिं विनान्यगात्रेषु तृणवृक्षसमुद्भवः ॥२
चूर्णनं मूर्ध्नि कांस्यानां मुण्डनं नग्नता तथा ।
मलिनाम्बरधारित्वमभ्यङ्गः पङ्कदिग्धता ॥३
उच्चात् प्रपतनञ्चैव दोलारोहणमेव च ।
अर्जनं पक्वलोहानां हयानामपि मारणम् ॥४
रक्तपुष्पद्रुमाणाञ्च मण्डलस्य तथैव च ।
वराहर्क्षखरोष्ट्राणां तथा चारोहणक्रिया ॥५
भक्षणं पक्वमांसानां तैलस्य कृसरस्य च ।
नर्तनं हसनञ्चैव विवाहो गीतमेव च ॥६
तन्त्रीवाद्यविहीनानां वाद्यानामभिवादनम् ।
स्रोतोऽवगाहगमनं स्नानं गोमयवारिणा ॥७

महा महर्षि मनु ने कहा—हे देव ! कहीं पर गमन के प्रत्युपस्थित होने पर स्वप्न का प्राख्यान किस प्रकार से हुआ करता है ? ये स्वप्न तो अनेक एवं विभिन्न आकार वाले दिखलाई दिया करते हैं फिर उन सबका फल किस प्रकार से हुआ करता है ॥ ॥ श्री मत्स्य देव ने कहा—इस समय में मैं स्वप्नों के दर्शन में जो निमित्त होता है उन ही बतलाता हूँ। केवल एक नाभि को छोड कर शरीर के अन्य किसी भी अङ्ग में तृण और वृक्षों की समुत्पत्ति—मस्तक का चूर्ण हो जाना—कांस्यों का मुण्डन तथा नग्नता—मलिन वस्त्रों का धारण करना, अभ्यङ्ग, पङ्क से दिग्धता, ऊँचे से पतन होना, दोला पर समारोहण करना, पक्क लोहों का अर्जन, हयों का मारण रक्त पुष्प वाले द्रुमों के मण्डल का तथा वराह रीछ, खर और उष्ट्रों के ऊपर आरोहण करना—पके हुए मांस का भक्षण करना तथा तैल और कृसर का खाना, नाचना, हसना, विवाह, गीत, तन्त्री के द्वारा बजने वाले वाद्यों से रहित अन्य वाद्यों का अभिवादन करना स्रोत का अवगाहन गमन करना, गोमयवारि से स्नान करना आदि ये सब दुःस्वप्न होते हैं ॥२–७॥

पङ्कोदकेन च तथा महीतोयेन वाऽप्यथ ।
मातुः प्रवेशो जठरे चितारोहणमेव च ॥८
शक्रध्वजाभिपतनं पतनं शशिसूर्ययोः ।
दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पातानाञ्च दर्शनम् ॥९
देवद्विजातिभूपालगुरूणां क्रोधएव च ।
आलिङ्गनं कुमारीणां पुरुषाणाञ्च मैथुनम् ॥१०
हानिश्चैव स्वगात्राणां विरेकवमनक्रिया ।
दक्षिणाशाभिगमनं व्याधिनाभिभवस्तथा ॥११
फलापहानिश्च तथा पुष्पहानिस्तथैव च ।
गृहाणाञ्चैव पातश्च गृहसम्मार्जनन्तथा ॥१२
क्रीडा पिशाचक्रव्यादवानरर्क्षनरैरपि ।
परादभिभवश्चैव तस्माच्च व्यसनोद्भवः ॥१३
काषायवस्त्रधारित्वं तद्वत् स्त्रीक्रीडनन्तथा ।
स्नेहपानावगाहौ च रक्तमाल्यानुलेपनम् ॥१४

पङ्क के मिश्रित जल में स्नान, मही तोय से स्नान माता के उदर में प्रवेश करना, चिता पर समारोहण, शक्र ध्वज का गिरना, चांद और सूर्य का पतन, दिव्यान्तरिक्ष भौमों का और उत्पातों का दर्शन, देव, द्विजाति, राजा और गुरु का क्रोध, कुमारियों का आलिङ्गन, पुरुष मैथुन, अपने गात्रों की हानि, विरेचन और वमन, दक्षिण दिशा की ओर गमन करना, व्याधि से अभिभव, फल की और हानि, पुष्प हानि, गृहों का गिरना, गृह का सम्मार्जन, पिशाच राक्षस, वानर, शूकर और नरों के साथ क्रीडा करना, दूसरे से अभिभव और उससे ही व्यसन की उत्पत्ति, गेरुआ वस्त्रों का धारण करना, स्त्री के साथ क्रीडन, स्नेह पान और अवगाहन तथा रक्त माल्य और अनुलेपन करना ये सब दुःस्वप्न होते हैं ॥८-१४॥

एवमादीनि चान्यानि दुःस्वप्नानि विनिर्दिशेत् ।
ऐषा सङ्कीर्तनं धन्यं भूयः प्रस्वापनं तथा ॥१५
कल्कस्नानन्तिले होमो ब्राह्मणानाञ्च पूजनम् ।
स्तुतिश्च वासुदेवस्य तथा तस्यैव पूजनम् ।१६
नागेन्द्रमोक्षश्रवणं ज्ञेयं दुःस्वप्ननाशनम् ।
स्वप्नास्तु प्रथमे यामे सम्वत्सरविपाकिनः ॥१७
षड्भिर्मासैर्द्वितीये तु त्रिभिर्मासैस्तृतीयके ।
चतुर्थे मासमात्रेण पश्यतो नात्र संशयः ॥१८
अरुणोदयवेलायां दशाहेन फलम्भवेत् ।
एकस्यां यदि वा रात्रौ शुभं वा यदिवाशुभम् ॥१९
पश्चाद्दृष्टं यस्तत्रास्यपाकं विनिर्दिशेत् ।
तस्माच्छोभनके स्वप्ने पश्चात्स्वप्नोनपश्यति ॥२०

इसी प्रकार के तथा अन्य भी अन्य दुःस्वप्न हुआ करते हैं—ऐसा ही विनिर्देश करना चाहिए। ऐसे दुःस्वप्नों का भली भाँति कथन तथा ऐसे स्वप्न देखकर फिर स्वपन करना श्रेष्ठ होता है इसका फल फिर बुरा नहीं रहा करता है। कल्क से स्नान तिलों से होम और ब्राह्मणों का पूजन, भगवान् वासुदेव का स्तवन तथा उनका ही पूजन और नागेन्द्र मोक्ष की कथा का श्रवण करना—इनसे दुःस्वप्नों में होने वाले कष्ट का नाश हो जाया करता है। स्वप्न यदि प्रथम ही याम हावे तो उसका फल एक वर्ष तक विपाक की दशा में पहुँचता है। दूसरे प्रहर में स्वप्न हो तो उसका फल छैं मास में होता है। तीसरे रात्रि के प्रहर में स्वप्न देखे तो तीन मासों में फल हुआ करता है और चौथे प्रहर में स्वप्न जो दिखाई देता है उसका फल एक मास में हुआ करता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है। यदि अरुणोदय के समय में स्वप्न हो तो दस दिन में फल होता है। एक ही रात्रि में शुभ और अशुभ स्वप्न हो तो जो पीछे दिखाई देता है उसी का फल विनिर्दिष्ट करना चाहिए। इसी कारण से यदि बाद अच्छे

स्वप्न हो और पीछे स्वप्न नहीं देखता है तो अच्छा है अतएव अच्छा स्वप्न देखकर फिर सोना ही नहीं चाहिए ।।१५-२०।।

शैलप्रासादनागाश्ववृषभारोहणं हितम् ।
द्रुमाणां श्वेतपुष्पाणां गमने च तथा द्विज ।।२१
द्रुमतृणोदभवो नाभौ तथैव बहुबाहुता ।
तथैव बहुशीर्षत्वं फलितोद्भव एव च ।।२२
सुशुक्लमाल्यधारित्वं सुशुक्लाम्बर धारिता ।
चन्द्रार्कताराग्रहणं परिमार्जनमेव च ।।२३
शक्रध्वजालिङ्गनञ्च तदुच्छ्रायक्रिया तथा ।
भूम्यम्बुधीनां ग्रसनं शत्रूणाञ्च वधक्रिया ।।२४
जयो विवादे द्यूते च संग्रामे च तथा द्विज ! ।
भक्षणञ्चार्द्रमांसानां मत्स्यानां पायसस्य च ।।२५
दर्शनं रुधिरस्यापि स्नानं वा रुधिरेण च ।
सुरारुधिरमद्यानां पानं क्षीरस्य चाथवा ।।२६
अन्त्रैर्वा वेष्टनं भूमौ निर्मलं गगनं तथा ।
मुखेन दोहनं शस्तं महिषीणां तथा गवाम् । २७
सिंहानां हस्तिनीनाञ्च वडवानां तथैव च ।
प्रसादो देवविप्रेभ्यो गुरुभ्यश्च तथा शुभः ।।२८

अब अच्छे स्वप्नों के विषय में बतलाया जाता है—नागेन्द्र, शैल, अश्व, प्रासाद और वृषभ का समारोहण हितकर हुआ करता है। हे द्विज ! श्वेत पुष्पों वाले द्रुमों का गमन में आरोहण भी शोभन होता है। नाभि में द्रुम और तृणों का उद्भव तथा बहुत सी बाहुओं की उत्पत्ति हो जाना—बहुत सारे मस्तकों का होना और फलितोद्भव, सुन्दर शुक्ल मालाओं का धारण करना शुक्ल वस्त्रों का धारण, चन्द्र, सूर्य और तारा का ग्रहण, परिमार्जन, शक्र की ध्वजा का आलिङ्गन, उसके उच्छ्राय की क्रिया, भूमि तथा अम्बुधियों का ग्रसन, शत्रुओं के वध करने का कर्म,

विवाह, संग्राम और द्यूत मे जीत, आर्द्र माँस का भक्षण, मत्स्यों का भक्षण, पायस का खाना, रुधिर का दर्शन, रुधिर से स्नान, सुरा, रुधिर मद्य का पान करना अथवा क्षीर का पान, आँतो के द्वारा वेष्टन जो भूमि मे हो, निर्मल गगन, मुख के द्वारा भैंसों तथा गौओं का दोहन प्रशस्त होना है। सिंहनियों का, हथिनियों का और बड़वाओं का भी दोहन प्रशस्त है। देव तथा विप्रो की प्रसन्नता और गुरु वर्ग का प्रसाद भी शुभ होता है। ॥२१-२८॥

अम्भसा त्वभिषेकस्तु गवा शृङ्गाश्रितेन वा।
चन्द्राद् भ्रष्टेन वा राजन्! ज्ञेया राज्यप्रदो हि स. ॥२६
राज्याभिषेकश्च तथाच्छेदन शिरसस्तथा।
मरण वह्निदाहश्च वह्निदाहो गृहादिषु ॥३०
लब्धिश्च राज्यलिङ्गाना तन्त्रीवाद्याभिवादनम्।
तथोदकाना तरणं तथा विषमलङ्घनम् ॥३१
हस्तिनीवडवानाञ्च गवाञ्च प्रसवो गृहे।
आरोहणमथाश्वानां रोदनञ्च तथाशुभम् ॥३२
वरस्त्रीणां तथाल्लाभस्तथालिङ्गनमेव च।
निगडैर्बन्धन धन्यं तथा विष्ठानुलेपनम् ।३३
जीवितां भूमिपालाना सुहृदामपि दर्शनम्।
दर्शनं देवतानाञ्च विमलाना तथाम्भसाम् ॥३४
शुभान्यथैतानि नरस्तुदृष्ट्वा प्राप्नोत्ययत्नाद्ध्रुवमर्थलाभम्।
स्वप्नानि वै धर्मभृता वरिष्ट! व्याधेर्विमोक्षञ्च तथाऽऽतुरोऽपि। ।३५

जल के द्वारा अभिषेक का होना अथवा गौओं के शृङ्गों के आश्रित जल के द्वारा अभिषिञ्चन होना, हे राजन्! चन्द्र से भ्रष्ट के द्वारा अभिषिचन का होना तो राज्य को प्रदान करने वाला ही जानना चाहिए ।।२६।। राज्याभिषेक का होना, शिर का छेदन हो जाना, मरण, अग्निका दाह, गृह आदि ये अग्नि के द्वारा दाह का हो जाना, राज्य के

चिन्हों की प्राप्ति का हो जाना, तन्त्री वाले वाद्यों का अभिवादन होना, जलों में तैरना, विषम स्थान का लङ्घन करना, गृह में हथिनी, वडवा तथा गौओं का प्रसव होना, अश्व पर समारोहण करना शुभ होता है। अच्छी स्त्रियों का लाभ करना तथा वरस्त्रियों का समालिङ्गन करना, निगडों के द्वारा बन्धन का होना विष्ठा से अनुलेपन होना यह सब धन्य एवं शुभ होता है। जीवित भूमिपालों का तथा सुहृदों का दर्शन प्राप्त करना देव का दर्शन करना विमल जलों का देखना ये सब परम शुभ स्वप्न हुआ करते हैं। मनुष्य इन ऐसे शुभ स्वप्नों को देख कर बिना ही यत्न के किये ध्रुवरूप से अत्र काल में प्राप्त किया करता है। हे धर्म-धारियों में वरिष्ठ! आतुर हो कर भी व्याधियों का विमोक्ष होना शुभ स्वप्न होता है ॥३०-३५॥

१०६–यात्रा के समय मङ्गल-अमङ्गल सूचक शकुन वर्णन

गमनं प्रति राजान्तु समुत्थादशने च रिपुम्।
प्रदाग्ताश्चैव सम्भाव्य सर्वानताश्चकीर्तय ॥१
औषधानि त्वयुक्तानिधान्य कृष्णञ्चवर्द्धवेत्।
कार्पासिश्चतृण राजन्! शुष्क गोमयमेव च ॥२
इन्धनञ्च तथाङ्गार गुड तैल तथा शुभम्।
अभ्यक्त मलिनं मुण्डन्तथानग्नञ्च मानवम् ॥३
मुक्तकेश रजातञ्च कापायाम्बरधारिणम्।
उन्मत्तन्तथा सत्त्व दीनञ्चाथ नपुंसकम् ॥४
अय पङ्कन्तथा चर्म केशवन्धनमेव च।
तथैवाद्धृतसाराणि पिण्याकादीनि यानि च ॥५
चण्डालश्वपचाद्यैन राजबन्धनपालका।

वधकाः पापकर्माणो गर्भिणी स्त्री तथैवच ॥६
तुषभस्मकपालास्थिभिन्नभाण्डानि यानि च ।
रक्तानि चैव भण्डानि मतशार्ङ्गिकमेवच ॥७
एवमादीनि चान्यानि अशस्तान्यभिदर्शने ।
अशस्ता वाद्यशब्दश्च भिन्नभैरवजर्जर ॥८

महर्षि मनु ने कहा—हे भगवान् ! जिस समय में राजा लोग गमन किया करते हैं तो सम्मुख में दर्शन करने में क्या-क्या प्रशस्त हुआ करते हैं यह बतलाकर इन सम्पूर्ण शकुनों का वर्णन कृपा करके करिये। ॥१॥ श्री मत्स्य भगवान ने कहा—हे राजन् ! अयुक्त औषध कृष्ण धान्य कपास, तृण, शुष्क गोमय ईंधन अङ्गार, गुड तैल ये सब शकुन शुभ हुआ करते हैं। अभ्यक्त किया हुआ, मलिन, मुण्ड नग्न मानव, कर्णों को छुये हुए रखने वाला, रोग से आर्त्त काषाय वस्त्रों के धारण करने वाला, उन्मत्त मत्त्व, दीन नपुंसक, लोहापक चर्म, केशबन्धन, पिण्याक आदि सार वस्तुएं बन्धन पालक, वधक, पाप कर्म करने वाले, गर्भिणी स्त्री तुष, भस्म कपाल अस्थि भिन्न भाण्ड रक्त वर्ण के भाण्ड, मृत, शार्ङ्गिक इस प्रकार से इत्यादि अभिदर्शन में अशस्त होते हैं। वाद्य शब्द और भिन्न भैरव जर्जर शब्द भी अशस्त हुआ करता है ॥२-८॥

पुरतः शब्द एहीति शस्यते न तु पृष्ठतः ।
गच्छेति पश्चात् प्रशस्तो ! पुरस्तात्तुविगर्हितः ॥९
क्व यासि तिष्ठमा गच्छकिन्तेतत्र गतस्य तु ।
अन्ये शब्दाश्च ये निष्ठास्तेविपत्तिकराअपि ॥१०
ध्वजादिषु तथास्थान क्रव्यादानां विगर्हितम् ।
स्खलनं वाहनानाञ्च वस्त्रसङ्गस्तथैवच ॥११
निर्गतस्य तु द्वारादौ शिरसश्चाभिघाततः ।
छत्रध्वजानां वस्त्राणां पतनञ्च तथा शुभम् ॥१२
दृष्टे निमित्ते प्रथमममङ्गल्यविनाशनम् ।

केशव पूजयेद्विद्वान् स्तवेन मधुसूनम् ।।१३
द्वितीये तु ततोदृष्ते प्रतीपे प्रविशेद्गृहम् ।
अथेष्टानि प्रवक्ष्यामि मङ्गलानि तथाऽनघ ! ।।१४

आगे की ओर स आओ—यह शब्द शस्त होता है पीछे की ओर से प्रशस्त नहीं होता है । हे धर्मज्ञ पीछे की ओर से 'गच्छ अर्थात् जाओ —यह शब्द शस्त कहा गया है जो कि सामने गर्हित माना गया है । 'कहा जाते हो – रुरजाओ – यहा पर जाने से तुमको क्या प्रयोजन है'—य इस तरह के तथा ऐसे ही अन्य शब्द जो होते हैं वे विपत्ति करने वाले भी हुआ करते हैं ।।६ १०।। क्रव्यादों राक्षसों का ध्वज आदि मे स्थान गर्हित हुआ करता है । वाहनों का स्खलन वस्त्र सङ्ग द्वार आदि मे निर्गमन करन वाले के शिर का अवघात तथा छत्र, ध्वज और वस्त्रों का पतन भी शुभ होता है । प्रथम मे ही निमित्त के देखने पर अमङ्गल्य का विनाश होता है । विद्वान् पुरुष का कर्त्तव्य है कि भगवान् केशव का पूजन करे और मधुसूदन प्रभु का स्तवन करना चाहिये ।।६–१३।। हे अनघ ! फिर द्वितीय प्रतीप क देखन पर गृह मे प्रवेश कर लना चाहिए । इसके पश्चात् इष्ट मङ्गलो क विषय म मैं वणन करूगा ।।१४।।

देवता सुमनस श्रेष्ठा पूर्णकुम्भास्तथैव च ।
जलजा पक्षिणश्चवमास मत्स्याश्चपथिव ! ।।१५
गावस्तुरङ्गमा नागा बद्ध एक पशुरवज ।
त्रिदशा सुहृदो विप्रा ज्वलितश्च हुताशन ।।१६
गणिका च महाभाग ! दूर्वा चाद्रञ्च गोमयम् ।
रुक्ममरूप्यन्तथा ताम्रं सर्वरत्नानि चाप्यथ ।।१७
औषधानिव धमज्ञ ! यवा सिद्धार्थकास्तथा ।
नृवाह्यमान यानञ्च भद्रपीठन्तथैव च ।।१८
खड्ग छत्र पताका च मृदश्चायुधानि च ।

घृत दधि पयश्चैव फलानिविविधानि च ।
स्वस्तिक वर्द्धमानञ्च नन्द्यावर्त सकौस्तुभम् ॥२०
वादित्राणा सुख शब्द गम्भीर सुमनोहर ।
गान्धारषड्जऋषभा ये च शस्तास्तथा खरा. ॥२१

हे पार्थिव ! श्वेत पुष्प परम श्रेष्ठ होते हैं तथा पूर्ण कुम्भ भी परम शुभ हुआ करते हैं । जलज—पक्षीगण—मांस—मत्स्य—गौऐं—तुरङ्गम—नाग—बद्ध एक पशु—अज—त्रिदश—सुहृद विप्र—जलती हुई अग्नि—गणिका—ताम्र और हे महाभाग ! सब प्रकार के रत्न—हे धर्म्मज्ञ ! दूर्वा—आर्द्र गोमय—सुवर्ण-रूप्यक-औषध—यव-सिद्धार्थक-मनुष्यों के द्वारा वाह्यमान यान—भद्रपीठ—खड्ग—चक्र—पताका—मृत्तिका—आयुध—सम्पूर्ण—राजा के चिह्न जो रुदित से रहित होवे । घृत—दधि—पय—विविध भाँति के फल—स्वस्तिक—वर्द्धमान-नन्द्यावर्त्त—कौस्तुभ—वादित्रों का सुखकर शब्द जो गम्भीर एवं मनोहर हो—गान्धार, षड्ज—ऋषभ जो कि शस्त्र तथा खर हैं ॥ १५, १६, १७ १८, १९, २०, २१ ॥

वायु सशर्करोरूक्ष सर्वत्र समुपस्थित ।
प्रातलोमस्तथा नीचो विज्ञयोभयकृद्द्विज ! ॥२२
अनुकूलोमृदु स्निग्ध सुखस्पर्श सुखावह ।
रूक्षारूक्षस्वराभद्रा क्रव्यादा परिगच्छताम् ॥२३
मेघा शस्तापना स्निग्धागजबृंहितसन्निभा ।
अनुलोमास्तडिच्छस्ता शक्रचापस्तथैवच ।२४
अप्रशस्त तथा ज्ञेय परिवेषप्रदर्शने ।
अनुलोमा ग्रहा शस्ता वाक्पतिस्तु विशेषत ।।२५
आस्तिक्य श्रद्दधानत्व तथा पूज्याभिपूजनम् ।
शस्तान्येतानि धर्मज्ञ ! य च स्यान्मनस प्रियम् ॥२६
मनसस्तुष्टिरवात्र परम जयलक्षणम् ।

केशव पूजयेद्विद्वान् स्तवेन मधुसूदनम् ॥१३
द्वितीये तु ततोदृष्टे प्रतीपे प्रविशेद्गृहम् ।
अथेष्टानि प्रवक्ष्यामि मङ्गल्यानि तवाऽनघ ! ॥१४

आगे की ओर से आओ—यह शब्द शस्त होता है पीछे की ओर से प्रशस्त नहीं होता है ! हे धर्मज्ञ पीछे की ओर से 'गच्छ अर्थात् जाओ—यह शब्द शस्त कहा गया है जो कि सामने गर्हित माना गया है। 'कहा जाते हो—रुकजाओ—वहाँ पर जाने से तुमको क्या प्रयोजन है—ये इस तरह के तथा ऐसे ही अन्य शब्द जो होते हैं वे विपत्ति करने वाले भी हुआ करते हैं ।।९ १०।। क्रव्यादों राक्षसों का ध्वज आदि में स्थान गर्हित हुआ करता है। वाहनों का स्खलन वस्त्र सङ्ग द्वार आदि में निगमन करने वाले के शिर का अवघात तथा छत्र, ध्वज और वस्त्रों का पतन भी शुभ होता है। प्रथम में ही निमित्त के देखने पर अमङ्गल्य का विनाश होता है। विद्वान् पुरुष का कर्त्तव्य है कि भगवान् केशव का पूजन करे और मधुसूदन प्रभु का स्तवन करना चाहिये ।।९-१३।। हे अनघ ! फिर द्वितीय प्रतीप के देखने पर गृह में प्रवेश कर लेना चाहिए। इसके पश्चात् इष्ट मङ्गलों के विषय में मैं वर्णन करूँगा ।।१४।।

श्वेताः सुमनस श्रेष्ठा पूर्णकुम्भास्तथैव च ।
जलजा पक्षिणश्चवमांस मत्स्याश्चपार्थिव ! ॥१५
गावस्तुरङ्गमा नागा बद्ध एक पशुस्त्वज ।
त्रिदशा सुहृदो विप्रा ज्वलितश्च हुताशन ॥१६
गणिका च महाभाग ! दूर्वा चार्द्रञ्च गोमयम् ।
रुक्मरूप्यन्तथा ताम्र सवरत्नानि चाप्यथ ॥१७
औषधानिव धर्मज्ञ ! यना सिद्धार्थकास्तथा ।
नृवाह्यमान यानञ्च भद्रपीठन्तथव च ॥१८
खङ्ग धम्र पताका च मृदश्चायुधमेव च ।
राजलिङ्गानि सर्वाणि सर्वे रुदितवर्जिता ॥१९

घृत दधि पयश्चैव फलानिविविधानि च ।
स्वस्तिक वर्द्धमानञ्च नन्द्यावर्त सकौस्तुभम् ॥२०
वादित्राणा सुख शब्द गम्भीर. सुमनोहर. ।
गान्धारषड्जऋषभा ये च शस्तास्तथा स्वरा. ॥२१

हे पार्थिव ! श्वेत पुष्प परम श्रेष्ठ होते हैं तथा पूर्ण कुम्भ भी परम शुभ हुआ करते हैं । जलज—पक्षीगण—मांस—मत्स्य—गौएं—तुरङ्गम—नाग—बद्ध एक पशु—अज—त्रिदश—सुहृद विप्र—जलती हुई अग्नि—गणिका—ताम्र और हे महाभाग ! सब प्रकार के रत्न—हे धर्मज्ञ ! दूर्वा—आर्द्र गोमय—सुवर्ण-रूप्यक—ओषध—यव-सिद्धार्थक-मनुष्यों के द्वारा वाह्यमान यान—भद्रपीठ—खड्ग—चक्र—पताका—मृत्तिका—आयुध—सम्पूर्ण—राजा के चिह्न जो रुदित से रहित होवें । घृत—दधि—पय—विविध भाँति के फल—स्वस्तिक—वर्द्धमान-नन्द्यावर्त—कौस्तुभ—वादित्रों का सुखकर शब्द जो गम्भीर एवं मनोहर हो—गन्धार, षड्ज—ऋषभ ये शस्त तथा स्वर हैं ॥ १५, १६, १७ १८, १ , २०, २१ ॥

वायु सशर्करोरक्ष सर्वत्र समुपस्थित ।
प्रातलोमस्तथा नाचो विजयोमयवृद्‌विज ! ॥२२
अनुकूलोमृदु स्निग्ध सुखस्पर्श सुखावह ।
रूक्षारुक्षस्वरामद्रा क्रव्यादा परिगच्छताम् ॥२३
मघा शस्ताघना स्निग्धागजवृंहितसन्निभा ।
अनुलोमास्तडित्छ्सा शक्रचापस्तथैवच ।२४
अप्रशस्त तथा ज्ञेय परिवेषप्रवर्षणे ।
अनुलोमा ग्रहा शस्ता वाक्पतिस्तु विशेषत ॥२५
आस्तिक्य श्रद्दधानत्व तथा पूज्याभिपूजनम् ।
शस्तान्येतानि धर्मज्ञ ! य च स्यान्मनस प्रियम् ॥२६
मनसस्तुष्टिरवात्र परम जयलक्षणम् ।

एकत्र सर्वलिङ्गानि मनसस्तुष्टिरेकतः ॥२७
मनोत्सुकत्वं मनसः प्रहर्षः शुभस्य लाभो विजयप्रवादः ।
मङ्गल्यलब्धिः श्रवणञ्च राजन् ! ज्ञेयानि नित्यं विजयावहानि॥२८

धूलि के सहित रूक्ष वायु जो कि सभी जगह समुपस्थित है। हे द्विज ! जो प्रतिलोम और नीच है वह भय करने वाला ही समझना चाहिए। अनुकूल—कोमल—स्निग्ध—सुख देने वाले स्पर्श से युक्त—सुख का आवाहन करने वाला—रूक्ष—अरूक्ष स्वर—अभद्र—परिगमन करने वालों के व्याद—हाथियों के वृंहित के सदृश घने स्निग्ध मेघ प्रशस्त होते हैं। अनुलोम विद्युत से छत्र-शक्रचाप तथा परिवेष में प्रवर्षण प्रशस्त जानने चाहिए। जो ग्रह अनुलोम होते हैं वे प्रशस्त हुआ करते हैं और वाक्पति विशेष रूप से प्रशस्त माने गये हैं। आस्तिकता—श्रद्धानता—पूज्यगण का अभिपूजन—हे धर्मज्ञ ! ये सब प्रशस्त हुआ करते हैं और वह भी परम प्रशस्त माना गया है जो अपने मन के लिये अतिशय प्रिय होता है। यहाँ पर अपने मन की जो तुष्टि हुआ करती है वह ही परम जय का लक्षण हुआ करता है। एक ओर तो ये सभी चिह्न होते हैं और एक ओर अपने मन की तुष्टि हुआ करती है। मन की उत्सुकता अर्थात् उत्साह और मनमें होने वाला प्रहर्ष यह ही शुभ का लाभ और विजय का प्रवाद होता है। मङ्गल्य की लब्धि और उसका श्रवण हे राजन् ! नित्य ही विजय के आवह करने वाले जानने चाहिए ॥ २२-२८ ॥

११०—वराहवतार के विषय में अर्जुन का प्रश्न

प्रादुर्भावान् पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः ।
सतां कथयतां विप्र वाराह इति नः श्रुतम् ॥१
न जाने तस्य चरितं न विधिं नच विस्तरम् ।

न कर्मगुणसंस्थानं न चाप्यन्तंमनीषिणः ॥२
किमात्मको वराहोऽसौ कि मूर्त्ति. कास्य देवता ।
किं प्रमाण. किं प्रभावः किं वा तेन पुरा कृतम् ॥३
एतन्मे शंस तत्वेन वाराह श्रुतिविस्तरम् ।
यथाहञ्च समेताना द्विजातीना विशेषतः ॥४
एतत्ते कथयिष्यामि पुराण ब्रह्मसम्मितम् ।
महावराहचरित कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥५
यथा नारायणो राजन् ! वाराह वपुरास्थितः ।
दष्ट्र्या गा समुद्रस्थामुज्जहारारिमदनः ॥६
छन्दोगीभिरुदाराभिः श्रुतिभि समलङ्कृत ।
मन प्रसन्नता कृत्वा निबोध विजयाधुना ॥७

अर्जुन ने कहा—हे विप्र ! अपरिमित तेज से युक्त भगवान् विष्णु के पुराणों मे प्रादुर्भावों को कहने वाले सन्दर्भों मे हमने एक वाराह का भी प्रादुर्भाव सुना है ॥ १ ॥ उस वाराह का चरित्र मैं नहीं जानता हूँ और न तो उसकी कोई विधि ही मुझे मालूम है और न कुछ विस्तार का ही ज्ञान है। उनके कर्म और गुणों का संस्थान क्या था—यह भी मैं नहीं जानता हूँ। उन अत्यन्त मनीषी प्रभु का तो अद्भुत ही कर्म—गुण संस्थान होगा ॥ २ ॥ यह वराह किस स्वरूप वाला प्रादुर्भाव था ? इनकी कैसी मूर्ति थी और इनका देवता कौन था ? इनका प्रमाण कितना था और क्या प्रभाव था तथा पहिले उन्होंने क्या किया था ? ॥ ३ ॥ श्रुति विस्तार इस वाराह को आप तात्त्विक रूप से मुझे सब बतलाइये ? विशेष रूप से ये एकत्रित हुए द्विजाति गण हैं इनके अनुसार जो भी योग्य हो वर्णन कराइये। ४ ॥ श्री शौनक जी ने कहा—अद्भुत कर्म वाले भगवान् श्रीकृष्ण के इस महा वराह चरित्र को जो ब्रह्म सम्मित पुराण है मैं आपको कहूँगा ॥ ५ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार से भगवान् शत्रुओं के मर्दन करने वाले नारायण ने वाराह के वपु में समास्थित

होकर अपनी दाढ से इस समुद्र मे स्थित भूमि को उठाकर इसका उद्धार किया था ॥ ६ ॥ छन्द, वाणी, उदार श्रुतियो से सम्यक् प्रकार से अलङ्कृत होकर तथा मन को प्रसन्नता करके अब उस विजय का ज्ञान करलो ॥ ७ ॥

इद पुराण परम पुण्य वेदैश्च सम्मितम् ।
नानाश्रुतिसमायुक्त नास्तिकाय न कीर्त्तयेत् ॥८
पुराण वेदमखिल साङ्ख्य योगञ्च वेद य ।
कार्त्स्न्येन विधिना प्रोक्त सोऽयाथ व वदिष्यति ॥६
विश्वेदेवास्तथा साध्या रुद्रादित्यास्तथाश्विनौ ।
प्रजाना पतयश्चव सप्त चैव महर्षय ॥१०
मन सङ्कल्पजाश्चैव पूर्वजा ऋषयस्तथा ।
वसवो मरुतश्चव ग धर्वा यक्षराक्षसा । ११
दैत्या पिशाचा नागाश्च भूतानि विविधानि च ।
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्रा म्लेच्छाश्च ये भुवि॥१२
चतुष्पादानिसर्वाणि तिर्य्यग्योनिशतानि च ।
जङ्गमानिचसत्वानिय-चान्यज्जीवसञ्ज्ञितम् ॥१३
पर्णे युगसहस्र तु ब्राह्म ऽहनि तथागते ।
निर्व्वाणे सवभूताना सर्वोत्पातसमुद्भवे ॥१४

यह वराह पुराण परम पुण्यमय है और समस्त वदो के सम्मत है । यह अनेक श्रुतियो स भी समायुक्त है । इसका कीत्तन किसी भी नास्तिक के समक्ष मे नही करना चाहिए यह सम्पूर्ण पुराण वेद ही है । जो सांख्य और योग को जानता है वह पूर्ण विधि से कथित इसको सौख्य सम्पादन करने के लिये कहेगा ॥ ८ । ६ ॥ विश्वेदेवा साध्य, रुद्र, आदित्य अश्विनीकुमार और प्रजाओ के पतिगण सप्त महर्षि है । पूर्वज जो ऋषिगण थे वे सब मन के सङ्कल्प से ही समुत्पन्न हुए है । वसुगण मरुद्गण, गन्धर्व यक्ष, राक्षस, दैत्य, पिशाच नाग, विविध

भूत, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और जो भूमण्डल में म्लेच्छ हैं—समस्त चतुष्पाद, तिर्यग्योनिगत सैकड़ों जङ्गम सत्त्व और जो अन्य जीव सज्ञा से युक्त सब एक सहस्र युग के पूर्ण होने पर ब्रह्माजी के दिन के समागत हो जाने पर सर्वोत्तातों के समुद्भव वाले समस्त भूतों का निर्वाण होगया था ॥ १०–१४ ॥

हिरण्यरेतास्त्रिशिखस्ततो भूत्वा वृषाकपि ।
शिखाभिर्विधमल्लोकानशोषयत वह्निना ॥१५
दह्यमानास्ततस्तस्य तेजोराशिभिरुद्गतैः ।
विवर्णवर्णादग्धाङ्गा हताचिष्मद्भिराननं ॥१६
साङ्गोपनिषदो वेदा इतिहासपुरोगमा ।
सर्वविद्या क्रियाश्चैव सर्वधर्मपरायणा ॥१७
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा प्रभवं विश्वतोमुखम् ।
सर्वदेवगणाश्चैव त्रयस्त्रिंशत्त कोटय ॥१८
तस्मिन्नहनि सप्राप्ते त हंस महदक्षरम् ।
प्रविशन्ति महात्मानं हरिं नारायणं प्रभुम् ॥१९
तेषां भूयः प्रवृत्तानां निधनोत्पत्तिरुच्यते ।
यथा सूर्यस्य सततमुदयास्तमनं इह ॥२०
पूर्णे युगसहस्रान्ते सर्वे निःशेष उच्यते ।
यस्मिन् जीवकृतं सर्वं निःशेषं समनिष्ठित ॥२१

इसके अनन्तर हिरण्यरेता त्रिशिख वृषाकपि होकर शिखाओं से लोकों को विशेष रूप से धमन करते हुए वह्नि के द्वारा सबका शोषण कर दिया था। इसके अनन्तर समुद्गत उसके तेज की राशियों से दह्यमान होते हुए अर्चिष्मान आननों के विवर्ण वदन वाले दग्ध अङ्गों से युक्त होकर हत हो गये थे। साङ्गवेद तथा उपनिषद, इतिहासों को आगे करके सम्पूर्ण विद्या-सर्व धर्म परायण क्रियायें और विश्व तो मुख प्रभव ब्रह्माजी को आगे करके तैंतीस करोड़ समस्त देवगण उस दिन के समय प्राप्त होनेपर महदक्षर, महात्मा, हंस उन प्रभु नारायण हरि के धाम मे प्रवेश करते

हैं। प्रवृत्त हुए उनके पुन निधन से उत्पत्ति कही जाती है जिस तरह से यहाँ पर निरन्तर सूर्य का उदय और अस्तमन हुआ करते हैं। एक सहस्र युगों के पूर्ण हो जाने पर सबका नि शेष कहा जाता है जिसमें सब जीव-कृत नि शेष समवस्थित हुआ था ॥१५-२१॥

संहृत्य लोकानखिलान् सदेवासुरमानुषान्।
कृत्वासुसंस्था भगवानास्तएकजगद्गुरु ॥२२
स स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुन पुनः।
अव्यय शाश्वतो देवो यस्यसर्वमिदंजगत् ॥२३
नष्टार्ककिरणो लोके चन्द्रग्रहविवर्जिते।
त्यक्तधूमाग्निपवने क्षीणयज्ञवषट्क्रिये ॥२४
अपर्क्षगण सम्पाते सवप्राणिहरे पथि।
अमर्यादाकुले रौद्रे सवतस्तमसावृते ॥२५
अदृश्ये सर्वलोकेऽस्मिन्नभावे सवकमणाम्।
प्रशान्ते सवसम्पाते नष्टे वैरपरिग्रहे ॥२६
गते स्वभावसंस्थाने लोके नारायणात्मके।
परमेष्ठी हृषीकेश शयनायोपचक्रमे ॥२७
पीतवासा लोहिताक्ष कृष्णो जीमूतसन्निभ।
शिखासहस्रविरचजटाभार समुद्वहम् ॥२८
श्रीवत्सलक्षणधर रक्तचन्दनभूषितम्।
वक्षा बिभ्रन्महाबाहु स विष्णुरिव तोयद ।२९

समस्त देव, असुर और मानवों के सहित पूरा सम्पूर्ण लोकों का संहार करके जगत् में गुरु एक ही भगवान् असुसंस्था करके स्थित हुआ करते हैं। इस तरह वही कल्पा के अ त में पुन पुन समस्त भूतों का स्रष्टा होते हैं। वह अव्यय-शाश्वत देव हैं जिसका यह सम्पूर्ण जगत् है। सूर्य की किरण जिसमें नष्ट हो गई हैं और चन्द्र तथा ग्रहों से जो वर्जित है—धूप अग्न और पवन ने भी जिसका त्याग कर दिया है तथा अग्नि

रहित और यज्ञ एव वषट् क्रिया से क्षीण, पक्षिगण के सम्पात से शून्य, समस्त प्राणियो के हरण करने वाले, अमर्याश से आकुल, रौद्र, सब ओर से अन्धकार से समावृत मार्ग मे सब लोकों के दृश्यमान होने पर, सब कर्मों के अभाव मे सब सम्पात के प्रशान्त हो जाने पर इस नारायणमक लोक मे स्वभाव सस्थान के गत होने पर परमेष्ठी हृषीकेश ने अपने शयन करने का उपक्रम किया था। पीत वस्त्रधारी, लोहित नेत्रो वाले, मेघ के सदृश, सहस्रो शिखाओ के विकच जटाओ के भार का समुद्वहन करने वाले श्रीकृष्ण विराजमान थे ॥ २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८ ॥ श्रीवत्स के लक्षण को धारण करने वाले और रक्त चन्दन से विभूषित वक्षःस्थल को रखने वाले—महान् बाहुओ से युक्त वह तोयद के समय ही श्री विष्णु भगवान् थे ॥ २९ ॥

पुण्डरीकसहस्रेण स्रगस्य शुशुभे शुभा ।
पत्नी चास्य स्वय लक्ष्मीर्देहमावृत्यतिष्ठति । ३०
ततः स्वपिति शान्तात्मा सर्वलोके शुभावहः ।
किमप्यमितयोगात्मा निद्रायोगमुपागत ॥३१
ततो युगसहस्रे तु पूर्णे स पुरुषोत्तमः ।
स्वयमेव विभुर्भूत्वा बुध्यते विबुधाधिप ॥३२
ततश्चिन्तयते भूय. सृष्टिं लोकस्य लोककृत् ।
नरान् देवगणाश्चैव पारमेष्ठ्येन कर्मणा ॥३३
तत. सञ्चिन्तयन् कार्यं देवेषु समितिञ्जयः ।
सम्भव सर्वलोकस्य विदधाति सतागतिः ॥३४
कर्ता चैव विकर्ता च सहर्ता च प्रजापति ।
नारायण पर सत्य नारायण पर पदम् ॥३५

इन विष्णु भगवान् की पत्नी स्वय साक्षात् लक्ष्मी जो देह को आवृत करके स्थित रहती है एक सहस्र पुण्डरीकों की माला से वह शुभा शोभित हो रही थी ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त समस्त लोक मे सुख का

आवहन करने वाले प्रशान्त आत्मा से सम्पन्न शयन किया करते हैं। वह अमित योग के स्वरूपधारी किसी योग निद्रा को प्राप्त हो गये थे ॥३१॥ इसके अनन्तर एक सहस्र युगों के पूर्ण हो जाने पर वह विभु पुरुषोत्तम जो विबुधों के स्वामी हैं स्वयमेव ही प्रबुद्ध हो जाया करते हैं ॥३२॥ इसके पश्चात् लोकों के करने वाले ने फिर लोक की सृष्टि के विषय में चिन्तन किया था। नरगण और देवगणों का पारमेष्ठ्य कर्म द्वारा चिन्तन करते हैं। फिर सर्वमिञ्जय प्रभु देवों के विषय में कार्य्य का चिन्तन करते हुए सत्पुरुषों की गति प्रभु समस्त लोक की उत्पत्ति को किया करते हैं। वह प्रजापति इस जगत् के कर्त्ता विकर्ता और संहार के कर्त्ता हैं। नारायण परसत्य है—नारायण परम पद है ॥ ३३–३५ ॥

नारायण परो यज्ञो नारायण परा गतिः ।
स स्वयम्भूरिति ज्ञेय स स्रष्टाभुवनाधिपः ॥३६
स सर्वमिति विज्ञेयो ह्येष यज्ञः प्रजापतिः ।
यद्वेदितव्यस्त्रिदशैस्तदेष परिकीर्त्यते ॥३७
यत्तु वेद्यं भगवतो देवा अपि न तद्विदुः
प्रजानां पतयः सर्वे ऋषयश्च सहामरैः ॥३८
नास्यान्तमधिगच्छन्ति विचिन्वन्त इति श्रुतिः ।
यदस्य परमं रूपं न तत्पश्यन्ति देवताः ॥३९
प्रादुर्भावे तु यद्रूपं तदर्चन्ति दिवौकसः ।
दर्शितं यदि तेनैव तदवेक्ष्यन्ति देवताः ॥४०
यन्न दर्शितवानेष कस्तदन्वेष्टुमीहते ।
ग्रामणीः सर्वभूतानामग्निमारुतयोगतिः ॥४१
तेजसस्तपसश्चैव निधानममृतस्य च ।
चतुराश्रमधर्मेशश्चातुर्होत्रफलाशनः ॥४२
चतुःसागरपर्यन्तश्चतुर्युगनिवर्तकः ।
तन्य संहृत्य जगत्कृत्वा गर्भस्थमात्मनः ॥

मुमोचाण्ड महायोगी धत वर्षसहस्रकम् ॥४३॥
सुरासुरद्विजभुजगाप्नरोगणैर्द्रु मौषधिक्षितिधिरयक्षगुह्यकं ।
प्रजापतिं श्रु तिभिरसङ्कु लं तदा स वैंसृजज्जगदिदमात्म ना प्रभु ॥

नारायण पर यज्ञ हैं—नारायण परगति है—वह स्वयम्भू—यह जानने के योग्य है—वह भुवन का स्वामी सृजन करन वाल हैं ? वह सब कुछ है—ऐसा ही समझना चाहिए। यही यज्ञ और प्रजापति है। जो देवो के द्वारा जानने के योग्य है और वह ऐसा हो कीर्तित किया जाता है। जो कुछ भी भगवान् का वेद्य (जानने के योग्य हैं। उस देवगण भी नही जानते हैं। न प्रजापति जानत हैं और अमरगणो के साथ ऋषि लोग ही जानते हैं।। ३६। ३७। ३८॥ विशेष रूप स खोज करत हुए भी इस प्रभु के अन्त का ज्ञान कोई भी प्राप्त नही किया करत हैं—ऐसी श्रुति है। जो इसका पद रूप होता है उस देवगण भी नहीं देख पात हैं। जब इनके प्रादुर्भाव का कोई स्वरूप होता है उसी का दवगण अभ्यचन किया करते हैं। यदि इन्हीं न उस दिखल दिया है ता दवता लोग उस देख पाते हैं। जो कभी भी उ होने नही दिखलाया है उसकी खाज करन को कौन इच्छा करना है। अथात् उसका अन्वषण कोई भी नही कर पाता है। ग्राम्य समस्त प्राणियो की गति अग्नि और मारुत की होनी है। तेज तप और अमृत का निधान—चारो आश्रमो के धर्म का ईश—चातु र्होत्रिका फलाशन—चार सागरो की सीमा तक रहन वाला—चारो युगो का निवर्त्तक वह इसका सहार करके फिर अपन गर्भ म स्थित जगत् की रचना करता हुआ महायोगी एक सहस्र वर्ष तक धारण किये अण्ड को छोड देता था। सुर—असुर—द्विज—भुजग और अप्सराओ क गणो स युक्त—औषधि—क्षितिधो—यक्ष और गुह्यको से समन्वित—श्रु तियो स असकुल इस जगत् को उस समय म वह प्रजापति प्रभु आत्मा से ही सृजन किया करता है ॥ ३९—४४॥

१११—वराहवतार चरित्र वर्णन

जगदण्डमिदं पूर्वमासीद्दिव्यं हिरण्मयम् ।
प्रजापतेरियं मूर्तिरितीयं वैदिकी श्रुतिः ॥१
तत्तु वर्षसहस्रान्ते बिभेदोर्ध्वमुखं विभुः ।
लोकसर्जनहेतोस्तु बिभेदाधोमुखं नृप ! ॥२
भूयोऽष्टधा विभेदाण्डं विष्णुर्वै लोकजन्मकृत् ।
चकार जगतश्चात्र विभागसविभागकृत् ॥३
यच्छिद्रमूर्ध्वमाकाशं विवराकृतितां गतम् ।
विहितं विश्वयोगेन यदधस्तद्रसातलम् ॥४
यदण्डमकरोत्पूर्वं देवो लोकचिकीर्षया ।
तत्र यत्सलिलस्कन्नं सोऽभवत्काञ्चनो गिरिः ॥५
शैलैः सहस्रैर्महती मेदिनी विषमाभवत् ।
तैश्च पर्वतजालौघैर्बहुयोजनविस्तृतैः ॥६
पीडिता गुरुभिर्देवी व्यथिता मेदिनी तदा ।
महाबलं भूरिवरा दिव्यं नारायणात्मकम् ॥७

महर्षि शौनक जी ने कहा—यह जगत् का अण्ड पहिले परम दिव्य हिरण्य था। यह जगदण्ड साक्षात् प्रजापति की मूर्ति ही था—ऐसा श्रुति का वचन कहता है ॥१॥ वह एक सहस्र वर्ष के अन्त में विभु ने ऊर्ध्व मुख को विभेदन किया था। हे नृप ! लोक के सर्जन के हेतु से अधोमुख का भेदन किया था। लोकों के जन्म के करने वाले भगवान् विष्णु ने फिर उस अण्ड को आठ भागों में भेदन किया था। विभाग के करने वाले प्रभु ने यहाँ पर जगत् का विभाग किया था। ऊर्ध्व आकाश में जो छिद्र था वह विवर की आकृति को प्राप्त हो गया था। विश्व के योग से जो अधोभाग था उसे रसातल किया था। देव ने पहिले जो अण्ड किया था वह लोक की रचना करने की इच्छा से ही किया था।

वहा पर जो सलिल स्कन्न हुआ था वह सुवर्ण गिरि हो गया था। सहस्रों शैलो के होने से यह महती मेदिनी विषम हो गई थी जो कि बहुत से योजनो के विस्तार से युक्त पर्वतो के जालो के ओघो से युक्त थी। उस समय मे इन बडे भारी पर्वतो मे यह पीडित एव व्यथित मेदिनी देवी हो गयी थी हे महामते ! यह अण्ड परम दिव्य—बहुत अधिक बल वाला नारायण क स्वरूप म सम्पन्न था ॥१—७॥

हिरण्य समुत्मृज्य तेजो व जातरूपिणम् ।
अशक्ता वै धारयितुमधस्तात्प्राविशत्तदा । ८
पोडयमाना भगवतस्तेजसा तस्य सा क्षिति. ।
पृथ्वी विशन्ती दृष्ट्वा तु तामधोमधुसूदन. ॥९
उद्धारार्थं मतश्चक्रे तस्या वै हितकाम्यया ॥१०
मत्तेज एषा वसुधा समासाद्य तपस्विनी ।
रसातल प्रविशति पङ्के गौरिव दुर्बला ॥११
त्रिविक्रमायामितविक्रमाय महावराहाय सुरोत्तमाय ।
श्रीशार्ङ्ग चक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु ते देववर ! प्रसीद
तव देहाज्जगज्जात पुष्करद्वीपमुत्थितम् ।
ब्रह्माणमिह लोकाना भूताना शाश्वतविदुः ॥१३
तव प्रसादाद्देवोऽय दिव भुङ्क्ते पुरन्दरः ।
तव क्रोधाद्धि बलवान् जनादनजितोबलि. ॥१४

जातरूपी हिरण्मय तेज का समुत्सृजन करके उसे धारण करने के लिए अशक्त होकर उस समय मे नीचे की ओर प्रवेश कर गया था। उस समय में भगवान् के तेज से वह क्षिति पीडय माना हो गई थी। भगवान् मधुसूदन ने अधोभाग में प्रवेश करती हुई उस पृथ्वी को देखा था और फिर उस पृथ्वी के हित की कामना से उसके उद्धार करने के लिये मनमे विचार किया था ॥८, ९, १०॥ श्री भगवान् न कहा—इस तपस्विनी वसुधा ने मेरे तेज को प्राप्त करके वह दुर्बल गौ पङ्क मे जिस तरह

१११—वराहवतार चरित्र वर्णन

जगदण्डमिद पूर्वमासीद्दिव्य हिरण्मयम् ।
प्रजापतेरिय मूर्तिरितीय वसकी श्रुति ।।१
तत्तु वर्षसहस्रान्ते विभेदध्वमुख विभु ।
लोकसर्जहेतोस्तु बिभेदाधोमुख नृप ! ।।
भूयोऽष्टधा विभेदाण्ड विष्णर्वै लोकजन्मकृत् ।
चकार जगतश्चात्र विभागसविभागकृत् ।।३
यर्ं छद्रमूर्द्ध माकाश विवराकृतिता गतम् ।
विहित विश्वयोगेन यन्धस्तद्रसातलम् ।।४
यदण्डमकरोत्पव देवोलोकचिकीर्षया ।
तत्र यत्सलिलस्पन्दसोऽभवत्काञ्चनोगिरि ।।५
शैल सहस्रैमहता मेदिनी विषमाभवत् ।
तैश्च पवनजालौघब०योजनविस्तृत । ६
पीडिता गुरुपिदेवी व्यथिता मेदिनी तदा ।
महामते भरिबल दिव्य नारायणात्मकम् ।।७

महर्षि शौनक जी ने कहा यह जगत् का अण्ड पहिले परम दिव्य हिरण्य था। यह जगदण्ड साक्षात् प्रजापति की मूर्ति ही था—ऐसा श्रुति का वचन कहता है ।।१।। वह एक सहस्र वर्ष के अन्त मे विभुने ऊर्ध्व मुख को विभेदन किया था हे नृप ! लोक के सजन के हेतु से अधोमुख का भेदन किया था। लोकों के जन्म के करने वाले भगवान् विष्णु ने फिर उस अण्ड को आठ भागो मे भेदन किया था। विभाग के करने वाले प्रभु ने यहाँ पर जगत् का विभाग किया था। ऊर्ध्व आकाश मे जो छिद्र था वह विवर की आकृति को प्राप्त हो गया था। विश्व के योग से जो अधोभाग था उसे रसातल किया था। देवने जो पहिले जो अण्ड किया था वह नाक की रचना करने की इच्छा से ही किया था।

तरु, जल, नदियाँ, धर्म, काम, यज्ञायज्ञ की क्रियाएँ—विद्या, वेद्य, मन्त्र, ह्री श्री, कीर्ति, धृति, क्षमा, पुराण, वेद, वेदों के समस्त अङ्ग शास्त्र, साङ्ख्य, योग, भव, अभव, स्थावर, जङ्गम, भविष्य, भवत् यह सभी कुछ तीनों लोकों में आपका ही प्रभाव है ॥१५-१८॥ देवों के उदार फल के दाता—स्वर्गीय स्त्रियों के चारु पल्लव-सब लोकों के मन के कान्त-सब सत्वों के मनोहर—विमानों के अनेक विटप—मेघों के जल का मधुस्राव—दिव्य लोक के महा स्कन्ध—सत्यलोक के प्रशाखा वाले—सागर के आकार का निर्यास—रसातल के जल का आश्रय—नागेन्द्र पादयों से समुपेत-जन्तु और पक्षिगण से निषेवित आप ही हैं ॥१९-२१॥

शीलाचारार्यगन्धस्त्वं सर्वलोकमयोद्रुमः ।
द्वादशार्कमयद्वीपो रुद्रैकादशपत्तनः ॥२२
वस्वष्टाचलसंयुक्तस्त्रैलोक्याम्भोमहोदधिः ।
सिद्धसाध्योर्मिकलिलः सुपर्णानिलसेवितः ॥२३
दैत्यलोकमहाग्राहो रक्षोरगरपाकुलः ।
पितामहमहाधैर्य. स्वर्गस्त्रीरत्नभूषितः ॥२४
धीश्रीह्रीकान्तिभि नित्य नदीभित ।
कालयोगमहापर्वप्रयागगतिवेगवान् ॥२५
त्व स्वयोगमहावीर्यो नारायणमहार्णवः ।
कालोभूत्वा प्रसन्नाभिरद्भिर्ह्लादयसे पुनः ॥२६
त्वया सृष्टास्त्रयो लोकास्त्वयैव प्रतिसंहृताः ।
विशन्ति योगिनः सर्वे त्वामेव प्रतियोजिता. ॥२७
युगे युगे युगान्ताग्नि कालमेघो युगे युगे ।
महाभारावताराय देव ! त्वं हि युगे युगे ॥२८

आप ही शीलाचार के आर्यगन्ध हैं । सर्व लोक मय आप द्रुम हैं। द्वादश सूर्यों से परिपूर्ण द्वीप, एकादश रुद्रों के पत्तन, अष्ट वसुओं के बल से संयुक्त त्रिभुवनों के जल के महा समुद्र, सिद्ध और साध्यों की ऊर्मियों

विषण्ण होती है उसी भाँति यह मेदिनी रसातल में प्रवेश करती है। ११। पृथिवी ने कहा—हे देव वर ! त्रिविक्रम से आयामित विक्रम वाले सुरों में उत्तम—श्री शार्ङ्ग चक्र असि और गदा के धारण करने वाले महा वराह के लिये नमस्कार है। आप प्रसन्न होइये ॥१२॥ आपके ही देह से यह सम्पूर्ण जगत समुत्पन्न हुआ है और पुष्कर द्वीप उत्थित हुआ है। यहाँ पर ब्रह्मा को लोकों के और भूतों का शाश्वत जानना चाहिए। हे देव! यह आपका ही प्रसाद है कि इन्द्र देव दिवलोक का उपभोग किया करते हैं। आपके ही क्रोध से भगवान् जनार्दन के द्वारा यह महा बलवान् बलि जीतमलिया गया है ॥१३ १४।

धाता विधाता संहर्ता त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
मनुः कृतान्तोऽधिपतिर्ज्वलनः पवनोघनः ॥१५
वर्णाश्चाश्रमधर्माश्च सागरास्तरवो जलम्।
नद्यो धर्मश्च कामश्च यज्ञायज्ञस्य च क्रिया ॥१६
विद्यावद्यञ्च सत्वञ्च ह्री श्री कीर्तिर्धृति क्षमा।
पुराण वेदवेदाङ्ग सांख्ययोगो भवाभवौ ॥१७
जङ्गम स्थावरञ्चैव भविष्यञ्च भवञ्च यत्।
सर्व तच्च त्रिलोकेषु प्रभावोपहितं तव ॥१८
त्रिदशोदारफलद स्वर्गस्त्रीचारुपल्लव।
सर्वलोकमनःकान्त सर्वसत्वमनोहर ॥१९
विमानानेकविटपस्तोयदाम्बुमधुस्रव।
दिव्यलोकमहास्कन्धसत्यलोकप्रशाखवान् ॥२०
सागराकरनिर्यासो रसातलजलाश्रय।
नागेन्द्रपादपोपेता जन्तुपक्षिनिषेवित ॥२१

हे भगवन् ! आपके अन्दर धाता विधाता और संहार करने वाला इन तीनों कर्मों के करने की शक्ति विद्यमान है। मनु अधिपति कृतान्त, अग्नि पवन घन चारों वर्ण सारे ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के धर्म, सागर,

तरु, जल, नदियां, धर्म, काम, पत्नायन की क्रियाएं—विद्या, वेद, मन्त्र, ह्री श्री, कीर्ति, धृति, क्षमा, पुराण, वेद, वेदों के समस्त अङ्ग शास्त्र, साङ्ख्य, योग, भव, अभव, स्थावर, जङ्गम, भविष्य, भवद् यह सभी कुछ तीनों लोकों में आपका ही प्रभाव है ॥१५-१८॥ देवों के उदार फल के दाता—स्वर्गीय स्त्रियों के चारु पल्लव—सब लोकों के मन के कान्त—सब सत्त्वों के मनोहर—विमानों के अनेक विटप—मेघों के जल का मधुस्त्राव—दिव्य लोक के महा स्कन्ध—सत्यलोक के प्रशाखा वाले—सागर के आकार का निर्यास—रसातल के जल का आश्रय—नागेन्द्र पादपों से समुपेत—जन्तु और पक्षिगण से निषेवित आप ही हैं ॥१९-२१॥

शीलाचारार्यगन्धस्त्व सर्वलोकमयोद्रुमः ।
द्वादशार्कमयद्वीपो रुद्रैकादशपत्तन ॥२२
वस्वष्टाचलसयुक्तस्त्रैलोक्याम्भोमहोदधि
सिद्धसाध्योर्मिकलिल सुपर्णानिलसेवित ॥२३
दैत्यलोकमहाग्राहो रक्षोरगझषाकुलः ।
पितामहमहाधैर्य स्वर्गस्त्रीरत्नभूषित ॥२४
धीश्रीह्रीकान्तिभि नित्य नदीभिस ।
कालयोगमहापर्वप्रयागगतिवेगवान् ॥२५
त्व स्वयोगमहावीर्यो नारायणमहार्णवः ।
कालोभत्वा प्रसन्नाभिरद्भिर्ह्लादयसे पुन. ॥२६
त्वया सृष्टास्त्रयो लोकास्त्वयैव प्रतिसहृता. ।
विशन्ति योगिनः सर्वे त्वामेव प्रतियोजिता ॥२७
युगे युगे युगान्ताग्नि कालमेघो युगे युगे ।
महाभारावताराय देव ! त्व हि युगे युगे ॥२८

आप ही शीलाचार के आर्यगन्ध हैं। सर्व लोक मय आप द्रुम हैं। द्वादश सूर्यों से परिपूर्ण द्वीप, एकादश रुद्रों के पत्तन, अष्ट वसुओं के वन से सयुक्त त्रिभुवनों के जल के महा समुद्र, सिद्ध और साध्यों की ऊर्मियों

स कलिल सुपर्णानिल से सवित दैत्यो के लोको क महान् ग्राह राक्षस और उरगो के रोष से समाकुल पितामह के महान् धैर्य, स्वग का स्त्रियो रूपी रत्नो मे भूषित, धी ह्री श्री और कान्ति इनसे तथा नित्य ही नदियो से उपशोभित कालयोग महान् पत्र के प्रयाग की गति और वेग वाले आप अपने योग के महान् वीर्य तथा नारायण महार्णव हैं। आप शान्त होकर परम प्रसन्न जनो से पुन आह्लादित किया करते हैं। आपने ही इन तीनो लोको का सजन किया है और आपने ही इनका प्रति सहार भी किया है। सब योगीजन प्रतियोजित होकर आप मे ही प्रवेश किया करते हैं। हे देव! आप ही युग युग में युगो के अन्त करने वाली अग्नि हैं—युग युग मे आप ही काल मेघ हैं और इस महाभार के अवतारण करने के लिए आप ही युग-युग म हुआ करते हैं ॥२५–२८॥

त्वं हि शुक्ल कृतयुगे त्रेतायां चम्पकप्रभ ।
द्वापरे रक्तसङ्काश कृष्ण कलियुगे भवान् ॥२९
वैवर्ण्यमभिधत्से त्वं प्राप्तेषु युगसन्धिषु ।
ववर्ण्यं सवधर्माणामुत्पादयसि वेदवित् ॥३०
भासि वासिप्रतपसि त्वञ्च पासिविचेष्टसे ।
क्रुध्यसिक्षान्तिमायासि त्वं दीपयसिवर्षसि ॥३१
त्वं ह्रास्यसि न निर्यासि निवपयसि जाग्रसि ।
निःशेषयसि भूतानि कालो भूत्वा युगक्षये ॥३२
शेषमात्मानमालोक्य विशेषयसि त्वं पुन ।
युगान्ताग्नावलीढेषु सर्वभूतेषु किञ्चन ॥३३
यातेषु शेषो भवसि तस्माच्छेषोऽसि कीर्तित ।
च्यवनोत्पत्तियुक्तेषु ब्रह्मेन्द्रवरुणादिषु ॥३४
यस्मान्न च्यवसे स्थानात्तस्मात्सङ्कीर्त्यसेऽच्युत ।
ब्रह्माणमिन्द्रमथ रुद्रं वरुणमेव च ॥३५

हे देव! कृतयुग म आप ही शुक्ल वर्ण वाले होते हैं—त्रेता में

यक्षगन्धर्वनगर सुमहद्भूतपन्नगम् ।
व्याप्त त्वयैव विशता त्रैलोक्य सचराचरम् ॥४१
तस्माद्विष्णुरिति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
नारा इत्युच्यते ह्यापो ऋषिभिस्तत्वदर्शिभिः ॥४२

हे भगवन् ! ब्रह्मादि सबका निग्रह करके आप इनका हरण किया करते हैं इसी कारण मे आपको 'हरि'—इस नाम से कहा जाता है। आप समस्त भूतो का वपु से, यश से, श्री से सम्मान किया करते हैं। हे देव ! आप पर वपु से सम्मान किया करते हैं इसी कारण से सनातन है। क्यो कि ब्रह्मादि देवगण और उग्र तेज वाले मुनि वृन्द सब आपके अन्त को प्राप्त नही हुआ करते हैं इसीलिये आप अनन्त इस नाम से कहे जाते हैं और सैंकड़ों करोड कल्पो मे भी आप न तो क्षरित होते हैं और न क्षीण ही हुआ करते हैं। इसी अक्षर होने के हेतु से आप अक्षर हैं और विष्णु इसी नाम से कीर्तित किये जाते हैं। आपने इस स्थावर, जङ्गम जगत् सबको विष्टब्ध कर दिया है ॥३६—३०॥ इस सम्पूर्ण जगत् के विष्टम्भन होने से आपका नाम 'विष्णु'—यह कीर्तित किया जाता है क्योंकि इस त्रिलोकी को विष्टब्ध करके जिसमे सभी चर एव अचर विद्यमान हैं नित्य स्थित रहा करते हैं ॥४०, ४१॥ इसी लिये स्वय भगवान् स्वयम्भू ने विष्णु यह नाम कहा है। नारा, इससे जल कहे जाया करते हैं जिसको तत्त्व दर्शी ऋषियो ने कहा है। वेही जल पहिले उनके अयन निवास स्थान हुए थे इसीलिए आपका नारायण यह नाम कहा गया है। हे विष्णो ! आप तो युग-युग मे प्रनष्ट भङ्गो को तात्त्विक रूप से प्राप्त किया करते हैं ॥४२, ४३॥

अयनन्तस्यता: पूर्वन्तेन नारायण स्मृत. ।
युगे युगेप्रनष्टाङ्गा विष्णो ! विन्दसितत्त्वत. ॥४३
गोविन्दतितत्तोनाम्नाप्रोच्यसेभिरतथा ।
हृषीकाणीन्द्रियाण्याहुस्तत्वज्ञानविशारदा: ॥४४

ईशिता च त्वमेतेषा हृषीकेशस्तथोन्यते ।
वसन्ति त्वयि भूतानि ब्रह्मादीनि युगक्षये ॥४५
त्व वा वससि भूतेषु वासुदेवस्तथो-यसे ।
सङ्कर्षयसि भूतानि कल्पे कल्पे पुन: पुन: ॥४६
तत सङ्कर्षण प्रोक्तस्तत्वज्ञानविशारदै ।
प्रतिव्यूहेन तिष्ठन्ति सदेवासुरराक्षसा ॥४७
प्रविद्यु. सवधर्माणा प्रद्युम्नस्तेन चाच्यसे ।
निरोद्धा विद्यते यस्मान्न ते भूतेषु कश्चन ॥४८
अनिरुद्धस्तत प्रोक्त पूर्वमेव महर्षिभि ।
यत्त्वया धार्यते विश्व त्वया सह्रियते जगत् ।४६

क्योंकि आप प्रनष्ट अङ्गों का लाभ करते हैं इसी लिये आपको "गोविन्द"—इस नाम से पुकारा जाया करता है और ऋषिगण गोविन्द कहा करते हैं। हृषीक विषयेन्द्रियों को कहा जाता है जिनको कि तत्वज्ञान के विशारद कहते हैं। आप इनके ईशिता हैं इसी कारण से आपको हृषीकेश नाम से कहा जाया करता है। युग के क्षय मे ब्रह्मा आदि समस्त भूत आप ही म निवास किया करते हैं अथवा आप सब भूतो मे निवास किया करते हैं इसीलिए आपको वासुदेव कहा जाया करता है। बारम्बार आप कल्प कल्प मे भूतो का सकर्षण किया करत हैं अतएव तत्त्वज्ञान के विशारदों के द्वारा आपको सकर्षण कहा गया है। समस्त देव असुर और राक्षस प्रतिग्रह स स्थित रहत हैं और सब धर्मो क प्रविद्यु हैं अतएव आपको प्रद्युम्न इस शुभ नाम स कहा जाया करता है। आपका भूतो में क्योंकि कोई भी निरोद्धा नही है इसीलिए पहिलेही महर्षियों ने आपका नाम अनिरुद्ध कहा गया है। हे भगवन ! आपके द्वारा इस विश्व को धारण किया जाता है और आपके ही द्वारा इस जगत् का सहार किया जाता है ॥४४-४६॥

त्व धारयसि भतानि भवन त्व बिभर्षि च ।

यत्त्वया धार्यते किञ्चित्तेजसा च बलेन च ॥५०
मया हि धार्यते पश्चान्नाधृत धारये त्वया ।
न हि तद्विद्यते भूत त्वया यन्नात्र धार्यते ॥५१
त्वमेव कुरुषे । देव । नारायण युगे युगे ।
महाभारावतरण जगतो हितकाम्यया ॥५२
तवैव तेजसाक्रान्ता रसातलतलङ्गताम् ।
त्रायस्व मा सुरश्रेष्ठ । त्वामेव शरणगताम् ॥५३
दानवैं पीड्यमानाह राक्षसैश्च दुरात्मभि ।
त्वामेव शरण नित्यमुपयामि सनातनम् ॥५४
तावन्मेऽस्ति भय देव । यावन् त्वा ककुद्मिनम् ।
शरण यामि मनसा शतशोऽप्युपलक्षये ॥५५
उपमान न ते शक्ता कर्त्तुं सेन्द्रा दिवौकस ।
तत्व त्वमेव यद्वासि निरुत्तरमत परम् ॥५६

हे भगवन् ! आप समस्त भूतो को धारण किया करते हैं और आप भवन का भरण किया करत हैं और आपके द्वारा तेज और बल के द्वारा जो कुछ भी धारण किया जाता है इसके पीछे मेरे द्वारा धारण किया जाता है और जो आपके द्वारा अधृत है उसे मैं धारण करती हूँ। ऐसा कोई भी भूत विद्यमान नहीं है जो आपके द्वारा धारण न किया जाता हो। हे देव ! हे नारायण ! इस जगत् के हित की कामना से युग-युग म आप ही इस महान् भार का अवतरण किया करते हैं। हे सुर श्रेष्ठ ! आपके ही तेज से आक्रान्त, रसातल मे गई हुई और आप की ही शरणागति म गई हुई मेरा परित्राण कीजिए। म दुरात्मा दानवो तथा राक्षसो के द्वारा पीड्यमाना मैं आप ही नित्य एव सनातन प्रभु की शरण म जाती हूँ। हे देव ! मुझे तब तक ही भय होता है जब तक ककुद्मी आपकी शरण म मन से नहीं जाती हूँ। मैं सैकड़ो बार उपलक्षित करती हूँ किन्तु आपकी समानता इन्द्र आदि देवगण करने म समर्थ नहीं

होते हैं। इसके तत्व को आप ही जानते हैं और इससे पर निरत्तर है ॥ ५०—५६ ॥

ततः प्रीतः स भगवान् पृथिव्यै शार्ङ्गचक्रधृक् ।
काममस्या यथाकाममभिपूरितवान् हरिः ॥५७
अब्रवीच्च महादेवि ! माधवीय स्तवोत्तमम् ।
धारयिष्यति योमर्त्योनास्तितस्यपराभवः ॥५८
लोकान्निष्कल्मपाश्चैव वैष्णवान्प्रतिपत्स्यते ।
एतदाश्चर्यसर्वस्वमाधवीयस्यवोत्तमम् ॥५६
अधीतवेद- पुरुषो मुनिः प्रीतमना भवेत् ॥६०
मा भैर्धरणि ! कल्याणि ! शान्ति व्रज ममाग्रतः ।
एष त्वामुचितं स्थान प्रापयामि मनीपितम् ॥६१
ततो महात्मा मनसा दिव्य रूपमचिन्तयत् ।
किन्नु रूपमह कृत्वा उद्धरेय धरामिमाम् ॥६२
जलक्रीड़ारुचिस्तस्माद्वाराह वपुरास्थित ।
अदृश्य सर्वभूताना वाङ्मय ब्रह्म सस्थितम् ॥६३

महर्षि शौनक जी ने कहा—इसके पश्चात् भगवान् शार्ङ्ग और चक्र के धारण करने वाले उस पृथिवी देवी पर परम प्रसन्न हो गये थे और उन हरि भगवान् ने इसकी कामना को यथोप्सित रूप से पूरित कर दिया था ॥५७॥ और भगवान् ने उससे कहा था—हे महादेवि ! आपके द्वारा कहा गया जो यह माधवीय स्तव है वह अतीव उत्तम है। जो मनुष्य इस स्तव को धारण करेगा उसका कभी भी पराभव नहीं होगा है ॥५८॥ यह आश्चर्यों का सर्वस्व माधवीय उत्तम स्तव है। इसके धारण करने वाला कल्मषों से रहित वैष्णव लोकों की प्राप्ति किया करता है। ॥५९॥ वेदों के अध्ययन करने वाला पुरुष प्रीति से युक्त मन वाला मुनि हो जाता है ॥६०॥ श्री भगवान् ने कहा—हे धरणि ! हे कल्याणि ! उरामत ! मेरे आगे शान्ति को धारण करो। मैं तुमको मनो-

रसाङ्गतामवनिमचिन्तविक्रम. सुरोत्तम. प्रवरवराहरूप धृक्।
वृषाकपि. प्रसभमथैकदष्ट्रया समुद्धरद्धरणिमतुल्यपौरुष ॥ ७६

वायु के अन्तरात्मा वाले—यज्ञो की अस्थि विकृतियों से सयुत—सोम के शोणित से समन्वित—वेदो के स्कन्ध वाले—हवि की गन्ध से सम्पन्न—हव्य और कव्य के विभाग वाले प्राग्वश की काया से युक्त—द्युतिमान्—अनेक दीक्षाओ से समन्वित—दक्षिणा हृदय—महासत्रमय—महान् योगी—उपा कर्मोष्ठ रुचक—प्रवर्ग्यावर्त भूषण—नाना छन्दोगति पथ—गुह्योपनिषद् सन—उच्छ्रित मणिशृङ्ग की भाँति छाया पत्नी सहाय प्रभु न रसातल के तल मे मग्न और रसातल के तल मे गई हुई उस भूमि का लोको के हित के लिये दष्ट्रा के अग्रभाग से उद्धार किया था। इसके अनन्तर पृथवी के धारण करने वाले वराह भगवान् ने उसे अपने स्थान पर लाकर पहिले मन से धारित वसुधरा को छोड दिया था। फिर यह मेदिनी उसके धारण करने से निर्वाण को प्राप्त हो गई थी। उस पृथ्वी ने उन शम्भु देव के नमस्कार किया था। इस प्रकार से भूतो के हित के चाहने वाले यज्ञ वराह भगवान् ने वराह होकर पहिले सागर के जल मे गयी हुई पृथिवी देवी को उदधृत किया था। इसके अनन्तर देव ने क्षिति को उदधृत करके इस जगत् की स्थापना करने की इच्छा से अम्बुजेक्षण ने पृथिवी के प्रविभाग करने के लिये मन मे विचार किया था। ॥ ७१। ७२। ७३। ७४। ७५। ७६। ७७। ७८॥ अचिन्तनीय विक्रम वाले सुरो मे श्रेष्ठ प्रवर वराह के स्वरूप को धारण करते हुए भगवान् ने जो वृषाकपि अतुलित पौरुष से सम्पन्न थे रसातल मे गई हुई धरणी को बलपूर्वक एक दाढ से समुद्धृत किया था॥ ७ ॥

११२—क्षीरोद मथन वर्णन (१)

नारायणस्य माहात्म्यं श्रुत्वा सूत ! यथाक्रमम् ।
न तृप्तिर्जायतेऽस्माकमतः पुनरिहोच्यताम् ॥१
कथं देवा गता पूर्वममरत्वं विचक्षणा ।
तपसा कर्मणा वापि प्रसादात्कस्य तेजसा ॥२
यत्र नारायणो देवो महादेवश्च शूलधृक् ।
तत्रामरत्वे सर्वेषां सहायौ तत्र तौ स्मृतौ ॥३
पुरा देवासुरे युद्धे हताश्च शतशः सुरैः ।
पुनः सञ्जीविनी विद्या प्रयोज्य भृगुनन्दनः ॥४
जीवापयति दैत्येन्द्रान् यथा सुप्तोत्थितानिव ।
तस्य तुष्टेन देवेन शङ्करेण महात्मना ॥५
मृतसञ्जीविनी नाम विद्या दत्ता महाप्रभा ।
तां तु माहेश्वरीं विद्यां महेश्वरमुखोद्गताम् ॥६
भार्गवे संस्थितां दृष्ट्वा मुमुदुः सदानवाः ।
ततोऽमरत्वं दैत्यानां कृतं शुक्रेण धीमता ॥७

ऋषिगण ने कहा—हे सूतजी ! भगवान् नारायण के यथाक्रम माहात्म्य का श्रवण करके हमारी तृप्ति नहीं होती है अतएव पुन. आप वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ विचक्षण देव किस प्रकार से पहिले अमरत्व को प्राप्त हुए थे ? किसी तप के द्वारा अथवा कर्म से या किसी के प्रसाद से या तेज के द्वारा देवों को कामरता प्राप्त हुई थी ? श्री सूतजी ने कहा—जहाँ पर देव नारायण और शूल को धारण करने वाले महादेव विद्यमान थे वे दोनों उन सबके अमरत्व के प्रतिपादन करने में सहायक कहे गये हैं ॥ २ । ३ ॥ प्राचीन समय में देवासुर युद्ध में सुरों के द्वारा सैकड़ों दैत्येन्द्र निहत कर दिये गये थे फिर भृगुनन्दन ने अपनी सञ्जीवनी विद्या का प्रयोग करके सोकर उठे हुओं की भाँति जीवित कर दिया था ।

महात्मा देव शङ्कर ने परम सन्तुष्ट होकर महान् प्रभाव एवं प्रभा वाली मृत्सञ्जीवनी विद्या उसको प्रदान कर दी थी। महेश्वर के मुख से समुद्गत उस माहेश्वरी विद्या को भार्गव महर्षि में संस्थित देखकर समस्त दानव मोह को प्राप्त होगये थे। इसके अनन्तर धीमान् शुक्र ने दैत्यों का अमरत्व कर दिया था ॥ ४–७ ॥

मा नास्ति सर्वलोकानां देवानां सर्वरक्षसाम् ।
न नागानामृषीणाञ्चनच ब्रह्मेन्द्रविष्णुषु ॥८
सा लब्ध्वा शङ्कराच्छुक्रः परां निर्वृतिमागतः ।
ततो देवासुरो घोरः समरः सुमहानभूत् ॥९
तत्र देवहतान् दैत्यान् शुक्रोविद्याबलेन च ।
उत्थापयति दैत्येन्द्रान् नीत्ययविचक्षणः ॥१०
एवंविधेन शक्रस्तु बृहस्पतिरुदारधीः ।
हन्यमानास्ततो देवाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥११
विषण्णवदनाः सर्वे बभूवुर्विकलेन्द्रियाः ।
ततस्तेषु विषण्णेषु भगवान् कमलोद्भवः ॥
मेरुपृष्ठे सुरेन्द्राणामिदमाह जगत्पतिः ॥ १२॥
देवाः शृणुत मद्वाक्यं तत्तथैव निरूप्यताम् ।
क्षिपतां दानवैः सार्द्धं मैत्र्यमत्र प्रवर्त्यताम् ॥१३
क्रियताममृतोद्योगो मथ्यतां क्षीरवारिधिः ।
सहायं वरुणं कृत्वा चक्रपाणिर्विबोध्यताम् ॥ १४

जो विद्या समस्त लोकों के पास नहीं थी तथा देवों और राक्षसों के समीप में भी विद्यमान नहीं थी एवं नाग ऋषिगण और ब्रह्मा इन्द्र तथा विष्णु के पास भी नहीं रही उस महान् प्रभाव वाली इस विद्या को भगवान् शङ्कर से प्राप्त करके शुक्राचार्य परम निर्वृत्ति को प्राप्त हुए थे। इसके पश्चात् सुमहत्त्वर देवासुर घोर समर हुआ था ॥ ८ । ९ ॥ वहाँ पर देवों के द्वारा मरे हुए दैत्यों को शुक्र ने उस विद्या के बल के द्वारा

उन दैत्ये द्रों को लीला ही से विचक्षण ने उठा दिया था। इस प्रकार से इन्द्र और उदार बुद्धि वाल वृहस्पति तथा ह्यभाव सैकडों और सहस्रो देवगण सबके सब विषाद युक्त मुखो वाल विकर्न द्रिय हो गये थे। इसक पश्चात् उनक विषण्ण होने पर भगवान् कमलोद्भव जगत् क स्वामी न मरु पवत के पृष्ठ भाग पर यह सुरेन्द्रो से कहा था॥ १०। ११। १२॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे देवगणा! मेरा यह वाक्य सुनो और उसे वस ही करो। दानवो के साथ यहाँ पर सख्य भाव कर डालो। अमृत की प्राप्ति का उद्योग करो तथा क्षार सागर का म थन करो। वरुण को सहायक बनाकर भगवान् चक्रपाणि को प्रबुद्ध करना चाहिए॥ १३, १४॥

मन्थान मन्दर कृत्वाशणनेत्रेण वेष्टितम्।
दानवेन्द्रोवलिस्वामीस्तोक्रकालनिवश्यताम् ॥१५
प्राथ्यता कूमरूपश्च पाताल विष्णुरव्यय।
प्रार्थ्यता म दर शल मन्थकायप्रवर्त्यताम् ॥१६
तच्छ्रुत्वा वचन दवा ज मुग्नवमन्दिरम्।
अल विरोधेनवयाभृत्याम्तव बल ! ऽधुना ॥१७
क्रियतामममृतोद्योगा दियता शपननकम्।
त्वया चात्पादितदैत्य ! अमृतेऽमृतमन्थन ॥१८
भविष्यामाऽमरा सर्वे त्वत्प्रसादान्न सशय।
एवमुक्तस्तदा देव परितुष्ट स दानव ॥१६
यथा वदत हे दवा ! स्तथाकार्य मयाऽधुना।
शक्तोऽहमेकएवात्रमथितु क्षीरवारिधिम् ॥२०
आहरिष्येऽमृत दि यममृतत्वाय वोऽधुना।
सुदूरादाश्रय प्राप्तान् प्रणतानपि वरिण ॥२१
यो न पूजयते भक्त्या प्रत्य चेह विनश्यति।
पालयिष्यामिव सर्वानिघुनास्नेहमास्थित ॥२२

मन्दराचल पर्वत को मथान बनाकर उस शपनाग व नत्र स

(नेतों से) वेष्टित करो। दानवों का इन्द्र स्वामी बलि को थोड़े समय तक निवेशित करो। पाताल मे अविनाशी भगवान् विष्णु जो कूर्म रूप वाले हैं उनकी प्रार्थना करो। शैलराज मन्दराचल की भी प्रार्थना करो और फिर मन्थन का कार्य प्रवृत्त कर दो। इस वचन को देवों ने श्रवण किया था और फिर वे सब दानवों के मन्दिर मे गये थे। हे बले! अब आप विरोध मत करो हम सब आपके भृत्य हैं। अब तो सब मिलकर अमृत की उपलब्धि का प्रयोग करो और मन्थन कार्य का नेत्र शेषनाग को बना डालो। हे दैत्य! आपके द्वारा इस अमृत मन्थन मे अमृत के समुत्पादित होने पर सब अमर हो जायेंगे और यह आपके ही प्रसाद से सुसम्पन्न होगा– इसमे तनिक भी संशय नहीं है। इस तरह से उन देवो के द्वारा कहे जाने वाला वह दानव बहुत परितुष्ट हो गया था। हे देवगण! आप लोग जैसा भी कहते हैं हम भी सब वैसा ही मुझे भी इस समय मे करना ही है। यहाँ पर मैं अकेला ही इस क्षीर वारिधि को मन्थन करने मे समर्थ हूँ और अब मैं आपको दिव्य अमृत अमृतत्व के लिये लाकर दे दूँगा। सुदूर से आश्रय को प्राप्त होने वाले वैरियो का जो भक्तिभाव मे पूजन नहीं किया करता है वह यहाँ पर मरकर विनष्ट हो जाया करता है। अब मैं स्नेह मे समस्थित होकर आप सब लोगों का पालन करूँगा॥ १५–२२॥

एवमुक्त्वा स दैत्येन्द्रो देवैः सह ययौ तदा।
मन्दरं प्रार्थयामास सहायत्वे धराधरम् ॥२३
सखा भवत्वमस्माकमधुनाऽमृतमन्थने।
सुरासुराणां सर्वेषां महत्कार्यमिदं जगत् ॥२४
तथेति मन्दरः प्राह यद्याधारो भवेन्मम।
यत्र स्थित्वा भ्रमिष्यामि मथिष्येवरुणालयम् ॥२५
कल्प्यतां नेत्रकार्ये च शक्तः स्याद्वेष्टने मम।
ततस्तु निर्गतौ द्वौ कूर्मशेषौ महाबलौ ।२६

विष्णोर्भागो चतुर्थांशाद्धरण्या धारणे स्थितो ।
ऊचतुर्गर्वसंयुक्तं वचनशेषकच्छपौ ॥२७
त्रैलोक्यधारणेनापि न ग्लानिमम जायते ।
किमु मन्दारकात्क्षुद्रात्घुटिकासन्निभादिह ॥२८

उसी समय में वह दलपरात्र इस प्रकार से देवगण के साथ चला गया था। धराधर मन्दर की सहायता करने क लिए प्रार्थना की थी। उसने कहा था—हे पर्वत वर ! इस समय मे आप हमारे इस अमृत के मन्थन मे सखा हो जाइय ! इस जगत् में सब सुर और असुरों का यह एक बहुत बड़ा कार्य्य है। ऐसा हीं हो जायगा—यदि मेरा कोई आधार हो जायगा जिस पर स्थित होकर मैं भ्रमण करूँगा और सागर का मन्थन करूँगा ॥ २३, २४, २५ ॥ नाग बनने के बाद म जो भी समर्थ हो और मेरा वेष्ठन कर सके उसकी कल्पना करिये। इसके पश्चात् महा बलवान् कूर्म और शेष निर्गत हो गय थे। भगवान् विष्णु के भाग धरणी के चतुर्थ अंश से धारण करने मे स्थित हो गय थे। शेष और कच्छप दोनों गर्व स समन्वित वचन कहने लगे थे। इस त्रिलोकी के धारण करने से भी मुझको कोई ग्लानि नहीं होती है फि एक घुटिका क सदृश यहाँ पर इस क्षुद्र मन्दर स्थल मे क्या ग्लानि अर्थात् थकान हो सकती है ॥ २६–२८ ॥

ब्रह्माण्डवेष्टनेनापि ब्रह्माण्डमथनेन वा ।
न मे ग्लानि र्भवेद्देहे किमु मन्दरवर्तने ॥२६
तत उत्पाटयच्छैल तत्क्षणात् क्षीरसागरे ।
चिक्षेप लीलया नागः कूर्मश्चाधःस्थितस्तदा ॥३०
निराधार यदा शैल नशेकुर्देवदानवाः ।
मन्दरभ्रामण कर्तुं क्षीरोदमथने तथा ॥३१
नारायणनिवासन्ते जग्मुर्बन्निसमन्विताः ।
यत्रास्ते देवदेवेशः स्वयमेव जनार्दनः ॥३२

तत्रापश्यन्त तन्देव सितपद्मप्रभं शुभम् ।
योगनिद्रासुनिरतं पीतवाससमच्युतम् ॥३३
हारकेयूरनद्धाङ्गम् हिपर्यङ्कसंस्थितम् ।
पादपद्मेन पद्मायाः स्पृशन्तं नाभिमण्डलम् ॥३४
स्वपक्षव्यजनेनाथ वीज्यमानं क्रमेण ता ।
स्तूयमानं समन्ताच्चसिद्धचारणकिन्नरैः ॥३५

भगवान् शेष ने कहा—इस पूरे ब्रह्माण्ड के वेष्टन से भी तथा पूर्ण ब्रह्माण्ड के मथन से भी मुझे कोई ग्लानि नहीं होती है फिर इस मन्दर के वेष्टन में क्या मुझे हानि हो सकती है ॥२६॥ इसके अनन्तर उसी क्षण में उस मन्दर शैल को उत्पाटित करके और सागर में उस समय में लीला ही से डाल दिया था और कूर्म तथा नाग नीचे स्थित हो गये थे ॥३०॥ जिस समय में देव और दानव क्षीरोद के मन्थन में निराधार शैल को मथन करने में समर्थ न हो सके थे तो वे सब बलि के सहित नारायण प्रभु के निवास स्थान पर गये थे वहाँ पर देवों के भी देवेश्वर भगवान् जनार्दन स्वयं ही विराजमान थे ॥३१-३२॥ वहाँ पर उन सबने श्वेत पद्म के समान प्रभा वाले योग निद्रा में निरत—पीताम्बरधारी अच्युत देव का दर्शन किया था। वह प्रभु हार और केयूर से नद्ध अङ्ग वाले और शेष के पर्यङ्क पर शयन करने वाले—पद्मा के पाद पद्म से नाभि मण्डल का स्पर्श करते हुए विराजमान थे। गरुड उस समय में अपने पंखों से उनको व्यजन कर रहे थे और सिद्ध चारण तथा गन्धर्वों के द्वारा स्तवन किये जा रहे थे ॥३३-३५॥

आम्नायैर्मूर्तिमद्भिश्च स्तूयमानं समन्ततः ।
तं प्रबुद्धं प्रधानं तं तुष्टुवुर्देवदानवाः ॥३६
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे प्रणताः सर्वतो दिशम् ।
नमो लोकत्रयाध्यक्ष तेजसा जितभास्कर ॥३७
नमो विष्णो नमो जिष्णो नमस्ते कैटभार्दन ॥

नमः सर्गक्रियाकर्त्रे जगत्पालयते नमः ।।३८
रुद्ररूपाय शर्वाय नम. संहारकारिणे ।
नमः शूलायुधाधृष्य नमो दानवघातिने ।।३९
नमः क्रमत्रयाक्रान्त त्रैलोक्यायाभवाय च ।
नमः प्रचण्डदैत्येन्द्रकुलकाल महानल ! ।।४०
नमो नाभिह्रदोद्भूतपद्मगर्भमहाचल ! ।
पद्मभूत ! महाभूत ! कर्त्रेहर्त्रे जगत्प्रिय ! ।।४१
जनिता सर्वलोकेश ! क्रियाकारणकारिणे ।
अमरारिविनाशाय महासमरशालिने ।।४२

उन नारायण प्रभू के चारो ओर मूर्तिमान् आम्नाय स्थित होकर स्तुति कर रहे थे। मध्यबाहु उपधान वाले उन प्रभु नारायण का समस्त देवों और दानवों ने वहां पर स्तवन किया था ।।३६।। सभी दिशाओ में वे सब अपनी अञ्जलियाँ बाँधकर तथा प्रणत होते हुए स्थित हो गये थे। देव दानवो ने कहा—हे तीनो लोको के स्वामिन ! आपकी सेवा मे हमारा नमस्कार समर्पित है। आपतो अपने तेज के द्वारा अमित भास्कर के समान हैं। हे विष्णो ! हे जिष्णो ! हे कैटभ दैत्य के मर्दन करने वाले ! आपको हम सबका बारम्बार नमस्कार है। समस्त क्रियाओ के करने वाले और इस जगती तल के परिपालन करने वाले आपको सेवा में हमारा नमस्कार है ।।३७, ३८।। संहार के करने वाले रुद्र रूप धारी भगवान् शर्व के लिए हमारा नमस्कार है। हे शूल के अपने आयुध से नधर्षण करने के योग्य ! दानवों के धात करने वाले आपको नमस्कार है ।।३९।। हे क्रम के त्रय से आक्रान्त ! हे प्रचण्ड दैत्येन्द्रो के कुल के लिए काल ! हे महानल ! त्रैलोक्य स्वरूप और अभव आपकी सवा में बारम्बार प्रणाम समर्पित है। आपतो अपनी नाभि रूपी ह्रद से उत्पन्न पद्म के गर्भ से महान् अचल हैं। हे पद्मभूत ! हे महाभूत ! हे जगत् के परम प्रिय ! सबके कर्त्ता और हर्त्ता आपके लिये नमस्कार है ।। ४०. ४१ ।

हे सब लोकों के ईश ! आप ही सबके जनन करने वाले हैं। देवों के शत्रुओं के विनाश करने वाले और महा समरशाली तथा क्रिया और कारण के करने वाले आपकी सेवा मे हम सबका प्रणाम उपस्थित है ॥४२॥

लक्ष्मीमुखाब्जमधुप ! नम कीर्तिनिवासिने ।
अस्माकममरत्वाय ध्रियता ध्रियतामयम् ॥४३
मन्दर सर्वशैलानामयुतायुतविस्तृत ।
अनन्तबलबाहुभ्यामवष्टभ्यकपाणिना ॥४४
मथ्यताममृत देव ! स्वधास्वाहार्थकामिनाम् ।
तत श्रुत्वा स भगवान् स्तोत्रपूर्व्व वचस्तदा ॥
विहाय योगनिद्रा तामुवाच मधुसूदन ॥४५
स्वागत विबुधा ! सर्वे किमागमनकारणम् ।
यस्मात्कार्य्यादिह प्राप्तास्तद् ब्रूत विगतज्वरा ॥४६
नारायणेनैव मुक्ता प्राचुस्तत्रदिवौकस ।
अमरत्वाय देवेश ! मथ्यमाने महोदधौ ।४७
यथाऽमृतत्व देवन ! तथा न कुरु माधव ! ।
त्वया विना वऽछवयमस्माभि कटभादन ! ॥४८
प्राप्तु तदमृत नाथ ! ततोऽग्रे भव नो विभो ! ।
इत्युक्तश्च ततोविष्णुरप्रधृष्योऽरिमर्दन ॥४९

हे लक्ष्मी के मुख रूपी कमल के रसास्वादन करने वाले मधुप ! कीर्ति निवासी आपके लिये नमस्कार है। हम सब के अमरत्व प्राप्ति के लिए आप इस समस्त शैलों में अयुतायुत विस्तार वाले मन्दराचल को अनन्त बल वाले बाहुओं से अवष्टब्ध करके एक हाथ से धारण करने की कृपा कीजिए और इस धारण करिए ॥४३, ४४॥ हे देव ! स्वधा स्वाहा की कामना करने वालों के अमृत का मथन कीजिए। इसके उपरान्त नारायण भगवान् ने स्तवन पूर्वक इस वचन का श्रवण किया था।

उसी समय मे मधु सूदन प्रभु ने उस अपनी परम प्रिय योग निद्रा का त्याग करके उनसे यह वचन बोले थे—श्री भगवान् ने कहा— सब देवगणो ! आपका स्वागत है । हमको आप यह बतलाइये कि यहां पर इस समय में आप लोगों के यहाँ आने का क्या कारण है ? जिस कार्य को लेकर इस समय मे आप लोग यहा प्राप्त हुए हैं उसको अब मेरे सामने बिल्कुल दुख रहित होकर बतलाये ॥४५, ४६॥ भगवान् नारायण के द्वारा इस तरह से कहे हुए वहा पर देवगण ने कहा—हे देवेश ! अमरत्व के लिए मध्यमान महोदधि में जिस प्रकार से हमारा अमृतत्व सम्पादित हो सके वैसा ही हे माधव ! आप करिए । हे कैटभार्दन ! आपके बिना हम लोगों के द्वारा यह नहीं किया जा सकता है ॥४७, ४८॥ हे नाथ ! उस अमृत को प्राप्त करने के लिए हे विभो ! आप हमारे सबके आगे हो जाइए । इस तरह से कहे गये अरियो के मर्दन करने वाले और अप्रधृष्य विष्णु उनके साथ चल दिये थे ॥४९॥

जगाम देवैः सहितो यत्रासौ मन्दराचलः ।
वेष्टितो भोगिभोगेन धृतश्चामरदानवैः ॥५०
विषभीतास्ततो देवा यतः पुच्छं ततः स्थिताः ।
मुखतो दैत्यसङ्घास्तु सैंहिकेयपुरः सराः ॥५१
सहस्रवदनं चास्य शिरः सव्येन पाणिना ।
दक्षिणेन बलिर्देहं नागस्याकृष्टवांस्तथा ॥५२
दधारामृतमन्थानं मन्दरं चारुकन्दरम् ।
नारायणः स भगवान् भुजयुग्मद्वयेन तु ॥५३
ततो देवासुरैः सर्वैर्जयशब्दपुरःसरम् ।
दिव्यं वर्षशतं साग्रं मथितः क्षीरसागरः ॥५४
ततः श्रान्तास्तु ते सर्वे देवा दैत्यपुरःसराः ।
श्रान्तेषु तेषु देवेन्द्रो मेघो भूत्वाम्बुशीकरान् ॥५५

हे सर्व लोकों के ईश ! आप ही सबके जनन करने वाले हैं। देवों के शत्रुओं के विनाश करने वाले और महा समरशाली तथा क्रिया और कारण के करने वाले आपकी सेवा में हम सबका प्रणाम उपस्थित है ॥४२॥

लक्ष्मीमुखाब्जमधुप ! नमः कीर्तिनिवासिने ।
अस्माकममरत्वाय ध्रियतां ध्रियतामयम् ॥४३
मन्दरः सर्वशैलानामयुतायुतविस्तृतः ।
अनन्तबलबाहुभ्यामवष्टभ्यैकपाणिना ॥४४
मथ्यताममृत देव ! स्वधास्वाहार्थकामिनाम् ।
ततः श्रुत्वा स भगवान् स्तोत्रपूर्व्वं वचस्तदा ॥
विहाय योगनिद्रान्तामुवाच मधुसूदनः ॥४५
स्वागतं विबुधाः ! सर्वे किमागमनकारणम् ।
यस्मात्कार्य्यादिह प्राप्तास्तद् ब्रूत विगतज्वराः ॥४६
नारायणेनैव मुक्ताः प्राचुस्तत्रदिवौकसः ।
अमरत्वाय देवेश ! मथ्यमाने महोदधौ ॥४७
यथाऽमृतत्वं देवेश ! तथा नः कुरु माधव ! ।
त्वया विना वच्छवयमस्माभिः कैटभार्दन ! ॥४८
प्राप्तुं तदमृतं नाथ ! ततोऽग्रे भव नो विभो ! ।
इत्युक्तश्च ततोविष्णुरप्रधृष्योऽरिमर्दनः ॥४९

हे लक्ष्मी के मुख रूपी कमल के रसास्वादन करने वाले मधुप ! कीर्ति निवासी आपके लिये नमस्कार है। हम सब के अमरत्व प्राप्ति के लिये आप इस समस्त शैलों में अयुतायुत विस्तार वाले मन्दराचल को अनन्त बल सम्पन्न बाहुओं से अवष्टब्ध करके एक हाथ से धारण करने की कृपा कीजिए और इसे धारण करिए ॥४३, ४४॥ हे देव ! स्वधा, स्वाहा की कामना करने वालों के अमृत का मन्थन कीजिए। इसके उपरान्त नारायण भगवान् ने स्तवन पूर्वक इस वचन का श्रवण किया था।

उसी समय मे मधु सूदन प्रभु ने उस अपनी परम प्रिय योग निद्रा का त्याग करके उनसे यह वचन बोले थे—श्री भगवान् ने कहा — सब देवगणो ! आपका स्वागत है। हमको आप यह बतलाइये कि यहाँ पर इस समय मे आप लोगो के यहाँ आने का क्या कारण है ? जिस कार्य को लेकर इस समय मे आप लोग यहा प्राप्त हुए हैं उसको अब मेरे सामने बिल्कुल दु:ख रहित होकर बतलाये ॥४५, ४६॥ भगवान् नारायण के द्वारा इस तरह से कहे हुए वहा पर देवगण ने कहा—हे देवेश ! अमरत के लिए मध्यमान महोदधि मे जिस प्रकार मे हमारा अमृतत्व सम्पादित हो सके वैसा ही हे माधव ! आप करिए। हेकैटभार्दन ! आपके विना हम लोगो के द्वारा यह नही किया जा सकता है ॥४७, ४८॥ हे नाथ ! उस अमृत को प्राप्त करने के लिए हे विभो ! आप हमारे सबके आगे हो जाइए। इस तरह से कहे गये अरियो के मर्दन करने वाले और अप्रधृष्य विष्णु उनके साथ चल दिये थे ॥४९॥

जगाम देवैः सहितो यत्रासौ मन्दराचलः ।
वेष्टितो भोगिभोगेन धृतश्चामरदानवैः ॥५०
विषभीतास्ततोदेवा यतः पुच्छ ततः स्थिताः ।
मुखतो दैत्यसङ्घास्तु सैंहिकेयपुरः सराः ॥५१
सहस्रवदन चास्य शिरः सव्येन पाणिना ।
दक्षिणेन बलिर्देहं नागस्याकृष्टवास्तथा ॥५२
दधारामृतमन्थान मन्दरं चारुकन्दरम् ।
नारायणः स भगवान् भुजयुग्मद्वयेन तु ॥५३
ततो देवासुरैः सर्वे जयशब्दपुरःसरम् ।
दिव्यं वर्षशत साग्र मथितः क्षीरसागरः ॥५४
ततः श्रान्तास्तु ते सर्वे दैवादैत्यपुरः सराः ।
श्रान्तेषु तेषु देवेन्द्रो मेघोभूत्वाम्बुशीकरान् ॥५५

ववर्षामृतकल्पास्तान् ववौ वायुश्च शीतल ।
भग्नप्रायेषु देवेषु शान्तेषु कमलासन ॥५६

भगवान् विष्णु उन सब देवा के हो सहित वहा पर चले गये थे जहाँ पर यह म दराचल विद्यमान था। वह म दराचल भागी शेष के भोग के द्वारा वेष्टित था और अमरों तथा दानवों के द्वारा धृत हो रहा था। ॥५०॥ क्योंकि देवगण विष से भयभीत होकर शेष नाग की पूँछ की ओर स्थित हो रहे थे तथा सैंहिकेय जिनके आगे था ऐसे दैत्यों के सङ्घ शेष के मुख की ओर समवस्थित थे। सहस्र मुखों वाला इसके शिर को बलि ने सव्य दक्षिण हाथ से आकर्षित किया था ॥५१, ५२॥ उन भगवान् नारायण ने अपनी दोनों भुजाओं से सु दर कन्दराओं वाले म दराचल को अमृत का म थान धारण किया था ॥५३। इसके अनन्तर समस्त देवों और असुरों ने जय शब्द के उच्चारण पूर्वक दिव्य डेढ सौ वर्ष तक उस क्षीर सागर का म थन किया था ॥५४॥ इसके पश्चात् वे सब दैत्य पुरस्सर देवगण अत्यन्त श्रान्त हो गये थे। उन सबके थकित होने पर देवेन्द्र ने मेघ होकर उन अमृत के समान जल के सीकरों की वर्षा की थी। तथा शीतल वायु बहने लगा। जब देवगण भग्न प्राय होकर शान्त हो गये थे तो उस समय पर कमलासन प्रभु ने उनको प्रोत्साहन दिया था जिससे मन्थन कार्य बराबर चलता रहे ॥५५, ५६॥

मथ्यता मथ्यता सिन्धुरित्युवाच पुन पुन ।
अवश्यमुद्योगवता श्रीरपारा भवेत्सदा ॥५७
ब्रह्मप्रोत्साहितादेवा ममन्थु पुनरम्बुधिम् ।
भ्राम्यमाणे तत शैले योजनायुतशेखरे ॥५८
निपेतुर्हस्तियूथानि वराहशरभादय ।
श्वापदायुतलक्षाणि तथा पुष्पफलाद्रुमा ॥५९
तत फलानां वीर्य्येण पुष्पौषधिरसेन च ।
क्षीरमब्धेपयसा चापि दधिरूपमजायत ॥६०

ततस्तु सर्वजीवेषु चूर्णितेषु सहस्रश.
तदम्बुमेदसोत्सर्गाद्वारुणी समपद्यत ॥६१
वारुणीगन्धमाघ्राय मुमुदुर्देवदानवा: ।
तदास्वादेन बलिनो देवदैत्यादयोऽभवन् ॥६२
ततोऽविवेगाज्जगृहु नगेन्द्र सर्वतोऽसुराः ।
मन्थान मन्थयष्टिस्तु मेरुस्तत्राचलोऽभवत् ॥६३

कमलासन प्रभु ने सिन्धु का मन्थन करो मन्थन करो—यह बार २ कहा था। जो उद्योग में पराण हुआ करते है उनको सदा ही अपार श्री हुआ करती है। इस तरह से ब्रह्माजी के द्वारा प्रोत्साहित हुए देवो ने पुन. अम्बुधि का मन्थन किया था। फिर दश हजार योजन के शेखर वाले शैल के भ्राम्यमाण होने पर हस्तियो के यूथ, वराह, शरभ आदि, सहस्रो एव लाखो श्वापद, पुष्प तथा फलो वाले वृक्ष, फलो के वीय से तथा पुष्पो और ओषधियो क रस म एव क्षीर क सघर्षण से भी वह सागर दधि के रूप वाला हो गया था ॥५७–६०॥ इसके पश्चात् सहस्रो समस्त जीवो के चूर्णित होने पर उस अम्बु मेद के सोत्सर्ग से वारुणी समुत्पन्न हुई थी ।६१। उस वारुणी की गन्ध को सूँघ कर सब देव और दानव बहुत ही अधिक प्रसन्न हुए थे उसक आस्वाद से देवगण और दैत्य आदिक सब बलो हो गय थे ॥६२॥ इसक उपरान्त असुरो न सभी ओर वग के साथ उस नागेन्द्र को ग्रहण किया था और वह मन्थान तथा मन्थयष्टि मेरु वहा पर अचल हो गया था ॥६३॥

अभवच्चाग्रतोविष्णु र्भुजमन्दरबन्धन. ।
स वासुकिफणालग्नपाणि कृष्णा व्यराजत ॥६४
यथा नीलोत्पलसंयुक्तो ब्रह्मदण्डोऽतिविस्तर ।
ध्वनिर्मेघमहस्रस्य जलधेरुत्थितस्तदा ॥६५
भागे द्वितीये मघवानादित्यस्तु तत परम् ।
ततो रुद्रा महोत्साहा वसवो गुह्यकादय ॥६६

पुरतो विप्रचित्तिश्च नमुचिर्वृत्रशम्बरौ ।
द्विमूर्द्धा वज्रदंष्ट्रश्च सैंहिकेयो बलिस्तथा ॥६७
एतेचान्ये च बहवो मुखभागमुपस्थिताः ।
ममन्थुरम्बुधि दृप्ता बलतेजोविभूषिताः ॥६८
बभूवात्र महाघोषो महामेघरवोपमः ।
उदधे मथ्यमानस्य मन्दरेण सुरासुरैः ॥६९
तत्र नानाजलचरा विनिर्धूता महाद्रिणा ।
विलयं समुपाजग्मु शतशोऽथ सहस्रशः ॥७०

आगे की ओर भुजमन्दर बन्धन वाले विष्णु थे और वह वासुकि के फणों में सलग्न हाथ वाले कृष्ण शोभा दे रहे थे ॥६४॥ उस समय में जिस प्रकार से नीलोत्पलों से युक्त अति विस्तार वाला ब्रह्मदण्ड हो। उस समय मे सहस्रों मेघों की ध्वनि उस सागर से उठकर सुनाई दे रही थी ॥६५॥ द्वितीय भाग मे भगवान् और उसके आगे आदित्य थे। इसके पश्चात् रुद्रगण और महान् उत्साह वाले वसुगण तथा गुह्यक आदि थे। आगे की ओर विप्रचित्ति, नमुचि तथा वृत्र और शम्बर थे द्विमूर्द्धा, वज्र दंष्ट्र, सैंहिकेय तथा बलि था ॥६६, ६७॥ ये सब तथा अन्य बहुत-से मुख भाग की ओर उपस्थित थे। उन सबने बल एवं तेज से विभूषित होते हुए दृप्त होकर अम्बुधि का मन्थन किया था ॥६८॥ सुरों असुरों के द्वारा मन्दराचल से मथ्यमान सागर का महान् मेघ की ध्वनि के तुल्य महान् घोष हुआ था। उस महाद्रि से वहाँ पर अनेक जलचर विनिर्धूत हो गये थे और सैंकड़ों तथा सहस्रों तो विलय को प्राप्त हो गये थे ॥६९, ७०॥

वारुणानि च भूतानि विविधानि महेश्वर ।
पातालतलवासानि विलयं समुपानयत् ॥७१
तस्मिंश्च भ्राम्यमाणेऽद्रौ संघृष्टाश्च परस्परम् ।
न्यपतन् पतगोपेताः पर्वताग्रान्महाद्रुमाः ॥७२

तेषां सङ्घर्षणाच्चाग्निरर्चिभिः प्रज्वलन् मुहुः ।
विद्युद्भिरिव नीलाभ्रमावृणोन्मन्दरं गिरिम् ।।७३
ददाह कुञ्जरांश्चैव सिंहांश्चैव विनिःसृतान् ।
विगतासूनि सर्वाणिसत्त्वानिविविधानिच ।।७४
तमग्निममरश्रेष्ठः प्रदहन्तमितस्ततः ।
वारिणा मेघजेनेन्द्रः शमयामास सर्वतः ।।७५
ततो नानारसास्तत्र सुस्रुवुः सागराम्भसि ।
महाद्रुमाणां निर्यासा वहवश्चौषधीरसाः ।।७६
तेषाममृतवीर्य्याणां रसानां पयसैव च ।
अमरत्वं सुरा जग्मुः काञ्चनच्छविसन्निभाः ।।७७

महेश्वर भगवान् ने पाताल तल के निवास करने वाले विविध वारुण भूतों को विलय को प्राप्त कर दिया था। उस पर्वत के भ्राम्यमाण होने पर परस्पर में सङ्घर्ष को प्राप्त हुए पर्वत के अग्रभाग से पक्षियों से सयुत महान् द्रुम नीचे गिर गये थे ।। ७१ । ७२ ।। उनके सघर्ष होने से अग्नि अर्चियों के द्वारा बारम्बार जलती हुई ने विद्युतों के द्वारा नील अभ्र की भाँति उस मन्दराचल को समावृत कर लिया था। निकले हुए कुञ्जरों को तथा सिंहों को—विगत प्राणों वाले सब अनेक सत्त्वों को दग्ध कर दिया था। अमरों में श्रेष्ठ ने इधर-उधर जलती हुई उस अग्नि को इन्द्रदेव ने सभी ओर मेघ से समुत्पन्न जल के द्वारा शान्त कर दिया था ।। ७३ । ७४ । ७५ ।। इसके अनन्तर वहाँ पर सागर के जल में नाना प्रकार के रसों का स्राव होने लगा था। उसमें महान् वृक्षों के निर्यास थे और बहुत-सी औषधियों के रस थे। उन अमृत वीर्य वाले रसों के पय से ही सुरगण काञ्चन छवि के सदृश होते हुए अमृतत्व को प्राप्त हो गये थे ।। ७६-७७ ।।

अथ तस्य समुद्रस्य तज्जातमुदकं पयः ।
रसान्तरैर्विमिश्रञ्च ततः क्षीरादभूद्घृतम् ।।७८

ततो ब्रह्माणमासीन देवा वचनमब्रुवन् ।
श्रान्ता स्म सुभृश ब्रह्मन्नोद्भवत्यमृतञ्च ।।७९
ऋते नारायणात्सर्वे दैत्या दवोत्तमास्तथा
चिरायितमिदञ्चापि सागरस्य तु म थनम् ।।८०
ततो नारायण देव ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।
विधत्स्वषा बल विष्णो ! भवानेव परायणम् ।।८१
बल ददामि सर्वेषा कर्मतद्य समास्थिता ।
क्षुभ्यता क्रमश सर्वैम दर परिवर्त्यताम् ।।८२

इसक अनन्तर उस समुद्र का जो जल था वह पय हो गया था और वह रसान्तरो से विमिश्रित हो गया था। इसके पश्चात् क्षीर से वह घत हो गया था।। ७८। इसके उपरान्त वहाँ पर समासीन ब्रह्माजी स देवगण ने यह वचन कहा था—हे ब्रह्मन् ! हम लोग अत्यधिक श्रान्त हो गये हैं और वह अमृत उत्पन्न नहीं हो रहा है। भगवान् नारायण के बिना समस्त दत्य और सब देवोत्तम गण ने इस सागर के मन्थन को करते हुए बहुत अधिक समय व्यतीत किया था। इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने देव नारायण से यह वचन कहा—हे विष्णो ! आप इनको बल का प्रदान करें। आप ही परायण हैं। भगवान् विष्णु ने कहा—जो इस कम के करन में समास्थित हैं उन सबको मै बल का प्रदान करता हू। सबको क्रम से इसम क्षोभ कर ा चाहिए और म दराचल को घुमाना चाहिए।। ७९– ×।।

११३—क्षीरोद मथन वर्णन (२)

नारायणवच श्रुत्वा बलिन तेमहादधिम् ।
तत्पय सहितागत्वा चक्रिरे भृशमाकुलम् ।।१

ततः शतसहस्रांशुसमान इव सागरात् ।
प्रसन्नाभः समुत्पन्नः सोमः शीतांशुरुज्ज्वलः ॥२
श्रीरनन्तरमुत्पन्ना घृतात्पाण्डुरवासिनी ।
सुरादेवीसमुत्पन्ना तुरगः पाण्डुरस्तथा ॥३
कौस्तुभश्च मणिर्दिव्यश्चोत्पन्नोऽमृतसम्भवः ।
मरीचिविकचः श्रीमान् नारायण उरोगतः ॥४
पारिजातश्च विकचकुसुमस्तबकान्वितः ।
अनन्तरमपश्यस्ते धूममम्बरसन्निभम् ॥५
आपूरितदिशाम्भाग दु सह सर्वदेहिनाम् ।
तमाघ्राय सुराः सर्वे मूर्च्छितापरिलङ्घिताः ॥६
ततोविमन्थिलेटे निरः सगृह्य पाणिना ।
तन् क्रमेण दुर्वारः सोऽनलः प्रत्यदृश्यत ॥७

महर्षि मूनजी ने कहा—भगवान् नारायण के वचन का श्रवण करके वे बलवान् सब सहित होकर उस महोदधि के मथ को अत्यन्त ही अधिक उन्होंने आकुल कर दिया था। इसके पश्चात् उस सागर से एक शत सहस्रांशु के ही समान प्रसन्न आभा वाला उज्ज्वल शीतांशु सोम समुत्पन्न हुआ था इसके अनन्तर घृत से पाण्डुर वासिनी श्री समुत्पन्न हुई थी फिर सुरा देवी समुत्पन्न हुई तथा पाण्डु तुरङ्ग उत्पन्न हुआ था ॥ १, २ ३ ॥ फिर अमृत से सम्भव होने वाला परम दिव्य कौस्तुभ मणि समुत्पन्न हुई थी जो मरीचियों से विकच एवं श्री सम्पन्न थी और नारायण के उरःस्थल में प्राप्त हो गई थी ॥ ४ ॥ पारिजात की समुत्पत्ति हुई था जो विकसित कुसुमों के स्तबकों से अन्वित था। इसके अनन्तर उन सबने अम्बर के सदृश धूम को देखा था ॥ ५ ॥ सब दिशाओं के भागों को समापूरित—सब देहधारियों को दुःसह उस धूम को समघ्राण करके सभी सुरगण मूर्च्छित और परिलङ्घित हो गये थे ॥ ६ ॥ सबके सब उस समय में अपने हाथ से शिर पकड़ कर सागर

के तट पर बैठ गये थे और इसके उपरान्त वह अनल अत्यन्त ही क्रम से दुर्वार होकर दिखाई देने लगा था ॥ ७ ॥

ज्वालामालाकुलाकारः समन्ताद्दीपणोऽचिषा ।
तेनाग्निनापरिक्षिप्ताः प्रायशस्तु सुरासुराः ॥८
दग्धाश्चाप्यर्द्धदग्धाश्च बभ्रमुः सकला दिशः ।
प्रधाना देवदैत्याश्च भीषिताःस्तेन वह्निना ॥६
अनन्तरं समुद्भूतास्तस्मात् डुण्डुभजातयः ।
कृष्णाःसर्पामहादंष्ट्रारक्ताश्च पवनाशनाः । १०
श्वेतपीतास्तथाचान्ये तथा गोनसजातयः ।
मशकाभ्रमरादंशा मक्षिकाः शलभास्तथा ॥११
कर्णशल्याः कृकलासा अनेकाश्चैव बभ्रमुः ।
प्राणिनो दंष्ट्रिणो रौद्रास्तथा हि विषजातयः ॥१२
शार्ङ्ग हालाहलामुस्तवत्सक गुरुभस्मगा ।
नीलपत्रादयश्चान्य शतशो बहुभेदिनः ॥
येषा गन्धेन दह्यन्ते गिरिश्रृङ्गाण्यपि द्रुतम् ॥१३

ज्वालाओं की माला से समाकुल आकार वाला और अचि से सभी ओर महान् भीषण वाले उस अग्नि से प्राय सभी सुर और असुर परिक्षिप्त हो गये थे। वे कुछ दग्ध और कुछ आधे दग्ध होकर सभी दिशाओं में भ्रमण करने लगे थे। प्रधान देव और दैत्य उस वह्नि के द्वारा भीषित हो गये थे। इसके अनन्तर उससे डुण्डुभ जातियाँ समुद्भूत हो गये थे। कृष्ण सर्प—महान् दाढ़ों वाले—रक्त-पवन का अशन करने वाले-श्वेत-पीत तथा अन्य गोनस जाति वाले—मशक-भ्रमरदंश-मक्षिका-शलभ-कर्णशल्य—कृकलास एवं अनेक वहाँ पर भ्रमण कर रहे थे और वे एवं सभी प्राणी थे जो दाढ़ों से सम्पन्न-रौद्र और विषयुक्त जातियों वाले थे। शार्ङ्ग हालाहल-मुस्त वत्सक-गुरुभस्मग और अन्य नीलपत्र आदि सैकड़ों बहुत से भेदों से युत थे। जिनकी गन्ध ही

ऐसी प्रबल थी कि जिससे गिरिया के शिखर भी बहुत ही शीघ्र दग्ध हो जाते थे॥ ८-१३॥

अन तर नीलरसौघभृङ्गभिन्नाञ्जनाभ विषम श्वसन्तम् ।
कायेन लोकान्तरपूरकेण केशश्च वह्निप्रतिमैज्वलद्भि ॥१४
सुवर्णमुक्ताफलभूषिताङ्ग किरीटिन पीतदुकूलजुष्टम् ।
नीलोत्पलाभं कुसुमं कृतार्घं गजन्तमम्भोधरभीमवगम् ॥१५
अद्राक्षुरम्भोनिधिमध्यसस्थ सविग्रह दहि भयाश्रयन्तम् ।
विलोक्य त भीषणमुग्रनेत्र भूताश्च विनासुरथापि सर्वे ॥१६
केचिद्विलोकयव गता ह्यभाव नि सज्ञता चाप्यपरे प्रप ना ।
वमम् खेभ्योऽपि च फेनमन्ये कश्चित्त्ववाप्ता विषमामवस्थाम् ॥१७
श्वासेन तस्य निद ग्धा ततो विष्णिवन्द्रदानवा ।
दग्धाङ्गारनिभाजाता ये भूता दिव्यरूपिण ॥
तनस्तु सम्भ्रमाद्विष्णुस्तमवाच सुरात्मकम् । १८
को भवानन्तकप्रख्य किमिच्छसि कुतोऽपि च ।
किं कृत्वा ते प्रिय जाये दवमाचक्ष्व मेऽखिलम् ॥१६
तच्च तस्य वच श्रुत्वा विष्णो कालाग्निसन्निभ ।
उवाच कालकूटस्तु भिन्न दुन्दुभिनिस्वन ॥२०

इसके अन तर नील रस क ओघ स भिन्न भृङ्ग एव अञ्जन की आभा वाले विषम श्वास लता हुआ लोका तर पूरक काया से युक्त जलती हुई अग्नि के तुल्य कशा से सयुत—सुवण और मुक्ता फलो स विभूषित अङ्गा वाला, किरीट धारी पीतवण के वस्त्र से वेष्टित, नीलो त्पल के समान आभा वाले पुष्पा स कृत अघ वाला अम्भोधर क तुल्य भीम वेग वाला गजन से समर्षित विग्रहधारी देही जो भय का समाश्रय था समुद्र के मध्य म सस्थित स्वयम दखा था एस उस भीषण उग्र नत्रा मे सम्पन्न को देखकर समस्त भूत विश्रस्त हो गय थ। कुछ तो उस दखन क साथ ही अभाव को प्राप्त हो गय थ और कुछ दूसर बेहोश

को प्राप्त हो गये थे। अन्य लोग अपने मुखों से फेनों का वमन कर रहे थे और कुछ तो विषम दशा को ही प्राप्त हो गये थे। उसके श्वास से ही बहुत से निदग्ध हो गये थे। इसके पश्चात् विष्णु, इन्द्र और दानव सबके सब दग्ध अङ्गार के तुल्य हो गये थे जो भूत परम भव्य दिव्य रूप वाले थे। इसके अनन्तर भगवान् विष्णु सुरात्मक उससे बड़े ही सम्भ्रम से बोले—श्री भगवान् ने कहा—आप एक मूर्त्तक की आख्या वाले कौन हैं ? हम सबको आपका परम प्रिय क्या कर्म करना चाहिए। जिससे देव को प्रसन्न करें। यह समस्त प्रश्न हमको बतलाइये ! वह कालाग्नि के सदृश भगवान् विष्णु के इस वचन का श्रवण करके वह कालकूट विष जो मूर्तिमान् था भिन्न दुन्दुभि के समान ध्वनि वाला यह बोला—।। १४-२० ।।

अहं हि कालकूटाख्यो विषोऽम्बुधिसमुद्भव ।
यदा तीव्रतरामर्षं परस्परवधेप्सुभि । १
सुरासुरैर्विमथितो दुग्धाम्भोनिधिरद्भुत ।
सम्भूतोऽहं तदा सर्वान् हन्तु देवान् सदानवान् ॥२२
सर्वानिह हनिष्यामि क्षणमात्रेण देहिन ।
मा मा ग्रसत वै सर्वे यात वा गिरिशान्तिकम् ॥२३
श्रुत्वैतद्वचनं तस्य तता भीता सुरासुरा ।
ब्रह्मविष्णुपुरस्कृत्य गतास्ते शङ्करान्तिकम् ॥२४
निवेदितास्ततो द्वारस्थैस्ते गणेश सुरासुरा ।
अनुज्ञाता शिवनाथविविशुर्गिरिशान्तिकम् ॥२५
मन्दरस्य गुहां रम्यां मुक्तामाल्यविभूषिताम् ।
शुम्भन्दमणिसोपानां वज्रस्तम्भसमण्डिताम् ॥२६
तत्र दृष्ट्वा गृहं गत्वा जानुभिश्चरणीं गते ।

वाला विष हूं जिस समय मे तीव्रतर अमर्ष वाले,और परस्पर मे वध करने की इच्छा से युक्त सुरों और असुरों के द्वारा यह अद्भुत दुग्धाम्भोधि का विमथन किया गया तो मैं उसी समय मे इन समस्त दानवो के सहित देवो का हनन करने के लिए ही समुत्पन्न हुआ हूं। अब मैं क्षणभर मे यहां पर सब देह धारियो को मार डालूंगा। सब लोग मुझको ग्रसित मत करो अथवा भगवान् गिरीश के समीप में चले जाओ ॥२१,२२,२३॥ उसके इस वचन को सुनकर सब सुर और असुर भयभीत हो गये थे और उन्होने ब्रह्मा तथा विष्णु को अपना नेता बनाकर वे सब भगवान् शङ्कर के समीप मे जाकर प्राप्त हुए थे। वहा पर द्वारपर स्थित गणेशो के द्वारा उन सुरासुरो का आगमन निवेदित किया गया था। इस पर शिव के द्वारा वे आज्ञा को प्राप्त करके फिर भगवान् शिव के समीप मे पहुँच गये थे। वहा पर मन्दराचल की एक गुहा थी जो सुवर्ण मयी थी और मोतियो की मालाओ से विभूषित थी तथा गसमे अतीव निर्मल मणियो के सोपान बने हुए थे एव वैदूर्य मणियो के स्तम्भो से वह गुहा मण्डित थी। वहा पर सभी देव और असुर अपने घुटने भूमि पर टेककर बैठ गये थे। उन्होने अपने आगे ब्रह्माजी को सस्थित करके इस स्तोत्र का कथन करना आरम्भ कर दिया था ॥२४—२७॥

नमस्तुभ्य विरूपाक्ष ! सर्वतोऽनन्तचक्षुषे ।
नम पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय धन्विने ॥२८
नमस्त्रिशूलहस्ताय दण्डहस्ताय धूर्जटे ।
नमस्त्रैलोक्यनाथाय भूतग्रामशरीरिणे ॥२९
नमः सुरारिहन्त्रे च सोमाग्न्यर्काग्र्यचक्षुषे ।
ब्रह्मणे चैव रुद्राय नमस्ते विष्णुरूपिणे ॥३०
ब्रह्मणे वेदरूपाय नमस्ते देवरूपिणे ।
साङ्ख्ययोगाय भूताना नमस्ते शम्भवाय ते ॥३१
मन्मथाङ्गविनाशाय नमः कालक्षयङ्कर।

रहसे देवदेवाय नमस्ते च सुरोत्तम ! ॥३२
एकवीराय शर्वाय नमः पिङ्गकपर्दिने ।
उमाभर्त्रे नमस्तुभ्य यज्ञत्रिपुरघातिने ॥३३
शुद्धबोधप्रबुद्धाय मुक्तकैवल्यरूपिणे ।
लोकत्रयविधात्रे च वरुणेन्द्राग्निरूपिणे ॥३४
ऋग्यजुः सामवेदाय पुरुषायेश्वराय च ।
अग्रायचैवचोग्राय विप्राय श्रुतिचक्षुषे ॥३५

देवों तथा दानवों ने कहा—हे विरूपाक्ष देव ! सभी ओर से अनन्त चक्षु वाले आपके लिए हमारा सबका नमस्कार है। पिनाक को हाथ रखने वाले—वज्रहस्त और धन्वी आपकी सेवा मे नमस्कार समर्पित है ।।२८।। त्रिशूल हाथ में रखने वाले—दण्ड धारी और धूर्जटि आपको प्रणाम है। त्रैलोक्य के नाथ और भूत ग्रामों के शरीर को धारण करने वाले आपकी सेवा में नमस्कार है ॥२९॥ सुरों के शत्रुओं का हनन करने वाले—सोम, अग्नि, अर्क के उत्तम नेत्रों वाले को प्रणाम है। ब्रह्मा, रुद्र और विष्णु के रूप वाले आपको हमारा नमस्कार है। वेदरूप ब्रह्मा और देव रूपी आपके लिए नमस्कार है। भूतों के साङ्ख्य योग के लिए और शम्भु आपके लिए नमस्कार है। कामदेव के अङ्ग का विनाश करने वाले आपको हमारा प्रणाम है। हे काल के क्षय करने वाले ! हे सुरों मे उत्तम ! नेत्रों के देव ! आपकी सेवा में नमस्कार है ॥३०, ३१, ३२॥ एक वीर, शर्व और पिङ्ग कपर्दी आपके लिये प्रणाम है। उमा देवी के भर्त्ता और यज्ञ त्रिपुर के घात करने वाले आपके लिए नमस्कार है। ॥३३॥ शुद्ध बोध प्रबोध, मुक्त, कैवल्य रूपी, तीनों लोकों के विधाता तथा वरुण, इन्द्र और अग्नि के रूप वाले आपकी सेवा मे नमस्कार है। ॥३४॥ ऋक्, यजु, सामवेद पुरुष, ईश्वर, अग्र, उग्र, विप्र और श्रुति के चक्षु वाले आपके लिए हम सबका नमस्कार समर्पित है ॥३५॥

रजसेचैवसत्त्वाय नमस्ते स्तिमितात्मने ।

अनित्यनित्यभावाय नमो नित्यचरात्मने ॥३६
व्यक्ताय चैवाव्यक्ताय व्यक्ताव्यक्ताय वै नम. ।
भक्तानामार्तिनाशाय प्रियनारायणाय च ॥३७
उमाप्रियाय शर्वाय नन्दिवक्त्राञ्चिताय च ।
ऋतुमन्वन्तरकल्पाय पक्षमासदिनात्मने ॥३८
नानारूपाय मुण्डाय वरूथपृथुदण्डिने ।
नमः कमलहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने ॥३९
धन्विने रथिने चैव यतते ब्रह्मचारिणे ।
इत्येवमादिचरित' स्तुत तुभ्यं नमोनमः ॥४०
एव सुरासुरं स्थाणुः स्तुतस्तोषमुपागतः ।
उवाच वाक्यमीतानास्मितान्वितशुभाक्षरम् ॥४१

स्तिमित आत्मा वाले—रजगुण और सत्व के लिए नमस्कार है। अनित्य नित्यभाव और नित्य चरात्मा के लिये नमस्कार है। व्यक्त, अव्यक्त और व्यक्ताव्यक्त को प्रणाम है। भक्तों की आर्ति के नाश करने वाले और नारायण प्रभु के प्रिय, उमा के परम प्रिय, शर्व, नान्दि वक्त्राञ्चित ऋतु मन्वन्तर कल्प, पक्ष मास दिन स्वरूप वाले. नानारूप, मुण्ड, वरूथ पृथु दण्डी, कमल हस्त, दिग्वास, शिखण्डी, धन्वी, रथी, यति, ब्रह्मचारी, इत्येवमादि चरितों से स्तुत आपके लिए बारम्बार नमस्कार है। इस प्रकार से सुर और असुरों के द्वारा स्तुति किये गये भगवान् स्थाणु परम तोष को प्राप्त हुए थे। भीतों के स्मित से समन्वित शुभ अक्षरों वाला वाक्य उन्होंने कहा था—॥३६-४१॥

किमर्थमगता ब्रूत त्रासग्लानमुखाम्बुजाः ! ।
किं वाऽभीप्ट ददाम्यद्य काम प्रब्रूत मा चिरम् ॥
इत्युक्तास्ते तु देवेन प्रोचुस्त समुरासुरा ॥४२॥
अमृतार्थे महादेव ! मथ्यमानेमहोदधौ ।
विषमद्भूतमुद्भूतलोकसक्षयकारकम् ॥४३

स उवाचाथसर्वेषां देवानां भयकारकः ।
सर्वान्वा भक्षयिष्यामि अथवा मां पिबस्तथा ॥४४
तमशक्तावयं ग्रस्तुं सोऽस्मान् शक्तोऽवलोकटः ।
एषनिश्वासमात्रेण शतं वंसमद्युतिः ॥४५
विष्णुं कृष्णं कृतस्तेनयमश्च विषमात्मवान् ।
मन्छिताः पतिताश्चान्येविप्रणाशङ्कृता परे ॥४६
अर्थाऽनर्थक्रियायाति दुर्भगानां यथा विभो ! ।
दुवलानाञ्च राजन्यो यथाभवतिचापदि । ४७
विषमेतत्समुद्भूतं तस्माद्वामृतकाक्षया ।
अस्माद्भयान्मोचयत्व गतिस्त्वञ्च परायणम् ॥४८
भक्तानुकम्पी भावज्ञो भुवनाद्रीश्वरो विभुः ।
यज्ञाग्रभुक सवहवि सौम्य सोम. स्मरान्ततकृत् ॥४९

भगवान् श्री शङ्कर ने कहा—त्रास से म्लान मुख कमल वालो ! आप लोग यहां किस प्रयोजन के लिए समागत हुए है ? आज मैं आपका क्या अभीष्ट प्रदान करूं ? आप स्वेच्छया शीघ्र बतलाइये और इसके बताने में विलम्ब न करिये। इस तरह से जब महादेव के द्वारा उनसे कहा गया था तो वे सब सुर और असुर उनसे कहने लगे थे—॥४२॥ सुर और असुरों ने कहा—हे महादेव ! हम लोग अमृत के लिये इस महोदधि का मन्थन कर रहे थे उस मथ्यमान सागर से अद्भुत और लोकों के संशय को करने वाला विष समुत्पन्न हुआ था। वह हम सब देवों को भय करने वाला बोला था कि मैं आप सबको भक्षण कर जाऊँगा अथवा मेरा पान करो ॥४३, ४४॥ उसका ग्रसन करने के लिए हम सब अशक्त हैं प्रत्युत वह से उत्कट वही हमको ग्रसने में समर्थ है। यह केवल निश्वास मात्र से ही ग्रस्त कर सकता है। वह शतपव की द्युति के समान द्युति वाला है। उसने विष्णु को कृष्ण कर दिया था और आत्मवान् उसने यम को विष कर दिया था। कुछ लोग उसने मूच्छित कर दिये

थे, अन्य गिरा दिये थे तथा दूसरों को प्रनष्ट कर दिया था। हे विभो! जैसे बुरे भाग्यों वालों को हुआ करता है वैसे ही सब अर्थ अनर्थ क्रिया प्राप्त हुआ करते हैं जिस तरह से आपत्ति काल में दुर्बलों का सकल्प हुआ करता है। यह विष उससे समुद्भूत हुआ है शायद यह अमृत की आकाङ्क्षा से ही हुआ है। अब आप इस भय से हमारा मोचन करिये। आप ही हमारी अब गति हैं और आप ही परायण हैं। आप अपने भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले, भावों के ज्ञाता, भुवनादीश्वर, विभु हैं तथा यज्ञों मे सबसे आगे भोग करने वाले, सर्व हवि, सोम, सौम्य और आप कामदेव के अन्त कर देने वाले हैं ॥४५-४९॥

त्वमेको नो गतिर्देव गीर्वाणगणशर्मकृत्।
रक्षास्मान् भक्तसंकल्पाद्विरूपाक्ष! विषज्वरात् ॥५०
तच्छ्रुत्वा भगवानाह गगनेशान्तकृद्भवः।
भक्षयिष्याम्यहं घोरं कालकूटं महाविषम् ॥५१
तथान्यदपि यत्कृत्यं कृच्छ्रसाध्य सुरासुराः!।
तच्चापि साधयिष्यामि तिष्ठध्वं विगतज्वराः ॥५२
इत्युक्त्वाहृष्टरोमाणो वाष्पगद्गदकण्ठिनः।
आनन्दाश्रुपरीताक्षाः सनाथाइव मेनिरे॥
सुरा ब्रह्मादय. सर्वे समाश्वस्ताः सुमानसाः ॥५३
ततोऽव्रजद् द्रुतगतिना ककुद्मिना हरोऽम्बरे पवनगतिजगत्पतिः।
प्रधावितैरमुरसुरेन्द्रनायकै. स्ववाहनै विगृहीतशुभ्रचामरैः॥
पुर.सरैः स तु शुशुभे शुभाश्रयैः।
शिवो वशी शिखिकपिशोर्ध्वजूटकः ॥ ५४
आसाद्य दुग्धसिन्धु तं कालकूट विष यतः।
ततो देवोमहादेवो विलोक्यविषमविषम् ॥५५
च्छायास्थानकमास्थाय सोऽपिवद्वामपाणिना।
पीयमानेविषेतस्मिंस्ततोदेवा. महासुराः ॥५६

हे देव ! आप ही एक हमारी गति हैं और देवों के समुदाय के कल्याण करने वाले हैं। हे विरूपाक्ष ! भक्षण करने के सकल्प वाले इस महाविष के डर से हमारी आप रक्षा कीजिए ॥५०॥ यह श्रवण करके भग के नेत्रों के अन्त कर देने वाले भव प्रभु ने कहा—मैं इस घोर महाविष कालकूट का भक्षण कर जाऊँगा। हे सुरासरो ! इसके अतिरिक्त अन्य भी जो कृच्छ्रसाध्य कृत्य होगा उसको भी साध्य कर दूँगा। आप लोग सब विगत ज्वर होकर स्थित रहिए ॥५१, ५२॥ इतना कह कर वह शान्त हो गये। किन्तु देवगण प्रहृष्ट रोमों वाले, वाष्प से गद्गद कंठों वाले आनन्द के अश्रुओं से परीत नेत्रों वाले सबने अपने आप सनाथ की तरह से मान लिया था। ब्रह्मा आदि समस्त देवगण सुमानस एवं समाश्वस्त हुए थे। इसके उपरान्त में पवन के समान गति वाले जगत् के स्वामी हर ने आकाश में द्रुत गति वाले ककुद्मी के द्वारा चले गये थे। ग्रहण किये हैं शुभ्र चामर जिन्होंने ऐसे वाहनों से समन्वित और प्रधावित असुर और सुरेन्द्रनायकों को आगे करके वह शिखी के समान कपिश और ऊर्ध्व जूट वाले वशी भगवान् शिव इन शुभ आश्रमों वालों के सहित परम सुन्दर शोभा को प्राप्त हुए थे ॥५३–५६॥

अगुश्च ननृतुश्चापि सिंहनादाश्च पुष्कलान् ।
चक्रु शक्रमुखाद्याश्च हिरण्याक्षादयस्तथा ॥५७
स्तुवन्तश्चैव देवेश प्रसन्नाश्चाभवस्तदा ।
कण्ठदेशे तत प्राप्ते विषेदेवमथाब्रुवन् ॥५८
विरिञ्चिप्रमुखा देवा बलिप्रमुखतोऽसुरा ।
शोभते देव ! कण्ठस्ते गात्रे कुन्दनिभप्रभे ॥५९
भृङ्गमालोनिभकण्ठेऽप्यत्रैवास्तु विष तव ।
इत्युक्त शङ्करोदेवस्तथा प्राह पुरान्तकृत् ॥६०
पीते विषे देवगणान् विमुच्य गतो हरो मन्दरशैलमेव ।
तस्मिन् गते देवगणा पुनस्त मम-थुरब्धि विविधप्रकार. ॥६१

(उस समय मे इन्द्र आदि जिनमें प्रमुख थे ऐसे समस्त देवगण तथा हिरण्याक्ष प्रभृति दानव गण सभी गान करने लगे थे एवं नृत्य कर रहे थे और पुष्कल सिंह के समान नाद करते थे। देवेश्वर का स्तवन करते हुए वे सब उस अवसर पर परम प्रसन्न हो गये थे। जब वह महा कालकूट विष उनके कण्ठ देश में प्राप्त हो गया था तो वे सब इसके अनन्तर देव से कहने लगे थे। ब्रह्मा हैं प्रधान जिनमें ऐसे सब सुरगण और बलि जिनमें प्रमुख थे वे सब असुरगण महादेव जी से बोले—हे देव! कुन्द के पुष्प के तुल्य परम स्वच्छ श्वेत प्रभा वाले आपके गात्र में आपका यह कण्ठ भाग शोभा युक्त हो रहा है। भौंरों की माला के तुल्य यह महाविष आपके इस कण्ठ में ही यहीं पर स्थित रहे। इस तरह से उनके द्वारा कहे हुए देव त्रिपुर के विनाशक शंकर ने उनसे कहा था और विष के पान कर लेने पर भगवान् हर उन देवगणों को छोड़ कर मन्दर शैल के ही समीप में चले गए थे। उनके वहाँ पर पहुँच जाने पर उन देव गणों ने फिर अनेक प्रकारों से उस सागर का मन्थन करना शुरू कर दिया था ।।५७-६१।।

११४—क्षीरोद मथन वर्णन (३)

मथ्यमाने पुनस्तस्मिन् जलधौ समदृश्यत ।
धन्वन्तरिः स भगवान् आयुर्वेदप्रजापतिः ।।१
मदिरा चायताक्षी सा लोकचित्तप्रमाथिनी ।
ततोऽमृतञ्च सुरभिः सर्वभूतभयापहा ।।२
जग्राह कमला विष्णुः कौस्तुभञ्च महामणिम् ।
गजेन्द्रञ्चसहस्राक्षो हयरत्नञ्च भास्करः ।।३
धन्वन्तरिञ्च जग्राह लोकारोग्यप्रवर्तकम् ।
छत्रं जग्राह वरुणः कुण्डले च शचीपतिः ।।४

पारिजाततरुं वायुर्जग्राह मुदितस्तथा ।
धन्वन्तरिस्ततादेवो वपुष्मानुदतिष्ठत ॥५
श्वेतकमण्डलु बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति ।
एतदत्यद्भुतं दृष्ट्वा दानवाना समुत्थितः । ६
अमृतार्थे महानादो ममेदमिति जल्पताम् ।
ततो नारायणो मायामास्थितो मोहिनी प्रभुः ॥७

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—पुनः उस जलधि के मथ्यमान होने पर वह भगवान् आयुर्वेद के प्रजापति श्री धन्वन्तरि दिखलाई दिये थे। समस्त लोकों के चित्तों को प्रमथन करने वाली और आयत नेत्रों से समन्वित वह मूर्तिमती मन्दिरा दिखलाई दी थी और इसके अनन्तर अमृत तथा सब लोकों के भय का अपहरण करने वाली सुरभि तथा कमला प्रकट हुई। भगवान् विष्णु ने उस कमला को और कौस्तुभ मणि को ग्रहण कर लिया था। सहस्राक्ष ने गजेन्द्र को और भास्कर देव ने हयवर का ग्रहण किया था एवं लोकों के आरोग्य के प्रवर्त्तक भगवान् धन्वन्तरि का भी ग्रहण किया था। छत्र को वरुण ने और शची के स्वामी ने कुण्डलों को ग्रहण किया कर लिया था। पारिजात नाम वाले तरु को वायु देव ने ग्रहण किया था और वह परम मुदित हुए थे। फिर देव वपुष्मान् धन्वन्तरि उत्थित हुए थे। उनके हाथ में एक श्वेत वर्ण का कमण्डलु था जिसमें अमृत स्थित था। इस परम अद्भुत द्रव्य को देखकर दानवों का महान् नाद समुत्थित हो गया था। उस अमृत के लिए यह मेरा है—ऐसा ही सब कह रहे थे। इसके उपरान्त नारायण प्रभु मोहिनी माया में आस्थित हुए थे ॥१–७॥

स्त्रीरूपमतुलं कृत्वा दानवानभिसंगतः ।
ततस्तदमृतं तस्यै ददुस्ते मूढचेतसः ॥
स्त्रियै दानवदैतेयाः सर्वे तद्गतमानसाः
अथास्त्राणि च मुख्यानि महाप्र

प्रगृह्याभ्यद्रवन्देवान् सहितादैत्यदानवाः ॥६
ततस्तदमृतंदेवो विष्णुरादाय वीर्यवान् ।
जहारदानवेन्द्रेभ्यो नरेण सहितः प्रभुः ॥१०
ततो देवगणाः सर्वे पपुस्तदमृत तदा ।
विष्णोः सकाशात् सम्प्राप्य सग्रामे तुमुलेसति ॥११
ततः पिवत्सु तत्काल देवेष्वमतमीप्सितम् ।
राहुर्विवुधरूपेण दानवोऽप्यपिवत्तदा ॥१२
तस्य कण्ठमनुप्राप्ते दानवस्यामृते तदा ।
आख्यात चन्द्रसूर्य भ्यां सुराणां हितकाम्यया ॥१३
ततो भगवता तस्य शिरश्छिन्नलकृतम् ।
चक्रायुधेन चक्रेण पिवतोऽमतमोजसा ॥१४

श्री नारायण प्रभु ने अनुपम स्त्री का स्वरूप धारण किया था और फिर वे उन दानवों के समुख में समागत हुए थे। इसके अनन्तर उन मूढ़ वुद्धि वाले दानवों ने वह अमृत का कलश उस मोहिनी को समर्पित कर दिया था ॥८॥ दानव और देवगण सभी उस स्त्री में समासक्त मन वाले हो गये थे क्योंकि उस मोहिनी का रूप लावण्य ही अद्भुत आकर्षण करने वाला था। इसके उपरान्त में सब दैत्य और दानव एकत्रित होकर अनेक अस्त्र तथा मुख्य महान प्रहरणों को ग्रहण करके सबके सब देवगणों पर आक्रमण कारी हो गये थे। इसके पश्चात् वीर्यवान् भगवान् विष्णु ने उस अमृत को लेकर नर के सहित प्रभु ने दानवों से हरण कर लिया था। इसके उपरान्त उसी समय में उन देवगणों ने उस अमृत का पान कर डाला था। उस समय में तुमुल सग्राम उपस्थित हो गया था तो भी देवगण ने विष्णु से उसे अमृत को प्राप्त कर लिया था ॥६, १०, ११॥ उस अमृत का देवों के द्वारा पान करने पर जो कि उनका परम अभीष्ट था। उन देवगणों में राहु दैत्य भी देवता का स्वरूप बनाकर बैठ गया था और उस समय में उसने भी उस अमृत को पी लिया था। उस दानव

समर मे अन्योऽन्य का निहनन करने वालों का शब्द दिवलोक को मानो स्पर्श कर रहा था। काटो, भेदन करदो, दौड़ो, गिरादो, दौड़कर धावा कर घेरलो, इत्यादि शब्द जो कि महान् घोर थे वहाँ पर सभी ओर सुनाई दे रहे थे। इस तरह से महान् भय देने वाले तुमुल युद्ध के वर्त्तमान होने पर नर और नारायण दोनो देव उस समर स्थल में समागत हो गये थे। वहाँ पर भगवान ने भी नर के दिव्य धनुष को देखकर भगवान् विष्णु ने दानव श्रेष्ठों के हनन करने के लिये चक्र का चिन्तन किया था। इसी समय में जैसे ही चक्र का चिन्तन किया था अम्बर तल से वह सुदर्शन चक्र आ गया था जो महती प्रभा से युक्त और शत्रुओं के नाश करने वाला था। उस चक्र की दीप्ति सूर्य्य के तुल्य थी—उसका मण्डल कुण्ठा से रहित था—वह सुन्दर दर्शन वाला-भीम-असह्य और उत्तम था ॥२३–२६॥ उस समागत हुए, जलती हुई अग्नि के समान प्रभा वाले, भयङ्कर, महा प्रभा से युक्त, दनुकुल के दैत्यों का दारण करने वाले तथा जलती हुई अग्नि के समान विग्रह वाले उस चक्र को करिवर कर के सदृश बाहु वाले अच्युत प्रभु ने छोड़ दिया था। उस समय में अति प्रवेगवान्, तपन महाप्रभा से युक्त, शत्रुओं के नगरों का अवदारण करने वाला, सम्वर्त्तक (प्रलय कालीन अग्नि) वह्नि के तुल्य वचस वाला और वेग युक्त वह चक्र बारम्बार गिरा करता था ॥२७, २८॥

व्यदारयद्दितितनयान् सहस्रश करेरित पुरुषवरेण मधूगे ।
दहत् क्वचिज्ज्वलन इवावलेलिहत् प्रसह्य तानसुरगणान्न्यकृन्तत। २९
प्रवेरित वियति मुहु क्षितौ तदा पपौ रणे रुधिरमथ पिशाचवत् ।
अथासुरा गिरिभिरदीनमानसा मुहुर्मुहु सुरगणमर्दयंस्तदा ॥३०
महाबला विगलितमेघवर्चस सहस्रशो गगनमभिप्रपद्य ह ।
अथाम्बराद्भयजननाः प्रपेदिरे सपादपा बहुविधमेघरूपिण ॥३१
महाद्रय प्रविगलिताग्रसानव परस्परं द्रुतमभिहत्य सस्वना ।
ततो मही प्रविचलिता सकानना महाद्रिपाताभिहता समन्तत ॥३२

परस्पर भृशमभिगर्जित मुहु रणाजिरे भृशमभि सम्प्रवृत्ते ।
नरस्तनो वरकनकाग्रभूषणं महेपुभि पवनपथ समावृणात् ॥३३
विदारयन् गिरिशिखराणि पत्रिभिर्महाभये सुरगणविग्रहे तदा ।
ततो मही लवणजलञ्च सागर महासुरा प्रविविशुरर्दिताः सुरैः ॥३४
वियद्गत ज्वलितहुताशनप्रभ सुदर्शन परिकुपित निशाम्य च ।
तत सुरैर्विजयमवाप्य मन्दरः स्वमेव देश गमित सुपूजितः ॥३५
नविादयन् स्वदिशमुपेत्य सर्वशस्ततोगताः सलिलधरा यथा गतम् ।
ततोऽमृत सुनिहितमेव चक्रिरे सुरा परा मुदमभिगम्य पुष्कलाम् ।
ददुश्च त निधिममृतस्य रक्षितु किरीटिने बलिभिरथमार सह ॥३६

उस समय मे पुरुष श्रेष्ठ के हाथो से ईरित उस चक्र ने सहस्रो की सख्या मे दिति क पुत्रो को विदीर्ण कर दिया था ॥२६॥ किसी स्थान पर अग्नि की भाँति जो कि वायु स सम्प्रेरित होता है वल पूर्वक उन असुर गणो को दग्ध करता हुआ काट रहा था । आकाश म प्रवेरित, पुन क्षिति मे उस समय मे रुधिर मद पिशाच की भाति रण स्थल मे रक्त का वह चक्र पान कर रहा था । असुरगण अदीन मन वाले होकर पर्वतो से पुनः पुन सुरगणो को अर्दित कर रहे थे ॥ ०॥ सहस्रो की सख्या मे स्थित महान् अचल विगलित मेघो क वचस वाले गगन म महान् प्रपात करते हुए, पादपों के सहित बहुत प्रकार क मेघो के स्वरूप वाल अन्तरा-भरजनन वाले हो गये थे ॥३१॥ आगे के शिखरो क प्रविगलित हो जाने वाले महान् पवत परस्पर मे शीघ्र ही अभिहन्ति होकर भास्वर हो रहे थे । इसक अनन्तर मही जिसम आद और कानन चलाय मान हो रहे थे ऐसी हो गई थी और सभी आर महीधर पतन क द्वारा आहत हो र थे ॥३२॥ उस रण क आँगन म आरम म अत्यन्त अधिक अभिगर्जित बारम्बार अधिकाधिक रूप म सम्प्रावृत्त हो रहा था । इसक अनन्तर नर न श्रेष्ठ कनक क अग्रभूषणो वाले म न् बाणो स उस पवन के मार्ग को समावृत कर दिया था ॥३३॥ उस समय म महान् भयानक उस सुरग णो

के युद्ध में पत्रियों के द्वारा पर्वतों के शिखरों को विदीर्ण करते हुए सुरों के द्वारा अदित हुए महासुर मही—लवण जल वाले सागर में प्रवेश कर गये थे ।।३४।। आकाश में गये हुए जलती हुई अग्नि के समान प्रभा वाले परिकुपित सुदर्शन का श्रवण कराकर सुरगणों के द्वारा विजय प्राप्त करके वह मन्दराचल सुपूजित होता हुआ अपने ही देश को भेज दिया गया था ।।३५।। अपनी दिशा में प्राप्त होकर विनाद करता हुआ वह चला गया था । इसके अनन्तर सलिलधर सभी ओर वहाँ से जैसे समागत हुए थे वैसे ही चले गये थे । इसके उपरान्त सुरों ने अत्यधिक परम आनन्द की प्राप्ति कर उस अमृत को सुनिहित ही कर दिया था फिर बलशाली अमरों के सहित उस अमृत की निधि की रक्षा करने के लिए इस किरीट धारी प्रभु को दे दिया था ।।३६।।

१९५—प्रासाद, भवन आदि निर्माण

प्रासादभवनादीना निवेश विस्तराद्वद ।
कुर्याल्केन विधानेन कश्च वास्तुरुदाहृतः । १
भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा ।
नारदोनग्नजिच्चैव विशालाक्ष: पुरन्दरः ॥ २
ब्रह्माकुमारो नन्दीश. शौनको गर्ग एव च ।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रवृहस्पती ।३
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः ।
सङ्क्षेपेणोपदिष्टन्तु मनवे मत्स्यरूपिणा ॥ ४
तादिदानी प्रवक्ष्यामि वास्तुशास्त्रमनुत्तमम् ।
पुरान्धकवधेघोरे घोररूपस्य शूलिनः ॥५
ललाटस्वेदसलिलमपतद् भुवि भीषणम् ।

करालवदन तस्मात् भूतमुद्भूतमुल्वणम् ॥ ६
ग्रसमानमिवाकाश सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ।
ततोऽन्धकाना रुधिरमपिवत्पतित क्षितौ ॥ ७

ऋषिगण ने कहा—हे भगवन् ! अब कृपा करके आप प्रासाद—भवन आदि के निवेश को विस्तार पूर्वक बतलाइये । किस विधान से इसे करना चाहिए और कौन सी वस्तु वास्तु, इस नाम से कही जाती है ? ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्व कर्मा, मय, नारद, नग्नजित्, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र, और बृहस्पति ये अठारह वास्तु शास्त्र के उपदेशक विख्यात हुए हैं । मत्स्य के स्वरूप को धारण करने वाले भगवान् ने भी मनु के लिए सङ्क्षेप से इसका उपदेश दिया है ॥२, ३, ४॥ सो अब मैं इस वास्तु के उत्तम शास्त्र का वर्णन करूंगा । प्राचीन समय में घोर रूप वाले भगवान् शूली के घोर अन्धक के वध होने पर शिव के ललाट से भीषण स्वेद का सलिल भूमि पर गिर गया था । उससे कराल वदन वाला एक अत्यन्त उल्वण भूत उद्भूत हुआ था ॥५, ६॥ वह आकाश को ग्रसन्न हुआ था और सात द्वीपों वाली इस सम्पूर्ण वसुन्धरा को ग्रसित-सा करता हुआ प्रतीत हो रहा था । इस भूमि पर अन्धकों का जो भी जितना रुधिर पतित होता था उसको वह तुरन्त ही पी जाया करता था ॥७॥

तेन तत्समरे सर्वं पतितं यन्महीतले ।
तथापि तृप्तिमगमन्न तद्भूत यदा तदा ॥८
सदाशिवस्य पुरतस्तपश्चक्रे सुदारुणम् ।
क्षुधाविष्टन्तु तद्भूतमाहर्तुं जगतीत्रयम् ॥६
ततः कालेन सन्तुष्टो भैरवस्तस्य चाहवे ।
वरं वृणीष्व भद्रन्ते ! यदभीष्टन्तवानघ ! ॥१०
तमुवाच ततोभूत त्रैलोक्यग्रसनक्षमम् ।

भवामि देवदवेश तथेत्युक्तञ्च शूलिना ॥११
ततस्तत्रिदिवं सर्वं भूमण्डलमशेषत ।
स्वदेहेनान्तरिक्षञ्च रुन्धान प्रपतद्भुवि ॥१२
भीतभीतस्ततादेव ब्रह्मणा चाथ शूलिना ।
दानवासुरक्षोभिष्टब्ध समन्तत ॥१३
येन यत्रैवचाक्रान्त स तत्रैवावसत्पुन ।
✓निवासात्सर्वदेवाना वास्तुरित्यभिधीयते ॥१४

उसने उस युद्ध मे महीतल पर जो भी जितना रुधिर पतित हुआ था उसने उस सबका पान कर लिया था। तो भी वह भूत जब तक तृप्ति को प्राप्त नही हुआ था। वह भगवान् सदा शिव के आगे बडा ही दारुण तप किया करता था और क्षुधा से समाविष्ट वह भूत इस जगती त्रय का आहरण करने को समुद्यत हो रहा था। कुछ समय मे उसकी उस महा दारुण तपस्या से उस युद्ध में भरव उमस अत्यन्त स तुष्ट हो गय थे। भैरव न उससे कहा—हे अनघ ! तुमको जो भी अभीष्ट हो वह वर मुझ स माग लो तेरा कल्याण हो। इसके अनन्तर उस भूत न भैरव म कहा—हे देव दवेश ! मैं इस त्रैलोक्य के ग्रसन करने की सामर्थ्य वाला हो जाऊँ। इस पर शूली ने ऐसा ही होगा —यह कह दिया था ॥८–११॥ इसके उपरान्त वह सम्पूर्ण त्रिदिव समग्र भूमण्डल और अपने देह से रुधान अन्तरिक्ष भूमि पर गिर पडा था ॥१२॥ इसके पश्चात् डरे डराये हुए देवो ब्रह्मा–शूली और दानव असुर तथा राक्षसो के द्वारा सभी ओर अवष्टब्ध हो गया ॥१३॥ जिसके द्वारा जहा पर ही आक्रमण किया गया था वह फिर वही पर निवास करने लगा था। समस्त देवो के निवास से 'वास्तु'—इस नाम से कहा जाता है। १४॥

अवष्टब्धाश्च तेनापि विज्ञप्ता स्मदेवता ।
प्रसीदध्व सुरा सर्वे युष्माभिर्निश्चलीकृत ॥१५
कथमधोमुखस्तिष्ठे ह्यवष्टब्धो यथाविधि ।

ततो ब्रह्मादिभि. प्रोक्तं वास्तुमध्ये तु यो बलि ॥१६
आहारो वैश्वदेवान्ते नूनमस्मिन्भविष्यति ।
वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति ॥१७
अज्ञानात् कृतो यज्ञस्तवाहारो भविष्यति ।
यज्ञोत्सवादो च बलिस्तवाहारोभविष्यति ॥१८
एव मुक्तस्ततोहृष्ट· सवास्तुरभवत्तदा ।
वास्तुयज्ञः स्मृतस्तस्मात्तनः प्रभृतिशान्तये ॥१९

उसके द्वारा अवष्टब्ध सब देवगण विज्ञप्त हो गये थे कि हे समस्त सुरगणो ! आप प्रसन्न हो जाइये आपने मुझे निश्चयीभूत बना दिया है । अब मैं नीचे की ओर मुख वाला अवष्टब्ध हुआ किस आकार वाला होकर स्थित रहूँगा ? इसका उत्तर ब्रह्मादि सबने यही दिया था कि वास्तु के मध्य मे जो बलि है इसमे निश्चय ही वैश्व दवान्त मे आहार हो जायगा ॥१५, १६ १७॥ जो यज्ञ अज्ञान से किया गया है वह भी तेरा आहार होगा। यज्ञोत्सव आदि मे जो बलि है वह तेरा आहार होगा । इस प्रकार से कहे जाने पर वह परम प्रसन्न होकर उस समय में वास्तु हो गया था । इसी कारण ने तभी से लेकर शान्ति के लिए वास्तु यज्ञ यह कहा गया है ॥१८, १९॥

११६–गृह निर्माण काल वर्णन

अथात. सम्प्रवक्ष्यामि गृहकालविनिर्णयम् ।
यथा काल शुभ ज्ञात्वा सदा भवनमारभेत् ॥१
चैत्रेव्याधिमवाप्नोति यो गृह कारयेन्नर ।
वैशाखे धेनुरत्नानि ज्येष्टेमृत्यु तथैव च ॥२
आषाढे भृत्यरत्नानि पशुवर्गमवाप्नुयात् ।

श्रावणे भृत्यलाभन्तु हानिं भाद्रपदे तथा ॥३
पत्नीनाशोऽश्विने विन्द्यात्कार्तिके धनधान्यकम् ।
मार्गशीर्षे तथा भक्तं पौषे तस्करतो भयम् ॥४
लाभञ्च बहुशो विन्द्यात् अग्निं माघे विनिर्दिशेत् ।
फाल्गुने काञ्चनं पुत्रानिति कालबलं स्मृतम् ॥५
अश्विनीरोहिणीमूलमुत्तरात्रयमैन्दवम् ।
स्वातीहस्तोऽनुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते ॥६
आदित्यभौमवर्ज्यास्तु सर्ववारा शुभावहा ।
वर्ज्यव्याघातशूलेचव्यतीपातातिगण्डयोः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर गृहकाल का विशेष निर्णय मैं बतलाता हूं। जिस प्रकार से शुभ काल को जानकर सदा भवन के निर्माण का आरम्भ करना चाहिए ॥ १ ॥ जो मनुष्य चैत्र मास में गृह का निर्माण कराता है तो व्याधि की प्राप्ति किया करता है। वैशाख मास में धेनु और रत्नों का लाभ होता है तथा ज्येष्ठ मास में गृह के निर्माण का कार्य आरम्भ कराने से मृत्यु हो जाया करती है। आषाढ़ मास में भृत्य और रत्न तथा पशु वर्ग का लाभ होता है। श्रावण मास में भृत्यों का लाभ होता है तथा भाद्रपद मास में गृह निर्माण कराने से हानि हुआ करती है। आश्विन मास में पत्नी का विनाश जानना चाहिए। कार्तिक के महीने में गृह के निर्माण कराने से धन-धान्य का लाभ होता है। मार्गशीर्ष में भक्त का लाभ तथा पौष में तस्करों से भय उत्पन्न होता है एवं बहुत सा लाभ भी होता है। माघ में अग्नि का भय होता है। फाल्गुन मास में काञ्चन और पुत्रों की प्राप्ति होती है यह काल का बल बता दिया गया है ॥ ३, ४ ५ ॥ अब नक्षत्रों के विषय में विचार प्रकट किया जाता है—अश्विनी, रोहिणी, मूल, तीनों उत्तरा, ऐन्दव, स्वाती, हस्त, अनुराधा ये नक्षत्र गृह निर्माण के कार्य्य में परम प्रशस्त माने गये हैं। आदित्य, भौम इन दो वारों को वर्जित करके गृह निर्माण

मे अन्य सभी वार शुभावह हुआ करते हैं। व्याघात, शूल, व्यतीपात, अतिगण्ड ये वर्जित करने के योग्य होते हैं ॥ ६, ७ ॥

विष्कम्भगण्डपरिघवज्रयोगेषु कारयेत् ।
श्वेते मैत्रेऽथ माहेन्द्रे गान्धर्वाभिजिति रौहिणे ॥८
तथा वैराजसावित्रे मुहूर्ते गृहमारभेत् ।
चन्द्रादित्यबलं लब्ध्वा शुभलग्नं निरीक्षयेत् ॥६
स्तम्भोच्छ्रायादिकर्त्तव्यमयन्तु परिवर्जयेत् ।
प्रासादेष्वेवमेवं स्यात् कूपवापीषुचैव हि ॥१०
पूर्वं भूमि परीक्षेत पश्चाद्वास्तुं प्रकल्पयेत् ।
श्वेतारक्ता तथापीता कृष्णाचैवानुपूर्वशः ॥११
विप्रादेः शस्यते भूमिरतः कार्य्यं परीक्षणम् ।
विप्राणांमधुरास्वादाकटुकाक्षत्रियस्य तु ॥१२
तिक्ताकषाया च तथा वश्यशूद्रेषु शस्यते ।
अरत्निमात्रेवैगर्ते स्वनुलिप्ते च सर्वशः ॥१३
घृतमामशरावस्थं कृत्वावर्तिचतुष्टयम् ।
ज्वालयेद्भूपरीक्षार्थं तत्पूर्णसर्वदिङ्मुखम् ॥१४

विष्कम्भ, गण्ड, परिघ और वज्र ये योग श्रेष्ठ होते हैं— इनमे गृह का निर्माण कराना चाहिये । श्वेत, मैत्र, माहेन्द्र, गान्धर्व, अभिजित्, रौहिण, वैराज, सावित्र—इन मुहूर्तों मे गृह के निर्माण का आरम्भ कराना चाहिए । चन्द्र और सूर्य के बल को प्राप्त कर शुभ लग्न को भी देख लेना चाहिए । अन्य स्तम्भोच्छ्राय आदि कर्त्तव्य को परिवर्जित कर देना चाहिए । जो प्रासादों का निर्माण कराया जावे उनमे इसी प्रकार से विचार करना नितान्त आवश्यक है तथा कूआ और बावड़ी आदि के विषय मे भी यही विचार करे । सबसे पहिले भूमि की परीक्षा करनी चाहिए इसके पश्चात् वस्तु की प्रकल्पना करे । कृष्णा, रक्ता, श्वेता तथा पीता अर्थात् सफेद, लाल, पीला और काला इनको आनुपूर्वी से

कल्पना करे। विप्रो आदि की भूमि प्रशस्त कही जाती है। अतएव परीक्षण करना ही चाहिए। विप्रो का मधुर आस्वाद–क्षत्रिय का कटु का और वैश्य तथा शूद्रा मे तिक्त एव कषाय आस्वाद प्रशस्त होता है। एक अ ति मात्र गर्त मे जो कि सभी ओर से भली भाँति लिप्त कर दिय गया हो उसमे एक कच्चे सकोरा मे घन भर कर चार वत्तियाँ उसमे डाले और उनको जलाकर उस पूण दीपक को सभी दिशाओ की ओर मुख करके भूमि का परीक्षा के लिये रखना चाहिए। ८ ६, १० ११ १२ १३ १४॥

दीप्तौ पूर्वादिगृहणायाद्वर्णानामनुपूर्वश ।
वास्तु सामहिकानाम दीप्यते सवतस्तुय ॥१५
शुभद सववर्णाना प्रासादपु गृहेपु च।
अरत्निमात्रमधागर्ते परीक्ष्य खातपूरणे ॥१६
अधिकेश्रियमाप्नाति यूनेहानि समे समम्।
फालकृष्टेऽथवादेश सवबीजानि वापयेत् ॥१७
त्रिपञ्चसप्तरा ेच यत्रारोहन्ति ता यपि ।
ज्येष्ठात्तमाकनिष्ठाभूवजनोयतरा सदा । १८
पञ्चगव्यौषधिजल पराक्षित्वा च सेचयेत।
एकाशीति पद कृत्वा रेखाभि कनकन च ॥१९
पश्चाद्विष्टेनचालिप्य सूत्रेणालाड्य सवत ।
दशपूर्वायतारेखा दशचवोत्तरायता ॥२०
सववास्तुविभागेपु विज्ञ या नवका नव।
एकाशीति पद कृत्वा वास्तुवित्सववास्तुपु ॥२१

उसको दीप्ति म पूर्वादि को आनुपूर्वश गणो का ग्रहण करना चाहिए वास्तु—यह सामूहिक नाम है जो सभी ओर दीप्त होता है ॥ १५ ॥ यह प्रासादो म और गृहो म सब वर्णों को शुभ देन वाला होता है। अरत्नि मात्र खातपूरण नीर के गत म परीक्षण करा व योग्य है ॥१६॥ अधिक

होवे । बत्तीस बाह्य भाग मे पूजने चाहिए और अन्दर मे तेरह की पूजा करनी चाहिए ।। २२ ।। अब हम नामों का उल्लेख करके उनको बतलायेगे उनके स्थानो को जानलो । उस मनुष्य को चाहिए कि ईशान आदि चारो कोणो मे सस्थितो का पूजन करे और उस हवि के द्वारा ही करना चाहिए । २३ ।। शिखी—पज य—जय त—कुलिशायुध—सूर्य—सत्य—भश—आकाश—वायु—पूषा—वितथ—गृहक्षत—यम—ग धव—भृङ्गराज—मृग—पितृगण—दौवारिक—सुग्रीव—पुष्पदन्त—जलाधिप—असुर—शोष—पाप—चरोग—आदि—मुख्य—भल्लाट—सोम—सप—अदिति—दिति—बाहिर ये बत्तीस होते हैं । उसके अन्त में जो होते हैं उनका श्रवण करो । ईशान आदि चतुष्कोणो मे सस्थितो का बुध पुरुष को पूजन करना चाहिए । आप—सावित्र—जय—रुद्र ।। २३ २४ २५, २६ २७, २८ ।।

मध्ये नवपदे ब्रह्मायस्याष्टौचसमीपगान् ।
साध्यानेकान्तरान्विद्यातपूर्वाद्यान्नामत शृणु ।।२६
अर्यमासविताचैवविवस्वान्विबुधाधिप ।
मित्रोऽथराजयक्ष्माचतथापृथ्वीधर स्मृता ३०
अष्टमश्चापवत्सस्तु परितो ब्रह्मण स्मृत ।
आपश्चैवापवत्सश्च पर्यग्नोऽग्निर्दितिस्तथा ।।३१
पदिकानान्तु वर्गोऽयमेव कोणेष्वशेषत ।
तन्मध्ये तु बहिर्विंश द्विपदास्ते तु सवश ।।३२
अर्यमा च विवस्वाश्च मित्र पृथ्वीधरस्तथा ।
ब्रह्मण परितो दिक्षु त्रिपदास्ते तु सर्वश ।।३३
यशानिदानी वक्ष्यामि अजूनपि पृथक् पृथक ।
वायु यावत्तथारोगात् पितृभ्य शिखिन पुन ।।३४
मुख्यारभ्र्य तथा शोषादितथ यावदव तु ।
सुग्रीवाददिति यावन् मृगात्

मध्य नवपद में ब्रह्मा और उसके आठ समीप में गमन करने वाले—एक क अन्तर से युक्त साध्यों को जान लो अब पूर्वाद्यों के नामों का श्रवण करो ॥ २९ ॥ अर्यमा–सविता–विवस्वान्–वसुराधिप–मित्र–राजयक्ष्मा—पृथ्वीधर–आठवां आपवत्स—परित ब्रह्मण—आप—अपवत्स–पर्जन्य–अभिदिति—इस प्रकार से यह पदिकों का यह वर्ग है इसी तरह से कोणों में पूर्ण रूप से हैं। उनके मध्य में सब ओर वे बाहिर बीस द्विपद हैं ॥ ३०, ३१, ३२ ॥ अर्यमा–विवस्वान्–मित्र–पृथ्वीधर–दिशाओं में वे सब ओर ब्रह्मा के दोनों ओर त्रिपदा हैं ॥ ३३ ॥ अब मैं सरलों को भी पृथक् २ बतलाऊंगा। तथा रोग से जहाँ तक वायु को फिर पितगण से शिखि को बतलाता हूँ ॥ ३४ ॥ मुख्य से भद्र तथा शोष से वितथ पर्य्यन्त—सुग्रीव से जहाँ तक अदिति है और मृग से पर्जन्य पर्यन्त है ॥ ३५ ॥

एतेवंशाः समाख्याताः क्वचिच्च जयमेव तु।
एनेषा यस्तुसम्पात पद मध्य सम तथा ॥३६
मर्मचैतरसमाख्यात त्रिशूलं कोणगञ्च यत्।
स्तम्भ न्यासेपुवर्ज्यानितुलाविधिपुमर्वदा ॥३७
कीनोच्छिष्टोपघातादि वर्जयेद् यत्नतो जनः।
सर्वत्र वास्तुनिर्दिष्टो पितृवंश्वानरायत. ॥३८
मूर्द्धन्यग्नि. समादिष्टो मुखेचापः समाश्रितः।
पृथ्वीधरोऽयमाचोवस्तनयोस्तावधिष्ठितौ ॥३९
वक्षस्थले चापवत्सः पूजनीयः सदा बुधैः।
नेत्रयोदितिपर्जन्यौ श्रोत्रेऽदितिजयन्तकौ ॥४०
सर्पेन्द्रावसस्थौ तु पूजनीयौ प्रयत्नत।
सूर्यसोमादयस्तद्वत् बाह्वोः पञ्च च पञ्च च ॥४१
रुद्रश्च राजयक्ष्मा च वामहस्ते समास्थितौ।
सावित्रः सविता तद्वद्धस्त दक्षिणमास्थितौ ॥४२

ये दश समाख्यात किये गये हैं और कही पर तो जय ही है। इनका जो सम्पात है मध्य पद तथा सम है। यह मम कह दिया गया है जो त्रिशूल कोण गत है। सब ओर न्यासो मे स्तम्भ है और तुला विधियों मे वर्ज्य हैं। मनुष्य को कीलोच्छिष्ट उपघात आदि का यत्न से वर्जित कर देना चाहिए। सब जगह पर वास्तु का पितृवैश्वानरायत निर्दिष्ट है। मूर्द्धा मे अग्नि का निर्देश किया गया है—मुख मे पाप समाश्रित है। पृथ्वीधर और अर्यमा ये दोनों स्तनो में अधिष्ठित हैं। वक्षःस्थल मे आपवत्स का बुध गणो को सदा पूजन करना चाहिए। नेत्रो मे दिति और पर्जन्य, श्रोत्र मे अदिति जयन्तक, दो सर्पेन्द्र अंस मे संस्थित प्रयत्न पूर्वक पूजन करने के योग्य होते हैं। उसी तरह से बाहुओ मे पाँच-पाँच सूर्य सोमादिक पूजनीय हैं। रुद्र और राजयक्ष्मा वामहस्त मे दोनों समास्थित हैं। इसी प्रकार से सावित्र सविता दक्षिण हाथ मे आस्थित हैं ॥ ३९-४२ ॥

विवस्वानथ मित्रश्च जठरे संव्यवस्थितौ ।
पूषा च पापयक्ष्मा च हस्तयोर्मणिबन्धने ॥४३
तथैवासुरशोषौ च वामपार्श्वं समाश्रितौ ।
पार्श्वे तु दक्षिणे तद्वत् वितथः सगृहक्षतः ॥४४
ऊर्वोर्यमाम्बुपौ ज्ञेयौ जान्वोर्गन्धर्वपुष्पकौ ।
जङ्घयोर्भृङ्गसुग्रीवौ स्फिक्स्थौ दौवारिकौ मृगः ॥४५
जयशक्रौ तथामेढ्रे पादयो पितरस्तथा ।
मध्ये नव पदे ब्रह्मा हृदये स तु पूज्यते ॥४६
चतुःषष्टि पदो वास्तु प्रासादे ब्रह्मणा स्मृतः ।
ब्रह्मा चतुष्पदस्तत्र कोणेष्वर्धपदास्तथा ॥४७
बहिष्कोणेषु वास्तोस्तु सार्धाश्चोभयसंस्थिता ।
विंशति द्विपदाश्चैव चतुःषष्टि पदे स्मृता ॥४८
गृहारम्भेषु कण्डूतिः स्वाम्यङ्गे यत्र जायते ।

शल्य स्थापनयेत्तत्र प्रासादे भवने तथा ॥४९
सशल्य भयद यस्मादशल्यं शुभदायकम् ।
हीनाधिका गतावास्तोसर्वथातु विवर्जयेत् ॥५०
नगरग्रामदेशेषु सर्वत्रैव विवर्जयेत् ।
चतुः शालं त्रिशालञ्च द्विशाल चैकशालकम् ॥
नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि स्वरूपेण द्विजोत्तमा. ॥५१॥

इसके अनन्तर विवस्वान् और मित्र जठर मे भली भाँति व्यवस्थित हैं। पूषा और पाप यक्ष्मा हाथों के मणिबन्धन में हैं। उसी प्रकार मे असुर और शोष वाम पार्श्व मे समाश्रित हैं। दक्षिण पार्श्व मे उसी भाँति वितथ और गृहक्षत हैं। दोनों ऊरुओं मे यम और अम्बुप जान लेने के योग्य हैं। दोनों जानुओं मे गन्धर्व और पुष्पक है। दोनों जङ्घाओं मे भृंग और सुग्रीव समवस्थित हैं और स्फिक भागों मे दौवारिक और मृग स्थित होते हैं ॥४३, ४४, ४५॥ जय और शक्र मेढ़ में संस्थित हैं और दोनों पादो में पितर समवस्थित रहा करते हैं। मध्य नव पद मे ब्रह्मा हैं और वह हृदय मे पूजित होते हैं। ब्रह्माजी के द्वारा यह वास्तु चौंसठ पद वाला कहा गया है। वहाँ पर ब्रह्मा चतुष्पद है तथा कोणों मे अर्ध पद हैं। बाहिर कोणों में वास्तु मे साध उभय संस्थित होते हैं। बीस द्विपद हैं और चौंसठ पद से बनाये गये हैं ॥४६, ४७, ४८॥ गृहो के आरम्भ कालों मे स्वामी के अङ्गों मे जहाँ पर कण्डूति होवे वहाँ पर प्रासाद तथा भवन मे शल्य का स्थापन करना चाहिए। शल्य के सहित भयप्रद हुआ करता है और अशल्य शुभदायक होता है। हीनाधिक को गत वास्तु के सर्वथा विवर्जित कर देना चाहिए।

११७–भवन निर्माण वर्णन

चतु शाल प्रवक्ष्यामि स्वरूपन्नामतस्तथा ।
चतु शालञ्चतुर्द्वारैरलिन्दै सर्वतोमुखम् ॥१
नाम्ना तत् सवतोभद्र शुभ देवनृपालये ।
पश्चिमद्वारहीनञ्च नन्द्यावर्त. प्रचक्षते ॥२
दक्षिणद्वारहीनन्तु वर्द्धमानमुपाहृतम् ।
पुर्वद्वारविहीन तत्स्वस्तिक नाम विश्रुतम् ॥३
रुचकचोत्तरद्वारविहीन तत्प्रचक्षते ।
सौम्यशालाविहीन यत्त्रिशाल धान्यकञ्च तत् ॥४
क्षेमवृद्धिकर नृणा बहुपुत्रफलप्रदम् ।
शालया पूवया हीन सुक्षेत्रमिति विश्रुतम् ॥५
धन्य यशस्यमायुष्य शोकमोह विनाशम् ।
शालया याम्ययाहीनपद्विशालतुशालया ॥६
कुलक्षयकरन्नृणा सर्वव्याधिविनाशनम् ।
हीन पश्चिमया यत्तु पक्षघ्न नाम तत्पुन ॥७

महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा—अब मैं चतु शाला का नाम और स्वरूप स वर्णन करता हूँ। चतुशाला चार द्वारों और सर्वतोमुख अलिन्दों से युक्त हुआ करता है ॥१॥ देव और नृप के आलय में वह नाम से सर्वतोभद्र परम शुभ होता है। पश्चिम द्वार से हीन नन्द्यावर्त कहा जाता है ॥२॥ जो दक्षिण द्वार से हीन होता है वह वर्द्धमान उपाहृत होता है। पूर्व द्वार स रहित वह स्वस्तिक इस नाम से प्रसिद्ध है ॥३॥ उत्तर द्वार से जो विहीन होते है वह रुचक नाम वाला होता है। जो सौम्यशाला स रहित होता है वह त्रिशाल और धान्यक होता है ॥४॥ वह मनुष्यों को बहुत स पुत्रों की प्राप्ति क फल को प्रदान करने वाला तथा क्षेम और वृद्धि क करने वाला होता है। पूर्व शाला से हीन

'सुक्षेत्रम' इस नाम से विश्रुत होता है ।।५।। यह परम धन्य, आयुष्य (आयुको वृद्धि करने वाला)—शोक और मोह का विनाश करने वाला होता है। याम्य (दक्षिण) शाला से हीन और शाला से विशाल होता है वह मनुष्यो के कुल का क्षय करने वाला और समस्त प्रकार की व्याधियों का नाश करने वाला हुआ करता है। जो पश्चिम दिशा मे होने वाले द्वार से रहित होता है उसका नाम "पक्षघ्न"—हुआ करता है ।। ६, ७ ।।

मित्र बन्धून् सुतान् हन्त तथा सर्वभयापहम् ।
याम्यापराभ्या शालाभ्य धनधान्यफलप्रदम् ।।८
क्षेमवृद्धिकर नृणा नथापुत्र फलप्रदम् ।
यम सूर्यञ्चविज्ञेय पश्चिमोत्तरशालिकम् ।।९
राजाग्निभयद नृणा कुलक्षयकर च यत् ।
उदक्पूर्वे तु शालेद्वे दण्डाख्ये यत्र तद्भवेत् ।।१०
अकालमृत्युभयद परचक्रभयावहम् ।
धनाख्य पूर्वयाम्याभ्या शालाभ्यायद्विशालकम् ।।११
तच्छस्त्रभयदनृणा पराभवभयावहम् ।
चुल्लीपूर्वा पराभ्या तु साभवेन्मत्युसूचनी ।।१२
वैधव्यदायक स्त्रीणामनेकभयकारकम् ।
कार्यमुत्तरयाम्याभ्याशालाभ्याभयदनृणाम् ।।१३
सिद्धार्थवज्रवर्ज्याणि विशालानि सदाबुधै ।
अथातः सप्रवक्ष्यामि भवनपृथिवीपते ।।१४

याम्या पर शालाओं से मित्र-बन्धु-और सुतों की प्राप्ति होती है तथा सर्वप्रकार के भयो का अपहरण एव धन और धान्य के फल का प्रदान करने वाला पक्षघ्न हुआ करता है। पश्चिमोत्तर शालिक मनुष्यों के क्षेम एव वृद्धि का करने वाला है और पुत्र की प्राप्ति का फल प्रदान करने वाला है। इसका नाम यम सूर्य जानना चाहिए ।।८, ९।। उत्तर और पूर्व

की शालाऐं जहा पर होती हैं उनका नाम दण्ड होता है। यह मनुष्यो को राजा, अग्नि और मृत्यु का भय देने वाली है तथा कुल का क्षय करने वाली हैं ॥ १०॥ पूर्व और याम्य शालाओं से जो विशालक होता है उस का नाम धन है। यह अकाल मृत्यु और भय का प्रदान करने वाला तथा परचक्र के भय देने वाला होता है। पराओं स जो चूल्ली पूर्वा शाला होती है वह मृत्यु की सूचना देने वाली हुआ करती है ॥११, १२॥ स्त्रियों को वैधव्य के देने वाला—अनेक भयो का करने वाला होता है। उत्तर और याम्य की शाला से मनुष्यों को भय दान होता है। अतएव बुध पुरुषों को सदा सिद्धार्थ बज्र वज्य विशाल ही करनी चाहिए। इसके अनन्तर अब मैं पृथिवी पति के भवन का वर्णन करूँगा ॥१३ १४॥

पञ्चप्रकार तत्प्रोक्तमुत्तमादि विभेदत ।
अष्टोत्तरहस्तशत विस्तरश्चोत्तमामत ॥१५
चतुष्वन्येषु विस्तारा हीयतेचाष्टभि करै ।
चतुर्था शाधिक द र्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते ॥१६
युवराजस्य वक्ष्यामि तथाभवनपञ्चकम् ।
षड्भि षड भिस्तथाशीतिर्हीयतेतत्रविस्तरात् ॥१७
त्र्यशेन चाधिकदैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते ।
सेनापते प्रवक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम् ॥१८
चतु षष्टिस्तुविस्तारात्षड्भि षड्भिस्तुहीयते ।
पञ्चस्वतेषुदैर्घ्यञ्चषड्भागेनाधिकभवेत ॥१९
मन्त्रिणामथ वक्ष्यामि तथा भवनप ञ्चकम् ।
चतश्चतुर्भिर्हीनास्यात् करषष्टि प्रविस्तर ॥२०
अष्टांशेनाधिक दैर्घ्य पञ्चस्वपि निगद्यत ।
मा म तामात्यजनोराना वक्ष्य भवनप ञ्चकम् ॥ २१

यह नृप का भवन उत्तम आदि भेदों से पाँच प्रकार का बताया गया है। जो एक सौ आठ हाथ के विस्तार वाला होता है वह ही उत्तम

माना गया है ॥१५॥ अन्य जो चार प्रकार के भवन कहे गये हैं उनमे जो विस्तार होता है वह आठ हाथो का कम ही हुआ करता है। इन पाँचो मे लम्बाई से चतुर्थांश मे अधिक दीर्घता बताई गयी है। अब मैं युवराज के पाँच प्रकार के भवनो के विषय मे कहता हूँ वहा पर अस्सी के विस्तार से छै-छै हाथ कम होता जाया करता है। इन पाँचो मे भी तीन अश से अधिक दीर्घता कही जाती है। अब सेनापति के पाँच प्रकार के भवनों के विषय मे वर्णन किया जाता है ॥१६, १७, १८॥ ये भवन चौसठ के विस्तार से छै-छै हाथ प्रत्येक मे कम होता जाया करता है। इन पाँचो मे चोडाई षड्भाग से अधिक ही हुआ करती है ॥१६॥ अब राजा के मन्त्रियों के भी भवन पाँच प्रकार के ही हुआ करते हैं उनका वर्णन किया जाता है। इनका विस्तार साठ हाथ का होता है और ये भी क्रम से चार-चार हाथ कम होते हैं ॥२०॥ इन पाँचो मे भी आठ अश से अधिक दीर्घता हुआ करती है। अब इसके उपरान्त राजा के सामन्त—आमान्य और लोकों के भी पाँच प्रकार के भवनो का वर्णन यहा पर किया जाता है ॥२१॥

चत्वारिंशत्तथाष्टौ च चतुर्भिर्हीयते क्रमात् ।
चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वेतेषुशस्यते ॥२२
शिल्पिनां कञ्चुकीनाञ्च वेश्यानां गृहपञ्चकम् ।
अष्टाविंशत् कराणान्तु विहीनं विस्तरे क्रमात् ॥२३
द्विगुणं दैर्घ्यमेवोक्तं मध्यमेष्वेवमेव तत् ।
दूतीकर्मान्तिकादीनां वक्ष्ये भवनपञ्चकम् ॥२४
चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं विस्तारो द्वादशैव तु ।
अर्धाधिकरहानिः स्याद्विस्तारात्पञ्चशः क्रमात् ॥२५
दैवज्ञगुरुवैद्यानां सभास्तारपुरोधसाम् ।
तेषामपि प्रवक्ष्यामि तथा भवन पञ्चकम् ॥२६
चत्वारिंशत्त्रिस्तारा चतुर्भिर्हीयते क्रमात् ।

पञ्चस्वेतेषु दैर्घ्यञ्च षड्भागे नाधिकं भवेत ।।२७
चतुर्वर्णस्य वक्ष्यामि सामान्य गृहपञ्चकम् ।
द्वात्रिंशतिकराणान्तु चतुर्भिर्हीयते क्रमात ।।२८

ये भवन चालीस और आठ अड़तालीस हाथ के विस्तार वाले हुआ करते हैं और क्रम से चार-चार हाथ न्यून हो जाया करते हैं। इनमे भी चौथाई अंश से अधिक दीर्घता (चौड़ाई) इन पाँचो मे प्रशस्त हुआ करती है ।।२२।। नृप के यहा पर जो शिल्पी-कञ्चुकी और वेश्याएँ होते हैं उनके भी भवन पाँच तरह के उत्तम आदि भेदो वाले हुआ करते हैं। अट्ठाईस हाथ के विस्तार वाले होते हैं और क्रम से प्रत्येक मे हीनता भी होती चली जाया करती है ।।२३।। दुगुने दीघता भी बताई गयी है। इसी प्रकार से मध्यमो भी होनी है। अब दूतीकम करने वाले और अन्तिकादि के पांचो भवनो को बतलाते हैं। चतुर्थांश से अधिक दीघता होती है और विस्तार बारह का हुआ करता है। आधे-आधे हाथ की न्यूनता विस्तार से क्रम से पाँचो मे हो जाती है ।।२४, २५।। राजा के यहा रहने वाल दैवज्ञ (ज्योतिषी)—गुरु, वद्य सभास्तार पुरोहित इनके भी पाँच-पाँच प्रकार क उत्तमादि भेद से भवन हुआ करते हैं। उनको बतलात हैं—चालीस हाथ के विस्तार से युक्त ये हात हैं और चार-चार हाथ क्रम से हीन होते हैं। इन पाँचो म दीघता षडभाग से अधिक हुआ करती है। अब ब्राह्मणादि चार वर्णों क सामा य पाँचो गृहों के विषय म कहत है। य बत्तीस हाथ के विस्तार स सयुत हुआ करते है और क्रम से चार-चार की हीनता हुआ करती है ।।२६ २७, २८।।

आषोडशादितिपर नूतम तेद्वसायिनाम् ।
दशांशेनाष्टभागन त्रिभागेनाथ पादिरम् ।।२६
अधिकंदर्घ्यमित्याहु ब्राह्मणाद प्रशस्यते ।
स्वापतेन् पस्यापि गृहपार-नरश तु ।।३०
नृपवामगृहत्वादय भाण्डागार तथा च ।

सेनापतेर्गृहस्यापि चातुर्वर्ण्यस्य चान्तरे ॥
वासाय च गृह कार्यं राजपूज्येषु सर्वदा ॥३१॥

अन्तरप्रभवानाञ्च स्व पितु र्गृहमिष्यते ।
तथा हस्तशतादर्द्धं गदित वनवासिनाम् ॥३२
सेनापतेर्नृपस्यापि सप्तत्यासहितेऽन्विते ।
चतुर्दश हृतेव्यासे शालान्यासः प्रकीर्तितः ॥३३

पञ्चत्रिंशान्विते तस्मिन्नलिन्द समुदाहृतः ।
तथा षट्त्रिंशद्धस्ता तु सप्ताङ्गुलसमन्विता ॥३४
विप्रस्य महतीशाला न दैर्घ्यं परतोभवेत् ।
दशाङ्गुलाधिका तद्वत् क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३५

षोडश से लेकर इति पर निश्चय हो अन्तेव क्षत्रियों का भवन होना है। दशांश से—अष्ट भाग से और त्रिभाग से पादिक होता है। ब्राह्मणादि की दीर्घता अधिक प्रशस्त होती है—ऐसा कहते हैं। सेनापति और नृप के भी गृहों में अन्तर होता है ॥२६, ३०॥ नृप के निवास का गृह तथा भाण्डागार दोनों का निर्माण कराना चाहिए। सेनापति का गृह और चारों वर्णों वालों का गृह अन्तर में ही होना आवश्यक है। निवास के सर्वदा राज पूज्यों में गृहा करना चाहिए ॥३१॥ जिनका अन्तर में प्रभव हो उनको अपने पिता का ही गृह अभीष्ट होना चाहिए। वनवासियों का गृह सौ हाथ का आधा भाग कहा गया है ॥३२॥ सेनापति का भी जो कि राजा का होना है, सत्तर (सत्तर) के सहित एव अन्वित तथा चतुर्दश व्यास के हृत होने पर शाला का कीर्तित किया गया है। उसके पञ्चत्रिंशान्वित होने पर यह अलिन्द कहा गया है। तथा छत्तीस हाथ वाली और सात अंगुलों से समन्वित विप्र की महती शाला होती है पर से उसकी दीर्घता नहीं होनी चाहिए। उसी भाँति दश अंगुल से अधिक क्षत्रिय की नहीं होती है ॥३३, ३४, ३५॥

पञ्चत्रिंशत्करावंदये अङ्गुलानि त्रयोदश ।
तावत्करैव शूद्रस्य युतापञ्च दशाङ्गुलैः ॥३६
शालायास्तु त्रिभागेन यस्याग्रे वीथिका भवेत् ।
सोष्णीषनाम तद्वास्तु पश्चाच्छ्रेयोच्छ्रय भवेत् ॥३७
पार्श्वयोर्वीथिका यत्र सावष्टम्भन्तदुच्यते ।
समन्ताद्वीथिकायत्र सुस्थित तदिहोच्यते ॥३८
शुभदसवमेतत्स्या च्चातुवर्ण्ये चतुर्विधम् ।
विस्तरात षोडशा भागस्तयाहस्तचतुष्टयम् ॥३९
प्रथमोभूमिकोच्छाय उपरिष्टात्प्रहीतते ।
द्वादशांशेनसर्वासु भूमिकासु तथाच्छ्रय ॥४०
पक्वेष्टकाभवेद्भित्ति षोडशांशेन विस्तरात् ।
दारवैरपिकल्पास्यात्तथा मृन्मयभित्तिका ॥४१
गर्भमानेन मानन्तु सर्ववास्तुषु शस्यते ।
गृह्व्यासस्य पञ्चाशदष्टादशभिरङ्गुलैः ॥४२
सयुतो द्वारविष्कम्भो द्विगुणश्चोच्छ्रयाभवेत् ।
द्वारशाखा सुवाहुल्यमुच्छ्राय करसम्मित ॥४३
अङ्गुल सवबास्तूना पृथुत्व शस्यतेबुधैः ।
उदुम्बरोत्तमागञ्च तदर्धार्ध प्रविस्तरात् ॥४४

वैश्य की शाला पच्चीस कर विस्तृत तथा त्रयोदश अगुल होनी चाहिए। उतने ही हाथों के विस्तार से युक्त पन्द्रह-अगुल सहित शूद्र की शाला होनी चाहिए ।।३६।। शाला के त्रिभाग से जिसके आगे एक वीथिका का होना आवश्यक है। जिसका पीछा उच्छ्रय वाला हो वह श्रेय और सोष्णीष नाम वाला वास्तु होता है। जिसके पार्श्वों मे वीथिका हो उसका नाम सावष्टम्भ कहा जाता है। जिसके सब ओर वीथिका हो उसका नाम यहा पर स्थित कहा जाया करता है। चातुवर्णो मे यह चारो प्रकार का सब शुभ देने वाला होता है। विस्तार मे यह षोडश भाग

होता है तथा चार हाथ हुआ करता है ।।३७, ३८, ३९।। प्रथम भूमिकोच्छ्राय ऊपर से हीन होता है । द्वादश अंश से सब भूमिकाओं मे उसी प्रकार का उच्छ्रय होता है ।।४०।। षोडश अंश से विस्तार युक्त पकी हुई ईटों की भित्ति होनी चाहिए । दारव अर्थात् काष्ठों से भी निर्मित होवे या मृन्मय भित्ति होवे ।।४१।। गर्भमास से मान सब वास्तुओं मे प्रशस्त होता है । उस गृह मास पचास और अष्टादश अंगुलों से संयुत द्वार विष्कम्भ होता है और द्विगुण उच्छ्रय होता है । द्वारशाखा सुबाहुल्य कर सम्मित से उच्छ्राय होता है । सब वास्तुओं का अंगुलों से पृथक्त्व बुधों के द्वारा प्रशस्त माना जाता है । उदुम्बरोत्तम और भाग उसके अर्ध का अर्ध विस्तार से होता है ।।४८-४९।।

११८—स्तम्भमान निर्णय वर्णन

अथात सम्प्रवक्ष्यामि स्तम्भमान विनिर्णयम् ।
कृत्वास्वभुवनोच्छ्राय सदासप्तगुणबुधैः ।।१
अशीत्यश पृथुत्व स्यादग्रेणावगुणं सह ।
रुचकश्चतुर. स्यात्तु अष्टास्रो वज्र उच्यते ।।२
द्विवज्र षोडशास्रस्तु द्वात्रिंशास्र प्रलीनकः ।
मध्यप्रदेशे यस्तम्भो वृत्तोवृत्तइति स्मृतः ।।३
एतेपञ्च महास्तम्भा प्रशस्ता. सर्ववास्तुषु ।
पद्मवल्लीलताकुम्भपत्रदर्पणरूपिता. ।।४
स्तम्भस्य नवमाशेन पद्मकुम्भान्तराणि तु ।
स्तम्भतुल्या तुला प्रोक्ता हीना चोपतुला तत. ।।५
त्रिभागेनेह सर्वत्र चतुर्भागेन वा पुन ।
हीन हीन चतुर्थाशात् तथा सर्वासु भूमिषु ।।६

वासगेहानि सर्वेषां प्रवेशे दक्षिणेन तु ।
द्वाराणि तु प्रवक्ष्यामि प्रशस्तानीह यानि तु ॥७

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर अब मैं स्तम्भों के मान का विशेष निर्णय किया जाता है। अपने भुवन का उच्छ्राय करक बुधों के द्वारा सद सप्त गुण होना चाहिए ॥१॥ अस्सी अंश स्तम्भ का पृथुत्व होना चाहिए। अग्रभाग से अवगुणों के साथ चार वाला रुचक होता है। आठ अंशों वाला वज्र–इस नाम से कहा जाया करता है। षोडश अंश वाला द्विवज्र और बत्तीस से संयुत प्रलीनक कहा जाता है मध्य भाग में जो स्तम्भ हुआ करता है उसको वृत्तोवृत्त इस नाम से पुकारा जाया करता है ॥२, ३॥ इस तरह से रुचक—वज्र—द्विवज्र—प्रलीनक और वृत्तोवृत्त ये पाँच महान् स्तम्भ सर्व वास्तुओं में परम प्रशस्त कहे जाते हैं। पद्मवत् लीलता कुम्भ पत्र दर्पण से रुचित हुआ करते हैं। ॥४॥ स्तम्भ का नवम अंश जो हो उसी से पद्म कुम्भ के अन्तर होते हैं। स्तम्भ के तुल्य ही तुला कही गयी है और जो हीन होती है वह उपतुला होती है ॥५॥ यहाँ पर सभी जगह त्रिभाग से अथवा चतुर्भाग से उसी भाँति सर्व भूमियों में चतुर्थ अंश से हीन-हीन होती है। सबके निवास करने योग्य गेहों में दक्षिण भाग से प्रवेश करने में जो द्वार हुआ करते हैं जो कि परम प्रशस्त होते हैं उन्हीं के विषय में अब मैं वर्णन करता हूँ ॥६, ७॥

पूर्वेणेन्द्र जयन्तञ्चद्वार सर्वत्रशस्यते ।
याम्यञ्च वितथञ्चैव दक्षिणेन विदुर्बुधाः ॥८
पश्चिमे पुष्पदन्तं च वारुणञ्च प्रशस्यते ।
उत्तरेण तु भल्लाटं सौम्यं तु शुभदम्भवेत् ॥९
तथावास्तुषु सर्वेषु वेधं द्वारस्य वर्जयेत् ।
द्वारे तु रथ्यया विद्धे भवेत् सर्वकुलक्षयः ॥१०
तरुणाद्वारविद्धेषु दोषः पद्मेन जायते ।

अपस्मारो भवेन्नून कूपवेधेन सर्वदा ॥११
व्यथाप्रस्रवणेन स्यात्कीलेनाग्नि भयं भवेत् ।
विनाशो देवताविद्धे स्तम्भेन स्त्रीकृत भवेत् ॥१२
गृहभर्तुर्विनाशः स्यात् गृहेण च गृहे कृते ।
अमेध्यावस्करैर्विद्धे गृहिणी वन्ध्यको भवेत् ॥१३
तथा शस्त्रमय विन्द्यादन्त्यजस्य गृहेण तु ।
उच्छ्राया द्विगुणा भूमि त्यक्त्वा वेधो न जायते ॥१४

पूर्व दिशा में होने वाले इन्द्र और जयन्त द्वार सर्वत्र बहुत ही प्रशस्त होते हैं। कुछ लोग जो दक्षिण भाग में द्वार होता है उसे याम्य और वितथ कहा करते हैं ॥८॥ पश्चिम दिशा में होने वाले द्वार को पुष्प दन्त और वारुण कहा जाता है जो कि प्रशस्त होता है। उत्तर में होने वाला द्वार भल्लाट और सौम्य कहलाता है यह भी शुभ के प्रदान करने वाला होता है ॥९॥ उसी प्रकार से सभी जगह पर द्वार का वेध वर्जित होना चाहिए। रथ्या में जो विद्ध द्वार होता है उसमें तो सम्पूर्ण कुल का क्षय हो जाया करता है अर्थात् ऐसा द्वार तो कभी भी कराना ही नहीं चाहिए ॥१०॥ तरुण से वेध का बाहुल्य होता है और पङ्क से शोक हुआ करता है। सर्वदा कूप वेध से निश्चय रूप से अपस्मार हुआ करता है। ॥११॥ प्रस्रवण से व्यथा होती है और कील से अग्नि का भय हुआ करता है। देवता के विद्ध द्वार में विनाश होता है। स्तम्भ के द्वारा स्त्रीकृत होता है ॥१२॥ गृह के द्वारा गृह के करने पर गृह का जो भर्त्ता होता है उस गृह के स्वामी का विनाश हो जाया करता करता है। अमेध्य (अपवित्र) अवस्करों के द्वारा विद्ध द्वार के होने पर गृहिणी वन्ध्यकी हो जाया करती है। किसी अन्त्यज के गृह के द्वारा वेध होने पर शास्त्रमय जानना चाहिए या प्राप्त करे। उच्छ्राय से द्विगुणित भूमि का त्याग करके वेध नहीं हुआ करता है ॥१३, १४॥

स्वयमुत्पाटिते द्वारे उन्मादो गृहवासिनाम् ।

स्वयवापिहितेविद्यात् कुलनाशविचक्षण ॥१५
मानाधिके राजभय न्यने तस्करतो भवेत ।
द्वारोपरि च न्द्द्वार तदन्तकमुख स्मृतम् ॥१६
अध्वनो मध्यदेशे तु अधिको यस्य विस्तर ।
वज्रन्त सङ्कट मध्ये सद्योभर्त विनाशनम् ॥१७
तथान्यपीडित द्वार वहुदोपकर भवेत ।
मूलद्वारातथान्यत्तु नाधिक शोभन भवेत् ॥१८
कुम्भश्रीपर्णिवल्लीभि र्मूलद्वारन्तु शोभयेत ।
पूजयच्चापि तन्नित्य वलिनाचाक्षतोदकैः ॥१९
भवनस्य वट· पूर्वे दिग्भागे सर्वकामिकः ।
उदुम्बरस्तथा याम्ये वारुण्या पिप्पलः शुभ ॥२०

स्वय द्वार के उत्पादित होने पर जो गृह में निवास करने वाले होते हैं उनका उन्माद हो जाया करता है। अथवा स्वय ही पिहित करने पर विचक्षण पुरुष को अपने कुल का नाश समझ लेना चाहिए ॥१५॥ यदि द्वार जो भी उसका मान स्वीकृत किया गया है उससे अधिक हो तो राज से होने वाला भय होता है और यदि अभीप्सित मान से न्यून हो तो तस्करो से भय रहा करता है। द्वार के ऊपर जो द्वार होता है उसको अन्तक मुख नाम वाला कहा गया है ॥१६॥ मध्य देश मे जिसका अधिक विस्तार हो वह अध्वन कहलाता है। मध्य में सङ्कट वज्र होता है और वह तुरन्त ही स्वामी का विनाश करने वाला हुआ करता है। तथा अन्य से पीडित द्वार बहुत-से दोषो के करने वाला होता है। जो मूल द्वार होता है उससे अन्य द्वार अधिक शोभन नही हुआ करते ॥१७, १८॥ कुम्भ, श्रीपर्णि और वल्लियो के द्वारा मूल द्वार को शोभित करना चाहिए। उस द्वार की नित्य ही पूजा करे तथा अक्षतोदक से अर्चा एव वलिदान करना चाहिए। भवन के पूर्व दिशा के भाग में सब कामनाओ के पूर्ण करने वाले वट वृक्ष का समारोपण करना चाहिए—दक्षिण दिशा

के भाग में उदुम्बर (गूलर) का वृक्ष और वारुणी दिशा मे परम शुभ पीपल का वृक्ष समारोपित करना चाहिए ॥१६, २०॥

प्लक्षश्चोत्तरतोऽन्यो विपरीतास्त्वसिद्धये ।
कण्टकीक्षीरवृक्षश्च आसनः सफलो द्रुमः ॥२१
भार्य्याहानौ प्रजाहानौ भवेनां क्रमशस्तदा ।
न च्छिन्द्यात् यदि तानन्यानन्तरे स्थापयेच्छुभान् ॥२२
पुन्नागाशोकबकुलशमीतिलकचम्पकान् ।
दाडिमीपिप्पलीद्राक्षा तथा कुसुममण्डपान् ॥२३
जम्बीरपूगपनसद्रमकेतकीभिर्जातीसरोजशतपत्रिकमल्लिकाभिः ।
यन्नालिकेरकदलीदलपाटभिर्युक्तं तदत्र भवन श्रियमातनोति ॥२४

भवन के उत्तर दिग्भाग मे प्लक्ष (पाखर) के वृक्ष का समारोपण करे। इस तरह से गृह की इन चारो दिशाओ में उपर्युक्त चार प्रकार के वृक्षो का समारोपण सिद्धि दायक हुआ करता है। इनके विपरीत आरोपण से असिद्धि होती है। काँटेदार क्षीर देने वाला वृक्ष और आसन सफल द्रुम होता है। उस समय में क्रम से भार्या की हानि और प्रजा की हानि हुआ करती हैं। यदि उनको दूसरों के अन्तर मे शुभ वृक्षों को स्थापित करे तो फिर इनका छेदन कभी भी नही करना चाहिए ॥२१, २२॥ पुन्नाग–अशोक–वकुल–शमी–तिलक–चम्पक–दाडिम–पिप्पली—द्राक्षा—कुसुम मण्डप—जम्बीर—पूग—पनसद्रुम—केतकी—जाती—सरोज—शत पत्रक—मल्लिका—नालिकेर—कदली दल–पाटल इन समस्त वृक्षो के समारोहण से समन्वित होता है वह श्री का विस्तार किया करता ॥२३, २४॥

११६—भवन निर्माण वर्णन

उदगादिप्लव वास्तु समानशिखरतथा ।
परीक्ष्य पूर्ववत्कुर्य्यात्स्तम्भोच्छ्रायविचक्षण. ॥१
न देवधूर्त सचिवचत्वराणा समन्तत ।
कारयेद्भवन प्राज्ञो दु खशोकभय तत ॥२
तस्य प्रदेशाश्चत्वारस्तथोत्सर्गोऽग्रत शुभ ।
पृष्ठत पृष्ठभागस्तु सव्यावर्त्त प्रशस्यते ॥३
अपसव्यो विनाशाय दक्षिणे शीर्षकस्तथा ।
सर्वकामफलोनृणा सम्पूर्णो नाम वामत ॥४
एव प्रदेशमालोक्य यत्नेन गृहमारभेत् ।
अथ सावत्सरेप्रोक्ते मुहूर्ते शुभलक्षणे ॥५
रत्नोपरि शिला कृत्वा सर्वबीजसमन्विताम् ।
चतुर्भिर्ब्राह्मण स्तम्भ कारयित्वा सुपूजितम् ॥६
शुक्लाम्बरधर शिल्पिसहितो वेदपारगै. ।
स्नापित विन्यसेत्तद्वत्सर्वौषधिसमन्वितम् ॥७
नानाक्षतसमापेत वस्त्रालङ्कारसयुतम् ।
ब्रह्मघोषेण वाद्यन गीतमङ्गलनि स्वन ॥८

महर्षिवर श्री सूतजी ने कहा—विचक्षण पुरुष को चाहिए कि उदगादि प्लव तथा समान शिखर वाले वास्तु की परीक्षा करके पूर्व की भाँति स्तम्भो की ऊँचाई करनी चाहिए ॥ १ ॥ प्राज्ञ पुरुष का कर्त्तव्य है कि अपने भवन के चारो ओर देव—धूर्त—सचिव और चत्वरो का भवन नहीं बनवाना चाहिए क्योंकि इससे फिर दु ख और शोक तथा भय होता है ॥ २ ॥ उसके चार प्रदेश होते हैं तथा आगे की ओर उत्सर्ग परम शुभ हुआ करता है। पीछे की ओर उसका पृष्ठ भाग सव्यावर्त्त प्रशस्त होता है ॥३॥ जो अपसव्य होता है वह विनाश के लिये ही हुआ

करता है। दक्षिण मे शीर्षक मनुष्यों के सब कामनाओं क फल वाला हुआ करता है और वाम भाग म सम्पूर्ण होता है। इस प्रकार प्रदश का समालोकन करके ही य नपूर्वक गृह के निर्माण का आरम्भ करना चाहिए और वह भी साम्वत्सर प्रोक्त किसी शुभ लक्षणो वाले मुहूर्त मे करे ॥ ४ । ५ ॥ समस्त वीजो स सयुत शिला को रत्नो के ऊपर करक चार ब्राह्मणो के द्वारा भलीभाँति अर्चित स्तम्भ का निर्माण कराव ॥ ६ ॥ वेदों के पारगामी विद्वान् ब्राह्मणो के द्वारा शिल्पियो क सहित शुल्क अम्बरों के धारी को स्थापित करक विन्यस्त करना चाहिए। उसी के समान सर्वोषधियों स समन्वित—नाना अक्षतों से सयुत—वस्त्र एव आभूषणो से युक्त करके ही विन्यास करना चाहिए। ब्रह्मघोष (वेदध्वनि) वाद्य और गीत एवं माङ्गलिक ध्वनियों क द्वारा विन्यस्त करे। ॥ ७, ८ ॥

पायस भोजयेद्विप्रान् होमन्तु मधुसर्पिषा ।
वास्तोष्पतेप्रतिजानीहि मन्त्रेणानेन सर्वदा ॥९
सूत्रपाते तथा काय्यमेव स्तम्भोदये पुन ।
द्वारवंशो-छ्ये तद्वत्प्रवेशसमये तथा ॥१०
वास्तूपशमने तद्वद्वास्तुयज्ञस्तु पञ्चधा ।
ईशाने सूत्रपात स्यादाग्नेयेस्तम्भरोपणम् ॥११
प्रदक्षिणञ्च कुर्वीत वास्तो पदविलेखनम् ।
तर्जनी मध्यमा चैव तयाङ्गुष्ठस्तु दक्षिणे ॥१२
प्रवालरत्नकनकफल पिष्ट्वा घृतोदकम् ।
सर्ववास्तुविभागेषु शस्त पदविलदने ॥१३
न भस्माङ्गारकाष्ठेन नखशस्त्राण चर्मभि ।
न शृङ्गास्थिकपालेश्च क्वचिद्वास्तु विलेखयेत् ॥१४

फिर विप्रों को पायस का भोजन करावे और मधु और घृत के द्वारा होम करे। सर्वदा वास्तोष्पति स इस मन्त्र क द्वारा प्रतिमा करे।

उस प्रकार से सूत्रपात मे करे और पुन स्तम्भोदय के समय मे भी करना चाहिए। द्वार वश के उच्छ्रय म तथा उसी भाँति से प्रवेश के समय मे करना चाहिये। उसी तरह से वास्तु के उपशमन के अवसर पर उसी तरह से वास्तु यज्ञ पाँच प्रकार का होता है। ईशान मे सूत्रपात होता है—आग्नेय में स्तम्भ का रोपण होता है और वास्तु के पदविलेखन का प्रदक्षिण करना चाहिए। तर्जनी, मध्यमा तथा दक्षिण मे अगुष्ठ रखे। प्रवाल, रत्न, कनक फल (धतूरे का फल) को जल के साथ पीस कर सम्पूर्ण वास्तु के विभागो मे पदविलेखन करे। पद विलेखन करने मे यह परम प्रशस्त कहा गया है। वास्तु का विलेखन कही पर भी भस्म-अङ्गार और काष्ठ से भी नही करे तथा सीग, अस्थि और कपालो के द्वारा भी पद विलेखन नही करे ॥६-१४॥

एभिर्विलिखित कुर्य्याद्दुः खशोकभयादिकम् ।
यदा गृहप्रवेश. स्याच्छिल्पी तत्रापि लक्षयेत् ॥१५
स्तम्भसूत्रादिक तद्वच्छुभाशुभफलप्रदम् ।
आदित्याभिमुख रौति शकुनि पुरुष यदि ॥१६
तुल्यकाल स्पृशेदङ्ग गृहभर्तुर्यदात्मन. ।
यास्त्वङ्गे तद्विजानीयान्नशल्य भयप्रदम् ॥१७
अङ्कनानन्तर यत्र हस्त्यश्वश्वापद भवेत् ।
तदङ्गसम्भव विन्द्यात्तत्र शल्य विचक्षणः ॥१८
प्रसार्यमाणे सूत्रे तु श्वागोमायुविलङ्घिते ।
तत्र शल्य विजानीयात् खरशब्देति भैरवे ॥१९
यदीशाने तु दिग्भागे मधुर रौति वायस. ।
धन तत्र विजनीयाद्भागे वास्वाम्यधिष्ठिते ॥२०
सूत्रच्छेभवेन्मृत्योधि कीले स्वधोमुखे ।
अङ्गारेषुतथोन्माद कपालेषु च सम्भ्रमम् ॥२१

यदि उपर्युक्त स्थानों में से किसी को एक के द्वारा पदाभिहत (?) किया जाता है तो इसका परिणाम बुरा हुआ करता है। और दुःख—शोक और भय आदि हुआ करते हैं। जिस स्थल में गृह प्रवेश होवे वहाँ पर भी चिन्हों को लक्षित करना चाहिये ॥ १५ ॥ स्तम्भ कुम्भादिक भी इसी भाँति शुभ और अशुभ फल के प्रदान करने वाले होते हैं। यदि शकुनि सूर्य के सम्मुख पुरुष के प्रति ध्वनि करता है और दुःस्वर (?) हो में गृह के स्वामी के अङ्ग का स्पर्श करता है और अपने अङ्ग को छूता है तो उसको भय प्रदान करने वाला सन्देह (?) जान लेना चाहिए ॥१६, १७॥ खनन के अनन्तर जितने द्रव्यों—काष्ठ और पाषाण होवें तो उनको वहाँ पर विचक्षण पुरुष अङ्ग में होने वाला शल्य समझ लेवे ॥ १८ ॥ सूत्र के फैलाये जाने पर वह श्वान और गोमायु के द्वारा विलंघित हो जावे तो उसको भी शल्य ही जान लेना चाहिए तथा भैरव में खर शब्द हो उसको भी शल्य समझ लेवे ॥ १९ ॥ जो ईशान कोण के दिग्भाग में वायस (कौआ) मधुर ध्वनि करता हो तो वहाँ पर उस भाग में धन का होना समझ लेना चाहिए अथवा स्वामी के द्वारा अधिष्ठित भाग में धन जानलो ॥ २० ॥ सूत्र का जो कि प्रसारित किया गया है किसी भी तरह से छेदन हो जावे तो मृत्यु जान लेवे तथा कील के नीचे की ओर मुख वाली हो जाने पर व्याधि होने का ज्ञान कर लेवे । अङ्गारों के होने पर उन्माद और कपालों के हो जाने पर नरक्रन्दन होना समझ लेना चाहिए ॥ २१ ॥

कम्बुशल्येषु जानीयात् पौंश्चल्यं स्त्रीषु वास्तुवित् ।
गृहभर्तुर्गृहस्यापि विनाशः शिल्पिसङ्गमे ॥२२
स्तम्भे स्कन्धच्युते कुम्भे शिरोरोगं विनिर्दिशेत् ।
कुम्भापहारे सर्वस्य कुलस्यापि क्षयो भवेत् ॥२३
मृत्युः स्थानच्युते कुम्भे भग्ने बन्धं विदुर्बुधाः ।
करसंख्याविनाशे तु नाशं गृहपतेर्विदुः ॥२४

विजौपधिविहीनेतुभूतेभ्योभयमादिशेत् ।
तत प्रदक्षिणेनान्यान्न्यकेत्स्वम्भान्विचक्षण ॥२५
यस्माद्भयकर नृणा योजिताह्यप्रदक्षिणम् ।
रक्षाकुर्वीत यत्नेन स्तम्भोपद्रवनाशिनीम् ॥२६
तथा फलवती शाखा स्तम्भोपरि निवेशयेत् ।
प्रागुदक्प्रवण कुर्याद्दिङ्मूढन्तु न कारयेत् ॥२७
स्तम्भ वा भवनवापिद्वार वासगृह तथा ।
दिङ्मूढे कुलनाश स्यान्नच सवर्द्धयेद् गृहम् ॥२८

कम्बुशल्यो मे वास्तु के वेत्ता को स्त्रियो क विषय मे पौश्चल्य का ज्ञान प्राप्त कर लना चाहिय । शिल्पी के सम्भ्रम हो जाने पर गृह क स्वामी का और गृह का भी विनाश हो जाता है । स्तम्भ मे कुम्भ क स्कन्ध स च्युत हो जाने पर शिरोरोग का होना जान लेवे । कुम्भ का यदि अपहरण ही हो जावे तो समझ लेना चाहिए कि सम्पूण ही कुल का क्षय हो जावेगा ॥ २२, २३ ॥ कुम्भ के निर्दिष्ट स्थान से च्युत हो जाने पर मृत्यु की सूचना होती है—ऐसा जान लेवे । यदि कुम्भ का भग हो जावे तो वुध लोग उसको बन्धन का सूचक बतलाया करते हैं । करो की सख्या के विनाश हो जाने पर गृहपत का नाश कहा करते हैं । बीजो और ओषधियो के विहीन होने पर भूतो से भय प्राप्त होने की सूचना हुआ करता है । इसीलिये विचक्षण पुरुष का कत्तव्य है कि उनसे प्रदक्षिण मे अन्य स्तम्भो का यास करे । जिससे मनुष्यो को भय करने वाला कुछ हो उस अप्रदक्षिण म योजित करे और स्तम्भो की होने वाल जो उपद्रव होवे उनके विनाश करने वाली की प्रबल प्रयत्ना क साथ रक्षा करनी चाहिए ॥ २४, २५, २६ ॥ उसी प्रकार से फलो से युक्त एक शाखा को स्तम्भ क ऊपर निवेशित कर देना चाहिए । उसे पूव और उत्तर की ओर मुख वाली ही विनिर्मित करनी चाहिए तथा दिङ्मूढ उस नही कराना चाहिए ॥ २७ । स्तम्भ हो या भवन हो तथा

द्वार हो अथवा निवास करने का गृह हो इसमें दिङ्मूढता कभी भूल कर भी नही करे क्योंकि दिङ्मूढ होने पर कुल का नाश ही हो जाया करता है और गृह को फिर वह कभी भी संवर्द्धित नही किया करता है ॥ २८ ॥

यदिसवर्द्धयेद्गेह सर्वदिक्षु विवर्द्धयेत् ।
पूर्वेण वर्द्धित वास्तु कुर्याद्वैराणि सर्वदा ।।२६
दक्षिणे वर्द्धित वास्तु मृत्यवे स्यान्न सशयः ।
पश्चाद्विवृद्ध यद्वास्तु तदर्थक्षयकारक । ३०
वर्द्धापित तथा सौम्ये वहुसन्तापकारकम् ।
आग्नेये यत्र वृद्धिः स्यात् तदग्निभयद भवेत् ।।३१
वर्द्धित राक्षसेकोणे शिशुक्षयकर भवेत् ।
वद्धवापि तन्तु वायव्ये वातव्याधिप्रकोपकृत् ॥३२
ईशान्या अन्नहानिः स्यात् वास्तोसवर्द्धितेसदा ।
ईशानेदेवतागार तथा शान्तिगृहभवेत् ।।३३
महानमन्तथाग्नेये तत्पार्श्वेचोत्तरेजलम् ।
गृहस्योपस्कर सर्वं नैऋत्येस्थापयेद्बुध. ।।३४
वधस्थान वहि कुर्यान् स्नानमण्डपमेव च ।
धनधान्यञ्च वायव्ये कर्मशालान्ततो वहि ॥
एव वास्तु विशेष. स्यात् गृहभर्तु शुभावह ।।३५

यदि गृह को सवर्द्धित करे तो सभी दिशाओं म उस विवर्द्धित करना चाहिए। पूर्व दिशा म यदि वास्तु वर्द्धित होवे तो सर्वदा वैरो को किया करता है ।। २६ ।। दक्षिण दिशा मे वास्तु का वर्द्धन होवे तो वह निस्सन्देह मृत्यु क ही लिये हुआ करता है। पीछे अर्थात् पश्चिम की ओर वास्तु विवर्द्धित होव ता वह अर्थ क क्षय करने वाला होता है। सौम्य दिशा म वर्द्धित वास्तु वहुत अधिक सन्ताप का कारक हुआ करता है। जहाँ पर आग्नेय कोण म इसकी वृद्धि होती है तो वह अग्नि स

होने वाले भय को प्रदान करने वाला हुआ करता है। राक्षस कोण में वर्द्धित वास्तु शिशुओं के क्षय का करने वाला हुआ करता है। वायव्य कोण की दिशा मे तन्तु को बद्ध करके भी वातजन्य व्याधि के प्रकोप को करने वाला हुआ करता है। ईशान दिशा मे अन्न को हानि सदा होती है जब कि उस ओर वास्तु सर्वद्धित होता है। ईशान मे देवता का आगार तथा शान्ति गृह होना चाहिये ॥ ३०, ३१, ३२, ३ ॥ आग्नेय कोण मे महानस (रसोई घर) और उसके पार्श्व मे उत्तर दिशा मे जल के रहने का स्थान और बुध पुरुष को नैऋत्य कोण मे गृह के सभी उपस्कर स्थापित करने चाहिए अर्थात् भण्डार गृह बनाना चाहिए। बाहिरी भाग मे वध का स्थान बनाना चाहिए तथा स्नान मण्डप भी बाहिर ही बनाना चाहिये। वायव्य कोण मे धन-धान्य का स्थान बनावे और इससे आगे बाहिर कर्मशाला का निर्माण कराना उचित है। इस प्रकार से विशद रूप वाला वास्तु गृह के स्वामी के लिए परम शुभ के प्रदान करने वाला हुआ करता है ॥ ३४, ३५ ॥

१२०–दार्वाहरण वर्णन

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दार्वाहरणमुत्तमम् ।
धनिष्ठापञ्चकं मुक्त्वा विष्टयादिकमतः परम् ॥१
ततः सांवत्सरादिष्टे दिने यायाद्वनं बुधः ।
प्रथमं बलिपूजाञ्च कुर्याद्वृक्षस्य सर्वदा ॥२
पूर्वोत्तरेण पतितं गृहदारु प्रशस्यते ।
अन्यथा न शुभं विन्द्यात् पाम्पोपरि निपातनम् ॥३
क्षीरवृक्षोद्भवं दारु न गृहे विनिवेशयेत् ।
कृताधिवास विहगैर्रनिलानलपीडितम् ॥४

गजावरुग्णञ्च तथा विद्युन्निर्घातपीडितम् ।
अर्द्धशुष्कं तथा दारुभग्नशुष्कं तथैव च ।।५
चैत्यदेवालयोत्थं नदीसङ्गमजन्तथा ।
श्मशानकूपनिलयं तडागादिसमुद्भवम् ।।६
वर्जयेत्सर्वथा दाम्यदीच्छेद्विपुलाश्रियम् ।
तथा कण्टकिनोवृक्षान् नीपनिम्बविभीतकान् ।।७
श्लेष्मातकानाम्रतरून् वर्जयेद् गृहकर्मणि ।
आसनाशोकमधुकसजशालाः शुभावहा ।।८
चन्दन पनमन्धय सुरदारुहरिद्रवः ।
द्वाभ्यामेव न वा कुर्यात् त्रिभिर्वाभवन शुभम् ।।९

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर उत्तम दार्वाहरण के विषय में कहता हूँ। धनिष्ठादि पाँच नक्षत्रों को छोड़कर और इसके आगे विष्टचादि (भद्रा) को त्याग करके बुध पुरुष को सांवत्सर से इष्ट दिन में वन में गमन करना चाहिए। सबका प्रथम वृक्ष की बलि पूजा करनी चाहिए ।।१-२।। पूर्वोत्तर दिशा में पतित गृह का दारु (काष्ठ) प्रशस्त होता है। अन्यथा याम्य दिशा में ऊपर निपातन शुभ का लाभ नहीं किया करता है। और वृक्ष से समुत्पन्न होने वाला काष्ठ कभी भी गृह में विनिवेशित न करावे। पक्षियों के द्वारा अधिवास किया हुआ—अग्नि और अनल से पीडित—गज से अवरुग्ण—विद्युत् व निर्घात से पीडित—अर्द्ध शुष्क—दारु के भग्न होने से शुष्क—चैत्य और देवालय में समुत्पन्न—नदियों के सङ्गम में उपजने वाला—श्मशान और कूप के निलय वाला—तडाग आदि में समुद्भूत होने वाला ऐसे काष्ठ को सर्वथा वर्जित कर देना चाहिए। यदि विपुल श्री के प्राप्त करने की इच्छा हृदय में होवे। काँटे वाले वृक्षों को—नीप, निम्ब, विभीतकों को, श्लेष्मातकों को, आम्र तरुओं को गृह के निर्माण के कर्म में वर्जित करना चाहिए। आसन—अशोक—मधुक और सर्जशाल ये सब शुभावह होते हैं। चन्दन—

पनस परम धन्य हैं। सुरदारु और हरिद्रव इन दोनों में से एक के द्वारा अथवा तीनों के द्वारा शुभ भवन का निर्माण करना चाहिए। ॥ ३-६ ॥

बहुभि. कारित यस्मादनेकभयद भवेत्।
एकैव शिशपा धन्या श्रीपर्णी तिन्दुकीतथा ॥१०
एता नान्यसमायुक्ता. कदाचिच्छुभकारकाः।
स्यन्दनः पनसस्तद्वत्सरलार्जुनपद्मकाः ॥११
एते नान्यसमायुक्ता वास्तुकार्यफलप्रदा.।
तरुच्छेदे महापीतेगोधा वि-याद्विचक्षणः ॥१२
माञ्जिष्ठवर्णे भेक स्यान्नीले सर्पादि निर्दिशेत्।
अरुणे सरठ विद्यान्मुक्ताभे शुकमादिशेत् ॥१३
कपिले मूषकान्विद्यात् खड्गाभे जलमादिशेत्।
एवविध सगर्भन्तु वर्जयेद्वास्तु कर्मणि ॥१४

क्योंक बहुतो के द्वारा जो कराया जाता है वह अनेक भयों के प्रदान करने वाला होता है। एक ही शिशपा का वृक्ष परम धन्य होता है और श्रीपर्णी तथा तिन्दुकी भी उसी प्रकार से परम धन्य हैं। ये अन्य से समायुक्त न होकर किसी समय मे शुभ कारक होत है। उसी तरह से स्यन्दन—पनस—सरल—अर्जुन और पद्मक भी हैं। ये अन्य स समायुक्त न होत हुए वास्तु कार्य्य के फल के प्रदान करन वाले हैं। विचक्षण पुरुष महापीत तरु के छेदन होने पर गोधा की प्राप्ति करे। मञ्जिष्ठा के वर्ण मे भेक हावे तथा नील म सर्पादि का विनिर्देश करना चाहिए। अरुण वर्ण मे सरठ को जानना चाहिए। मुक्ता की आभा वाले मे शुक का समादेश करे।।१०-१३।। कपिल वर्ण म मूषकों को जानना चाहिए। खड्ग की आभा वाले मे जल का समादेश करे। इस प्रकार के सगर्भ को वास्तु कर्म म वर्जित कर देना चाहिए ।।१४।।

पूर्वच्छिन्नन्तु गृह्णीयान्निमित्तशकुनैः शुभैः ।
व्यासेन गुणिते दैर्घ्यअष्टाभिर्वहृते तथा ॥१५
यच्छेपमायत विद्यादष्टभेद वदामि वः ।
ध्वजो धूमश्च सिंहश्च वृषभ. खर एव च ॥१६
हस्तीध्वाक्षश्च पूर्वाद्या. करशेषाभवन्त्यमी ।
ध्वजः सवमुखाधन्यः प्रत्यग्द्वारोविशेषत ॥१७
उदङ्मुखो भवेत्सिंह प्राङ्मुखो वृषभो भवेत् ।
दक्षिणाभिमुखो हस्ती सप्तभि समुदाहृत. ॥१८
एकेन ध्वज उद्दिष्टस्त्रिभि सिंह प्रकीर्तितः ।
पञ्चभिर्वृषभ प्रोक्तोविकोणस्थाश्चवर्जयेत् ॥१९
तमेवाष्टगुणकृत्वा करराशि विचक्षण ।
सर्मविशाहृतेभागे ऋक्ष विद्याद्विचक्षण ॥२०

शुभ निमित्त शकुनों के द्वारा पूर्व च्छिन्न का ग्रहण करना चाहिए। व्यास के द्वारा गुणन होने पर आठों में बँटने होने पर दीर्घता होती है। उससे जो शेष है—वह आयत जानना चाहिए। मैं आपको आठ भेद बतलाता हूँ—ध्वज, धूम, सिंह, वृषभ, खर, हस्ती और ध्वाङ्क्ष ये पूर्वाद्या कर शेष होते हैं। ध्वज सर्वमुख धन्य होता है और विशेष रूप से प्रत्यग् द्वार होता है ॥१५, १६, १७॥ उत्तर की ओर मुख वाला सिंह होता है और पूर्व की ओर मुख से युत वृषभ होता है। दक्षिण दिशा के अभिमुख होने वाला हस्ती है तथा इसी प्रकार से यह सात प्रकार वाला उदाहृत किया गया है ॥१८॥ एक के द्वारा ध्वज कहा गया है—तीन के द्वारा सिंह कीर्तित किया गया है—पाँचों से वृषभ उक्त हुआ है। जो विकोण में स्थित होते हैं वे सब वर्जित मान गये हैं अतः उनको निषिद्ध मानना चाहिए। विचक्षण पुरुष को चाहिए उसी कर राशि को अठगुना करके अर्थात् आठ से गुना करके सत्ताईस से भाग समाहृत करे और उसी ऋक्ष (नक्षत्र) को जान लेना चाहिए ॥१९, २०॥

अष्टभिर्भाजितेऋक्षेय शेष सव्ययो मत ।
व्यायाधिक न कुर्वीत यतोदोपकरम्भवेत् ॥
आयाधिके भदेच्छा तिरित्याह भगवान् हरि ॥२१
कृत्वाग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भ ,
दध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभम् ।
कृत्वा हिरण्यवसनानि तदा द्विजेभ्यो
मङ्गल्यशान्तिनिलयाय गृहविशेत् ॥२२
गृह्यास्तहोमविधिना बलिकर्म कुर्यात्–
प्रासादवास्तुशमने च विधिर्यउक्त ।
स तर्पयेद्द्विजवरानथ भक्ष्यभोज्यै
शुक्लाम्बर स्वभवन प्रविशेत्सधूपम् ॥२३

आठ से भाजित करने पर जो नक्षत्र शेष होता है वह समय माना गया है। व्यय से अधिक नहीं करना चाहिए क्योंकि वह दोषकर होता है। भगवान् श्री हरि ने यही कहा है कि आयाधिक मे शान्ति होती है ॥२१॥ इस के अनन्तर द्विज श्रेष्ठों को आगे करके दधि अक्षत, आम्रदल, पुष्प, फल इनसे उपशोभित पूर्ण कुम्भ को करके द्विज गणो के लिए उस समय म सुवर्ण तथा वस्त्रादि देकर मङ्गल्य शान्ति निलय के लिये गृह म प्रवेश करना चाहिए। फिर गृह्य म वर्णित होम क विधि क साथ बलि कर्म करना चाहिए। यही प्रासाद क वास्तु का शमन करने मे विधान बतलाया गया है। इसके उपरान्त भक्ष्य भोज्यो के द्वारा श्रेष्ठ द्विज गणो को सन्तृप्त करना चाहिए और स्वय शुक्ल वस्त्रो को धारण करने वाला धूप के दान के सहित अपने भवन मे प्रवेश करे ॥२२, २३॥

१२१–प्रतिमा निर्माण वर्णन

क्रियायोगः कथं सिद्ध्येद् गृहस्थादिषु सर्वदा ।
ज्ञानयोगसहस्राद्धि कर्मयोगो विशिष्यते ॥१
क्रियायोग प्रवक्ष्यामि देवतार्चानुकीर्तनम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रद यस्मान्नान्यत् लोकेषु विद्यते ॥२
प्रतिष्ठाया सुराणा तु देवातार्चानुकीर्तनम् ।
देवयज्ञोत्सवञ्चापि बन्धनाद्यो न मुच्यते ॥३
विष्णोस्तावत्प्रवक्ष्यामि याद्दग्रूप प्रशस्यते ।
शङ्खचक्रधरशान्त पद्महस्तगदाधरम् ॥४
छत्राकारशिरस्तस्य कम्बुग्रीव शुभेक्षणम् ।
तुङ्गनाम शुक्तिकर्ण प्रशान्तोरुभुजक्रमम् ॥५
क्वचिदष्टभुज विद्याच्चतुर्भुजमथापरम् ।
द्विभुजश्चापि कर्तव्यो भवनेषु पुरोधसा ॥६
देवस्याष्टभुजस्यास्य यथास्थान निबोधत ।
खड्गोगदाशर. पद्म दिव्य दक्षिणतो हरेः ॥७

ऋषि वृन्द ने कहा—गृहस्थ आदि में क्रिया का योग किस प्रकार से सर्वदा सिद्ध होता है यह कृपया बतलाइये क्योंकि सहस्रों ज्ञान योग से कर्म योग विशिष्ट हुआ करता है ॥१॥ महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—मैं अब उस क्रिया योग को बतलाता हूँ जिसमें देवगण के अर्चना का अनुकीर्तन किया जाता है क्योंकि उससे अन्य लोकों मे भुक्ति और मुक्ति का प्रदान करने वाला कोई भी नहीं होता है ॥२॥ सुरगणों की प्रतिष्ठायें देवताओं के अभ्यर्चन का अनुकीर्तन और देवयज्ञों का उत्सव भी होता है । जो ऐसे नहीं करते हैं वे बन्धन से मुक्त नहीं होते हैं । भगवान् विष्णु के विषय में मैं वर्णन करता हूँ जैसा कि उनका रूप प्रशस्त कहा जाता करता है । शङ्ख-चक्र और गदा के धारण करने वाला—परम प्रशान्त

हाथ मे पद्म तथा गदा को धारण किए हुए—उनका शिर छत्र के आकार से संयुत है—कम्बु के समान ग्रीवा वाला—शुभ नत्रों से युक्त—तुङ्ग (ऊँची) नासिका से सम्पन्न शुक्ति के तुल्य कानों वाला—परम प्रशान्त ऊरुयुग और भुजाओं के क्रम से समन्वित—कहीं पर आठ भुजाओं से युक्त और दूसरा चार भुजाओं से युक्त एवं दो भुजाओं से भी सम्पन्न उनका स्वरूप होता है। भवनों में पुरोहित के द्वारा ऐसा ही उपर्युक्त स्वरूप से समन्वित उनका स्वरूप करना चाहिए। अष्ट भुजाधारी इस देव को यथा स्थान समझ लेना चाहिए। खड्ग—गदा—शर—दिव्य पद्म—ये सब आयुध भगवान् विष्णु के दक्षिण भाग में होने चाहिए ॥ ३-७ ॥

धनुश्च खेटकञ्चैव शङ्खचक्रे च वामत ।
चतुर्भुजस्य वक्ष्यामि यथैवायुधसंस्थिति ॥८
दक्षिणेन गदापद्म वासुदेवस्य कारयेत् ।
वामत शङ्खचक्रं च कर्तव्ये भूतिमिच्छता ॥९
कृष्णावतारे तु गदा वामहस्ते प्रशस्यते ।
यथेच्छया शङ्खचक्रं चोपरिष्टात् प्रकल्पयेत॥१०
अधस्तात पृथिवी तस्य कर्तव्या पादमध्यत ।
दक्षिणे प्रणतं तद्वद् गरुत्मन्तंनिवेशयेत् ॥११
वामतस्तुभवेल्लक्ष्मी पद्महस्ता शुभानना ।
गरुत्मानग्रतोवापि संस्थाप्या भूतिमिच्छता ॥१२
श्रीश्चपुष्टिश्च कर्तव्यापार्श्वयो पद्मसयुते ।
तोरणञ्चोपरिष्टात्तु विद्याधरसमन्वितम् ॥१३
देवदुन्दुभिसंयुक्त गन्धर्वमिथुनान्वितम् ।
पत्रवल्लीसमोपेत सिंहव्याघ्रसमन्वितम् ॥१४

धनुष—खेटक—शङ्ख—चक्र ये चार आयुध उनके वाम भाग में रहने चाहिए। यह आठ भुजाओं के आयुधों के धारण करने का क्रम होता है।

अब चतुर्भुज भगवान विष्णु के आयुधो को धारण करने के क्रम एवं सम्स्थिति का वर्णन किया जाता है। भगवान् वासुदेव के दक्षिण भाग में गदा और पद्म इन दो आयुधो को धारण कराना चाहिए। वाम भाग मे जो भूति के प्राप्त करने की इच्छा रखता है उस भक्त को चाहिए कि वाम भाग मे शख और चक्र इन दो आयुओ को धारण कराना चाहिए। भगवान् के कृष्णावतार मे गदा बांये हाथ मे ही प्रशस्त मानी गयी है। अपनी इच्छा के अनुसार ही ऊपर से शख तथा चक्र इन दो आयुधो की कल्पना करनी चाहिए। उनके नीचे की ओर पाद के मध्य भाग मे पृथिवी की कल्पना करनी चाहिए और दक्षिण भाग मे उसी प्रकार से प्रणति करते हुए गरुड का निवेश करना चाहिए ॥८–११॥ भगवान् के वाम भाग मे पद्म हाथो मे धारण करने वाली तथा परम शुभ मुख वाली लक्ष्मी देवी विराजमान होनी चाहिए। विभूति की इच्छा रखने वाले पुरुष को चाहिए कि भगवान् के आगे गरुड की भी सस्थापना करनी चाहिए। दोनो पार्श्व भागो मे पद्मों से संयुत श्री और पुष्टि इन दोनो की सस्थापना करे। विद्याधर मे मयुन ऊपर के भाग मे तोरण बनावे।१२ ।१३। देवो की दुन्दुभि नाद वाले वाद्य से युक्त गन्धर्वों के जोड़े से समन्वित—पत्रवल्ली समोपेत—सिंह और व्याघ्र से युक्त भगवान् की स्थापना वहा पर करनी चाहिए ॥१४॥

तथाकल्पलतोपेत स्तुवद्भिरमरेश्वरैः।
एवंविधोभवेद्विष्णो स्त्रिभागेनास्य पीठिकाः ॥१५
नवतालप्रमाणास्तु देवदानवकिन्नराः।
अतः परं प्रवक्ष्यामि मानोन्मानं विशेषत. ॥१६
जालान्तरप्रविष्टानां भानूना यद्रजः स्फुटम्।
त्रसरेणुः सविज्ञेयो वालाग्रन्तैरथाष्टभिः ॥१७
तदष्टकेन लिक्षा तु यूकालिक्षाष्टकैर्मता।
यवो यूकाष्टकं तद्वदष्टभिस्तैस्तदगुलम् ॥१८

स्वकीयांगुलिमानेन मुखं स्याद्द्वादशांगुलम् ।
मुखमानेन कर्तव्या सर्वावयवकल्पना ॥१६
सौवर्णीराजतीवापि ताम्री रत्नमयी तथा ।
शैलीदारुमयीचापि लौहसंघमयी तथा ॥२०
रीतिकाधातुयुक्तावा ताम्रकांस्यमयी तथा ।
शुभदारुमयीवापि देवतार्चा प्रशस्यते ॥२१

कल्पलता से संयुत तथा देवगणों के द्वारा स्तुति किये जाने वाले भगवान् विष्णु को स्थापित करे। इस विष्णु की तीन भाग से वहाँ पर पीठिका होनी चाहिए ॥१५॥ वह पीठिका जो है इसके समीप में नवताल प्रमाण वाले देव गन्धर्व और किन्नर स्थापित करे। अब इसके आगे विशेष रूप से मानो मान के विषय में वर्णन करता हूँ ॥१६॥ जाल के अन्तर में प्रविष्ट भानु की किरणों के द्वारा जो स्फुट रूप में रज के कण दिखलाई दिया करते हैं उनको त्रस रेणु जानना चाहिए। वे बाल के अग्र भाग के समान होते हैं। उन आठों की एक लिक्षा होती है। आठ लिक्षाओं की एक यूका मानी गयी है। आठ यूकाओं का एक यव होता है और आठ यवों का एक अंगुल हुआ करता है ॥१७-१८॥ अपने अँगुल के मान से द्वादश अंगुलों का मुख होता है। इस मुख के मान के द्वारा ही समस्त अवयवों की कल्पना करनी चाहिए ॥१६॥ भगवान् की प्रतिमाएँ सुवर्ण से—रजत (चाँदी) से निर्मित होती हैं तथा ताम्र और रत्नों के द्वारा निर्मित की हुई हुआ करती हैं। शैली अर्थात् पाषाण से—दारुमयी अर्थात् विशुद्ध काष्ठ से भी निर्माण की हुई प्रतिमाएँ होती हैं और लौह संघ से पूर्ण होती हैं। रीति का अथवा धातु से युक्त—ताम्र और कांस्य के मिश्रण से निर्मित या शुभ काष्ठ के निग्रह वाली देवता की प्रतिमा की अर्चा प्रशस्त होती है ॥२०, २१॥

अंगुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिर्यावदेव तु ।
गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः ॥२२

आषोडशा तु प्रासादे कर्तव्या नाधिका तत. ।
मध्योत्तमकनिष्ठा तु कार्या वित्तानुसारत ॥ ३
द्वारोच्छ्रायस्य यन्मानमष्टधा तत्तु कारयेत् ।
भागमेकं ततस्त्यक्त्वा परिशिष्टन्तु यद्भवेत् ॥२४
भागद्वयेन प्रतिमा त्रिभागीकृत्य तत्पुन: ।
पीठिका भागत कार्या नातिनीचा नचोच्छ्रिता ॥२५
प्रतिमामुखमानेन नवभागान् प्रकल्पयेत ।
चतुरगुला भवेद्ग्रीवाभागेन हृदयपुन ॥२६
नाभिस्तस्मादधः कार्या भागेनैकेन शोभना ।
निम्नत्वेविस्तरत्वे च अगुलपरिकीर्तितम् ॥२७
नाभेरधस्तथामेढ भागेनैकेन कल्पयेत् ।
द्विभागेनायतावूरू जानुनी चतुरगुले ॥२८

अपने अँगूठे के पर्व से आरम्भ करके एक विनस्ति (बिलांद या वलिश्त) पर्यन्त लम्बी और बडी देव प्रतिमा निर्मित करानी चाहिए। बुध पुरुषो के द्वारा इस प्रमाण से अधिक बडी प्रतिमा को प्रशस्त नहीं बतलाया गया है ॥२२॥ जो प्रासाद हो उसमे पोडश से अधिक बडी प्रतिमा कभी नही करानी चाहिए। अपने वित्त के अनुसार उत्तम-मध्यम और कनिष्ट प्रतिमा का निर्माण कराना आवश्यक है ॥२३॥ द्वार के उच्छ्राय का जो मान है उसको आठ भाग करे। उनमे से एक भाग का त्याग करके जो परिशिष्ट होवे ॥२४॥ उनमें से दो भागों के प्रमाण से प्रतिमा की रचना करानी चाहिए। फिर उसके तीन भाग करके भाग से पीठिका की रचना करे। वह पीठिका न तो अत्यन्त नीची होनी चाहिए और न अधिक उच्छ्रित ही होनी चाहिए ॥२५॥ प्रतिमा के मुख मान से नौ भागों की प्रकल्पना करनी चाहिए। चार अगुल वाली ग्रीवा होवे और फिर भाग के द्वारा हृदय की रचना होनी चाहिए ॥२६॥ उसके अर्थात् उरःस्थल के नीचे एक भाग से परम शोभन नाभि का निर्माण

११ है । १, । ५ को १८ दया और विस्तार मे अंगुल ही कीर्तित किया
गया है । जानु के नीचे एक भाग म मङ्क की रचना की कल्पना करे
और दो भागो के द्वारा यायत अहओ एवं चार अगुल के प्रमाण वाले
जानुओं की रचना करानी चाहिए ॥ ७, ८॥

जङ्घेद्विभागेविस्त्यातेपादौ च चतुरगुलौ ।
चतदशागुलस्तद्वन्मौलिरस्य प्रकीर्तित ॥ ६
ऊर्ध्वमानमिदप्रोक्त पृथुत्वञ्चनिबोधत ।
सर्वावयवमानेषु विस्तार शृणुत द्विजा ॥३०
चतुरगुलललाट स्याद्वद्ध्व नासा नथैव च ।
द्व्यगुलन्तु हनुर्ज्ञेयमोष्ठ स्वागुलसम्मित ॥३१
अष्टागुले ललाटे च तावन्मात्रा भ्रुवौ मते ।
अर्द्धागुलाभ्रुवोर्लेखा मध्ये धनुरिवानता ॥ ३२
उन्नताग्रा भवेत्पार्श्वे श्लक्ष्णा तीक्ष्णा प्रशस्यते ।
अक्षिणी द्व्यगुला यामे तदर्धं चैव विस्तरे ॥३३
उन्नतोदरमध्ये तु रक्तान्ते शुभलक्षणे ।
तारकार्धविभागेन दृष्टि स्यात्पञ्चभागिका ॥३४
द्व्यगुलन्त भ्रुवोमध्ये नासामूलमथागुलम् ।

मात्रा वाली ही भौंहें मानी गयी हैं। भ्रूओं के लेखा आधे अंगुल की होती हैं जो भ्रूओं के मध्य में धनुष की भाँति आनत हुआ करती है। पार्श्व भाग में वह उन्नत अग्र भाग वाली होती है तथा श्लक्ष्ण और तीक्ष्ण प्रशस्त कही जाया करती है। दो अंगुल की याम वाली दो अक्षियाँ होनी चाहिए और विस्तार में इससे आधी होवें ॥३१, ३२, ३३॥ उन्नत उदर के मध्य भाग वाली और अन्त में रक्त वर्ण से युक्त अक्षि शुभ लक्षण से सम्पन्न हुआ करती हैं। तारक के अर्ध विभाग में दृष्टि पाँच भाग वाली होती है ॥३४॥ भौंहों के मध्य में दो अंगुल के प्रमाण वाला नासिका का मूल होना है और एक अंगुल नासिका के अग्रभाग का विस्तार हुआ करता है। इसी भाँति से आनन नासिका के दो पुर हुआ करते हैं ॥ ३५ ॥

नासापुटबिलतद्वदर्धांगुलमुदाहृतम् ।
कपोले द्व्यंगुले तद्वत् कर्णमूलाद्विनिर्गते ॥३६
हन्वग्रमंगुलं तद्वद्विस्तारो द्व्यंगुलो भवेत् ।
अर्द्धांगुलाभ्रुवोराजी प्रणालसदृशी समा ॥३७
अर्द्धांगुलसमस्तद्वदुत्तरोष्ठस्तु विस्तरः ।
निष्पावसदृशन्तद्वन्नासापुटदलं भवेत् ॥३८
सृक्किणी ज्योतिस्तुल्ये तु कर्णमूलात् षडंगुले ।
कर्णौ तु भ्रूसमौ ज्ञेयौ ऊर्ध्वेन्तु चतुरंगुलौ ॥३९
द्व्यंगुलौकर्णपार्श्वौ तु मात्रामेकान्तु विस्तृतौ ।
कर्णयोरुपरिष्टाच्चमस्तकं द्वादशांगुलम् ॥ ४०
ललाटात्पृष्ठतोऽर्द्धेन प्रोक्तमष्टादशांगुलम् ।
षट्त्रिंशदङ्गुलश्चास्य परिणाहः शिरोगतः ॥४१
सकेशनिचयो यस्य द्विचत्वारिंशदंगुलः ।
केशान्तादहनुका तद्वदंगुलानि तु षोडश ॥४२

अंगुष्ठकसमा तद्वदायामा स्यात्प्रदेशिनी ।
तस्या षोडशभागेन हीयते मध्यमांगुली ॥४८
अनामिकाष्टभागेन कनिष्ठा चापि हीयते ।
पर्वत्रयेणचांगुल्यांगुल्फौ द्व्यंगलकौ मतौ ॥४६

ग्रीवा के मध्य का परीणाह चौबीस अंगुल का होना चाहिए। आठ अंगुल की ग्रीवा जो होती है पृथुत्व से प्रशस्त मानी गयी है ॥४३॥ स्वयम्भू ने स्तनो और ग्रीवा का अन्तर एक ताल कहा है। दोनो स्तनो का अन्तर उसी भाँति से बारह अंगुल का होना चाहिए जो कि अभीष्ट है ॥४४॥ स्तनों का मण्डल भी उसी प्रकार से दो अंगुल का परिकीर्तित किया गया है। स्तनों के चूचुक (घुण्ड) उस मण्डल के अन्दर दोनो यव मात्र होनी चाहिए—ऐसा कहा गया है ॥४५॥ विस्तार से वक्ष: स्थल भी द्वितल बताया गया है। बाहुओं के मूल मे स्तनो के बीच मे दोनो कक्षो का परिमाण छै-अंगुल का कहा गया है ॥४६॥ चौदह अंगुल के दोनो पैर और तीन अंगुल के परिमाण से युक्त दोनो अंगुष्ठ होते हैं। पाँच अंगुल के परीणाह से युक्त एवं उन्नत अंगुष्ठ का अग्र भाग होता है। अंगुष्ठ के ही समान उसी के समान आयाम वाली प्रदेशिनी होती है। उसके सोहलवें भाग से मध्यांगुलि हीन होती है ॥४७, ४८॥ अनामिका आठ भाग से और कनिष्ठा भी हीन हुआ करती है। तीन पर्व से अंगुलियाँ और दोनो गुल्फ दो अंगुल के माने गये हैं ॥ ४६ ॥

पार्ष्णिर्द्व्यंगुलमायस्तु कलशान्च प्रकीर्तित. ।
द्विपर्वांगुष्ठक: प्रोक्त परीणाहश्च द्व्यंगुल. ॥५०
प्रदेशिनी परीणाहस्त्र्यंगुल. समुदाहृत. ।
कन्यसा चाष्टभागेन हीयते क्रमशोद्विजा: ॥५१
अंगुलेनोच्छ्र: कार्यो. ह्यंगुष्ठस्य विशेषत. ।
तदर्धेन तु शेषाणामंगुलानान्तथो च्छ्र ॥५२
जङ्घाग्रे परिणाहस्तु अंगुलानि चतुर्दश ।

नासिका के पुट का बिल उसी भाँति से आधे अंगुल का कहा गया है। दो अंगुल के प्रमाण से युक्त दोनों कपोल होने चाहिए जो कर्ण-मूल से विनिर्गत हुआ करते हैं ।।३६।। दनु के अग्रभाग का विस्तार दो अंगुल और वह एक अंगुल होता है। भ्रू ओं की राजी आधी अंगुल वाली होती है जो प्रणाल के सदृश एवं सम हुआ करती है।। ३७।। विस्तार मे उसी की भाँति उत्तरोष्ठ अर्द्ध अंगुल के समान होना चाहिए। उसी तरह से निष्पाव के समान नासापुटों का दल होता है ।।३८।। कर्णों के मूल से छै अंगुल परिमाण वाली ज्योति के तुल्य सृविकणी होनी चाहिए। और दोनो कान भ्रू हो के समान जानने चाहिए जो ऊर्ध्व भाग में चार अंगुल प्रमाण वाले हों ।।३६।। कर्णों के पार्श्व भाग दोनों दो अगुल के होने चाहिए और एक मात्रा विस्तृत होवें। दोनों कानों के ऊपर मस्तक बारह अंगुल का होना चाहिए। ललाट से पृष्ठ भाग में इसके आधे भाग से युक्त कहा गया है जो अठारह अंगुल होना चाहिए। इसके शिर मे होने वाला परिणाह छत्तीस अंगुल का होता है। जिसके केशों के निचय के साथ परिमणि बयालीस अंगुल का होता है। केशान्त उसी भाँति दनु का सोलह अंगुल की होती है ।।४०-४ ।।

ग्रीवा मध्यपरोणाहश्चतुर्विंशतिकांगुलः ।
अष्टांगुला भवेद् ग्रीवा पृथुत्वेन प्रशस्यते ।।४३
स्तनग्रीवान्तरं प्रोक्तमेकताल स्वयम्भुवा ।
स्तनयारन्तरं तद्वद् द्वादशांगुलमिष्यते ।।४४
स्तनयोर्मण्डलतद्वद्द्वयङ्गुलं परिकीर्तितम् ।
चूचुकौ मण्डलस्यान्तर्यवमात्रावुभौस्मृतौ ।।४५
द्वितालञ्चापि विस्तराद्वक्षन्यलमुदाहृतम् ।
कक्षे षडंगुलेप्रोक्ते बाहुमूलस्तनान्तरे ।।४६
चतुर्दशांगुलौपादावङ्गुष्ठौ तु त्रियंगुलौ ।
पञ्चांगुलपरोणाहमङ्गुष्ठाग तयोन्नतम् ।।४७

अगुष्ठक्समा तद्वदायामा स्यात्प्रदेशिनी ।
तस्या षोडशभागेन हीयते मध्यमागुली ॥४८
अनामिकाष्टभागेन कनिष्ठा चापि हीयते ।
पवत्रयेणचागुल्यागुल्फौ द्व्यगलकौ मतौ ॥४६

ग्रीवा के मध्य का परीणाह चौबीस अगुल का होना चाहिए। आठ अगुल की ग्रीवा जो होती है पृथुत्व से प्रशस्त मानी गया है ॥४३॥ स्वयम्भू ने स्तनों और ग्रीवा का अन्तर एक ताल कहा है। दोनों स्तनों का अन्तर उसी भाँति से बारह अंगुल का होना चाहिए जो कि अभीष्ट है ॥४४॥ स्तनों का मण्डल भी उसी प्रकार से दो अगुल का परिकीर्तित किया गया है। स्तनों के चूचुक (घुण्ड) उस मण्डल के अन्दर दोनो यव मात्र होनी चाहिए—ऐसा कहा गया है ॥४५॥ विस्तार से वक्ष स्थल भी द्विताल बनाया गया है। बाहुओं के मूल में स्तनों के बीच में दोनों कक्षा का परिमाण छः अगुल का कहा गया है ॥४६॥ चौदह अगुल के दोनों पैर और तीन अगुल के परिमाण से युक्त दोनों अगुष्ठ होते हैं। पाँच अगुल के परीणाह से युक्त एवं उन्नत अंगुष्ठ का अग्र भाग होता है। अगुष्ठ के ही समान उसी के समान आयाम वाली प्रदेशिनी होती है। उसके सोलहवें भाग से मध्यागुलि हीन होती है ॥४७, ४८॥ अनामिका आठ भाग से और कनिष्ठा भी हीन हुआ करती है। तीन पव से अगुलियाँ और दोनों गुल्फ दो अगुल के मान गये हैं ॥ ४६ ॥

पार्ष्णिद्व्यगुलमानस्तु कलशान्च प्रकीर्तित ।
द्विपर्वागुष्ठक प्रोक्त परीणाहश्च द्व्यगुल ॥५०
प्रदेशिनी परीणाहस्त्र्यगुल समुदाहृत ।
मध्यमा चाष्टभागेन हीयते क्रमशोऽङ्गजा ॥५१
अगुलनाच्छ्र ार्यो ह्यगुष्टस्य जिनपते ।
तदर्धेन त शाखानामगुलानान्तथा छ्र ॥५२
जङ्घाग्र परिणाहस्तु अगुलानि चतुर्दश ।

जङ्घामध्ये परीणाहस्तथैवाष्टादशाङ्गुल ।।५३
जानुमध्ये परीणाह एकविंशतिरङ्गुल. ।
जानूच्छ्रयोऽङ्गुलप्रोक्तो मण्डलन्तु त्रिरङ्गुलम् ।।५४
ऊरुमध्ये परीणाहो ह्यष्टाविंशतिकाङ्गुल ।
एकत्रिंशोपरिष्टाच्च वृषणौ तु त्रिरङ्गुलौ ।।५५
द्व्यङ्गुश्च तथामेढ्रं परीणाह षडङ्गुलम् ।
मणिबन्धादधोविद्यात् केशरेखास्तथैव ।।५६

पार्ष्णि दो अगुल परिमाण वाला कला से उच्च कीर्तित किया गया है । अगुष्ठ दो पर्वों वाला कहा गया है और परीणाह भी दो अगुल वाला होता है । प्रदेशिका का परीणाह तीन अगुल वाला कहा गया है । हे द्विजगण ! कनसा आठ भाग से क्रम से हीन होती है । एक अगुल का उच्छ्रय अगुष्ठ का विशेष रूप से करना चाहिए । उसके प्राद्य भाग से शेष अगुलियों का उसी भाँति उच्छ्रय होना चाहिए ।।५०, ५१, ५२।। जङ्घाओं के मध्य भाग मे चौदह अगुलो का परीणाह होता है । जाँघों के मध्य मे परीणाह उसी भाँति अठारह अगुल का होता है ।।५३।। जानुओं के मध्य में जो परीणाह है वह इक्कीस अगुल के परिमाण वाला है । जानुओं का उच्छ्रय एक अगुल कहा गया है और मण्डल तीन अगुल का होता है ।।५४।। ऊरुओं के मध्य में अट्ठाईस अँगुल के परिमाण से युक्त परीणाह होता है । और ऊपर इकत्तीस अँगुल का होता है । दोनों वृषण तीन अँगुल वाले है । दो अगुल का मेढ़ है तथा इसका परीणाह छै अगुल का होता है । उसी भाँति से मणिबन्ध से नीचे केश रेखाएँ जाननी चाहिए ।।५५ ५६।।

मणिकोशपरीणाहश्चतुरङ्गुल इष्यते ।
विस्तरेण भवेत्तद्वत् दिरष्टादशाङ्गुला । ५७
द्वाविंशति तथा श्रोणी स्तनौ च द्वादशाङ्गुलौ ।
नाभिमध्य परीणाहो द्विपञ्चाशदङ्गुल. ।।५८

पुरुषे पञ्चपञ्चाशत् कट्याञ्चैव तु वेष्टनम् ।
कक्षयोःपरिष्टात्तु स्कन्धौप्रोक्तौ षडङ्गुलौ ॥५६
अष्टाङ्गुलान्तु विस्तारे ग्रीवाञ्चैव विनिर्दिशेत् ।
परीणाहे तथा ग्रीवा कला द्वादश निर्दिशेत् ॥६०
आयामो भुजयोस्तद्वत् द्विचत्वारिंशदङ्गुल ।
कार्यन्तु बाहुशिखर प्रमाणेषोडशाङ्गुलम् ॥६१
ऊर्द्ध्वं यद्बाहुपर्यन्त विन्द्यादष्टाङ्गुल शतम् ।
तथैकाङ्गुलहीनन्तु द्वितीय पर्व उच्यते ।।६२
बाहुमध्य पराणाहो भवेदष्टादशाङ्गुल. ।
षोडशोक्तः प्रबाहुस्तु षट्कोग्रकरोमतः ।।६३

मणि कोश का परीणाह चार अंगुल का अभीष्ट होता है। उसी भाँति विस्तार से कटि अठारह अंगुल की होनी चाहिए ॥५७॥ स्त्रियों की कटि बाईस अंगुल की होती है और दोनों स्तन बारह अंगुल के होते हैं। नाभि के मध्य का परीणाह बयालीस अंगुल वाला अभीष्ट होता है। ॥५८॥ पुरुष में पचपन और कटि में वेष्टन तथा दोनों कक्षों के ऊपर छे अंगुल के स्कन्ध बताये गये हैं। विस्तार में ग्रीवा को आठ अंगुल की विनिर्दिष्ट करनी चाहिए और परीणाह में ग्रीवा को बारह कला निर्दिष्ट करना चाहिए ॥५९, ६०॥ दोनों भुजाओं का आयाम उसी भाँति में बयालीस अंगुल का होता है। बाहुशिखर को प्रमाण में सोलह अंगुल का करना चाहिए। ६१॥ ऊर्ध्व भाग में बाहुपर्यन्त एक सौ आठ अंगुल का लाभ करना चाहिए। उसी प्रकार से एक में अंगुल हीन दूसरा पर्व कहा जाता है। बाहुओं के मध्य में अठारह अंगुल का परीणाह होना चाहिए। प्रबाहु षोडश कहा गया है और अग्र कर षट्कना वाला माना गया है ॥६२, ६३॥

सप्ताङ्गुल करतल पञ्चमध्याङ्गुलीमना ।
अनामिका मध्यमाया सप्तभागेन हीयते ॥६४

तस्यास्तु पञ्चभागेन कनिष्ठा परिहीयते ।
मध्यमायास्तु हीना वै पञ्चभागेन तर्जनी ॥६५
अगुष्ठस्तर्जनीमूलादधः प्रोक्तस्तु तत्समः ।
अगुष्ठपरिणाहस्तु विज्ञेयश्चतुरगुलः ॥६६
शेषाणामगुलीनान्तु भागो भागेन हीयते ।
मध्यमामध्यभागन्तु अगुलद्वयमायतम् ॥६७
यवो यवेन सर्वासान्तस्यास्तस्या प्रहीयते ।
अगुष्ठपर्वमध्यन्तु तर्जन्या सदृशं भवेत् ॥६८
यवद्वयाधिकं तद्वदग्रपर्व उदाहृतम् ।
पर्वार्धे तु नखान्विद्यादगुलीषु समन्ततः ॥६९
स्निग्धं श्लक्ष्णं प्रकुर्वीत ईषद्रक्तं तथाग्रतः ।
निम्नपृष्ठं भवेन्मध्ये पार्श्वतः कलयोन्छितम् ॥७०

सात अगुल का करतल होता है और पाँच मध्यागुली मानी गयी है। अनामिका, मध्यमा अगुलि से सात भाग से हीन हुआ करती है ॥ ६४ ॥ उसके पाँच भाग से हीन कनिष्ठा कही जाया करती है। मध्यमा से हीन तर्जनी पाँच भाग से हुआ करती है। तर्जनी के मूल से नीचे उसी के समान अगुष्ठ कहा गया है। इस अगुष्ठ का परीणाह तो चार अगुल का जानना चाहिए ॥ ६५ । ६६ ॥ शेष अगुलियों का भाग से हीन होना है। मध्यमा के मध्य भाग दो अगुल आयत वाला होता है ॥६७॥ सबका यव यव से उस-उसका प्रहीण हुआ करता है। अगुष्ठ के पर्व का मध्य तर्जनी के ही सदृश हुआ करता है। उसी भाँति अग्रपर्व दो यव से अधिक उदाहृत किया गया है। अगुलियों को सभी ओर पूर्वार्द्ध में नखों को जानना चाहिए ॥६८, ६९॥ अग्रभाग में थोड़ा रक्त-स्निग्ध और श्लक्ष्ण करना चाहिए। मध्य में भिन्न पृष्ठ और पार्श्व में कला से उच्छ्रित होना चाहिए ॥७०॥

तत्रैव केशवल्लीय स्कन्धोपरि दशाङ्गुला ।
स्त्रियः कार्यास्तु तन्वङ्ग्य स्तनोरुजघनाधिका ॥७१
चतुर्दशागुलायाममुदरं नाम निर्दिशेत् ।
नानाभरणसम्पन्नाः किञ्चित्श्लक्ष्णभुजास्तत. ॥७२
किञ्चिद्दीर्घं भवेद्वक्त्रमलकावलिरुत्तमा ।
नासाग्रीवा ललाटञ्च सार्द्धमात्रं त्रिरगुलम् ॥७३
अध्यर्द्धा गुलविस्तारः शस्यतेऽधरपल्लवः ।
अधिकनेत्रयुग्मन्तु चतुर्भागेन निर्दिशेत् ॥७४
ग्रीवावलिश्च कर्तव्या किञ्चिदर्धा गुलान्छ्या ।
एव नारापु सर्वासुदेवाना प्रतिमासु च ॥
तव चालमिद प्रोक्त लक्षण पापनाशनम् ॥७५

वही पर केशो की वल्ली स्कन्धो के ऊपर दश अ गुल परिमाण वाली होनी चाहिए। स्त्रियों का विग्रह तनु अर्थात् कृश अङ्गो वाला करना चाहिये। इनके तो केवल स्तन ऊरु और जङ्घाऐं ही अधिक परिपुष्ट होने चाहिएं ॥७१॥ चौदह अंगुल के आयाम वाला उदर निर्दिष्ट करना चाहिये। नाना आभरणो स सम्पन्न और कुछ श्लक्ष्ण भुजाओं स युक्त स्त्रियो विग्रह होना चाहिए। कुछ दीर्घ वक्त्र होवे और उस पर उत्तम अलको की अवली होनी चाहिये। नासा—ग्रीवा और ललाट माढे तीन अ गुल का होवे। अधर पल्लव स्त्रियों का अध्यर्द्धागुल विस्तार से समन्वित प्रशस्त हुआ करता है। अधिक दोनो नेत्रों का युग्म चतुर्भाग से विनिर्दिष्ट करना चाहिए। अर्द्धा गुल उच्छ्रय वाली ग्रीवा की अवली करनी चाहिए। इसी प्रकार से समस्त नारियों मे और देवो की सब प्रतिमाओ मे रचना करनी चाहिए। आपको यह अत्यधिक लक्षण बतला दिया है। यह पापो का नाश करने वाला है ॥७२-७५॥

१२२–देवाकार प्रमाण वर्णन (१)

अतः परं प्रवक्ष्यामि देवाकारान् विशेषतः ।
दशतालः स्मृतो रामो बलिर्वैरोचनिस्तथा ॥१
वराहो नारसिंहश्च सप्ततालस्तु वामनः ।
मत्स्यकूर्मौ च निर्दिष्टौ यथाशोभं स्वयम्भुवा ॥२
अतः परं प्रवक्ष्यामि रुद्राद्याकारमुत्तमम् ।
स पीनोरुभुजस्कन्धस्तप्तकाञ्चनसप्रभः ॥३
शुक्लोऽर्करश्मिसंघातश्चन्द्राङ्कितजटो विभुः ।
जटामुकुटधारी च द्व्यष्टवर्षाकृतिश्च सः ॥४
बाहुवारणहस्ताभो वृत्तजङ्घोरुमण्डलः ।
ऊर्ध्वकेशश्च कर्तव्यो दीर्घायतविलोचनः ॥५
व्याघ्रचर्मपरीधानः कटिसूत्रत्रयान्वितः ।
हारकेयूरसम्पन्नो भुजङ्गाभरणस्तथा ॥६
बाहवश्चापि कर्तव्या नानाभरणभूषिताः ।
पीनोरुगण्डफलकः कुण्डलाभ्यामलङ्कृतः ॥७

एव ऊरुओ के मण्डल से युक्त—ऊर्ध्व भाग की ओर केशों वाले तथा दीर्घ एवं आयत नेत्रो वाला स्वरूप करना चाहिए। व्याघ्र के चर्म से परीधान करने वाले—कटि मे तीन सूत्रो से संयुत हार, कयूर और अन्य सुन्दर आभरणो से सम्पन्न—सर्पो के आभूषणो से शोभित करे। और ऐसे वृत्त—से अनेक आभरणो से विभूषित विरचित करे। पीन ऊरु गण्ड फलक वाला तथा कुण्डलो मे समलकृत बनावे ॥ ४–७ ॥

आजानुलम्बबाहुश्च सौम्यमूर्ति सुशोभन ।
खेटक वामहस्ते तु शङ्खञ्चैव तु दक्षिणे ॥८
शक्ति दण्ड त्रिशूलञ्च दक्षिणेषु निवेशयेत् ।
कपाल वामपार्श्वे तु नाग खट्वाङ्गमेव च ॥९
एकश्च वरदो हस्तस्तथाक्षवलयोऽपर ।
वैशाखस्थानक कृत्वा नृत्याभिनयसस्थित. ॥१०
नृत्यन्दशभुज कार्यो गजचर्मधरस्तथा ।
तथा त्रिपुरदाहे च बाहव: षोडशैव तु ॥११
शङ्ख चक्र गदाशार्ङ्ग घण्टातत्राधिकाभवेत् ।
तथाधनु पिनाकञ्च शरो विष्णुमयस्तथा ॥१२
चतुर्भुजोऽष्टबाहुर्वा ज्ञानयोगेश्वरो मत: ।
तीक्ष्णनासाग्रदशन करालवदनो महान् ॥१३
भैरव शस्यते लोके प्रत्यायतनसंस्थित ।
न मूलायतने कार्यो भैरवस्तु भयङ्कर ॥१४

जानु पर्यन्त लम्बी बाहुओ स युक्त—सौम्य मूर्ति सुन्दर शोभा से संयुत वाम हस्त म खेटक धारण करन वाले तथा दाहिने हाथ म शख का धारण किये हुए एवं दक्षिणो म शक्ति—दण्ड और त्रिशूल को निवेशित करना चाहिए। एक हाथ तो वर प्रदान करने वाला मुद्रा म होना चाहिए और दूसरा अक्षो क वलय वाला हाथ। (वैशाख स्थानक करक नृत्य के अभिनय करने स सस्थित होना चाहिए। नृत्य करते हुए दश भुजाओ वाला एव गज क चर्म का धारी स्वरूप का स्वरूप निर्मित

करे तथा त्रिपुरासुर के दाह करने मे सोलहो बाहुऐं व्यस्त हो।) वहाँ पर शख—चक्र—गदा—शार्ङ्ग हों और अधिक का घण्टा होना चाहिये। तथा पिनाक धनु और विष्णुमय शर होना चाहिए। / चतुर्भुज अथवा आठ बाहुओ वाला ज्ञान योग के ईश्वर को माना गया है। तीक्ष्ण नासा तथा अग्र दशन वाले—कराल बदन से युक्त—महान् और प्रत्यायतन मे सस्थित (भैरव) लोक मे परम प्रशस्त कहे गये हैं। मूलायतन मे भैरव भगवान् कभी भी भयङ्कर नही निर्मित करना चाहिये ॥ ८-१४ ॥

नारसिंह वराहोवा तथान्योऽपि भयङ्कराः।
नाधिकाङ्गा न हीनाङ्गा कर्तव्या देवताः क्वचित् ॥१५
स्वामिन घातयेन्न्यूना करालवदना तथा।
अधिका शिल्पिन हन्यात् कृशा चैवार्थनाशिनी ॥१६
कृशोदरी तु दुर्भिक्ष निर्मासाधननाशिनी।
वक्रनासा तु दुःखाय सङ्क्षिप्ताङ्गी भयङ्करी ॥ ७
चिपिटा दुःखशोकाय अनेत्रा नेत्रनाशिनी।
दुःखदा हीनवक्त्रा तु पाणिपादकृशा तथा ॥१८
हानाङ्गा हीनजङ्घा च भ्रमोन्मादकरी नृणाम्।
शुष्कवक्त्रा तु राजानं कटिहीना च या भवेत् ॥१६
पाणिपादविहीनो योजायते मारकोमहान्।
जङ्घाजानुविहीना च शत्रुकल्याणकारिणी ॥२०
पुत्रमित्रविनाशाय हीनवक्षस्थला तु या।
सम्पूर्णावयवा या तु आयुलक्ष्मीप्रदा सदा ॥२१

नारसिंह अथवा वराह तथा अन्य भी भयङ्कर होते हैं किन्तु कभी भी और कहीं पर भी देवा की प्रतिमाओं को अधिक अङ्गो वाली नहीं बनानी चाहिये ॥ १५ ॥ जो कोई देवमूर्ति न्यून अङ्गो वाली होती है अथवा कराल मुख से युक्त होती है वह स्वामी का घात किया करती है। जो अधिक अङ्गो वाली अथवा कृश होती है वह उसके निर्माण

करने वाले शिल्पकार का हनन किया करती है और अर्थ का विनाश करन वाली होती है ॥ १५, १६ ॥ जो काई दवता की प्रतिमा कृश उदर से युक्त निर्मित कराई जावे तो वह दुर्भिक्ष करने वाली हुआ करती है तथा मास से हीन यदि देव प्रतिमा की निर्मित कराई जावे तो उसका *यह बुरा फल होता है कि यह धन का विनाश किया करती है।* वक्र नासिका वाली देव प्रतिमा दु ख के ही लिये हुआ करती है। जिस प्रतिमा के अङ्ग संक्षिप्त हो तो वह भय करने वाली हुआ करती है। जो मूर्ति विपिटा होती है वह दु ख और शोक के लिये ही हुआ करती है। जिसके नेत्र नही होत हैं अर्थात् नेत्रो की रचना न की गई हो वह देव प्रतिमा नत्रो के विनाश करन वाली हुआ करती है। हीन मुख वाली प्रतिमा की रचना का यह दुष्परिणाम होता है कि वह सर्वदा दु ख प्रदान किया करती है तथा हाथ और चरणो स कृश प्रतिमा हो—हीनाङ्गा—हीनजघा हो यह मनुष्यों का भ्रम एव उन्माद करन वाली हुआ करती है। शुष्क मुख वाली और कटि स हीना जा होती है वह राजा को किया करती है। पाणि और पाद स जो विहीन होकर समुत्पन्न होता है वह महान् मारक हुआ करता है। जो जघा और जानु से विहीन होती है तो वह शत्रु के कल्याण करने वाली होती है। जो हीन वक्षःस्थल वाली होती है वह पुत्र और मित्र के विनाश के लिये हुआ करती है। जो सम्पूर्ण अवयवो स युक्त होती है वह सदा आयु और लक्ष्मी के प्रदान करने वाली होती है ॥१७–२१॥

एव लक्षणमासाद्य कर्तव्य परमेश्वरः ।
स्तूयमान सुरै सर्वै समन्ताद्दर्शयेद्भवम् ॥२२
शार्ङ्गेण नन्दिना चैव महाकालेन शङ्करम् ।
प्रणता लोकपालास्त पार्श्वे तु गणनायकाः ॥२३
नृत्यद्भृङ्गारिटिश्चैव भूतवेताल संवृता ।
सर्वेहृष्टास्तु कर्तव्या स्तुवन्त परमेश्वरम् ॥२४

गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणामथाप्सरो गुह्यकनायकानाम् ।
गणैरनेकैः शतशो महेन्द्रैर्मुनिप्रवीरैरपि नम्यमानम् ॥ २५
धृताक्षसूत्रैः शतशः प्रवालपुष्पोपहारप्रचयन्ददद्भिः ।
संस्तूयमानं भगवन्तमीड्यं नेत्रत्रयेणामरमर्त्यपूज्यम् ॥२६

इस प्रकार से लक्षणों की प्राप्ति करके परमेश्वर की प्रतिमा की रचना करानी चाहिये। भगवान् भव को इस प्रकार से दर्शित कराना चाहिए कि वह सब ओर से समस्त सुरगणों के द्वारा स्तूयमान हो रहे हैं ॥२२॥ इन्दु के द्वारा—नन्दी और महाकाल के द्वारा शङ्कर की स्तुति की जा रही हो। भगवान् के पार्श्व में सब गण नायक और लोकपाल प्रणत हो रहे हों। (भगवान् की प्रतिमा को इस प्रकार सन्निमित कराना चाहिए कि उनके समक्ष में भृङ्गी और रिटि नृत्य कर रहे हो तथा भूतों और वेतालों से संवृत हो। सब परम प्रसन्न होते हुए परमेश्वर की स्तुति करने वाले हो।) गन्धर्व—विद्याधर—किन्नर—अप्सरायें—गुह्यक—नायक इनके अनेक सैकड़ों गणों के द्वारा—महेन्द्रों के द्वारा—और मुनि प्रवरों के द्वारा नम्यमान होवे। सैकड़ों अक्ष सूत्रों के धारण करने वाले प्रवाल—पुष्पों के उपहार के प्रचयों के समर्पित करने वालों के द्वारा स्तूयमान—तीन नेत्रों से युक्त देवगण और मनुष्यों के परम पूज्य—ईड्य भगवान् की प्रतिमा का निर्माण कराना चाहिए। ॥ २२–२६ ॥

१२३—देवाकार प्रमाण वर्णन (२)

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि अर्धनारीश्वरं परम् ।
अर्धेन देवदेवस्य नारीरूप सुशोभनम् ॥१
ईशार्धे तु जटाभागो बालेन्दुकलयायुतः ।

उमार्धे चापि दातव्यौ सीमन्ततिलकावुभौ ॥२
वासुकिर्दक्षिणे कर्णे वामे कुण्डलमादिशेत् ।
वालिका चोपरिष्टात्तु कपाल दक्षिणेकरे ।।
त्रिशूलं वापि कर्तव्य देवदेवस्य शूलिनः ।।३
वामतो दर्पणं दद्यादुत्पलन्तु विशेषत. ।।४
वामबाहुश्च कर्तव्यः केयूरवलयान्वितः ।
उपवीतञ्च कर्तव्य मणिमुक्तामयन्तथा ।।५
स्तनभारं तथार्धेतु वामेपीन प्रकल्पयेत् ।
पराध्यंमुज्ज्वलकुर्य्याच्छ्रोण्यर्धेतु तथैव च । ६
लिङ्गार्ध मूर्ध्वग कुर्य्यात व्यालाजिनकृताम्वरम् ।
वामेलम्बपरीधानं कटिसूत्रत्रयान्वितम् ।।७

महामहर्षि प्रवर श्रीसूत जी ने कहा—अब परम अर्ध नारीश्वर भगवान् के विषय मे कहते हैं। देवो के देव के अर्ध भाग से सुशोभन नारी का रूप है।' १।। ईश के अर्ध भाग मे जटा का भाग है और बालचन्द्र की कला से युक्त है तथा उमादेवी का जो अर्ध भाग है उससे सीमन्त और तिलक य दोनो देने के योग्य हैं। भगवान् शिव के दक्षिण कर्ण मे वासुकि सर्प शोभित हो रहे हैं और वामकर्ण मे कुण्डल धारण किया हुआ है। ऊपर मे बालिका है दक्षिण कर मे कपाल धारण किये हुए हैं। देवो के देव भगवान् शूली के कर मे त्रिशूल धारण कराना चाहिये। वाम भाग मे दर्पण और विशेष रूप से उत्पल धारण करावे। ।। १, २, ३, ४ ।। वामबाहु को केयूर और वलय से समन्वित करे। तथा मणि मुक्ताओ से परिपूर्ण उपवीत भी धारण कराना चाहिए ।। ५ ।। वाम अर्ध भाग मे पीन स्तन का भार प्रकल्पित करे तथा श्रोण्यर्ध मे उसी भाँति उज्ज्वल पराध्यं को करना चाहिए। व्याल और अजिन से अम्बर करके ऊर्ध्वङ्ग लिङ्गार्ध करे तथा वाम भाग मे कटि सूत्र त्रय से समन्वित लम्बे परीधान को धारण कराना चाहिए ।।२—७।।

नानारत्नसमायेतं दक्षिणेभुजगान्वितम् ।
देवस्य दक्षिणं पादपद्मोपरिसुसंस्थितम् ॥८
कञ्चिदर्ध्वं तथा वामं भूषितं नूपुरेण तु ।
रत्नैर्विभूषितान् कुर्य्यादङ्गुलीष्वङ्गुलीयकान् ॥६
सालक्तकं तथापादं पार्वत्या दर्शयेत्सदा ।
अर्धनारीश्वरस्येदं रूपमस्मिन्नुदाहृतम् ॥१०
उमामहेश्वरस्यापि लक्षणं शृणुतद्विजाः ।
संस्थानन्तु तयोर्वक्ष्ये लीलाललितविभ्रमम् ॥११
चतुर्भुजं द्विबाहुं वा जटाभारेन्दुभूषणम् ।
लोचनत्रयसंयुक्तमुमैकस्कन्धपाणिनम् ॥१२
दक्षिणेनोत्पलं शूलं वामेकुचभरेकरम् ।
द्वीपिचर्मपरीधानं नानारत्नोपशोभितम् ॥१३
सुप्रतिष्ठं सुवेषञ्च तथार्धेन्दुकृताननम् ।
वामे तु संस्थिता देवी तस्योरौ बाहुगूहिता ॥१४

ही मे उमा महेश्वर दोनों का होता है ॥ ११, २२ ॥ दक्षिण कर में उत्पल को ग्रहण करने वाले तथा शूल को लिये हुए और वाम कर में स्तन के भार को सम्हाले हुए—द्वीपि के चर्म का परीधान धारण करने वाले एवं अनेक रत्नों से समुद शोभित—सुन्दर प्रतिष्ठा से युक्त—सुन्दर वेष वाले तथा अर्ध चन्द्र से मुख को करने वाले रूप से युक्त भगवान् भव का स्वरूप है। उनके ऊरु पर वाम भाग में बाहुओं से गृहित उमादेवी विराजमान हैं ॥१३, १४॥

शिरोभूषणसंयुक्तां रत्नपत्रैर्ललिताननाम् ।
सवालिका कर्णवती ललाटतिलकान्विता ॥१५
मणिकुण्डलसंयुक्ता कर्णिकाभरणा तथा ।
हारकेयूरबहुला हरवक्त्रावलोकिनी ॥१६
वामांसे देवदेवस्य स्पृशन्ती लीलया तदा ।
दक्षिणन्तु वहिः कृत्वा बाहुं दक्षिणतस्तथा ॥१७
स्कन्धं वा दक्षिणे कुक्षौ स्पृशन्त्यङ्गुलिभिः [illegible] ।
वामे तु दर्पणं दद्यादुत्पलं वा सुशोभनम् ॥१८
कटिसूत्रत्रयं चैव नितम्बे [illegible] ।
जया च विजया चैव कार्तिकेयविनायकौ ॥१९
पार्श्वयोर्दर्शयेत्तत्र तोरणे [illegible] ।

लीला से देवों के भी देव भगवान् शिव के वाम अंश का स्पर्श करने वाली—दक्षिण बाहु को बाहिर करके दक्षिण की ओर से दक्षिण कुक्षि में अँगुलियों से स्कन्ध का स्पर्श करती हुई श्री उमादेवी विराजमान हैं। इनके वाम हस्त में दर्पण समर्पित करना चाहिए अथवा परम शोभा से सुसम्पन्न उत्पल देना चाहिए ॥ १५ १६, १७ १८ ॥ उन देवी के नितम्ब भाग में कटि का सूत्र त्रय होना चाहिए तथा प्रलम्बक का होना भी अत्यावश्यक है। जया और विजया तथा स्वामी कार्त्तिकेय और विघ्न विनाशक विनायक ये सब उन महादेवी के दोनों पार्श्व भागों में वहाँ पर तोरण में गणों और गुह्यकों को दिखलावे—इसी प्रकार से माला—विद्याधरों को तथा अप्सराओं के समुदाय को दिखलाने प्रदर्शित करने चाहिये ॥ १९, २० ॥ जो मनुष्य वैभव की इच्छा रखने वाला है उसको चाहिए कि इस तरह का उपरिवर्णित महेश्वर भगवान् का स्वरूप बनावे। अब मैं इस प्रकार से शिव नारायण के मिश्रित स्वरूप का वर्णन करूँगा जो समस्त प्रकार के महापापों का विनाश करने वाला है ॥ २१ ॥

वामार्धे माधवं विद्याद् दक्षिणे शूलपाणिनम् ।
बाहुद्वयञ्च कृष्णस्य मणिकेयूरभूषितम् ॥२२
शङ्खचक्रधरं शान्तमारक्तांगुलिविभ्रमम् ।
चक्रस्थाने गदां वापि पाणौ दद्याद्गदाभृतः ॥२३
शङ्खञ्चैवेतरे दद्यात् कट्यर्धं भूषणोज्वलम् ।
पीतवस्त्रपरीधानं चरणं मणिभूषणम् ।२४
दक्षिणार्धं जटाभारमर्धेन्दुकृतभूषणम् ।
भुजङ्गहारवलयं वरदं दक्षिणं करम् ॥२५
द्वितीयञ्चापि कुर्वीत त्रिशूलवरधारिणम् ।
व्यालोपवीतसंयुक्तं कट्यर्धं कृत्तिवाससम् ॥२६
मणिरत्नैश्च संयुक्तं पादं नागविभूषितम् ।

शिवनारायणस्यैव कल्पयेद्रूपमुत्तमम् ॥२७
महावराहं वक्ष्यामि पद्महस्तं गदाधरम् ।
तीक्ष्णदंष्ट्राग्रघोणास्य मेदिनीवामकूर्परम् ॥२८

श्री शिवनारायणात्मक स्वरूप मे वाम भाग मे भगवान् माधव को जानना चाहिए और दक्षिण भाग मे शूल हाथ मे धारण करने वाले शिव का स्वरूप समझ लेवे। भगवान् श्रीकृष्ण के दोनो बाहुओ को मणियो जटित केयूरो से समलंकृत करे ॥२२॥ भगवान् माधव का स्वरूप शख और चक्र को धारण करने वाला हो—परम शान्त – आरक्त अंगुली के विभ्रम से संयुत हो—अथवा भगवान् गदाधर के कर मे चक्र के स्थान मे गदा को ही धारण करा देवे। दूसरे कर मे शंख को धारण कराना चाहिए। भगवान् के कटि का अर्ध भाग भूषण से समुज्ज्वल बनावे। पीतवर्ण वाले वस्त्र का उनका परीधान करावे और मणियो से जटित भूषण स युक्त चरण प्रदर्शित करे। इस तरह से वाम भाग मे रमा के ईश्वर भगवान् का स्वरूप प्रदर्शित कराना चाहिये। अब दक्षिण अर्ध भाग मे भगवान् शिव के स्वरूप का प्रदर्शन होना चाहिये। वह शिव का स्वरूप जटाओ के भार से युक्त है और अर्ध चन्द्र के द्वारा भूषण किये हुए हैं—भुजङ्गों के हार एव वलय वाला है और जिस शिव स्वरूप का दक्षिण कर वर के प्रदान करने वाला है। दूसरे स्वरूप को भी करना चाहिये जो त्रिशूल वर का धारण करने वाला—व्यालो के उपवीत से समन्वित है तथा कटि का अर्धभाग कृत्ति (गज चर्म) के वस्त्र से समावृत है। मणि रत्नो के द्वारा पाद संयुक्त हैं तथा नागों से विभूषित है। इस प्रकार से शिव और नारायण के मिश्रित उत्तम स्वरूप की कल्पना करनी चाहिए। अब मैं महा वराह के स्वरूप का वर्णन करूँगा। महा वराह का स्वरूप पद्म हाथ मे धारण करने वाला है—गदा के धारण करने वाला—तीक्ष्ण दंष्ट्रा से युक्त अग्र घोणा (नासिका) और आस्य (मुख) वाला है जिसके वाम कूर्पर पर मेदिनी है ॥२३-२८॥

दंष्ट्राग्रेणोद्धृता दान्ता धरणीमुत्पलान्विताम् ।
विस्मयोत्फुल्लवदनामुपरिष्टात्प्रकल्पयेत् ॥२६
दक्षिण कटिसस्थन्तु कर तस्या प्रकल्पयेत् ।
कूर्मोपरि तथा पादमेक नागेन्द्रमूर्धनि ॥३०
संस्तूयमान लोकेशै. समन्तात्परिकल्पयेत ।
नारसिहन्तु ।तव्य भुजाष्टकसमन्वितम् ॥३१
रौद्र सिंहासन तद्वत् विदारितमुखेक्षणम् ।
स्तब्धपीनसटाकर्ण दारयन्तन्दिते सुतम् ॥३२
विनिर्गतान्त्रजालञ्च दानव परिकल्पयेत ।
वम त रुधिर घोर भ्रुकुटीवदनेक्षणम् ॥३३
युध्यमानश्च कर्तव्य क्वचित्करणबन्धनै. ।
परिश्रान्तेन दैत्येन तर्ज्यमानो मुहुर्मुहु ॥३४
दैत्य प्रदर्शयत्तत्र खड्गखेटकधारिणम् ।
स्तूयमान तथा विष्णु दर्शयेदमराधिपै ॥३५

उस महा वराह के स्वरूप मे धरणी का कल्पना भी करनी चाहिये जो दाढ के अग्रभाग से उद्धृत हो—उत्पलो स समन्वित हो—विस्मय से उत्फुल्ल वदन वाली हो ऐसी धरणी को ऊपर के भाग मे रचना करावे उस महा वराह की प्रतिमा का दक्षिण कर कटि पर स्थित हो—ऐसी कल्पना करे। उस महा वराह का एक चरण कूर्म के ऊपर और एक पाद नागेन्द्र के मस्तक पर स्थित होने की कल्पना करनी चाहिए ॥३०॥ सब ओर से लोकपालों के द्वारा संस्तूयमान होने वाले स्वरूप की परिकल्पित करे। नृसिंह भगवान् के शरीर को आठ भुजाओ से समन्वित कल्पित करना चाहिये ॥३१॥ उनका महान् रौद्र स्वरूप वाला सिंहासन होता है और उसी तरह से विदारित मुख एव नेत्र होते है। स्तब्ध पुष्ट सटाओ स युक्त कर्णों वाला वह स्वरूप होता है जो दिति के पुत्र हिरण्य कशिपु के हृदय के विदीर्ण करता हुआ विद्यमान है

॥३२॥ उस दानव के आँतो का जाल विदीर्ण करने से बाहिर निकला हुआ हो ऐसा ही स्वरूप परिकल्पित करना चाहिए जो कि अत्यधिक घोर रुधिर का वमन कर रहा हो जो भृकुटि–मुख और नेत्रों से वह रुधिर निकलने वाला हो ॥३३॥ कहीं किसी स्थल पर ऐसा भी स्वरूप कल्पित किया जा सकता है जो करण बन्धनो के द्वारा युद्ध करता हुआ हो और दैत्य परिश्रान्त होकर बारम्बार तर्जन किया जाने वाला हो। युद्ध करने की अवस्था मे दैत्य को खड्ग और खेटक का धारण करने वाला प्रदर्शित करना चाहिए। उस समय मे यह भी प्रदर्शित करे कि अमराधिप गणो के द्वारा विष्णु स्तवन किये जा रहे हो ॥३४, ३५॥

तथा त्रिविक्रम वक्ष्ये ब्रह्माण्डक्रमणोल्वणम्।
पादपार्श्वे तथा बाहुमुपरिष्टात्प्रकल्पयेत् ॥३६
अधस्ताद्वामन तद्वत्कल्पयेत्सकमण्डलुम्।
दक्षिणे छत्रिका दद्यान्मुख दीन प्रकल्पयेत् ॥३७
भृङ्गारधारिण तद्वद्बलि तस्य च पार्श्वतः।
बन्धनञ्चास्य कुर्वन्त गरुडन्तस्य दर्शयेत् ॥३८
मत्स्यरूप तथा मात्स्यं कूर्मं कूर्माकृति न्यसेत्।
एव रूपस्तु भगवान् कार्यो नारायणो हरिः ॥३९
ब्रह्माकमण्डलुधरः कर्तव्य. स चतुर्मुख।
हंसारूढ क्वचित्कार्यः क्वचिच्च कमलासनः ॥४०
वर्णतः पद्मगर्भाभश्चतुर्बाहु शुभेक्षण।
कमण्डलु वामकरे स्रुवं हस्ते तु दक्षिणे ॥४१
वामेदण्डधर तद्वत् स्तुवञ्चापि प्रदर्शयेत्।
मुनिभिर्देवगन्धर्वै स्तूयमान समन्तत ॥४२

अब भगवान् त्रिविक्रम के विषय मे वर्णन किया जाता है जो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के क्रमण करने मे अत्यन्त ही उल्वण थे। पद के पार्श्व में तथा ऊपर बाहु की कल्पना करनी चाहिए। नीचे की ओर उसी भाँति

वामन देव की कमण्डलु के सहित वर्त्तमान होने की कल्पना करनी चाहिए। उन वामन देव प्रभु के दाहिने हाथ मे एक छोटा सा छत्र देवे और उनका मुख दीनता से परिव्याप्त ही कल्पित करे। उनके पार्श्व भाग मे भृङ्गार के धारण करने वाले राजा वलि को प्रदर्शित करना चाहिए। वामन देव को इस दैत्यों के राजा बलि का बन्धन करते हुए ही दर्शित करना चाहिए तथा उनके समीप म ही गरुड को भी दिखलावे ॥३६, ३७, ३८॥ वही पर मत्स्य रूपी मात्स्य एव कूर्म की आकृति से युक्त कूर्म का भी न्यास करना चाहिए। इस प्रकार के स्वरूप स सुसम्पन्न भगवान् नारायण हरि का स्वरूप वहा पर करना आवश्यक है ॥३६॥ चारो मुखो से युक्त कमण्डलु क धारण करने वाले ब्रह्मा जी को वहा पर दिखलाना चाहिये। किसी स्थल पर उन ब्रह्मा को हस पर समारूढ और कहीं पर कमल के आसन पर विराजमान दिखलावे ॥४०॥ ब्रह्मा का वर्ण कमल की आभा के सदृश—चार भुजाओं से युक्त—शुभ नेत्रा वाला—बाँये हाथ मे कमण्डलु लिये हुए तथा दाहिने हाथ म स्रुव धारण करने वाला दिखलाना चाहिये ॥४१॥ उसी भाति वाम हस्त मे दण्ड को धारण करने वाला और स्रुव का धारी प्रदर्शित करे। सभी ओर मुनिगण—देवगण और गन्धर्वों के द्वारा स्तूयमान होने वाला श्री वामन देव को दिखलाना चाहिये ॥४२॥

कुर्वाणमिव लोकास्त्रीन् शुक्लाम्बरधर विभुम् ।
मृगचर्मधरञ्चापि दिव्ययज्ञोपवीतिनम् ॥४३
आज्यस्थालिं न्यसेत्पार्श्वे वेदाश्च चतुर पुन ।
वामपार्श्वेऽस्य सावित्री दक्षिणे च सरस्वतीम् ॥४४
अग्रे च ऋषयस्तद्वत्कार्या पितामहपदे ।
कार्त्तिकेय प्रवक्ष्यामि तरुणादित्यसप्रभम् ॥४५
कमलोदरवर्णाभ कुमार सुकुमारकम् ।
दण्डकश्चीरकयुक्त मयूरवरवाहनम् ॥४६

स्थापयेतस्वेष्टनगरेभुजान्द्वादश कारयेत् ।
चतुर्भुजः खर्वटे स्याद्वनेग्रामे द्विबाहुकः ।।४७
शक्तिः पाशस्तथा खड्गः शूलं तथैवच ।
वरदश्चैकहस्तः स्यादथचाभयदो भवेत् ।।४८
एतेदक्षिणतोज्ञेया. केयूरकटकोज्वलाः ।
धनुः पताकामुष्टिश्च तर्जनी तु प्रसारिता ।।४६

श्री वामन देव का स्वरूप वहां पर ऐसा प्रदर्शित करे मानों वे तीनों लोकों की रचना कर रहे हों। शुक्ल वर्ण वाले वस्त्रों के धारी—विभु—मृग के चर्म के धारण करने वाले—दिव्य यज्ञोपवीत से सम्पन्न वामन देव के स्वरूप को दिखाना आवश्यक है। इनके समीप में आज्य की स्थाली रक्खे और चारों वेदों को भी स्थापित करे। इनके वाम पार्श्व में सावित्री देवी और दक्षिण पार्श्व में सरस्वती देवी की उपस्थिति दिखानी चाहिए ।।४३. ४४।। आगे की ओर उन पितामह के पद में उसी तरह से ऋषिगण की रचना करनी चाहिये "अब हम स्वामि कार्तिकेय के तरुण आदित्य के समान प्रभा वाले स्वरूप का वर्णन करते हैं ।।४५।। कार्तिकेय प्रभु का वर्ण कमल के उदर की प्रभा के तुल्य है। और वह कुमार अत्यन्त ही सुकुमार हैं कुमार का स्वरूप दण्डक एव चीरकों से समायुक्त है एवं श्रेष्ठ मयूर के वाहन वाला है ।।४६।। अपने अभीप्सित नगर में उनकी स्थापना करे तथा द्वादश भुजाओं की कल्पना करे। खर्वट में चार भुजाओं वाला स्वरूप—वन तथा ग्राम में दो बाहुओं वाला स्वरूप—प्रदर्शित करना चाहिये। शक्ति—पाश—खड्ग—शर—शूल—ये आयुध हाथों में धारण करने वाला स्वरूप हो और एक हाथ वरदान देने वाला एव एक हाथ अभय के देने वाला होना चाहिये। ये सब दक्षिण भाग में जानने चाहिये—केयूर, कटकोज्ज्वल, धनुष, पताका, मुष्टि तथा तर्जनी प्रसारित होनी चाहिये ।।४७–४६।।

खेटक ताम्रचूडञ्च वामहस्तेतु शस्यते ।

द्विभुजस्य करे शक्तिर्वामे स्यात् कुक्कुटोपरि ।।५०
चतुर्भुजे शक्तिपाशौ वामतो दक्षिणे त्वसि ।
वरदोभयदोवापि दक्षिण स्यात्तुरीयक ।।५१
विनायक प्रवक्ष्यामि गजवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
लम्बोदर शूर्पकर्णं व्यालयज्ञोपवीतिनम् ।।५२
ध्वस्तकर्णं वृहत्तुण्डमेकदंष्ट्रं पृथूदरम् ।
स्वदन्त दक्षिणकरे उत्पलञ्चापरे तथा ।।५३
मोदक परशुञ्चैव वामतः परिकल्पयेत् ।
वृहत्वात् क्षिप्तवदन पीनस्कन्धाङ्घ्रिपाणिकम् ।।५४
युक्तन्तु ऋद्धिबुद्धिभ्यामधस्तान्मूषकान्वितम् ।
कात्यायन्या प्रवक्ष्यामि रूप दशभुज तथा ।।५५
त्रयाणामपि देवानामनुकारानुकारिणीम् ।
जटाजूटसमायुक्तामर्द्धेन्दुकृतलक्षणाम् ।।५६

खेटक–ताम्रचूड ये दोनो वाम हस्त मे प्रशस्त होते है। जो दो भुजाओं वाले स्वरूप के वाम हस्त मे कुक्कुट के ऊपर मे शक्ति धारण करावे। चतुर्भुज स्वरूप मे वाम भाग मे शक्ति और पाश तथा दक्षिण हाथ में असि धारण करावे वर देने वाला और अभय का दान करने वाला भी दक्षिण हाथ ही तुरीयक (चतुर्थ) होना चाहिए ।।५०, ५१।। अब श्री विनायक के स्वरूप का वर्णन मै करता हू जिनका गज के समान मुख है और तीन लोचन हैं। भगवान् विनायक लम्ब उदर वाले–शूप के सदृश कर्णों से युक्त और व्यालो से यज्ञोपवीत को धारण करने वाले हैं, ध्वस्त कर्णों वाले—वृहत् तुण्ड से युक्त–एक दांत से सयुत–पृथु (विशाल) उदर वाले हैं। यह अपने दक्षिण हाथ से अपना स्वाद लेने वाले और दूसरे हाथ मे उत्पल रखने वाले हैं ।।५२, ५३।। मोदक और परशु का ग्रहण करना वाम हस्त मे कल्पित करना चाहिए वृहत् होने के कारण क्षिप्त वदन वाले और पीन (परिपुष्ट) स्कन्ध–चरण और पाणि (हाथ) वाले

हैं तथा ऋद्धि और वुद्धि दोनो से युक्त हैं। इ-के नीचे मूषक वाहन के रूप मे स्थित है अतः उससे समन्वित है। इसके उपरान्त मैं भगवती का कात्यायनी देवी के विषय मे वर्णन करता हू—इनका स्वरूप दो भुजाओ वाला है ॥५०, ५५॥ यह देवी तीनो बडे देवों के अनुकार का अनुकरण करने वाली हैं। इनकी भी आकृति जटा जूटों से समायुक्त है तथा अर्ध चन्द्र के द्वारा किये हुए लक्षण स युक्त है ॥५६॥

लोचनत्रयसम्पन्ना पद्मेन्दुसदृशाननाम् ।
अतसीपुष्पसङ्काशा सुप्रतिष्ठा सुलोचनाम् ॥५७
नवयौवनसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिताम् ।
सुचारुदशनान्मद्वत्पीनोन्नतपयोधराम् ॥५८
त्रिभङ्गस्थानसस्थाना महिषासुरमर्दिनीम् ।
त्रिशूल दक्षिणे दद्यात् खड्ग चक्र तथैवच ॥५६
तीक्ष्ण बाण तथाशक्ति वामतोऽपि निबोधत ।
खेटक पूर्णचापञ्च पाशमङ्कुशमेव च ॥६०
घण्टावा परशुञ्चापि वामतः सन्निवेशयेत् ।
अधस्तान्महिषन्तद्वद्विशिरस्क प्रदर्शयेत् ॥६१
शिरच्छेदोद्भव तद्वद्दानव खड्गपाणिनम् ।
रक्तरक्तीकृताङ्ग च रक्ताविस्फारतेक्षणम् ॥६२
वेष्टित नागपाशेन भ्रुकुटीभीषणाननम् ।
वमद्रुधिरवक्त्रञ्च देव्या सिंह प्रदर्शयेत् । ६३

कात्यायनी देवी तीनो लोचनो से सुसम्पन्न-पद्म तथा चन्द्रमा के समान मुख वाली—अतसी के पुष्प के तुल्य स्वरूप स युक्त—सुन्दर प्रतिष्ठा स समन्वित एव रुचिर लोचनों वाली हैं। नूतन यौवन से युक्त-सम्पूर्ण आभरणों से विभूषित—सुन्दर दाँतो वाली और उसी तरह पीन एवं उन्नत पयोधरों स युक्त हैं ॥५७, ५८॥ तीन भङ्गों से युक्त स्थानों के सस्थान वाली और महिषासुर के मर्दन करने वाली है। इनके दक्षिण

कर मे त्रिशूल धारण करावे और खड्ग एवं चक्र भी देवे। तीक्ष्ण बाण तथा शक्ति को वाम कर मे धारण कराना चाहिए। इनके अतिरिक्त वाम भाग मे खेटक-पूर्णचाप-पाश-अंकुश-घण्टा-परशु ये भी सब निदर्शित करने चाहिए। इन देवी के चरणो के नीचे के भाग मे दो शिरो वाले महिषासुर को भी प्रदर्शित करे ॥५९, ६०, ६१॥ शिर के छेदन होने से समुत्पन्न रक्त से रक्तीकृत अङ्गो वाला—रक्त से विस्फारित नेत्रो से संयुत—खड्ग हाथ मे धारण किये हुए उस दानव का स्वरूप दिखाना चाहिए। ६२। नाग पाश से वेष्टित—भ्रुकुटी से संयुत भीषण आनन वाला—बहते हुए रुधिर से युक्त मुख वाला देवी का वाहन सिंह भी देवी की प्रतिमा के साथ ही समीप मे प्रदर्शित करना आवश्यक है ॥६३।

देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरि स्थितम्।
किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाममङ्गुष्ठं महिषोपरि ॥६४
स्तूयमानञ्च तद्रूपममरैः संनिवेशयेत्।
इदानीं सुरराजस्य रूपं वक्ष्ये विशेषतः ॥६५
सहस्रनयनं देवं मत्तवारणसंस्थितम्।
पृथूरुवक्षोवदनं सिंहस्कन्धं महाभुजम् ॥६६
किरीटकुण्डलधरं पीवरोरुभुजेक्षणम्।
वज्रोत्पलधरं तद्वन्नानाभरणभूषितम्। ६७
पूजितं देवगन्धर्वैरप्सरोगणसेवितम्।
छत्रचामरधारिण्यः श्रियः पार्श्वे प्रदर्शयेत् ॥६८
सिंहासनगतञ्चापि गन्धर्वगणसंयुतम्।
इन्द्राणीं वामतस्तस्य कुर्यादुत्पलधारिणीम् ॥६९

सन्निवेशित करना चाहिये। अब इसके उपरान्त मैं सुरराज महेन्द्र देव के स्वरूप का वर्णन करता हूँ—इन्द्रदेव का स्वरूप सहस्र नयनों वाला है तथा मत्त गजेन्द्र पर समारूढ़-पृथु (विशाल) ऊरु, भुज और वक्षस्थल से समन्वित है। सिंह के समान स्कन्धों वाला—महान् भुजाओं से युक्त, किरीट एवं कुण्डलों के धारण करने वाला—पीवर ऊरु, भुजा एवं ईक्षणों वाला है। वज्र एवं उत्पल का धारी तथा उसी भाँति अनेक प्रकार के आभरणों से विभूषित—देवों और गन्धर्वों से पूजित—अप्सरा गणों के द्वारा सेवित इन्द्र का स्वरूप कराकर उनके पार्श्व में छत्र एवं चमरों के धारण करने वाली स्त्रियों को प्रदर्शित करना चाहिए ॥६४-६८॥ इन्द्र देव को सिंहासन पर संस्थित—गन्धर्व गण के द्वारा सेवित निर्दशित करे और इनके वाम भाग में उत्पलों के धारण करने वाली इन्द्राणी को कल्पित करना चाहिए ॥६८॥

१२४–नानादेव प्रतिमा प्रमाण वर्णन

प्रभाकरस्य प्रतिमामिदानीं शृणुत द्विजाः!।
रथस्थं कारयेद्देवं पद्महस्तं सुलोचनम् ॥१
सप्ताश्वञ्चैकचक्रञ्च रथं तस्य प्रकल्पयेत्।
मुकुटेन विचित्रेण पद्मगर्भसमप्रभम् ॥२
नानाभरणभूषाभ्यां भुजाभ्यां धृतपुष्करम्।
स्कन्धस्थे पुष्करे ते तु लीलयैव धृते सदा ॥३
चोलकच्छन्नवपुषं क्वचिच्चित्रेषु दर्शयेत्।
वस्त्रयुग्मसमोपेतं चरणौ तेजसावृतौ ॥४
प्रतिहारौ च कर्तव्यौ पार्श्वयोर्दण्डिपिङ्गलौ।
कर्तव्यौ खड्गहस्तौ तौ पार्श्वयोः पुरुषावुभौ ॥५
लेखनीकृतहस्तञ्च पार्श्वे धातारमव्ययम्।

नानादेवगणैर्युक्तमेव कुर्याद्दिवाकरम् ॥६
अरुण सारथिश्चास्य पद्मिनीपत्रसन्निभ ।
अश्वौ सुवलयग्रीवावन्तस्थौतस्य पार्श्वयो ॥७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—हे द्विजगणो ! अब आप लोग प्रभाकर की प्रतिमा के स्वरूपादि के विषय का श्रवण करिए। सूर्यदेव को रथ मे विराजमान—पद्म हाथ मे धारण किए हुए एव सुन्दर लोचनो वाला प्रदर्शित करना चाहिए। १। सूर्य का रथ सात अश्वो से समन्वित एव एक चक्र वाला परिकल्पित करे। शिखर एव विभिन्न मुकुट से समन्वित और पद्म के मध्य भाग के समान प्रभा वाला करे ॥२॥ अनेक आभरण और भूषणो से युक्त भुजाओ के द्वारा पुष्करो का धारण करने वाले और सदा लीला से ही स्कन्धो पर पुष्करो का धारण किए हुए इन्द्र देव का स्वरूप है। वहीं पर चित्रो मे चोलक से संवृत इन्द्र का स्वरूप दर्शित करना चाहिए। दोनो चरण तेज से समावृत होवे और दोनो पार्श्व-भागो मे दण्डी और पिङ्गल ये दोनो प्रतिहारी करने चाहिए। ये दोनो पुरुष हाथो मे खड्गधारी नियोजित करने चाहिए। पार्श्व मे ही हाथ मे लेखनी धारण करने वाले अव्यय धाता को दर्शित करावे। इस प्रकार से नाना प्रकार के देवगणो से युक्त भगवान् भुवन भास्कर को प्रदर्शित करना चाहिए ॥ ३, ४, ५, ६ ॥ इस दिवाकर सारथि अरुण है जो पद्मिनी पत्र के सदृश है। इसके पार्श्वों मे सुवलय ग्रीवा वाले अन्तस्थ दो अश्व होने चाहिए ॥ ॥

भुजङ्गरज्जुभिर्बद्धा सप्ताश्वा रश्मिसंयुता ।
पद्मस्थं वाहनस्थं वा पद्महस्तं प्रकल्पयेत् ॥८
वह्नेस्तु लक्षणं वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदम् ।
दीप्तं सुवर्णवपुषमर्धचन्द्रासने स्थितम् ॥९
बालार्कसदृशं तस्य वदनञ्चापि दर्शयेत् ।
यज्ञोपवीतिनं देवं लम्बकूर्चधरं तथा ॥१०

कमण्डलु वामकरे दक्षिणे त्वक्षसूत्रकम् ।
ज्वालावितानसंयुक्तमजवाहन मुज्वलम् ॥११
कुण्डस्थं वापि कुर्वीत मूर्ध्नि सप्तशिखान्वितम् ।
तथ यम प्रवक्ष्यामि दण्डपाशधरं विभुम् ॥१२
महामहिषमारूढ कृष्णाञ्जनचयोपमम् ।
सिंहासनगतञ्चापि दीप्ताग्निसमलोचनम् ॥१३
महिषश्चित्रगुप्तश्च करालाः किङ्करास्तथा ।
समन्तादृदर्शयेत्तस्यसौम्यासौम्यान्सुरासुरान् ॥१४

रश्मियो से (बागडोरा से) संयुत सात उनके अश्व हैं जो कि भुजङ्गो की रज्जुओ से बद्ध हैं । अरुण देव को पद्म पर स्थित—वाहन के ऊपर समारूढ और पद्म हाथ में ग्रहण करने वाले परिकल्पित करना चाहिए ॥ ८ ॥ अब वह्निदेव के लक्षण का वर्णन करूँगा जो सम्पूर्ण कामनाओ के फल को प्रदान करने वाले हैं । इनका स्वरूप परम दीप्ति से युक्त—सुवर्ण के तुल्य वपु वाला अर्ध चन्द्र के आसन पर समवस्थित है ॥ ९ ॥ बाल सूर्य के सदृश इनका मुख प्रदर्शित करे । इन देव को यज्ञोपवीत धारी तथा लम्बी दाढ़ी से संयुत दिखलाना चाहिए ॥ १० ॥ इनके वाम कर में कमण्डलु—दक्षिण हस्त में अक्षसूत्र—ज्वालाओ के वितान से संयुत और उज्ज्वल ए । अज के वाहन वाला कल्पित करना चाहिए ॥ ११ ॥ मस्तक पर सात शिखाओं से युक्त इस अग्निदेव को कुण्ड में समवस्थित करे । इसके अनन्तर दण्ड और पाश के धारण करने वाले विभु यमदेव के स्वरूप का वर्णन करूँगा । १२ ॥ महान् विशाल महिष के ऊपर समारूढ—कृष्ण अञ्जन के समुदाय के समान काले वर्ण वाला—सिंहासन पर स्थित—दीप्त अग्नि के तुल्य लोचनों वाला यमराज का स्वरूप है ऐसा ही दर्शित करना चाहिये । महिष और चित्र गुप्त य इस देव के परम कराल किङ्कर हैं जिनको कि इनके चारों ओर दिखावे ।

और अन्य सौम्य स्वरूप वाले असुरों को यमराज के सब ओर दिखलाना चाहिए ॥१३॥१४॥

राक्षसेन्द्र तथा वक्ष्ये लोकपालञ्च नैऋतम् ।
नरारूढं महामायं रक्षोभिर्बहुभिर्वृतम् ॥१५
खड्गहस्तं महानीलं कज्जलाचलसन्निभम् ।
नरयुक्तविमानस्थं पीताभरणभूषितम् ॥१६
वरुणञ्च प्रवक्ष्यामि पाशहस्तं महाबलम् ।
शङ्खस्फटिकवर्णाभं सितहाराम्बरावृतम् ।१७
झषासनगतं शान्तं किरीटाङ्गदधारिणम् ।
वायुरूपं प्रवक्ष्यामि धूम्रन्तु मृगवाहनम् ॥१८
चित्राम्बरधरं शान्तं युवानं कुञ्चितभ्रुवम् ।
मृगाधिरूढं वरदं पताकाध्वजसंयुतम् ॥१९
कुबेरञ्च प्रवक्ष्यामि कुण्डलाभ्यामलङ्कृतम् ।
महोदरं महाकायं निध्यष्टकसमन्वितम् ॥२०
गुह्यकैर्बहुभिर्युक्तं धनव्यग्रकरैस्तथा ।
हारकेयूररचितं सिताम्बरं सदा ॥२१
गदाधरञ्च कर्तव्यं वरदं मुकुटान्वितम् ।
नरयुक्तविमानस्थं एवं रीत्या च कारयेत् ॥२२

अब उसी तरह से राक्षसों के स्वामी और लोकपाल नैऋत के विषय में वर्णन करूँगा। यह नर पर समारूढ़—महती माया से सम्पन्न बहुत से राक्षसों से संवृत—अत्यन्त नील वर्ण वाले—हाथ में खड्ग को धारण किये हुए—काजल के पर्वत के समान स्थित—नर से युक्त विमान में स्थित हैं तथा पीत वर्ण के आभरणों से समलंकृत इनका स्वरूप होता है ॥१५॥१६॥ अब वरुण देव के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—यह हाथ में पाश को धारण करने वाले—महान् बलवान्—शंख और स्फटिक मणि के वर्ण के तुल्य वर्ण वाले—श्वेत हार एवं वस्त्रों से समावृत—झष

(मत्स्य) के आसन पर स्थित—परम शान्त और किरीट तथा अङ्गदों के धारण करने वाले हैं। अब वायुदेव के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—वायु का वर्ण धूम्र होता है तथा मृग के वाहन पर विराजमान रहा करते हैं। इनका स्वरूप विचित्र वस्त्रों के धारण करने वाला—परम शान्त—युवावस्था में युक्त कुञ्चित भ्रूओं वाला—मृग पर समधिरूढ़—वरदान प्रदान करने वाला—पताका तथा ध्वजा से युक्त होता है—एसा ही इनका स्वरूप प्रदर्शित करना चाहिए। इसके अनन्तर कुबेर के स्वरूप का वर्णन करता हूँ—यह कुण्डलों से अलङ्कृत होते हैं—इनका स्वरूप महान् उदर वाला—महान् काया वाला—आठ निधियों से समन्वित—बहुत—से गुह्यकों से युक्त जो कि धन का व्यय करने वाले हैं—गदा के धारण करने वाला—वर देने वाला—मुकुट से मुकुट और नरों से युक्त विमान में समवस्थित होता है। इसी रीति से कुबेर के स्वरूप को प्रदर्शित करना चाहिए ॥१७-२२॥

तथैवेश प्रवक्ष्यामि धवलं धवलक्षणम् ।
त्रिशूल [illegible] दत्त त्र्यक्ष वृषगत प्रभुम् ॥ २३
मातृणां लक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः
ब्रह्माणी ब्रह्मसदृशी चतुर्वक्त्रा चतुर्भुजा ॥२४
हंसाधिरूढा कर्तव्या साक्षसूत्रकमण्डलुः ।
महेश्वरस्य रूपेण तथा माहेश्वरी मता ॥२५
जटामुकुटसंयुक्ता वृषस्था चन्द्रशेखरा ।
कपालशूलखट्वाङ्गवरदाढ्या चतुर्भुजा ॥२६
कुमाररूपा कौमारी मयूरवरवाहना ।
रक्तवस्त्रधरा तद्वच्छूलशक्तिधरा मता ॥२७
हारकेयूरसम्पन्ना कृकवाकुधरा तथा ।
वैष्णवी विष्णुसदृशी गरुडे समुपस्थिता ॥२८
चतुर्बाहुश्च वरदा शङ्खचक्रगदाधरा ।

सिंहासनगता वापि बालकेन समन्विता ।।२९
वाराहीञ्च प्रवक्ष्यामि महिषोपरि सस्थिताम् ।
वराहसदृशी देवी शिरश्चामरधारिणी ॥३०

इसी प्रकार से भगवान् ईश के स्वरूप का मैं अब वर्णन करता हूँ—शिव का स्वरूप एकदम धवल होता है तथा इनके नेत्र भी श्वेत हुआ करते हैं। शिव के हाथ मे त्रिशूल होता है—तीन नेत्रों से युक्त—वृषवाहन पर स्थित—ऐसे यह प्रभुदेव होते हैं—ऐसा ही इनका स्वरूप दर्शित करावे। अब इसके अनन्तर मातृगण के स्वरूप का वर्णन किया जाता है और इनके स्वरूप को यथा रीति से आनुपूर्वी से बतलाया जाता है—यह ब्रह्माणी—ब्रह्म के सदृश—चार मुखो वाली—चार भुजाओ से युक्त हंस पर समधिरूढ—अक्षसूत्र एवं कमण्डलु से युक्त ही इनका स्वरूप बतलाना चाहिए। भगवान् महेश्वर के रूप के साथ उसी भाँति माहेश्वरी को भी माना गया है। यह भी जटा और मुकुट से संयुत—वृष पर विराजमान—मस्तक पर चन्द्र को धारण करने वाला—चारो भुजाओ मे क्रमश कपाल—शूल—खट्वाङ्ग और वरदान रहा करते है ऐसी ही चार भुजाओं वाली हैं ॥ २३, २४, २५, २६ ॥ मयूर के श्रेष्ठ वाहन कौमारी कुमार के स्वरूप से समुत्पन्न है—रक्त वस्त्रो को धारण करती हुई शूल और शक्ति को धारण करने वाली इनको माना गया है ॥२७॥ हार तथा केयूरो के धारण करती हुई चक्र-अंकुश धारिणी है—सिंहासन पर स्थित रहती हुई बालक से समन्वित है। चार बाहुओं वाली—वरदान प्रदान करती हुई शंख, चक्र और गदाधारिणी है। महिष पर समारूढ—वराह के सदृश यह देवी चिरकाल तक मस्तक पर चामरो को धारण करती है॥ २८-३० ॥

गदाचक्रधरा तद्वद्दानवेन्द्रविनाशिनी ।
इन्द्राणीमिन्द्रसदृशी वज्रशूलगदाधराम् ॥३१
गजासनगता देवी लोचनैर्बहुभिर्वृताम् ।
तप्तकाञ्चनवर्णाभा दिव्याभरणभूषिताम् ॥३२

तीक्ष्णखड्गधरा तद्वद् वक्ष्ये योगेश्वरीमिमाम् ।
दीर्घजिह्वामूर्ध्वकेशीमस्थिखण्डैश्च मण्डिताम् ॥३३

दंष्ट्राकरालवदना कुर्याच्चैव कृशोदरीम् ।
कपालमालिनी देवी मुण्डमालाविभूषिताम् । ३४

कपाल वामहस्ते तु मासशोणितपूरितम् ।
मस्तिष्काक्तञ्चबिभ्राणा शक्तिका दक्षिणेकरे ॥३५

गृध्रस्था वायसस्था वा निर्मासा विनतोदरी ।
करालवदनातद्वत्कर्तव्या सा त्रिलोचना ॥३६

अब महिष के ऊपर विराजमाना वराह के ही तुल्य स्वरूप वाली वाराही गदा और चक्र के धारण करने वाली है और दानवेन्द्रों को उसी तरह से विनाश करती है। इन्द्र के सदृश वज्र शूल और गदा को धारण करने वाली इन्द्राणी है । ३१ ।। *गज के आसन पर स्थित—बहुत* से लोचनों से युक्त यह देवी होती है—तप्त सुवर्ण के समान वर्ण की आभा से युक्त दिव्य आभरणों से समन्वित एवं विभूषित-तीक्ष्ण खड्ग को धारण करने वाली अब इस योगेश्वरी का मैं वर्णन करूँगा। यह *योगेश्वरी देवी लम्बी जिह्वा वाली—ऊपर की ओर जाने वाले केशों से* संयुत और अस्थि खण्डों से मण्डित है। ३२, ३३ ।। दंष्ट्राओं के द्वारा कराल वदन वाली इस कृश उदर से सम्पन्न देवी का दर्शित करनी चाहिए। कपाल मालिनी देवी मुण्डों की मालाओं से शोभित है। यह *मास और शोणित से परिपूर्ण कपाल को अपने बाँये हाथ में ग्रहण किया* करती है तथा वह मस्तिष्क से अक्त होता है एवं दक्षिण कर में शक्ति को धारण करने वाली है। गृध्र पर स्थित-वायस पर संस्थित-बिना मास वाली—विशेष रूप से नत उदर से युक्त—कराल मुख वाली और उसी भाँति इसके स्वरूप का तीन लोचनों वाला करना चाहिए। ३४। ३५। ३६॥

चामुण्डा बद्धघण्टा वा द्वीपिचर्मधरा शुभा ।
दिग्वासा कालिका तद्वद्रासभस्था कपालिनी ।।३७
सुरक्तपुष्पाभरणा वर्धनी ध्वजसंयुता ।
विनायकञ्च कुर्वीत मातृणामन्तिके सदा ।। ८
वीरेश्वरश्च भगवान् वृषारूढो जटाधर ।
वीणाहस्तत्रिशूली च मातृणामग्रतो भवेत् ।।३९
श्रियं देवीं प्रवक्ष्यामि नवे वयसि संस्थिताम् ।
सुयौवना पीतगण्डा रक्तोष्ठी कुञ्चितभ्रुवम् ।४०
पीनोन्नतस्तनतटा मणिकुण्डलधारिणीम् ।
सुमण्डल मुख तस्या शिर सीमन्तभूषणम् ।।४१
पद्मस्वस्तिकशङ्खैर्वा भूषिता कुण्डलालकं ।
कञ्चुकाबद्धगात्रौ च हारभूषौ पयोधरौ ।।४२

चामुण्डा—बद्धघण्टा—द्वीपि (गज के) चर्म को धारण करने वाली अर्थात् नग्न—कालिका—रासभ (गधा पर संस्थित—कपालों के धारण करने वाली—सुन्दर रक्त वर्ण वाले पुष्पों के आभरणों से समलङ्कृत—वर्धनी—और ध्वज से समुत कपाल मालिनी आदि का स्वरूप होता है। मातृ गणों के समीप में सदा भगवान् विनायक को अवश्य ही समवस्थित करना चाहिए। और वीरेश्वर भगवान्—वृष पर समारूढ—जटा जूट के धारण करने वाले—हाथ में वीणा रखने वाले—त्रिशूल धारी उन मातृ-गणों के आगे विराजमान होने चाहिए ।।३७, ३८, ३९।। अब हम श्री देवी के स्वरूप के विषय में वर्णन करेंगे जो कि नूतन वय में संस्थित है—सुन्दर यौवन से सम्पन्न—पीतगण्डों वाली—रक्त ओष्ठों से संयुत—कुञ्चित भौंहों वाली—पीन एवं उन्नत स्तनतट से युक्त—मणि जटित कुण्डलों के धारण करने वाली है। उन श्री देवी का मुख सुन्दर मण्डल वाला है तथा शिर सीमन्त भूषण युक्त है।।४०, ४१।। पद्म स्वस्तिक, शंखों के द्वारा अथवा कुण्डल और अलकों के द्वारा भूषित है। कञ्चुकी

से आबद्ध गात्रों वाले—हार की भूषा से भूषित श्री देवी के दोनों पयोधर है ॥५२॥

> नागहस्तोपमौ बाहू केयूरकटकोज्ज्वलौ ।
> पद्मं हस्ते प्रदातव्यं श्रीफलं दक्षिणे भुजे ॥५३
> मेखलाभरणा तद्वत्तप्तकाञ्चनसप्रभाम् ।
> नानाभरणसम्पन्ना शोभनाम्बरधारिणीम् ॥५४
> पार्श्वतस्था स्त्रियः कार्याश्चामरव्यग्रपाणयः ।
> पद्मासनोपविष्टा तु पद्मसिंहासनस्थिता ॥५५
> करिभ्यां स्नाप्यमानासौ भृङ्गाराभ्यामनेकधाः ।
> प्रक्षालयन्तौ करिणौ भृङ्गाराभ्यां तथापरौ ॥५६
> स्तूयमाना च लोकेशैस्तथा गन्धर्वगुह्यकैः ।
> तथैव यक्षिणी कार्या सिद्धासुरनिषेविता ॥५७
> पार्श्वयोः कलशौ तस्यास्तोरणे देवदानवाः ।
> नागाश्चैव तु कर्तव्याः खड्गखेटकधारिणः ॥५८
> अधस्तात्प्रकृतिस्तस्या नाभेरूर्ध्वं तु गौरवी ।
> फणाश्च मूर्ध्नि कर्तव्या द्विजिह्वास्तत्र समाः ॥५९

नाग (गज) के हस्त (सूँड) के सदृश दोनों बाहुएँ हैं जो केयूर और कटक आभूषणों से समुज्ज्वल हैं। इनके हाथ में पद्म और [illegible] तथा दक्षिण कर में श्रीफल देना चाहिए तथा [illegible] मेखला के आभरण से युक्त—[illegible] भूषणों से [illegible] शोभन वस्त्रों के धारण करने वाली भगवती श्री देवी का [illegible] होना चाहिए। उनके पार्श्व भाग में चामरों से युक्त हाथों वाली स्त्रियों का [illegible] है। वह देवी पद्म के आसन पर उपविष्ट [illegible] निर्मित सिंहासन पर समवस्थित है। वह [illegible] होती है। अनेक बार भृङ्गारों के [illegible] है तथा दूसरे भृङ्गारों से [illegible] है। [illegible]

एव ग धव और गुह्यकों के द्वारा वह देवी स्तूयमान होती हुई प्रदर्शित करे। इसी भाँति म सिद्धो और असुरो क द्वारा निषेवित यक्षिणी को भी दिखलाना उचित होता है। उसके दानो पार्श्व भागो म दो कलश सस्था पित होने चाहिए तथा तोरण मे देव और दानवो को स्थित करे। खड्ग और खेटक के धारण करने वाले नागो की भी स्थिति करनी चाहिए। उनके नीचे के भाग मे प्रकृति होवे तथा नाभि के ऊर्ध्व भाग मे पौरुषी होनी चाहिए मूर्द्धा मे फणा दर्शित करे और सम द्वि जिह्व (सर्प प्रदर्शित करन चाहिये ॥४९—४९॥

पिशाचा राक्षसाश्चैव भूतवेतालजातय ।
निर्मासाश्चैव ते सर्वे रौद्रा विकृतरूपिण ॥५०
क्षेत्रपालश्च कर्तव्यो जटिलोविकृतानन ।
दिग्वासा जटिलस्तद्व च्छ्वगोमायुनिषेवित ॥५१
कपाल वामहस्ते तु शिर केशो समावृतम।
दक्षिणे शक्तिका दद्यादसुरक्षयकारिणाम ॥५२
अथात सम्प्रवक्ष्यामि द्विभुज कुसुमायुधम।
पार्श्वे चाश्वमुख तस्य मकर ध्वजसयुतम् ॥५३
दक्षिणे पुष्पवाणञ्च वामे पुष्पमय धनु ।
प्रीति स्याद्दक्षिणे तस्य भोजनोपस्करान्विता ॥५४
रतिश्च वामपार्श्वेतु शयन सारसान्वितम्।
पटश्च पटहश्चैव खर कामातुरस्तथा ॥५५
पार्श्वता जलवापी च वन नन्दनमेव च।
सुशोभनश्च कर्त्तव्या भगवान् कुसुमायुध ॥
शस्थानमीषद्वक्त्र स्यात्स्मितवक्त्रम् ॥५६॥
एतदुद्देशत प्रोक्त प्रतिमालक्षण मया।
विस्तरेण न शक्नोति बृहस्पतिरपि द्विजा ! ॥५७

पिशाच-राक्षस-भूत-वेताल जाति वाले—ये सब निर्मांस, रौद्र और विकृत रूप वाले होने चाहिये। जटाधारी तथा विकृत आनन वाला क्षेत्रपाल भी वहाँ पर स्थापित करके दर्शित करे जो दिशाओं के वसन वाला (नग्न) अथवा कुत्तों और गोमायु (गीदड़) आदि से ऐसा निर्मित हो कि उसके साथ खेला रहे हों। उसके वाम हस्त में कपाल हो तथा उस का शिर केशों से समावृत होवे। दाहिने हाथ में असुरों के क्षय के करने वाली शक्तिका का देव—ऐसा ही उनका स्वरूप दिखलावे। इसके अनन्तर अब दो भुजाओं वाले कुसुमायुध कामदेव का वर्णित किया जाता है। उसके पार्श्व में मकरध्वज से संयुत अश्व मुख को संस्थित करना चाहिए।।५०-५३।। उसके दाहिने हाथ में पुष्पों का बाण और वाम हस्त पुष्पमय धनुष होना चाहिये। उसके दक्षिण हस्त में भोजन के उपस्करों से समन्वित प्रीति होनी चाहिए। वाम पार्श्व में रति और सार सान्वित शयन-पट-पटह-खर जो काम से आतुर हो दिखाना चाहिये। उसके पार्श्व में जल की वापी और नन्दन वन दिखावे। इस प्रकार से भगवान् कुसुमायुध को सुन्दर शोभा से समन्वित प्रदर्शित करना चाहिये। कुसुमायुध के मस्थान में ईषद् वक्त्र होना चाहिये और वह स्मित से युक्त मुख कल्पित करे। यह मैंने उद्देश से कुसुमायुध आदि समस्त देवों की प्रतिमाओं का लक्षण बतला दिया है। इन प्रतिमाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन करने की सामर्थ्य तो हे द्विजगणो! देवों के आचार्य बृहस्पति में भी नहीं है।।५४-५७।

१२५—पीठिका लक्षण वर्णन

पीठिकालक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः ।
पीठोच्छ्रायं यथावच्च भागान् षोडश कारयेत् ।।१
भूमावेकः प्रविष्ट: स्याच्चतुर्भिर्जगती मता ।

वृत्तोभागस्तथस्स्याद्वृत्त पटलभागत ॥२
भागस्त्रिभिस्तथा कण्ठ कण्ठपट्टस्त्रिभागत ।
भागाभ्यामूर्ध्वपट्टश्च शषभागेन पटिटन ॥३
प्रविष्ट भागमेकक जगतीयावदवतु ।
निगमस्तु पुनस्तस्य यावद्व शेषपटिटका ॥४
वारिनिगमनाथ तु तत्रकाय्य प्रणालक ।
पाठिकानान्तुसर्वासामेतत्सामा यलक्षणम् ॥५
विशेषान् देवताभेदान् शृणुध्व द्विजसत्तमा ।
स्थण्डल वाथ वापा वा यक्षी वेदी च मण्डला ।६
पूणच द्रा च वज्र च पद्मावाधशशिस्तथा ।
त्रि णादशमीतासासस्थान वा नबोधत ॥७

महर्षि प्रवर श्री सूत जी ने कहा—अब मैं यथावत् आनुपूर्वी से पीठिका क न तण बतलाऊ गा । पीठिका की यथावत ऊचाई और इसके सोलह भागो की कराना चाहिए ॥१॥ उनमे एक भ ग भूमि मे प्रविष्ट होवे और चार भागो क द्वारा यह जगतातल माना गया है तथा एक भाग वत्त होना चाहिए और वत्त पटल ये समागत होवे ॥२॥ त न भागो के द्वारा कण्ठ तीन भाग से कण्ठ पट्ट—दो भागो से उध्व वह और नष भ ग स पट्टिका करे ॥३॥ जितनी भी जगती है उसमे एक एक भाग प्रविष्ट है । फिर उसका जितना निगम है वह शेष पट्टिका ह ॥४॥ जल क निगमन क लिये वह पर प्रणालक करना आवश्यक है । समस्त पाठिकाओ का यह साम य लक्षण है ॥५॥ ह द्विजश्रेष्ठ ण ! अब विशेष देवताओ क भेदो का श्रवण करलो । स्थण्डिला—वापी यक्षी—देवी—मण्डल—पूर्ण च द्रा—वज्रा—पद्मा—अध शशि—त्रिकोणा—स्सनो है । अब उनका स धान का समस्त लना च हि ए ।६ ७॥

स्थण्डिला चतुरस्रा तु वर्जिता म खलाभिः ।
वा पीठिकामता गया यथाविः त्रिमेखला ।८

चतुरस्रायता वेदी न ता लिङ्गे पु योजयेत् ।
मण्डलावर्तुलायात् मेखलाभिर्मणप्रिया ॥६
रक्ता द्विमेखलामध्ये पूर्णचन्द्रा तु सा भवेत् ।
मेखलात्रयसंयुक्ता षट्‌स्रावज्रिका भवेत् ॥१०
षोडशास्रा भवेत्पद्मा किञ्चिद्‌ध्रस्वा तु मूलत ।
तथैव धनुराकारा सार्द्धचन्द्रा प्रशस्यते ॥११
त्रिशूलसदृशोतद्वत् त्रिकोणाह्यूर्ध्वतोमता ।
प्रागुदक्‌प्रवणा तद्वत्प्रशस्तालक्षणान्विता ॥१२
परिवेषत्रिभागेन निगम तत्र कारयेत् ।
विस्तार तत्प्रमाणञ्च मूलेचाग्रे ततोर्द्धतः ॥१३
जलम ग च कर्तव्यस्त्रिभागेन सुशोभनः ।
लिङ्गस्यार्द्ध विभागेन स्थौल्येन समधिष्ठिता । १४
मेखला तत्त्रिभागेन खातश्चैव प्रमाणत ।
अथवा पादहानन्तु शोभन कारयेत्सदा ॥१५

स्थण्डिला चौकोर होती है और वह मेखला आदि से रहित हुआ करती है। वापा को दो मेखलाऐं होती हैं तथा यक्षी की तीन मेखलाएँ बनाई गयी हैं। वेदी चतुरस्रायत होती है और लिङ्गो म योजित नहीं करनी चाहिये। मण्डला जो होती है वह वर्त्तुला होती है मेखलाओं से मणप्रिया है ॥८, ६॥ जो दो मेखलाओं के मध्य में रक्ता है वह ही पूर्ण चन्द्रा होती है। तीन मेखलाओं से संयुक्त छै कोणों वाली वज्रिका होती है। षोडश अस्रों वाली पद्मा कही जाती है। जो मूल से कुछ ह्रस्व होती है तथा धनुष के आकार वाली होती है वह सार्ध चन्द्रा प्रशस्त कही जाती है। उसी तरह से त्रिशूल के सदृश त्रिकोणा ऊर्ध्व भाग से मानी गयी है। उसी भाँति से प्राग् और उदक् की ओर जो प्रवणा होती है वह लक्षणों से अन्वित प्रशस्त कही जाती है। वहाँ पर परिवेष निर्गम तीन भागों म कराना चाहिए। विस्तार और उसका

होता है ॥१८॥ इस प्रकार से देवों के यजन करने के लिए पीठिका दश तरह की कीर्तित की गयी है। शैल में शैलमयी ही पीठिका देनी चाहिये और पार्थिव मे पार्थिवी देवे। जो दारु (काष्ठ) से जात हो वहाँ पर दारुजा करे तथा मिश्रित होवे तो पीठिका भी मिश्रा ही करनी चाहिये। जो शुभ फल की इच्छा रखने वाले पुरुष हैं उनको चाहिये कि पीठिका अन्य योनि की कभी भी न करें और जैसी होवे वैसी ही सदा पीठिका की रचना करावे ॥१९॥ अर्चा मे आसम दैर्घ्य तथा लिङ्ग में समम करे। जिस देव की जो पत्नी होवे उसकी पीठ पर परिकल्पित करना ही चाहिए। यह सब संक्षेप से हमने पीठिका लक्षण बतला दिया है ॥२०॥

१२६—लिङ्ग लक्षण वर्णन

अथात. सप्रवक्ष्यामि लिङ्ग[illegible] ।
सुस्निग्धश्च सुवर्णश्च लिङ्ग [illegible] ॥१
प्रासादस्य प्रमाणेन लिङ्गमा[illegible] ।
लिङ्गमानेन वा विद्वान् [illegible] ॥२
चतुरस्रे समेगर्ने [illegible] ।
वामेन ब्रह्म[illegible] ॥३
प्रागुत्तरेण [illegible] ।

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—अब इसके अनन्तर मैं लिङ्ग का उत्तम लक्षण बतलाता हूँ। विचक्षण पुरुष को सुस्निग्ध और सुवर्ण लिङ्ग करना चाहिए ॥१॥ प्रासाद के प्रमाण से ही लिङ्ग के मान का विधान किया जाता है अथवा लिङ्ग के मान से ही प्रासाद शुभ लक्षण से युक्त माना जाया करता है ॥२॥ चतुरस्र (चौकोर) समगर्त में ब्रह्मसूत्र का निपात करना चाहिए। ब्रह्मसूत्र के वाम भाग से अर्च्चा अथवा चिह्न होता है ॥३॥ पूर्व और उत्तर में लीन दक्षिणा पराधिन पुर के अपर दिग्भाग में पूर्व द्वार को परिकल्पित करना चाहिए ॥४॥ पूर्व से अपर द्वार माहेन्द्र दक्षिणोत्तर द्वार का विभाजन करके पूर्व का एक विधानि भाजित करे। फिर मध्यगत का ज्ञान प्राप्त करके ब्रह्म सूत्र को प्रकल्पित करना चाहिए। भाग के अग्र से जो लिङ्ग हो वह ही यहाँ पर करना चाहिए और यही प्रशस्त कहा जाता है ॥५, ६, ७॥

पञ्चमं भागविस्तारं वा त्रिभागे ज्येष्ठमुच्यते।
भाजिते नवधा गर्भे मध्यमं पञ्चभागिकम् ॥८
त्रिभिर्भागैः कन्यसं स्यात् गर्भे लिङ्गानि कारयेत्।
समसूत्रं विभज्याथ नवधा गर्भभाजितम् ॥९
ज्येष्ठमद्धेन कनीयः तथामध्यममध्यमम्।
एवमेव मानरूपाणि भिन्नानि विभाजयेत् ॥१०
ज्येष्ठं तु त्रिविधं ज्ञेयं मध्यमं त्रिविधं तथा।
कन्यसं त्रिविधं सद्भिर्लिङ्गभेदा नवैव तु ॥११
नारायणि ... ॥

पाँच भाग में विभक्त मे अथवा त्रिभाग मे ज्येष्ठ कहा जाता है। गर्म मे नौ प्रकार से भाजित करने पर पाञ्च भागिक माध्यम होना है। एक ही मे नौ प्रकार से गर्भ मे लिङ्गो को कराना चाहिये। सम सूत्र का विभाजन करके इसके अनन्तर नौ प्रकार से गर्भ भाजित करे॥८, ६॥ *अर्ध ज्येष्ट–अर्धकनीय तथा मध्यम होता है।* इस प्रकार से गर्भ का समाख्यान किया गया है। तीन भागो से विभाजन करना चाहिए। लिङ्ग के भेद नौ हुआ करते हैं— तीन प्रकार का ज्येष्ठ जानना चाहिये इसी तरह से मध्यम भी तीन प्रकार का है और तद्वत् कन्यस तीन तरह का होता है। लिङ्ग के नौ प्रकार के भेद हुआ करते हैं।।१०, ११॥ नाभि के अर्ध भाग को अष्ट भाग से विभाजित करके इसके अनन्तर बुध पुरुषो को चाहिए कि सम तीन भागो का परित्याग कर देवें। यह चतुरस्रक विष्कम्भ होता हैं। आठ अस्र वाला मध्यम जानना चाहिये जो कि लिङ्ग का निश्चित भाग होता है। यदि विकीर्ण हो तो उससे ग्रहण करके बुध पुरुष को कोणो से लाञ्छित करना चाहिए।।१२, १३॥ अष्टास्र करना चाहिये। उसी भांति ऊर्ध्व को भी करावे। पीछे षोडशा स्रीकृत को वर्त्तुल कराना चाहिये। १४॥

आयाम. तस्य देवस्य नाम्या वै कुण्डलीकृतम्।
माहेश्वर त्रिभागन्तु ऊर्द्ध्वंवृत्त त्ववस्थितम् ॥१५
अधस्ताद्ब्रह्मभागन्तु चतुरस्रोविधीयते।
अष्टास्रोवैष्णवोभागो मध्यस्तस्यउदाहृत ॥१६
एव प्रमाणसयुक्त लिङ्गवृद्धिप्रदम्भवेत्।
तथान्यदपि वक्ष्यामि गर्भमान प्रमाणत.॥१७
गर्भमानप्रमाणेन यल्लिङ्गमुचित भवेत्।
चतुर्धानिर्विभज्याथ विष्कुम्भन्तु प्रकल्पयेत् ॥१८
देवतायतने सूत्र भागत्रयविकल्पितम्।
अग्रस्नाच्चतुरस्रन्तु अष्टास्र मध्यभागतः ॥१६

पूज्यभागस्ततोऽर्द्धन्तु नाभिभागस्तथोच्यते ।
आयामे यद्भवेत्सूत्र नाहस्य चतुरस्रके ॥२०
चतुरस्रार्द्ध परित्यज्य अष्टास्रस्यतु यद्भवेत ।
तस्याप्यर्द्धं परित्यज्य ततोवृत्तन्तु कारयेत् ॥२१

उस देव के आयाम नाभि मे कुण्डली कृत है । माहेश्वर तीन भाग ऊर्द्ध वृत्त अवस्थित है ॥ १५ ॥ नीचे की ओर ब्रह्मभाग चतुरस्र (चौकोर) विहित किया जाता है । अष्टास्र वैष्णव भाग उदाहृत कर दिया गया है । इस प्रकार से प्रमाण से संयुक्त लिङ्ग वृद्धि का प्रदान करने वाला होता है । उसी तरह से और भी गर्भमान प्रमाण से बतलाऊँगा ॥ १६ ॥ १७ ॥ गर्भमान के प्रमाण से जो लिङ्ग उचित होवे उसको चार भागो मे विभक्त करके विष्कम्भ को प्रकल्पित करे ॥१८ ॥ देवता के आयतन मे सूत्र को तीन भागो मे विशेष रूप से कल्पित करे । नीचे की ओर चतुरस्र-मध्यभाग मे अष्टास्र इससे आधा पूज्य भाग है तथा वह नाभिभाग कहा जाया करता है । अयाम मे नाह के चतुरस्रक मे आयाम मे जो सूत्र होता है उस चतुरस्रार्ध का परित्याग कर देवे और जो अष्टास्र होता है उसके भी अर्धभाग का परित्याग करके इसके पश्चात् फिर वृत्त का कराना चाहिए ॥१९॥२०॥२१॥

शिरः प्रदक्षिणं तस्य सत्रिम मूलतोन्यसेत् ।
ज्येष्ठपूज्य भवेल्लिङ्गमधस्ताद्विपुलञ्च यत् ॥२२
शिरसा च सदानिम्नमनोज्ञं लक्षणान्वितम् ।
सौम्यन्तु दृश्यते लिङ्गं तद्वृद्धिप्रदं भवेत ॥२३
अथ मध्ये च मध्य तु प्रमाणेसवतः समम् ।
सर्वेष्विधन्तु यल्लिङ्गं भवेत्तस्मात्सर्वकामिकम् ॥२४
अन्यथा यद्भवेल्लिङ्गं तदसत्सप्रचक्षते ।
एवम्रत्नमयंकुर्यान् स्फाटिकं ...थिवं तथा ॥२५
शुभं दारुमयञ्चापि यद्वा मनसि रोचते ॥२६

उसका संक्षिप्त प्रदक्षिण शिर मूलमे व्यास करना चाहिए। जो नीचे की ओर विपुल है वह ज्येष्ठ पूज्य लिङ्ग होना चाहिए ॥२७॥ सदा शिर से निम्न एवं मनोज्ञ लक्षणान्वित होता है। जो सौम्य लिङ्ग दिखलाई देता है वह निश्चित रूप से वृद्धि के प्रदान करने वाला होता है। इसके अनन्तर मूल में–मध्य में और प्रमाण में सभी ओर से सम है। इस प्रकार का लिङ्ग है वह सर्वकारिक होता है अर्थात् सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है। इसके विपरीत अन्य प्रकार का जो लिंग होता है वह असद् ही कहा जाता है। इस रीति से इसको रत्नों से परिपूर्ण—स्फटिक मणि के द्वारा रचित तथा पार्थिव करना चाहिये अथवा मन को रुचिकर हो तो दारुमय भी परम शुभ होता है। ॥ २३–२६ ॥

१२७–देव प्रतिष्ठा विधि वर्णन (१)

देवतानामथैतासां प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम् ।
वद सूत ! यथान्यायं सर्वेषामप्यशेषतः ॥१
अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम् ।
कुण्डमण्डपवेदीनां प्रमाणञ्च यथाक्रमम् ॥२
चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवे तथा ।
माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् ॥३
प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते दक्षिणायने ।
पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा ॥४
दशमी पौर्णमासी च तथा श्रेष्ठा त्रयोदशी ।
आसु प्रतिष्ठा विधिवत् कृत्वा बहुफला भवेत् ॥५
आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तराद्वयमेव च ।
ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा तथा ॥६

हस्ताश्विनीरेवती च पुष्योमृगशिरस्तथा ।
अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठादिषु शस्यते ॥७

ऋषिगण ने कहा—हे श्री सूतजी ! अब इस सबके कथन के अनन्तर आप जो भी उचित हो पूर्ण रूप से इन समस्त देवों की प्रतिष्ठा की विधि का वर्णन करिये ॥ १ ॥ श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर उत्तम प्रतिष्ठा की विधि के विषय में मैं वर्णन करता हूँ और कुण्ड—मण्डप तथा वेदियों का भी यथा क्रम प्रमाण बतलाऊँगा ॥ २ ॥ चैत्र में, फाल्गुन में, ज्येष्ठ में)अथवा माधव में या माघ मास में सब देवों की प्रतिष्ठा शुभ देने वाली होती है ॥ ३ ॥ दक्षिणायन के समाप्त होने पर परम शुभ शुक्लपक्ष को प्राप्त करके पञ्चमी द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, दशमी, पौर्णमासी और त्रयोदशी ये तिथियाँ परम श्रेष्ठ होती हैं । इन तिथियों में विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करने पर वह बहुत अधिक फल का लाभ किया करता है । अब नक्षत्रों के विषय में बतलाया जाता है दोनों आषाढा—मूल, दोनों उत्तरा ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी पूर्वा भाद्रपद, हस्त, अश्विनी, रेवती पुष्य, मृगशिरा, अनुराधा, स्वाती ये नक्षत्र प्रतिष्ठा आदि कार्यों में प्रशस्त माने जाया करते हैं ॥४—७॥

बुधाबृहस्पति शुक्रस्त्रयाऽप्येते शुभग्रहा ।
एभिनिरीक्षित लग्न नक्षत्रञ्च प्रशस्यते ॥८
ग्रहताराबल लब्ध्वा ग्रहपूजा विधाय च ।
निमित्त शकुन लब्ध्वा वजयित्वाद्भुतादिकम् ॥९
शुभयोगे शुभस्थाने क्रूरग्रह विवर्जिते ।
लग्नेऋक्षेप्रकुर्वीत प्रतिष्ठादिकमुत्तमम् ॥१०
अयने विषुवे तद्वत् षडशीतिमुखे तथा ।
एतेषु स्थापनकार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥११
प्राजापत्ये तु शयन श्वेते तूत्थापन तथा ।
मुहूर्तेस्थापनकुर्यात् पुनर्ब्राह्मे विचक्षण ॥१२

प्रासादस्योत्तरेवापि पूर्वेवा मण्डपो भवेत् ।
हस्तान् षोडशकुर्वीतदशद्वादश वा पुनः ॥१३
मध्येवेदिकयायुक्तं परिक्षिप्त समन्ततः ।
पञ्चसप्तापि चतुरः करान् कुर्वीतवेदिकाम् ॥१४

बुध, बृहस्पति और शुक्र ये तीनों ग्रह परम शुभ होते हैं। ६। ग्रहों के द्वारा देखी गई लग्न और नक्षत्र प्रशस्त कहे जाया करते हैं ॥८॥ ग्रह और ताराओं का बल प्राप्त करके तथा ग्रहों की पूजा करके एवं निमित्त और शकुन पाकर तथा अद्भुत आदि को वर्जित करके शुभ योग में—शुभ स्थान में क्रूर ग्रहों से विवर्जित लग्न में तथा नक्षत्र में प्रतिष्ठा आदि उत्तम कर्म को करना चाहिए ॥ ९, १० ॥ विषुव अयन में उसी भाँति षडशीति मुख में विधि के द्वारा इष्ट कर्म से इनमें ही स्थापना करनी चाहिए ॥ ११ ॥ प्रजापत्य में शयन तथा श्रवेन में उत्थापन विचक्षण पुरुष को पुनर्वाहृय मुहूर्त में स्थापन करना चाहिए ॥ १२ ॥ प्रासाद के उत्तर भाग में अथवा पूर्व भाग में मण्डप होना चाहिए। वह भी दश हाथ या द्वादश हाथ अथवा सोलह हाथ का विस्तृत बनना चाहिए ॥ १३ ॥ मध्य में वेदी से युक्त तथा चारों ओर से परिक्षित होना चाहिये। वेदी भी पाँच सात और चार हाथ विस्तार वाली निर्मित करावे ॥ १४॥

चतुर्भिस्तोरणैर्युक्तो मण्डपः स्याच्चतुर्मुखः ।
प्लक्षद्वारंभवेत्पूर्वं याम्येचोदुम्बरं भवेत् ॥१५
पश्चादश्वत्थघटितं नैयग्रोधं तथोत्तरे ।
भूमौ हस्तप्रविष्टानि चतुर्हस्तानिचोच्छ्रये ॥१६
सूपलिप्तं तथा श्लक्ष्णं भूतलं स्यात् सुशोभनम् ।
वस्त्रैर्नानाविधैस्तद्वत् पुष्पपल्लवशोभितम् ॥१७
कृत्वैवं मण्डपं पूर्वं चतुर्द्वारेषु विन्यसेत् ।
अव्रणान् कलशानष्टौ ज्वलत्काञ्चनगर्भितान् ॥१८

चूतपल्लवसच्छन्नान् सितवस्त्रयुगान्वितान् ।
सर्वौषधिफलोपेताश्चन्दनोदकपूरितान् ॥१९
एवं निवेश्य तद्गर्भे गन्धधूपार्चनादिभिः ।
ध्वजादिरोहणं कार्यं मण्डपस्य समन्ततः ॥२०
ध्वजाश्च लोकपालानां सर्वदिक्षु निवेशयेत् ।
पताकाजदाकारामध्येस्यान्मडपस्यतु ॥२१

मण्डप चार मुखा वाला चार तोरणो से युक्त होना चाहिये। पूर्व द्वार मे प्लक्ष (पाखर) वृक्ष वाला होना चाहिए। दक्षिण द्वार मे उदुम्बर का वृक्ष होना चाहिए। पश्चिम दिशा मे जो द्वार हो वह अश्वत्थ (पीपल) से युक्त एवं घटित होना चाहिए तथा उत्तर दिशा मे न्यग्रोध (वट) का वृक्ष होना चाहिए भूमि मे एक हाथ प्रविष्ट और ऊँचाई मे चार हाथ होना आवश्यक है। भूमि का भाग अच्छी तरह से उपलिप्त-श्लक्ष्ण एवं शोभन होना आवश्यक है। नाना प्रकार के वस्त्रो के द्वारा भूषित-पुष्प और पल्लवो से शोभित पहिले मण्डप की रचना कराकर फिर इस प्रकार से चारों द्वारो मे विन्यास करना चाहिए अर्थात् व्रण से रहित-उत्तम काञ्चन अर्थात् देदीप्यमान सुवर्ण जिनके मध्य मे प्रक्षिप्त किया गया हो ऐसे आठ कलशों का प्रत्येक द्वार पर दो-दो विन्यस्त करे ॥ १५, १६, १७, १८ ॥ आम्र के पल्लवो से सच्छन्न-श्वेत दो वस्त्रो से समन्वित—सर्वौषधि एवं फलो से उपेत—चन्दन के जल से पूरित आठ कलशो को वहाँ पर निवेशित करके उनके मध्य मे गन्ध—धूप और अर्चन आदि से संयुत करके मण्डप के चारो ओर ध्वजा आदि से उसे सुशोभित करना चाहिए ॥ १९, २० ॥ समस्त दिशाओ मे लोकपालो की ध्वजाओ को निवेशित करना चाहिए। मण्डप के मध्य भाग में जलद के आकार वाली पताकाएँ होनी चाहिए ॥२१॥

गन्धधूपादिकं कुर्यात् स्वैःस्वैर्मन्त्रैरनुक्रमात् ।
बलिञ्चलोकपालेभ्य स्वमन्त्रेण निवेदयेत् ॥२२

ऊर्ध्वन्तु ब्रह्मणे देय त्वधस्तान्छेषवासुके ।
संहितायान्तु ये म त्रा तद्वैवत्या. श्रुतौ स्मृता ॥२३
तं: पूजा लोकपालाना कर्तव्या च समन्ततः ।
त्रिरात्रमेकरात्र वा पञ्चरात्रमथापि वा ॥२४
अथवा सप्तरात्रन्तु कार्यं स्यादधिवासनम् ।
एव सतोरणकृत्वा अधिवासनमुत्तमम् । २५
तस्याप्युत्तरत कुर्यात् स्नानमण्डपमुत्तमम् ।
तदर्धेन त्रिभागेन चतुर्भागेन वा पुनः ॥२६
आनीय लिङ्गमर्च्चां वा शिल्पिन पूजयेद्बुध. ।
वस्त्राभरणरत्नैश्च येऽपि तत्परिचारका: ॥२७
क्षमध्वमितितान् ब्रूयाद्यजमानाऽप्यत. परम् ।
देव प्रस्तरणेकृत्वा नेत्रज्योति: प्रकल्पयेत् ॥२८

ऋतुक्रम से अपने २ मन्त्रों के द्वारा गन्ध—धूप आदि सब करना चाहिये । अपने मन्त्रो से लोकपालो के लिये बलि निवेदित करे ॥ २२॥ ऊपर की ओर ब्रह्माजी को बलि समर्पित करे और नीचे की ओर शेष तथा वासुकि को बलि देनी चाहिए । जो मन्त्र संहिता म हैं वह देवतो की श्रुति मे रहे गये हैं ॥ २३ ॥ उनसे ही सभी ओर लोकपालो की पूजा करनी चाहिए । तीन रात्रि तक—एक रात्रि पञ्च रात्रि अथवा सप्त रात्रि पर्यन्त अधिवासन करना चाहिए । इस प्रकार से सतोरण उत्तम अधिवासन करके उसके भी उत्तर मे उत्तम स्नान मण्डप की रचना करनी चाहिए। उनके अर्धभाग से—तीन भाग म अथवा चार भाग से लिङ्ग को लाकर अथवा अर्चा को लाकर बुध पुरुष को शिल्पी की पूजा करनी चाहिए । जो भी उनके परिचारक हों उनकी भी वस्त्र—आभरण और रत्नों से पूजा करे । उसके आगे देव के समक्ष में यजमान को 'क्षमा कीजिए'— ऐसा बोलना चाहिये और फिर देव को प्रस्तरण पर करके नेत्रों की ज्योति की परिकल्पना करे ॥२४—२८॥

अक्षणोरुद्धरण वक्ष्ये लिङ्गस्यापि समासत ।
सर्वतस्तु बलि दद्यात्सिद्धार्थघृतपायसं ॥२९
शुक्लपुष्पैरलङ्कृत्य घृतगुग्गुलधूपितम् ।
विप्राणाञ्चार्चन कुर्याद्द्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् । ३०
गा महीं कनकञ्चैव स्थापकाय निवेदयेत् ।
लक्षण कारयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन वै द्विज ॥३१
ॐ नमो भगवते तुभ्य शिवाय परमात्मने ।
हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नम ॥३२
मन्त्रोऽय सर्वदेवाना नेत्रज्योतिरपि स्मृत. ।
एवमामन्त्र्य देवेश काञ्चनेन विलेखयेत् ॥३३
मङ्गल्यानि च वाद्यानि ब्रह्मघोष सगीतकम् ।
वृद्ध्यर्थं कारयेद् विद्वान् अमङ्गल्यविनाशनम् ॥३४
लक्षणोद्धरण वक्ष्ये लिङ्गस्य सुसमाहित. ।
त्रिधा विभज्य पूजायां लक्षण स्याद् विमाजरम् ॥ ३५

करने वाले मङ्गल वाद्य—गीतों के सहित ब्रह्म घोष वृद्धि के निये कराने चाहिये ॥ ४॥ अब मैं सुसमाहित होकर लिङ्ग के लक्षण का उद्धरण कहूँगा पूज्या में तीन प्रकार से विभाग करके लक्षण विभाजक होता है ॥३५॥

लेखात्रयन्तु वर्तेय यवाष्टान्तरसंयुतम् ।
न स्थूलं न कृशं तद्वत् वक्रं च छेदवर्जितम् ॥३६
निम्नं यवप्रमाणेन ज्येष्ठलिङ्गस्य कारयेत् ।
सूक्ष्मास्ततस्तु कर्त्तव्या यथामध्यमकेष्वमेन ॥३७
अष्टभक्ते ततः कृत्वा त्यक्त्वा भागत्रयं बुधः ।
लम्बयेत्सम्पत्तरेखास्तु पार्श्वयोरुभयोः समाः ॥३८
तावत् प्रलम्बयेद्विद्वान् यावद्भागचतुष्टयम् ।
भ्राम्येत् पञ्चभागोर्ध्वं कारयत्सङ्गमन्ततः ॥३९
रेखया सङ्गमे तद्वत् पृष्ठं भागद्वयं भवेत् ।
एवमेतत्समाख्यातं समासाल्लक्षणं मया ॥४०

अष्टयवों के अन्तर से संयुत तीन लेखायें करनी चाहिए। न तो अति स्थूल हो और न अत्यन्त कृश ही हो और उसी भांति वक्र छेद वर्जित नहीं होना चाहिये ॥ ३६ ॥ ज्येष्ठ लिङ्ग का यव के प्रमाण से निम्न कराना चाहिये। इसके उपरान्त सूक्ष्म करने चाहिये और यथा मध्यमक में न्याम करे। बुध पुरुष को चाहिये फिर अष्ट भक्त करके भाग त्रय को त्याग देवे और दोनों पार्श्वों में समसम्पत रेखाओं का लम्बमान करे। विद्वान को तब तक प्रलम्बित करना चाहिये जब तक चार भाग होवे। पाँच भाग ऊपर की ओर भ्रामित किये जाते हैं और अन्तत सङ्ग कराना चाहिये दोनों रेखाओं के सङ्गम में उसी तरह से पृष्ठ में दो भाग होने चाहिये। इस प्रकार से मैंने संक्षेप से लक्षण को बतला दिया है ॥३७—४०॥

१२८—देवप्रतिष्ठा विधि वर्णन (२)

अतः परं प्रवक्ष्यामि मूर्तिपानान्तु लक्षणम् ।
स्थापकस्य समासेन लक्षणं शृणुत द्विजाः ! ॥१
सर्वावयवसम्पूर्णो वेदमन्त्रविशारदः ।
पुराणवेत्ता तत्त्वज्ञो दम्भलोभविवर्जितः ॥२
कृष्णसारमये देशे उत्पन्नश्च शुभाकृतिः ।
शौचाचारपरो नित्यं पाषण्डकुलनिस्पृहः ॥३
समः शत्रौ च मित्रे च ब्रह्मोपेन्द्रहरप्रियः ।
ऊहापोहार्थतत्त्वज्ञो वास्तुशास्त्रस्य पारगः ॥४
आचार्यस्तु भवेन्नित्यं सर्वदोषविवर्जितः ।
मूर्तिपास्तु द्विजाश्चैव कुलीनाऋजवस्तथा ॥५
द्वात्रिंशत् षोडशाथापि अष्टौ वा श्रुतिपारगाः ।
ज्येष्ठमध्यकनिष्ठेषु मूर्तिपाः प्रकीर्तिताः ॥६
ततो लिङ्गमथार्चां वा नीत्वा स्नपनमण्डपम् ।
गीतमङ्गलशब्देन स्नपनं तत्र कारयेत् ॥७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—इससे आगे मैं मूर्तियों के लक्षण बतलाता हूँ । हे द्विजगण ! जो मूर्तियों की स्थापना करने वाले पुरुष हैं उनके लक्षणों को आप लोग श्रवण करें ॥१॥ स्थापक को किन २ गुणों से सुसम्पन्न होना आवश्यक है—यह बतलाते हुए कहते है जो पुरुष देवों की प्रतिमा की स्थापना करता है वह अपने शरीर के सम्पूर्ण अवयवों से संयुत होना चाहिये—वेदों के मन्त्रों का पण्डित पुराणों का ज्ञाता—तत्त्वों का जानकार—दम्भ, लोभ से रहित भी होना उसका आवश्यक है । सब के कथन का निचोड़ यही है कि उपर्युक्त गुणों से हीन पुरुष मूर्ति स्थापक होने का पात्र ही नहीं होता है ॥२॥ मूर्ति स्थापक कृष्णसारों से परिपूर्ण देशों में समुत्पन्न हो और शुभ आकृति वाला होना चाहिए । वह

शौच के आचार मे परायण तथा नित्य ही पापण के कुल मे स्पृहा न रखने वाला भी होना आवश्यक है ।।३।। देवमूर्ति का स्थापक पुरुष शत्रु और मित्र दोनो मे समान व्यवहार रखन वाला होवे —ब्रह्मा-विष्णु और शिव का प्रिय हो—ऊहा और अपोह मे के तत्वो का ज्ञाता तथा वास्तु शास्त्र का पारगामी विद्वान् होना चाहिए ।।४।। स्थापना कराने वाला आचार्य्य नित्य ही सभी दोषो से विशेष रूप मे रहित होना चाहिए । जो भी द्विजगण मूर्त्तिप हों वे सभी अच्छे शुद्ध कुलो में समुत्पन्न और सरल स्वभाव एव व्यवहार वाले होवें ।।५।। बत्तीस-सोलह-आठ ऐसी ही संख्या उन द्विजो की होनी चाहिए जो देव प्रतिमा की स्थापना के कर्म कराने मे सम्मिलित हो तथा ये सभी श्रुति के पारगामी पण्डित भी होने चाहिए । ये ज्येष्ठ-मध्यम और कनिष्ठ—इन तीन श्रेणियों में विभक्त हुआ करते है जो भी मूर्त्तिप कहे गये हैं । ६।। इसके अनन्तर वे सब लिङ्ग अथवा अर्चा को लेकर स्नपन मण्डप मे प्राप्त होकर वहाँ पर तीन मङ्गल की ध्वनियों से स्नपन करावें ।।७।।

आप्यायस्वेति मन्त्रेण यातेरुद्रशिवेति च ।
उपविश्यार्चयेद्देवं गन्धपुष्पैः समन्ततः ॥१७
सितं प्रतिसरं दद्यात् बार्हस्पत्येति मन्त्रतः ।
दुकूलपट्टैः कार्पासैर्नानाचित्रैरथापिवा ॥१८
आच्छाद्य देवं सर्वत्र च्छत्रचामरदर्पणम् ।
पार्श्वतः स्थापयेत्तत्र वितानपुष्पसंयुतम् ॥१९
रत्नान्योषधयस्तत्र गृहोपकरणानि च ।
भाजनानि विचित्राणि शयनासान्यनानि च ॥२०
अभिरत्वा शूरमन्त्रेण यथा विभवतो न्ययेत् ।
क्षीरं क्षौद्र घृतं दद्यत भक्ष्यभोज्यान्य(न्न) पादसं ॥२१
षड्विधैश्च रसैस्तद्वत् समन्तात् परिपूजयेत् ।
बलि दद्यात् प्रयत्नेन मन्त्रेणानेन भूरिशः ॥२२

"आपो देवी"—इत्यादि मन्त्र से तथा "आपोऽस्मान् मातरोऽपिच"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा दुकूल पट्टों से समाच्छादन करके देव प्रतिमा के शिरो भाग में नेत्रोपधानक अथवा कौशेय देना चाहिये—यह विचक्षण पुरुष का परम कर्त्तव्य है। फिर इसके उपरान्त में मधु और सर्पि से (घृत से) अभ्यञ्जन करके सिद्धार्थकों के द्वारा पूजा करे। आप्यायस्व' इत्यादि मन्त्र से 'यातेरुद्रशिव' इत्यादि मन्त्र के द्वारा वहाँ पर उपविष्ट होकर सब ओर से गन्धाक्षत पुष्पों से देव का अभ्यर्चन करना चाहिये ॥ १५, १६, १७ ॥ 'बार्हस्पत्य'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा देव को सित प्रतिसर समर्पित करना चाहिए। दुकूल पट्टों के द्वारा अथवा अनेक प्रकार के कपास के सूती वस्त्रों से सर्वत्र देव प्रतिमा का भली भाँति समाच्छादन करे और वहाँ पर पार्श्व भाग में छत्र—चामर और दर्पण स्थापित करना चाहिए। वहा पर पुष्पों से संयुक्त एक वितान निर्मित करावे। रत्न—ओषधियाँ गृह के अन्य समस्त उपकरण—भाजन—विचित्र शयन—आसन शूर मन्त्र के द्वारा अभित करके अपने वैभव के

तथा पराजिता देवी सप्तसूक्तं सरौद्रकम् ।
तथैव शान्तिकाध्यायमथर्वा चोत्तरे जपेत् ॥२६
शिरः स्थाने तु देवस्य स्थापको होममाचरेत् ।
शान्तिकैः पौष्टिकैस्तद्वन् मन्त्रैर्व्याहृतिपूर्वकैः ॥३०
पलाशोदुम्बराश्वत्थअपामार्गः शमी तथा ।
हुत्वा सहस्रमेकैक देव पादे तु संस्पृशेत् ॥३१
ततो होमसहस्रेण हुत्वा हुत्वा तनस्ततः ।
नाभिमध्य तथावक्षः शिरश्चाप्यालभेत् पुनः ॥३२
हस्तमात्रेषु कुण्डेषु मूर्तिपाः सर्वतोदिशम् ।
समेखलेषुते कुर्युर्योनिवक्त्रेनु चादरात् ॥३३
वितस्तिमात्रायोनिः स्यद्गजोष्ठसदृशी तथा ।
आयताच्छिद्रसयुक्तापार्श्वतः कलयोच्छ्रिता ॥३४
कुण्डात् कलानुसारेण सर्वतश्चतुरङ्गुला ।
विस्तारेणोच्छ्रयात्तद्वच्चतुरस्रा समाभवेत् ॥३५

अथर्वा मनीषी को पराजिता देवी—सप्त सूक्त, रौद्रक और शान्ति का ध्याय का पाठ तथा जाप उत्तर दिशा मे करना चाहिए ॥२६॥ देव प्रतिमा के शिर के भाग की ओर स्थापक को होम का समाचरण करना चाहिए और वह होम शान्तिक पौष्टिक व्याहृतियों से युक्त मन्त्रों के द्वारा उसी भाँति करे ॥३०॥ पलाश—ढाक) उदुम्बर (गूलर)—अश्वत्थ (पीपल)—अपामार्ग (औंधा)—शमी (छौंकर) इनकी समिधाओ से एक-एक सहस्र आहूतियाँ देकर देव के चरण मे स्पर्श करे।३१। एक-एकसहस्र आहूतियों से होम करके फिर नाभि के मध्य भाग का—वक्षःस्थल का और शिरका आलभन करना चाहिए।३२। सब दिशाओं मे एक हाथके विस्तार वाले कुण्डोंमे जोकि मेखलाओं मे युक्तहोन चाहिए और योनिवक्त्र वाले हों उनमे बड़े ही आदर के साथ उन मूर्तिपाओं को करना चाहिए। ॥३३॥ उनकी योनि एक वितस्ति (बालिश्त) भर विस्तार वाली गज के

ओष्ट के तुल्य होनी चाहिए। वह आयत—छिद्र संयुक्त—पार्श्व भाग में कला से उच्छित–कला के अनुसार कुण्ड से सब ओर चार अंगुल वाली–विस्तार उच्छ्रय–चतुरस्र और सम होनी चाहिये ॥३४ ३५॥

वेदीभित्ति परित्यज्य, त्रयोदशभिरंगुलैं ।
एवं नवसु कुण्डेपु लक्षणञ्चैव दृश्यते ॥३६
आग्नेयशाक्रयाम्येपु होत यमुदगाननं ।
शान्तयालोकपालभ्यो मूर्निभ्य क्रमशस्तथा ॥३७
तथा मूर्त्यधिदेवानां होमं कुर्यात्समाहित ।
वसुधा वसुरेता च यजमाना दिवाकर ॥३८
जल वायुस्तथासाम अंकाशश्चाष्टम स्मृत ।
देवस्य मतयस्त्वष्टावेता कुण्डेषु संस्मरेत ॥३९
एतासामधिपान्वक्ष्ये पवित्रा र्मूतिनामत ।
पृथ्वी पाति शवश्च पशुपश्चाग्निमेव च । ४०
यजमान तथवाग्रो रुद्रश्चादित्यमेव च ।
भवोजल सदा पाति वायुमोशान एव च ॥४१
महादेवस्तथा च द्र भीमश्चावा गमेव च ।
सवदेवप्रतिष्ठासु मूर्तिपा ह्युत एव च ॥४२

पुन करे तथा बारम्बार होम करना चाहिए। यजमान के द्वारा पुन पुन दक्षिणा भी देना परमावश्यक होता है। सभी ओर से श्वेत वस्त्रों से उनकी सबकी पूजा करनी चाहिये। अपनी आर्थिक शक्ति एव सामर्थ्य क अनुसार उनको विचित्र सुवण के कटक—हेम सूत्र तथा सुवण की अ गुलीयक समर्पित करके उ हे पहिनावे ॥४५—४८॥

वासोभि शयनीयश्च परिधाप्या स्वशक्तित ।
भाजनञ्चापि दातव्य यावत् स्यादधिवासनम् ॥४६
बलिस्त्रिसन्ध्य दातव्यो भूतेभ्य सवतो दिशम् ।
ब्राह्मणान् भोजयेत पूव शयान् वर्णा स्तु कामत ॥५०
रात्रौ महोत्सव कार्यो नृत्यगीतकमङ्गल ।
सदा पूज्या प्रयत्नेन चतुर्थीकम यावता ॥५१
त्रिरात्रमेकरात्र वा पञ्चरात्रमथापिवा ।
सप्तरात्रमथोवुर्य्यात क्वचित्सद्योऽधिवासनम् ॥
सवयज्ञफलो यस्मादधिवासोत्सव सदा ॥५२॥

उन सबका सत्कार वस्त्रो क—शयनीया क द्वारा अच्छी रीति स करना चाहिये और य सबको परिधापन कराव। जब तक इनका वहाँ पर अधिवासन होवे तब तक सबको भोजन भी दना चाहिए ॥ ४६ ॥ सभी दिशाओ म भूतो के लिय बलि भी तीनो स घ्याओ क समय म दनी च हिये। सबम पूव ब्राह्मणो का भोजन करावे और इसके उपरा त शेष सभी वर्णों को इच्छा पूवक भोजन दवे ॥५०॥ नृत्य—गीत और अ य मङ्गलो क द्वारा रात्रि क समय म महान् उत्सव करना चाहिए। जब तक यह चतुर्थी कम रहे तब प्रयत्न पूवक सबकी पूजा कर। त्रिरात्र—एक रात्र—पञ्च रात्र अथवा सप्त रात्र पयन्त कर। कहीं पर तुर त ही अधिवासन कर दव। क्योंकि अधिवास का उत्सव सदा ही समस्त यज्ञो क फल वाला हुआ करता है ॥५१, ५२॥

१२६—कलियुगीन भावी राजा

शिशुको ध्र सजातीय प्राप्स्यतीमा वसुन्धराम् ॥१
त्रयाविंशत समाराजा शिशुकस्तु भविष्यति ॥२
श्रीमल्लकर्णिर्भविता तस्य पुत्रस्तु वै दश ।
पूर्णोत्सगस्ततोराजा वर्षाण्यष्टादशैव तु ॥३
पञ्चाशतं समा. पट्च शान्तकर्णिभविष्यति ।
दशचाष्टौ च वर्षाणि तस्य लम्बोदर सुतः ॥४
आपीतकादशद्वेच तस्य पुत्रो भविष्यति ।
दशचाष्टौ च वर्षाणि मेघस्वाति र्भविष्यति ॥५
स्वातिश्च भविता राजा समास्त्वष्टादशैव तु ।
स्कन्दस्वातिस्तथा राजा सप्तैव तु भविष्यति ।.६
मृगेन्द्रस्वातिकर्णस्तु भविष्यतिसमास्त्रयः ।
कुन्तल स्वातिकर्णस्तु भवितष्टौसमानप. ॥७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—शिशुकोन्ध्र इस वसुन्धरा को प्राप्त कर लेगा। वह शिशुक तेईस वर्ष पर्यन्त राजा रहेगा ।१,२॥ फिर उसका पुत्र श्री मल्ल णि दश वर्ष राजा होगा। इसके पश्चात् अट्ठारह वर्ष तक पूर्णोसङ्ग इस भूमि पर शासन करेगा ॥३॥ पञ्चाशत और छै वर्ष तक शान्तकर्णि राजा होगा। उसका पुत्र लम्बोदर अठारह वर्ष तक राजा होगा। फिर आपीतक उसका पुत्र दश और दो वर्ष तक राजा होगा। अठारह वर्ष तक मेघस्वाति राजा इस मही मण्डल पर राज्य करेगा। इसके अनन्तर अष्टादश वर्ष तक स्वाति इस मही का राजा होगा फिर सात वर्ष पर्यन्त स्कन्दर चाति राजा होगा। तीन वर्ष तक महेन्द्र स्वाति कर्ण इस वसुन्धरा पर राज्य करेगा। कुन्तल और स्वाति कर्ण आठ वर्ष तक इस पृथ्वी पर नृप होगा ॥१–७॥

एकसवत्सर राजा स्वातिवर्णो भविष्यति ॥८
भवितारिक्तवणस्तु वर्षाणि पञ्चविंशति ।

तत संवत्सरान् पञ्च हालोराजा भविष्यति ॥९
पञ्चमन्दुलकोराजाभविष्यतिसमा नृप ।
पुरीन्द्रसेनो भविता तस्मात्सौम्योभविष्यति ॥१०
सुन्दरः शान्तिकर्णस्तु अब्दमेकं भविष्यति ।
चकोर स्वातिकर्णस्तु षण्मासान् वै भविष्यति ॥११
अष्टाविंशतिवर्षाणि शिवस्वातिभविष्यति ।
राजा च गौतमो पुत्रोह्येकविंशत्यतोनृप ॥१२
अष्टाविंशतिसुतस्तस्यपुलोमावैभविष्यति ।
शिवश्रावै पुलोमस्तु सप्तैव भवितानृप ॥१३
शिवस्कन्धशान्तिकर्णाद्भविता ह्यात्मजः समाः ।
नवविंशतिवर्षाणि यज्ञ श्री शान्तिकर्णिक ॥१४

एक वर्ष तक स्वातिवर्ण इस पृथ्वी का राजा होगा ॥ ८ ॥ पच्चीस वर्ष तक शिलावर्ण शासन करेगा। फिर इनके पश्चात् पाँच वर्ष तक हाल राजा होगा। हे नृप! फिर पञ्च मन्दुलक राजा होगा— पुरीन्द्रसेन और इससे सौम्य नृपति होगा। सुन्दर शान्तिकर्ण एक वर्ष पर्यन्त इस वसुन्धरा का राजा होगा। चकोर स्वातिकर्ण छः मास तक नृप होगा ॥९, १०, ११॥ अट्ठाईस वर्ष पर्यन्त शिव स्वाति इस मही मण्डल का नृपति बनेगा। गौतमी का पुत्र राजा इक्कीस वर्ष तक रहेगा। उसका पुत्र पुलोमा अट्ठाईस वर्ष पर्यन्त राजा होगा। उस पुलोम से समुत्पन्न शिवश्री सात वर्ष पर्यन्त नृप रहेगा। शान्तिकर्ण से शिवस्कन्ध आत्मज होगा। उन्तीस वर्ष तक यज्ञश्री, शान्तिकर्णिक राजा होगा ॥१२, १३, १४॥

षडेव भवितास्माद्विजयस्तु समास्ततः ।
चण्डश्रीः शान्तिकर्णस्तु तस्य पुत्रः समा दश ॥१५
पुलोमा सप्तवर्षाणि अन्यस्तेषां भविष्यति ।
एवमेते महीपाला आन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वै महीम् ॥१६
तेषां वर्षशतानि स्युश्चत्वारि षष्टिरेव च ।

आन्ध्राणा संस्थिताराज्येतेपाभृत्यान्वयेनृपाः ॥१७
सप्तैवान्धा भविष्यन्ति दशाभीरास्तथा नृपाः ।
सप्तगर्दभिलाश्चापि शकाश्चाष्टादशैव तु ॥१८
यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषाराश्च चतुर्दश ।
त्रयोदश गु(मु) रुण्डाश्च हूणाह्येकोनविंशतिः ॥१९
यवनाष्टौभविष्यन्तिसप्ताशोतिमहीमिमाम् ।
सप्तगर्दभिलाभूयोभोक्ष्यन्तीमावसुन्धराम् ॥२०
सप्तवर्षसहस्राणि तुषाराणां मही स्मृता ।
शतानि त्रीण्यशीतिश्च शतान्यष्टादशैव तु ॥२१

हे द्विज ! इसके पश्चात् केवल छैं वर्ष ही इसका राजा हुआ था। चण्डश्री और शान्तिकर्ण उसका पुत्र दश वर्ष तक शासक रहा था। सुलोमा सप्त वर्ष तक होगा फिर उनका अन्त होगा इस तरह से ये इक्कीस आन्ध्र राजा इस मही का भोग करेंगे ॥१५, १६॥ उनके शासन का काल एक सौ वर्ष और चौंसठ होगा आन्ध्रों के राज्य मे उनके भृत्यो के वश में नृप संस्थित होंगे। सात ही आन्ध्र तथा दश आभीर नृप होंगे। सात गर्दभिल भी होंगे तथा अट्ठारह शक होंगे। आठ यवन राजा होंगे और चौदह तुषार नृपति होंगे। तेरह गुरुण्ड राजा होंगे तथा उन्नीस हूण राजा इस मही का शासन करेंगे। इस मही को सत्तासी वर्ष तक आठ यवन भोगेंगे तथा सात गर्दभिल फिर इस वसुन्धरा का उपभोग करेंगे। यह मही सात हजार वर्ष तक तुषारों की बतलाई गई है। तीन सौ अस्सी और अट्ठारह सौ वर्ष तक का समय बताया गया है ॥१७–२१॥

शतान्यर्द्धञ्चतुष्काणि भवितव्यास्त्रयोदश ।
गु(मु रुण्डा वृषलैः सार्धं मोक्ष्यन्ते म्लेच्छसम्भवाः ॥२२
शतानित्रीणिभोक्ष्यन्ते वर्षाण्येकादशैव तु ।
आन्ध्राः श्रीपार्व्वतीयाश्चतेद्विपञ्चाशतसमा ॥२३
सप्तषष्टिस्तुवर्षाणि दशाभीरास्तथैव च ।
तेषूत्सन्नेषु कालेन ततः किलकिलान्नृपाः ॥२४

भविष्यन्तीह यवनाधर्मत कामतोऽर्थत ।
तैर्विमिश्रा जनपदाआर्य्याम्लेच्छाश्च सवश ॥२५
विपर्ययेण वर्तन्ते क्षयमेष्यन्ति वै प्रजा ।
लुब्धानृतप्रवाश्चैव भवितारो नृपास्तथा ॥२६
कल्किनानिहता सर्वे आर्य्याम्लेच्छाश्चसर्वत ।
अधार्मिकाश्चयेऽत्यथ पाषण्डाश्चैवसवश ॥२७
प्रणष्टे नृपवशे तु सन्ध्याशिष्टे कलौ युगे ।
किञ्चिच्छिष्टा प्रजास्ताव धर्मे नष्टेऽपरिग्रहा ॥२८

डेढ सौ और चार वर्ष तक तेरह होग । वृषलो के साथ म्लेच्छों के समुपन्त गुरुण्ड इस भूमि का उपभोग करगे ॥२१॥ तीन सौ ग्यारह वष तक आन्ध्र नृप इस भूमण्डल का उपभोग करेगे और श्री पार्वतीय द्विपञ्चाशत वर्ष पर्यन्त इस वसुधरा पर शासन करेगे। उसी भाँति दश आभीर सड़सठ वर्ष तक इसका उपभोग करेगे। समय आने पर उन सबके उत्पन्न हो जाने पर फिर इस मही मण्डल पर किलकिला नृप होगे जो यहाँ पर काम से—अर्थ से और अधम से यवन होगे। उन से मिले हुए जनपद सब और आर्य और म्लेच्छ हो जाँयगे। सब विपर्यय म बरताव करेगे और प्रजा क्षय को प्राप्त हो जायेगी। राजा लोग काम और पर बड़े ही लालची तथा मिथ्या भाषण करने वाले हो जाँयगे। फिर ये सब आर्य तथा म्लेच्छ सब ओर में कल्कि के द्वारा निहत होगे। जो भी उस समय में अधार्मिक और अत्यन्त ही पाषण्डी होगे वे सब निहत हो जाँयगे। इस तरह स नृपा क वश क प्रनष्ट हो जान पर और कलियुग क स ध्या भाग के बाकी रहन पर कुछ थोड़ी सी प्रजा के जन शिष्ट रहग और व भा धर्म क नष्ट होजाने पर परि [illegible] होग ॥२३-२८॥

पत्रमूलफलाहाराश्चीरपत्राजिनाम्बरा ।
वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्त्यश्चरिष्यन्ति वसुन्धराम् ॥३१
एवं कष्टमनुप्राप्ता प्रजाकाले युगान्तके ।
निःशेषास्तु भविष्यन्ति सार्द्धं कलियुगेन तु ॥३२
क्षीणे कलियुगे तस्मिन् दिव्ये वर्षसहस्रके ।
ससन्ध्यांशे मुनि. शेषे कृते तु प्रतिपत्स्यते ॥३३
एव वंशक्रम: कृत्स्न कीर्तितो या मया क्रमात् ।
अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ॥३४
महापद्माभिषेकात्तु यावज्जन्मपरीक्षित ।
एवं वर्षसहस्रन्तु ज्ञेयं पञ्चाशदुत्तरम् । ३५

प्रजाजनो मे सभी अनायु वृत्ति वाले—सत्त्व से हीन तथा व्याधियों एवं शोको से उत्पीडित होगे । अनावृष्टि मे अर्थात् वर्षा के पूर्ण तया अभाव होने से सब लोग हत होगे और सब लोग परस्पर मे वध करने की इच्छा रखने वाले हो जायगे । सब रक्षक से रहित—भयभीत तथा परम घोर सङ्कट को प्राप्त करने वाले—मही, तरु और पर्वतों मे निवास करने वाले सभी प्रजाजन उस भीषण एवं महान् दारुण समय मे हो जायगे । भोजन के अभाव मे सब लोग पत्र-मूल और फलो का आहार करने वाले होगे तथा चीर पत्र—चर्म के वस्त्र धारण किया करेगे । सब लोग अपनी वृत्ति के प्राप्त करने की इच्छा से सम्पूर्ण पृथ्वी पर इधर-उधर घूमते फिरेगे । इस प्रकार से युग के अन्त करने वाले प्रजा के समय मे सभी इस कलियुग के साथ ही निःशेष हो जायगे । उस कलियुग के क्षीण हो जाने पर दिव्य वर्ष सहस्र वाले सन्ध्यांश के समय मे जो कि उस समय मे मुनि शेष है कृतयुग ही प्राप्त हो जायगा ॥२६, ३०॥ ॥३१, ३२, ३३॥ इस रीति से मैंने यह वंश का क्रम पूर्ण रूप से तथा क्रम से आप सब लोगो के सामने कह दिया है । इस वंश क्रम मे जो राजा लोग पहिले हो चुके हैं वे सब, वर्त्तमान काल मे जितने भी विद्यमान हैं वे सब तथा जो भविष्य मे होगे वे सभी कीर्त्तित कर दिये गये

हैं। महा पद्म के अभिषेक से जब तक परीक्षित राजा था जन्म था एक सहस्र और आगे पचासत् वर्ष समझने चाहिए ॥३४, ३५॥

पौलोमास्तु तथा ध्रास्तु महापद्मान्तरे पुनः ।
अनन्तरशतान्यष्टौ षट्त्रिंशत्तु समास्तथा ॥३६
तावत्कालान्तरं भाव्यमान्ध्रान्तादापरीक्षितः ।
भविष्येते प्रसङ्ख्याताः पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः ॥३७
सप्तर्षयस्तदा प्राशुः प्रदीप्तेनाग्निना समाः ।
सप्तविंशतिभाव्यानामान्ध्राणान्तु यदा पुनः ॥३८
सप्तर्षयस्तु वर्त्तन्ते यत्र नक्षत्रमण्डले ।
सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं शतम् ॥३९
सप्तर्षीणामृषर्म तत् स्मृतं व दिव्यसंज्ञया ।
समादिव्या स्मृता षष्टिर्दिव्याब्दानि तु सप्तभिः ॥४०
एभिः प्रवर्तते कालो दिव्यः सप्तर्षिभस्तु वै ।
सप्तर्षीणाञ्च यौ पूर्वौ दृश्येते ह्युदितौ निशि ॥४१
तयोर्मध्ये तु नक्षत्रं दृश्यते यत्समं दिवि ।
तेन सप्तर्षयो ज्ञेया युक्ता व्योम्नि शतं समाः ॥४२

फिर पौलोम और आन्ध्र उस महा पद्मान्तर में अनन्तर आठ सौ छत्तीस वर्ष व्यतीत समय था। तब तक परीक्षित नृप से लेकर अन्ध्रों के अन्त तक होगा। श्रुतर्षि पुराणों के ज्ञाताओं ने ये सब भविष्य में समाख्यात किये हैं ॥३६ ३७॥ उस समय में प्रांशु प्रदीप्त अग्नि के समान सप्तर्षिगण थे होने वाले सत्ताईस आन्ध्रों के जब फिर सप्तर्षिगण हैं जिस नक्षत्र मण्डल में पर्याय (बारी) से सौ-सौ सप्तर्षिगण स्थित रहा करते हैं। सप्तर्षियों के ऊपर में जो बनाये गये हैं वे दिव्य संज्ञा से दिव्य वर्ष हो गये हैं। वे दिव्य वर्ष साठ और सात के साथ हैं ॥३८ ३९, ४०॥ इनसे सप्तर्षियों से दिव्य काल प्रवृत्त होता है। सप्तर्षियों के जो दो पूर्व में होने वाले निशा में उदित दिखलाई देते हैं उन दोनों के मध्य में जो

नक्षत्र सम दिवलोक में दिखलाई देता है उनसे व्योम में जो वध तक युक्त सप्तर्षिगण जानने के योग्य हैं ॥ ४१, ४ ॥

नक्षत्राणामृषीणाञ्च योगस्यैतन्निदर्शनम् ।
सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारिक्षिते शतम् ॥ ४३
ब्राह्मणास्तु चतुर्विंशा भविष्यति शतश्मा. ।
तत प्रभृत्यय सर्वोलोकाव्यापन्स्यतेभृशम् ॥ ४४
अनृतापहृत लुब्धा धर्मत कामतोऽर्थतः ।
श्रौतस्मार्तेति शिथिले नष्टवर्णाश्रमे तथा ॥ ४५
सङ्कर दुर्बलात्मानः प्रतिपत्स्यन्ति मोहिना ।
ब्राह्मणा शूद्रयोनिस्था शूद्रा वै मन्त्रयोनय. ॥ ४६
उपस्थास्यन्ति तान्विप्रास्तदयमभिलिप्सव. ।
क्रमेणैव च दृश्यन्ते स्ववर्णान्निरदायकम् ॥ ४७
क्षयमेव गमिष्यन्ति क्षीणशेषा युगक्षये ।
यस्मिन्कृष्णोदिव यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि ॥ ४८
प्रतिपन्न कलियुग प्रमाण तस्य मे शृणु ।
चतु शतसहस्रन्तु वर्षाणां वै स्मृत बुध ॥ ४९

नक्षत्रों के और ऋषियों के योग का यह निदर्शन है । पारीक्षित काल में सौ मघा से युक्त सप्तर्षि गण हैं । जो वध तक चौबीस ब्राह्मण होंगे । तब से लेकर यह सब लोक अत्यन्त ही व्यथित आपत्ति को प्राप्त होगा । धर्म से और काम से होन-अनृत से उपहृत-लुब्ध लोग होंगे । श्रौत और स्मार्त धर्म्म एक म शिथिल हो जाने पर वर्णों और आश्रमों के नष्ट होने पर दुर्बल आत्मा वाले परम मोह को प्राप्त हुए लोग सङ्करता को प्राप्त हो जाँयगे ब्राह्मण लोग शूद्र योनियों में स्थित हो जाँयगे और जो शूद्र होंगे वे मन्त्रयोनि वाले हो जाँयगे ॥४८-४६॥ उनके अर्थ के जानने की इच्छा वाले विप्र गण उन शूद्रों के समीप में समुपस्थित हुआ करेगे । इसी क्रम से दिखलाई देंगे । अपने वर्ण के अन्त को देने वाले युग के क्षय में क्षीण शेष सब क्षय को ही प्राप्त हो जाँयगे । जिस दिन

मे भगवान् श्री कृष्ण दिव्यलोक मे अन्तर्दित होकर चले गये थे उसी समय मे और उस ही दिन मे यह कलियुग प्रतिपन्न हो गया था। उसका प्रमाण अब आप मुझसे श्रवण करिये। बुध जनों के द्वारा चार सौ सहस्र वर्ष अर्थात् चार लाख बताया गया है ।४७, ४८, ४९॥

चत्वार्यष्टसहस्राणि सङ्ख्यात मानुषेण तु।
दिव्य वर्षसहस्रन्तु तदासङ्ख्या प्रवर्तते ॥५०
नि शेषेतु तदा तस्मिन् कृत वै प्रतिपत्स्यते।
ऐलश्चेक्ष्वाकुवंशश्च सहदेव प्रकीर्त्तिता ॥५१
इक्ष्वाको सस्मृत क्षत्र सुमित्रान्तभविष्यति।
ऐल क्षत्र समाक्रान्त सोमवंशविदोविदु ॥५२
एते विवस्वत पुत्रा कीर्तिता. कीर्तिवर्धना:।
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये। ५३
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्यास्तथा शूद्राश्च वै स्मृता।
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन्नि त वश. समाप्यते ।५४
देवापि पौरवोराजा ऐक्ष्वाकोयश्च ते मत।
महायोगबलोपेतौ कलापग्राममाश्रितौ ॥५५
एतौ क्षत्रप्रणेतारौ नवविंशे चतुर्युगे
सुवर्चा मनपुत्रस्तु ऐक्ष्वाकाद्यो भविष्यति ॥५६

मानुष ने बत्तीस हजार वर्ष सख्यात किया है। उस समय मे दिव्य सहस्र वर्ष की सख्या प्रवृत्त होती है ॥५०॥ उस समय मे उस कलियुग क नि शेष हो जाने प ही कृतयुग प्राप्त हो जायगा। ऐल और सहदेव इक्ष्वाकु वश प्रकीर्तित किये गय है। इक्ष्वाकु का सस्मृत क्षत्र सुमित्र के अन्त तक होगा। ऐल क्षत्र समाक्रान्त को सोम वश के वेत्ता लोग जानते हैं। य सब विवस्वान् के कीर्ति के वर्धन करने वाले पुत्र कीर्तित किये गये हैं जो व्यतीत हो चुके हैं—वर्तमान काल में विद्यमान हैं तथा जो अब तक अनागत हैं अर्थात् भविष्य मे होने वाले हैं ॥५१॥ ॥५२, ५३॥ ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र य चार वर्ण कहे गये हैं।

उस वैवस्वत मन्वन्तर मे यह वश समाप्त हो जाया करता है ।। ५४ ।। देवापि और पौरव राजा जो आप ऐक्ष्वाक मानते हैं । ये दोनो महान् योग बल से समुपेत थे तथा कलाप ग्राम मे आश्रय ग्रहण करने वाले थे । ये दोनो ही नवविंश चतुर्युग मे क्षत्र के प्रणयन करने वाले थे । मनु का पुत्र सुवर्चा ऐक्ष्वाको मे सब से आदि मे होने वाला होगा । ५५, ५६॥

नवविंशे युगेसो वैं वशस्यादिर्भविष्यति ।
देवापिपुत्रः सत्यस्तु ऐलाना भविता नृपः ॥५७
क्षत्रप्रवतकावेतौ भविष्येतु चतुर्युगे ।
एव सर्वेषु विज्ञेय सन्तानार्थन्तु लक्षणम् ॥५८
क्षीणे कलियुगेचैव तिष्ठन्तीति कृते युगे ।
समर्पयस्तु तैं सार्धं मध्ये त्रेतायुगे पुनः ॥५९
बीजार्थं वै भविष्यन्ति ब्रह्मक्षत्रस्तु वै पुनः ।
एवमेवतु सर्वेषु तिष्यान्तेष्वन्तरेषु च ।६०
सप्तर्षयोनृपैं सार्द्धं सन्तानार्थं युगे युगे ।
एव क्षत्रस्य चोत्सेध सम्बन्धोर्वद्विजे स्मृतः ॥६१
मन्वन्तराणा सन्ताने सन्तानाश्चश्रुतौस्मृता ।
अतिक्रान्तयुगाश्चैवब्रह्मक्षत्रस्यसम्भवाः ॥६२
यथा प्रशान्तिस्तेषा व प्रकृतीना यथाक्षयः ।
सप्तर्षयो विदुस्तेषा दीर्घायुस्त्व क्षयोदयौ ॥६३

नवविंश युग मे वह वश का आदि होगा । देवापि का पुत्र सत्य ऐलो का नृप होगा । भविष्य चतुर्युग मे ये दोनो क्षत्र के प्रवर्त्तक होंगे । इसी प्रकार से सब मे समझ तथा जान लेना चाहिए । सबका समान अर्थ वाला लक्षण है ।।५७, ५८ ।। कलियुग के क्षीण हो जाने पर कृत युग मे सप्तर्षिगण स्थित रहा करते हैं । मध्य मे त्रेता युग मे पुनः उनके साथ रहते हैं ।।५९ ।। पुनः बीज के लिये वे होंगे । पुनः ब्रह्म और क्षत्र होंगे । इस प्रकार से सब तिष्यान्त अन्तरो मे युग युग में सन्तान के लिये नृपो के साथ मे सप्तर्षिगण होंगे । इस तरह से क्षत्र का उत्सेध द्विजो के साथ सम्बन्ध कहा गया है । मन्वन्तरो के सन्तान मे सन्तान श्रुति मे कहे गये

हैं। अतिक्रान्त युग काल ब्रह्म और क्षत्र के सम्भव बताये गये हैं।६०-६१ जिस प्रकार से उनकी प्रशान्ति और जिस तरह से प्रकृतियों का क्षय, दोनों क्षय और उदय सत्तविगण उनके दीर्घायुत्व का जानते हैं॥ ६३॥

एतेन क्रमयोगेन ऐला इक्ष्वाकवो नृपाः।
उत्पद्यमानास्त्रेतायां क्षीयमाणा कलौ युगे ॥६४
अनुयान्ति युगाख्यान्तु यावन्मन्वन्तरक्षयम्।
जामदग्न्येन रामेण क्षत्रे निरवशेषिते ॥६५
रिक्तेयं वसुधा सर्वा क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः।
द्विवंशकरणं सर्वं कीर्तयिष्ये निबोध मे ॥६६
ऐलश्चेक्ष्वाकुवंशश्च प्रकृतिं परिचक्षते।
राजानः श्रेणिबद्धाश्च तथान्ये क्षत्रिया भुवि ॥६७
ऐलवंशस्तु भूयांसो न तथेक्ष्वाकवो नृपाः।
एषमेकशतं पूर्णं कुलानामभिरोचते ॥६८
तावदेव तु भोजानां विस्तारात् द्विगुणं स्मृतम्।
भोजानां द्विगुणं क्षत्रं चतुर्धा तद्यथातथम् ॥६९
ते ह्यतीताः स नामनो ब्रुवतस्तान्निबोध मे।
शतं वै प्रतिविन्ध्यानां शतनागाः इतस्ततः ॥७०

इस क्रम के योग से ऐल और इक्ष्वाकु नृप त्रेता में उत्पद्यमान होते हैं और कलियुग में क्षीयमाण हुआ करते हैं।।६४।। जब तक मन्वन्तर का क्षय होता है युगाख्या को अनुमान किया करते है। जामदग्नि (परशुराम) के द्वारा समस्त क्षत्रियों के निरवशेषित होने पर इस सम्पूर्ण वसुधा के स्वामी क्षत्रियों से यह समस्त वसुधरा रिक्त हो गई थी। सब द्विवंश करण को मैं कीर्तित करूँगा। उसे अब आप लोग मुझसे समझ लेवें।६५ ६६। ऐलवंश और इक्ष्वाकु वंश प्रकृति के अनुकूल होते हैं। श्रेणीबद्ध राजा लोग तथा अन्य भूमण्डल में क्षत्रियगण है। एलवंश वाले बहुत अधिक हैं और उस तरह से इक्ष्वाकु के वंश वाले नृप नहीं हैं। इन कुलों के पूर्ण एकसौ अभिरोचित होता है। उतना ही विस्तार से भोजों का द्विगुण कहा

रा है। भोजों का द्विगुण क्षत्र यथातथ है।६८-६६। वे सब अतीत होगये हैं। उनके नामों को बतलाने वाले मुझसे आप लोग ज्ञान प्राप्त कर लेवे। एक सौ प्रतिबन्ध्यों के थे। सौ नागों के थे और एकशत हय थे ॥७०॥

शतमेक धार्तराष्ट्रा ह्यशीतिजनमेजया ।
शत वै ब्रह्मदत्तानां वीराणां कुरव शतम् ॥७१
तत शतञ्च पञ्चाला शत काशिकुशादय ।
तथापरे सहस्रे द्वे ये नीपा शशबिन्दव ॥७२
इष्टव तश्च ते सर्वे सर्वे नियुतदक्षिणा ।
एवं राजर्षयोऽतीता शतशोऽथ सहस्रश ॥७३
मनोर्वैवस्वतस्यासन्वर्तमानेऽन्तरे विभो ।
तपातुनिधनोत्पत्तौलोकसंस्थितय स्थिता ॥७४
न शक्यो विस्तरस्तेषां सन्तानस्य परस्परम् ।
तत्पूर्वापरयोगेन वक्तं वर्षशतैरपि ॥७५
अष्टाविंशसमाख्याता गता वैवस्वतेऽन्तरे ।
एते देवगण सार्द्धं शिष्टा ये तान्निबोधत ॥७६
चत्वारिंशत्त्रयश्चैव भविष्यास्ते महात्मन ।
अवशिष्ट युगाख्यास्ते ततो वैवस्वतो ह्ययम् ॥८७

एतद्व कीर्तितं सम्यक् समासव्याससयोगत. ।
पुनरुक्तं बहुत्वात्तु न शक्यं विस्तरेण तु ॥७८
उक्ता राजर्षयो येतु अतीतास्ते युगैः सह ।
ये ते ययातिवश्यानां ये च वशा विशाम्पते ॥७६
कीर्तिता द्युतिमन्तस्ते य एतान् धारयेन्नरः ।
लभते स वरान्पञ्चदुर्लभानिहलौकिकान् ॥८०
आयुः कीर्ति धनं स्वर्गं पुत्रवांश्चाभिजायते ।
धारणाच्छ्रवणाच्चैव परं स्वर्गस्य धीमतः ॥८१

यह सक्षेप और विस्तार के योग से भली भाँति आपको बतला दिया है और फिर अधिक होने के कारण विस्तार के साथ बतलाया नहीं जा सकता है। जो राजर्षिगण बतलाये गये है वे सब युगो के साथ अतीत हो गये हैं वे जो ययाति के वश मे होने वाले है और जो विशाम्पति के वश मे हैं वे द्युतिमान् सब कीर्तित कर दिये गये है इनको जो नर धारण करता है वह पाच लौकिक दुर्लभ वरो को प्राप्त किया करता है – आयु, कीर्ति, धन, स्वर्ग और पुत्रवान् अभिजात होता है। उस धीमान् को इनके धारण करने से, श्रवण करने से स्वर्ग मे परम पद प्राप्त हुआ करता है॥७८–८१॥

एतद्वः कथितं सर्वं यदुक्तं विश्वरूपिणा ।
मात्स्यं पुराणमखिलं धर्मकामार्थसाधनम् ॥८२
एतत्पवित्रमायुष्यमेतत्कीर्तिविवर्धनम् ।
एतत्पवित्रं कल्याणं महापापहरं शुभम् ॥८३
अस्मात् पुराणादपि पादमेकं पठेत्तु य. सोऽपि विमुक्तपापः।
नारायणाख्यं पदमेति नूनमनङ्गवद्दिव्यसुखानिभुङ्क्ते ॥८४

एतद्व कीर्तित सम्यक् समासव्यासयोगत ।
पुनर्वक्त् बहुत्वात्तु न शक्यविस्तरेण तु ॥७८
उक्ता राजषयो येतु अतीतास्ते युगं सह ।
ये ते ययातिवश्यानां ये च वशा विशाम्पते ॥७९
कीर्तिता द्युतिमन्तस्ते य एतान् धारयेन्नरः ।
लभते स वरान्पञ्चदुर्लभानिहलौकिकान् ॥८०
आयु कीर्ति धन स्वर्गं पुत्रवाश्चाभिजायते ।
धारणाच्छ्रवणाच्चैव पर स्वगस्य धीमत ॥८१

यह सक्षेप और विस्तार के योग से भली भाँति आपको बतला दिया है और फिर अधिक होने के कारण विस्तार के साथ बतलाया नही जा सकता है। जो राजर्षिगण बतलाये गये हैं वे सब युगो के साथ अतीत हो गय हैं वे जो ययाति के वश मे होने वाले है और जो विशाम्पति के वश मे हैं वे द्युतिमान् सब कीर्तित कर दिये गये है इनको जो नर धारण करता है वह पाच लौकिक दुर्लभ वरो को प्राप्त किया करता है – आयु, कीर्ति, धन स्वर्ग और पुत्रवान् अभिजात होता है। उस धीमान् को इनके धारण करने से, श्रवण करने से स्वर्ग मे परम पद प्राप्त हुआ करता है॥७८-८१॥

एतद्व कथित सर्वं यदुक्त विश्वरूपिणा ।
मात्स्य पुराणमखिल धर्मकामार्थसाधनम् ॥८२
एतत्पवित्रमायुष्यमेतत्कीर्तिविवधनम् ।
एतत्पवित्र कल्याण महापापहरं शुभम् ॥८३
अस्मात् पुराणादपि पादमेक पठेत्तु य सोऽपि विमुक्तपाप ।
नारायणाख्य पदमेति नूनमनङ्गवद्दिव्यसुखानिभुङ्क्ते ॥८४

यहाँ तक विश्व स्वरूप भगवान् मत्स्य का कहा हुआ पुराण कह दिया गया जो समस्त धर्म, अर्थ, काम का सिद्ध करने वाला है ॥८२॥ यह पवित्र महा पुराण आयु और कीर्ति की वृद्धि करने वाला और परम कल्याणकारक है। बड़े स बड़े पाप भी इसके द्वारा दूर हो जाते हैं ॥८ ॥ जो कोई इस पुराण का एक श्लोक भी पढ़गा वह पाप से विमुक्त हो जायगा और भगवान् की कृपा स देवताओं के समान दिव्य सुखो का उपभोग करगा ॥८४॥ ॥ मत्स्य-पुराण समाप्त ॥